आधुनिक हिन्दी नेत्ररोग विज्ञान शास्त्र

डॉ. दि. धों. साठ्ये, एफ. आर. एफ. पी. एस.

UNIVERSAL LIBRARY
OU_186432
UNIVERSAL LIBRARY

आधूनिक हिन्दी
नेत्ररोगविज्ञान शास्त्र

: लेखक :

डॉ. दि. धों. साठ्ये, एफ्. आर्., एफ्. पी. एस्. (ग्लासगो)

संस्थापक और भूतपूर्व दृष्टिविशारद

खा. ब. हाजी बचुअली धर्मादा आंखका रुग्णालय–परेल बम्बई,

भूमग्या पोशेटी अशनाल म्युनिसिपल धर्मादा आंखका

रुग्णालय, कामाठीपुरा, न्याशनल मेडिकल कालेज,

बम्बई पीपल्स फ्री हास्पिटल, क्रांग्रेस फ्री

हॉस्पिटल, बम्बई, आदि.

अध्यक्ष, आयुर्वेदिक धर्मार्थ दवाखाना मंडल, बम्बई

पहली किताब—भाग १

३९६ पृष्ठ और २२० चित्रसहित

मूल्य १५ रुपिया

प्रकाशकः
डॉ. व्ही. डी. साठ्ये
इन्डियन जरनल आफ आफथालमालाजी
५०२, नारायण पेठ, पूना शहर

सर्वाधिकार ग्रंथकारके स्वाधीन हैं।

मुद्रकः
व्ही. आर्. सावंत,
असोसिएटेड एडव्हरटायझर्स अँन्ड
प्रिन्टर्स, ताडदेव, बम्बई.

महात्माजीका शुभ संदेश

डा. दासने गुजराती अपनी
पुस्तक के बारे में दो शब्द
चाहते हैं। मैं तो आरोग्य के
दर्द के बारे में कुछ नहीं
जानता। हां इतना जानता हूं
कि डा. दासने अपना जीवन
आरोग्य के दर्दीयों की
सेवा के लिये दिया है। उनका
प्रेम खूब है। हमारे गांवों
में ऐसा प्रेम बहुत
कम होता है। डाक्टर महोदयको
मैं धन्यवाद देता हूं। मेरी
उमीद है कि लोग उनके
लिखे लेखोंका इस पुस्तकसे
बहुत लाभ उठावेंगे।

सेवाग्राम मो. क. गांधी
१२-११-४०

अर्पण–पत्रिका

यह नेत्ररोग विज्ञान शास्त्रकी हिन्दी किताब

हमारी पूज्य माता कै. सौ. **भागिरथीबाई साठ्ये**

और

हमारे पूज्य पिता कै० **धोंडो सखाराम साठ्ये**, एक्झिक्युटिव्ह इंजनीयर

को

नम्रतापूर्वक अर्पण करता हूं।

आभार प्रदर्शन

—— (o) ——

इस ग्रंथके लेखन की कल्पना का मूल सन १९०६ में कलकत्ता कॉंग्रेसमें राष्ट्रीय शिक्षण का प्रस्ताव पसार होनेके बाद लोकमान्य बाल गंगाधर टिलक महाराजके राष्ट्रीय शिक्षण के प्रसार कार्य में हमको जो कुछ थोडा मौका मिला; और फिर महात्मा गांधीजीनें स्कूल्स और कालेजोंपर बहिष्कार पुकारनेसे न्याशनल मेडिकल कॉलेज खोलनेकी जो हमको कल्पना हुई इसमें है।

सन १९२१ में न्याशनल मेडिकल कालेज की हमने स्थापना करने के बाद, वैद्यकीय शिक्षण राष्ट्रभाषानें ही देनेकी जरूरत हमको ज्यादह मालूम होने लगी। लेकिन उस समय वैद्यक शास्त्रके प्रमाण ग्रंथ राष्ट्रभाषामें नहीं थे। हमारे सहकारी मित्रोंको हमने सूचना कीई, कि शास्त्रीय शिक्षण राष्ट्रभाषामें से देना सुगम होने के लिये वैद्यक शास्त्रके ग्रंथ राष्ट्रभाषामें लिखना शुरू करना चाहिये। और इसी कल्पनासे हमने पहले पहल नेत्ररोग विज्ञान शास्त्र पर प्रमाण ग्रंथ हमारी मातृभाषामें (मरहटीमें) लिखनेकी कोशिश कीई और यह हिन्दी ग्रंथ उसीका फल है।

इसी समय एक प्रमाण ग्रंथ अपनी राष्ट्रभाषामें लिखना में ज्यादह मुनासिब मानता हूं। पाश्चात्य अंग्रेजी लोंगोका कहना यह है कि शास्त्रीय शिक्षण के लिये अंग्रेजी भाषाही काबिल है। लेकिन उनका यह मत आपस्वार्थी है इसमें कुछ सन्देह नहीं।

इस हिन्दी ग्रंथका लेखन इन तीनों नेताओंके प्रोत्साहनका दृश्यफल है ऐसा हम मानते हैं और इसी वजहसे हम उनके सदैव ऋणी रहेंगे।

इस ग्रंथके प्रकाशन का कुल श्रेय हमारे मित्र डा. **गोपाल विनायक देशमूख,** एम्. डी., एफ्. आर. सी. एस्. (लंदन) को है, और उनके प्रोत्साहन से ही यह प्रकाशन कार्य हुआ है यह बात साफ साफ कहना जरूरी है।

दि. धों साठ्ये

प्रस्तावना

ध्यानमें रखना चाहिये कि नेत्ररोग विज्ञान के विकासमें, दिन ब दिन, अधूनिक यांत्रिक शोधसे, बढती होती जाती है । नेत्रान्तरगंदर्शक यंत्रके (ophthalmoscope) शोध के बाद अधूनिक नेत्ररोगविज्ञान के ज्ञानकी नींव रची गई, उसमें विकृत शरीर कें सूक्ष्म अध्ययनकी तालीमसे ज्यादह भरती हुई और आखिरमें रुग्णविषयक खबरें और स्लिट लॅंप जैसे यंत्र की सहायतासे जिन्दी अवस्थामें भी विकार की शुरूआतमें घटकोंमे दिखाई देनेवाले फरकोंकी खोज करना आसान हो गया । इन शोध के बाद अब नेत्ररोग विज्ञान में ज्यादहतर ज्ञानकी भरती होना संभाव्य नहीं यह कहना सत्य नहीं ऐसा हम मानते हैं । अबतक विकृतीसे घटकों की रचनामें पैदा होनेवाले फरकोंका संशोधन करनेकी कोशिश करते थे। विकार की शुरूआत के दोषों की खोज और सूक्ष्म निरीक्षण करनेकी प्रवृत्ती अब ज्याहद तोरमें दिखाई पडती है । पेशियोंसे बने हुए घटकोंकी रचना की ही सिर्फ खोज होती थी; अब पेशियोंके अणू परमाणूओंका संशोधन शुरू हुआ है, प्रत्यक्ष शरीर की तालीम के साथ साथ अब प्राणि भौतिक विज्ञान (Bio Physics) और प्राणि रसायन शास्त्र का इस्तेमाल शुरू हुआ है । प्रचलित भौतिक रासायानिक शास्त्रके अपूर्ण ज्ञानसे जीवकी क्रियाओंका पूरा समझ होना मुष्किल की बात है। लेकिन इसी मार्गके अवलम्बन से अपने को दिखाई देनेवाले अगणित कूट प्रश्नों की सिद्धि होना संभाव्य है यह उतना ही सत्य है ।

इस ग्रंथके पहले भागमें गौली मूल शास्त्रोंका, जिनपर नेत्ररोग विज्ञान की रुग्णविषयक बातोंका ज्ञान अवलम्बित रहता है, और जिनपर विकार की चिकित्सा की नींव रची है, उनका वर्णन किया है। इन विषयोंका वर्णन हमने इस ग्रंथमें, ज्यादह तफ़सील के साथ देनेकी कोशिश कीई है । इसकी वजह यह है कि अंशतः ये शास्त्र महत्व के और अंशतः चाक्षुष व्यूह का विकास आकार और कार्य इसका बयान अन्य ग्रंथोमें एकही जगह नहीं पाया जाता। इसी भागमें नेत्ररोग विज्ञान संबंधकी कानूनी बातें आदि विषयोंका समावेश किया है । मानते है कि इस हमारी ग्रंथसे सिर्फ दृष्टि विशारदों को ही नहीं बल्कि अन्य जिज्ञासू को भी फायदा मिले।

एक बात का स्पष्टीकरण करना जरूरी है । ग्रंथमें के बहुतसे पारिभाषिक लफ्ज जिनके लिये प्राचीन ग्रंथोंमें पारिभाषिक लफ्ज् नहीं मिले उनके लिये नये बराबर लफ्ज् हमने बनाये हैं । इस ग्रंथ रचनामें फुक्स, बाल, ड्युकएल्डर वुल्फ आदि शास्त्रज्ञों के ग्रंथोंके वचन चित्र आदिका हमने इस्तेमाल किया है । यह बात जाहीर करना हमारा कर्तव्य मानते है और उनको शुक्रिया अदा करते है ।

बम्बई, ता. २० अप्रैल १९४५ — दि. धों. साठ्ये

नेत्ररोग विज्ञान शास्त्र

विषय–सूची

खंड (१) अध्याय १ (१–३६)

विषय प्रवेश—नेत्ररोग विज्ञान शास्त्रका विकासः—१ प्राचीन भारतीय नेत्र वैद्यक, सुश्रुतसंहिता का काल **३,** वाग्भट–माधवकर का काल, **४** सुश्रुत का नेत्र-वैद्यक:—नेत्रका स्वरूप, दृष्टीका वर्णन ५, नेत्रके भाग, नेत्रगोलककी संधियां, नेत्रगोलकके पटल ६, नेत्ररोगकी उत्पत्ति की मिमांसा ७, स्थानभेदसे नेत्ररोग की संख्या ८, मोतीया की शस्त्रक्रियाका चित्र (९); २ **चीनी नेत्रविज्ञान शास्त्रका विकास** (१२–१४), **३ असीरो-इजिपशियन नेत्रवैद्यक** (१५) पपायरस एबर्सके नेत्ररोग, **४ ग्रीक (यूनानी) नेत्रवैद्यक** (१७–२६) हिपोक्रिटिजका नेत्रवैद्यक, इन्द्रियविज्ञान और विकृत शारीरकी कल्पना (१९), अरिस्टाटलका नेत्रेन्द्रिय विज्ञान–नेत्रविकृत शरीर, (२२), नेत्रका तुलनात्मक विवेचन (२४),—५ **रोमन नेत्रवैद्यक** (२६) केलससकी मोतीबिन्दुकी कल्पना, ६ **ग्रीको–रोमन नेत्रवैद्यक** (२८–३५) ग्यालनका नेत्रविज्ञान शास्त्र–आपटिकस और डायगनास्टिकस ग्रंथ (२९) ग्यालनका नेत्रगोलक का शारीर और विविध द्रव कल्पना, रुधिराभिसरण, दृकशास्त्र (३०-३२), ७ **बायजेनटाईन ग्रीक नेत्रवैद्यक** (३५)।

अध्याय २ (३७–६४)

(१) मध्ययुगीन बायजेनटाईन नेत्रवैद्यक। (२) मध्ययुगीन अरबी नेत्र-वैद्यक (३८–५५) जुन्दीशापूरकी पाठशाला (४१), **बगदादके पूर्वीय खलिफतके वैद्यः—युहन्ना–इब्न–मासावाय** या मेसू सीनियर (४२), **हुनायन–इब्न–इशाकअलि इब्न–रावन; आरराजी** या न्हाजेस उनका विश्वकोष या कान्टिनेन्स, **हाले अब्बास** या अलि–इब्न–उल–अब्बास–इब्न–उल का अल मालिकी ग्रंथ; **अमर** ऊर्फ **अबूल कासिम अमर–बिन–अलि–अल–मोसोली**:—अमरकी मोतीबिन्दुको चूस निकालनेकी शस्त्रक्रिया (४५); **ईसा इब्न अलि** या जेसूहाले का नेत्ररोग का ग्रंथः—तीन भाग; **अविसेना, अल हासन** अल–हासन के पूर्व दृष्टिकार्यकी कल्पनाएँ (५१) अल–हासन की दृष्टिकार्य की कल्पना और प्रकाश शास्त्र (५३); **जारीन दस्त; सलाह–अद्दीन–इब्न यूसफ** का नेत्रका चित्र (५५) **(३) कारडोव्हा की पश्चिमी खलीफेन के वक्तका नेत्रवैद्यक (५६–५९) अवेन गुफेट; अव्हेनजार; अव्हेरास; अलेस्पास** उर्फ अबुबेकर–इब्न बादजेह; **हालिफा**–बिन–अबिलमहसन; **अस–सादिल ४** मुस्लिम सलतनतके अतिरिक्त युरपके अन्य प्रश्चिमी देशोंका नेत्रविज्ञान **(५९ ६४)**:—मास्टर **जकारिया, वेनवेनुटस, पीटर दी स्पानियर्ड, फ्रान्सिस राजर बेकन** का चष्मेका शोध; गॉयड शोलियाक की मोतिबिन्दुकी कल्पना; **हिरानिमस ब्रुन्सनीक लिओनारडो–दी–व्हिन्सी।**

अध्याय ३ (६५–७२) अर्वाचीन नेत्रवैद्यक का विकास

पारामेल्समका काल, कोआन सांप्रदायके वैद्य, क्रिडियन वैद्य, लियोनारडो-डी-व्हीन्सी, व्हेसेलियस, ल्युवेन हाक (६६)। ब्रिन, केपलर, मारग्यागनी, वारडाप, त्रिमो, मैट्रजान, सेन्ट आयव्हिस, टेव्हिल (६७)। स्कारपा, बीअर, वेबर (६८)। मैकझी, परकजी (६८)। बेलाडोना, अट्रोपीन का शोध (६८)। हायोसिनामिन, कोकेन, एसरीन, फायसो स्टिगमिन, पायलोकारपिन, होम्याट्रापिन का आविष्कार (६९)।

खंड (२) अध्याय ४

(७२-१०५) रोगीके नेत्रकी परीक्षा:—रोगीकी सामान्य परीक्षा नेत्रकी बाह्य परीक्षा—(१) नेत्रगोलक और नेत्र गहाका पारस्परीक संबध-पुरसृत नेत्रगोलक पार्श्वसृत नेत्रगोलक (२)। नेत्रगोलकको जाचना (३)। नेत्रच्छदकी परीक्षा:—पक्ष्यकोप; नेत्रच्छदपात की कसौटी —फानग्राफ की कसौटी (७६) डलरिम्पल की कसौटी, और स्टेल वाग की कसोटी (७७) ऊपरी नेत्रछदके भीतरी पृष्ठभाग को देखनेके तरीके-नाईस की कर्पणी (७८)। (४) शुक्लास्तर कोपकी परीक्षा (७८)। (५) अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण (७९)—फ्लुरिसिन की कसौटी (८०)। (६) तारकापिधानकी परीक्षा (८०) (अ) तारकापिधानका आकार तथा शकल (८२) परावृत्त प्रतिमाओंकी कसौटी, प्लासिडोकी तश्तरी। तारकापिधान के वाक का नाप—जव्हाल का आफथालमामिटर (८३) आफथालमामिटरके उपयोग (८५)। (क) तारकापिधानकी अपारदर्शकता (८५)—युगलोन्नतोदर शीशा (८६)। (ड) तारकापिधानकी सवेदना शक्ति। (७) शुक्लपटलकी परीक्षा (८७)। (८) चाक्षुषजल। (९) पूर्ववेशमी। (१०) तारकाकी परीक्षा (८८)। (११) कनीनिकाकी परीक्षा (८८) कनीनिकाका सकुचन और प्रसरण करनेवाली औषधीयां, कनीनिकाके नैसर्गिक सवेदन व्यापार (८९)। (१) कनीनिकाके सकोचनके संवेदनाके व्यापार (८९)। (२) कनीनिकाकी प्रसरणकारक सवेदना (९०)। कनीनिकाकी प्रतिक्रियाके सबधमे कुछ ध्यानमे रखनेलायक बाते (९१), कनीनिकाकी कुछ अनियमित प्रतिक्रियाये- आरग कनीनिका. (९१) वरनिगकी कनीनिका प्रतिक्रिया, विरोधाभासात्मक कनीनिका प्रतिक्रिया हिप्पस, (९२)अधत्वमे कनीनिकाकी दिखाई देनेवाली अवस्था। तारकास्तभ (९३) कनीनिकाके क्षेत्रकी परीक्षा (९३)। (१२) स्फटिकमणि (ताल, शीशा) (९४)। (१३) स्फटिक द्रवांगड (९५))। (१४) तारकातीत पिंड (९६)। (१५) नेत्राभ्यन्तर दबाव। (१६) नेत्रगोलकके स्नायु (९६):—स्नायुओंके कार्य की परीक्षा की कसौटी(९७-९९) स्थैर्यबिन्दुकी कसौटी, ढक्कन फलक की कसौटी, म्याडाक्स की शलाकाकी कसोटी, म्याडाक्स की स्पर्शज्या या मान दडकी कसौटी। अप्रकटित केन्द्राभिमुखनाकी शक्ति की कसौटी (१००)—स्टीवनसन का यत्र, म्याडाक्स की दो त्रिपार्श्व की कसौटी, म्याडाक्सकी वामदृष्टि जाचनेके पखेकी कसौटी (१०२), स्टीवन्सका फोरामिटर (१०३)। रिमलेका घूमता त्रिपार्श्व (१०४)। नेत्रस्नायुओंके व्यापार (१०५) अन्तश्चलन, बहिश्चलन। द्विनेत्रीय एकदर्शनकी इच्छा शक्तिका नापन (१०६) हरमन की परदेकी कसौटी (१०६)। नेत्रगोलकके परिभ्रमण का नापन (१०७) नेत्रके निरछेपन का नापन (१०८):—स्टीव्हसका ट्रोपामिटर यत्र, हर्शबर्गकी कसौटी, दृक्क्षेत्र नापन यत्र (१०८), ढक्कन कसौटी (१०९), प्रिस्टले स्मिथ के फीतेकी नापन कसौटी, (११०)। स्ट्राबिसमामिटर (१११) चाक्षुष सज्ञाकी जाच (१११) आकारज्ञान या दृक्शक्तिकी तीव्रता (१११) स्नेलनकी कसौटीके

हरूफ। १ मिटरका दृष्टिकोण, दृष्टिको दूर बिंदुकी परीक्षा ११३ । (२) **रोगीके प्रकाश ज्ञान की परीक्षा** (११४)। दृष्टिके निकटबिन्दुकी दृक्शक्तिकी परीक्षा (११४) । दृक् मधान की शक्तिके व्यापारकी परीक्षा (११४) नेत्रोंकी एककेन्द्राभिमुखता (११५)। दृक्-क्षेत्रकी परिसीमा जाचना (११७)–दृक्क्षेत्र नापन यत्र, म्याक हार्डि (११७) । दृक्क्षेत्रका स्थूल नापन (११९) । दृक्क्षेत्रके नापन पर असर करनेवाली बातें (११९) । दृक्क्षेत्रके व्यग (१) प्राकृतिक अधतिलक (२) विकृतिजन्य अधतिलक (११९-१२०) ।

प्रकाश सज्ञा की परीक्षा (१२०) –फार्स्टर्म का प्रकाश नापन यत्र (१२१) । रगज्ञान की परीक्षा (१२२) कसौटी:–होमग्रेनकी रगीन उनकी लडिया, आलिव्हर की रगीन उनकी सदुक, **जेनिग्ज** स्वा निर्णयात्मक कसौटी, एडरीज ग्रीन और विलियम्सके लालटेन । वर्णान्ध जाननेकी कसौटी (१२६) रगीन समवर्ण भामात्मक काचकी तश्तरी–ग्रथकार । नागेलका अनामालास्कोप (१२७) दृक्शक्तिके रगज्ञानका नापन (१२७) ।

नेत्रकी अन्दरूनी परीक्षा (१२७) प्रकाश, नेत्रान्तरग दर्शक यत्रसे नेत्रकी परीक्षा करनेके लिये लालरग विना प्रकाशका इस्तेमाल (१२८) नेत्रतलकी परीक्षा, नेत्रतल प्रतिक्रिया गति निरीक्षण, अज्ञात रश्मिचित्रण, नेत्रगोलक की दीवालपर प्रकाश डालकर अन्तरग देखना (१२९) । कनीनिका विस्तृत करनेवाली दवाओका (१२९–१३०) इस्तेमाल करनेकी तरह, अट्रोपीन–स्कोपालामिन–होम्याट्रापिन–कोकेन–इयुबोमीन–हायोसिन और हायोसिनामिन–धतुरिन –मायड्रिन–यूफथालमिन । कनीनिका का सकोचन करनेवाली दवाओका इस्तेमाल ।

नेत्रान्तरंग का प्रकाशन (१३२) –(१) **प्रदिपन पद्धति** (१३५) प्रकाशित क्षेत्र इस्तेमाल किये हुए दर्पण की किस्म (१३५) प्रकाशकी तीव्रता (१३७), (२) **अवलोकन पद्धति**–ध्यानकी तदबीर (१३९) नेत्रान्तरंगदर्शक यत्रका प्रकाशित क्षेत्र, प्रकाशित क्षेत्रका विस्तार, प्रकाशित क्षेत्र की चमक (१४१) उसके साथका नेत्रान्तरग दर्शक यत्रके क्षेत्रका चलन, चलन की दीशा; नैसर्गिक नेत्रगोलक, दीर्घदृष्टि नेत्रगोलक–ह्रस्वदृष्टि नेत्रगोलक (१४२); चलनका अन्दाज । नेत्रतल प्रतिछाया गतिका निरीक्षण (१४३), दीर्घ दृष्टि (१४५) महाबली ह्रस्वदृष्टि (१४६), नैसर्गिक दृष्टि और कमबलकी ह्रस्वदृष्टि (१४६), नेत्रान्तरग दर्शक यत्रमे नेत्रतलकी प्रत्यक्ष परीक्षा करनेका तरीकाकी दृक शास्त्रिय तत्वे (१४७) - प्रतिमाका बनना (१४९), प्रतिमाका अभिवर्धन (१५१) । नेत्रान्तरग दर्शक यत्रमे अप्रत्यक्ष परीक्षा करनेका तरीका (१५१)–प्रतिमाका बनना, प्रतिमाका अभिवर्धन (१५३) । नेत्रान्तरग दर्शक यत्र (१५४) सप्रदर्शन नेत्रान्तरग दर्शक यत्र (१५४), फान हेल्महोल्टझका यत्र; स्वयका नेत्रान्तरग दर्शक यत्र (१५५), गौर नेत्रान्तरग दर्शक यत्र (१५५), जल नेत्रान्तरग दर्शक यत्र (१५६) । नेत्रान्तरग दर्शक यत्रका वर्णन (१५६) । नेत्रान्तरग दर्शक यत्र से परीक्षा करनेकी पद्धति (१५७) —प्रत्यक्ष परीक्षाकी सीदी खडी प्रतिमा देखनेकी पद्धति (१५७) —दूरीसे बडे अन्तर्वृत्त दर्पणसे परीक्षा (१५७) नजदीकसे खडी प्रतिमा देखनेका तरीका (१५८) । नेत्रान्तरग दर्शक यत्रमे प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिसे पायी जानेवाली दिक्कते (१६०) छोटे बालकोंकी परीक्षा (१६०), बिछौनेमें पडे रहे रोगीकी परीक्षा।

नेत्रान्तरग दर्शक यत्रसे अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धति–प्रतीप प्रतिमाकी परीक्षा (इन डायरेक्ट आफथाल्मास्कोपी)· (१६०) नेत्रान्तरग दर्शक यत्रमे देखी हुई प्रतिमाका आकार (१६३) ।

प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें प्रतिमाके आकार का अभिवर्धन (१६३) अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें की प्रतिमाके आकार का अभिवर्धन (१६३)। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परीक्षाकी तुलना (१६४)।

नेत्रान्तरग दर्शक यन्त्रमे परीक्षाका इस्तेमाल करनेकी बाते--नेत्रके वक्रीभवन मार्गमेंकी अपारदर्शकता (१६४), नैसर्गिक नेत्रतलका दिखाई पडनेवाला दृश्य (१६६) नेत्रका वक्रीभवनाक का नापन (१६८)। नेत्रतलकी प्रतिक्रियाकी कसौटी। नेत्रतल प्रतिछाया गतिनिरीक्षणका असली तत्त्व (१६९) निर्बिन्दुता (१७०)। अनुलोप जातीय निर्बिन्दुता (१७१)। कैंची सदृश चलन (१७२) सादे दर्पणमें नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण (१७२)। नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण की प्रत्यक्ष परीक्षामें गलती होनेके कारण (१७३) नेत्रतलके भिन्न भागोंके समतलके फरक मुकर्रर करना (१७३)। नेत्रमें घुसे हुए शल्यका स्थान मुकर्रर करना (१७४)। नेत्रान्तरगका परिप्रदिपन ट्रान्सइल्युमिनेशन (१७४)। सायडरोफोन (१७५) आफथालमोडायाफोना स्कोप (१७५)।

खंड २ अध्याय ५

नेत्ररोगविज्ञान शास्त्र सबंधकी कुछ कानूनी बाते (१७६-१९५)
(१) चाक्षुप वाकिफगारकी गवाही (अ) चाक्षुप वाकिफगारकी गवहीका वैद्यकीय परिणाम, विचार दृष्टिविशारदके पेशेमे करना जरूरी होता है ऐसे आमतोरके जरर (१७६)। तारकाकी कुछ नैसर्गिक अनियमित घटनाः—विषम रगी नेत्र, बहिच्युत कनीनिका, अनेक कनीनिका, कनीनिकामें का स्थायी परदा या झिल्ली (१७७)। बहानेकी तरह और अन्य झूटे ढगकी तरह का बहाना (१७७)। बहाना जाचनेकी कसोटिया (१७८)- (अ) दृक क्षेत्रके समकेन्द्रिक सकोचनका या नेत्रके अधतिलकका बहाना (ब) कोपियोपिया का बहाना, (क) दोनो नेत्रोंकी दृष्टि दुर्बलता और दृष्टिहीनता (ॲम्ब्लियोपिया ओर अमारोसिस) का बहाना जाचनेकी कसोटिया श्मिडट रिपलर की कसोटी (१७८) (ड) एक नेत्रकी दृष्टिहीनता और दृष्टिदुर्बलता का बहाना जाचनेकी कसोटी (१७९) (१) कुदनेकी रोकनेकी कसोटी, (२) त्रिपार्श्व की ओर शीशोकी कसोटिया-(अ) अलफ्रेड फान ग्राफकी कसोटी (१७९) भिन्न स्थिती द्विधादर्शनकी कसोटी (१८०), (२) ज्याकसन की कसोटी (१८१) (३) फिरडेनवर्गकी दर्पण यत्र की कसोटी (१८१), (४) स्नेलन की लाल ओर हरे हरूफोंकी कसोटी (१८२), (५) घनतादर्शक की कसोटी (स्टिरियास्कोपिक टेस्ट) (१८२)। (६) हेरिंगके गिरनेवाले पदार्थोंके प्रयोग की कसोटी (१८२)।

झूटी निसबत-माहियत-की कसौटी (१८२) -- भोहकी जखम, त्वक्रक्तनिसरण, गरम पदार्थोसे जलन ओर दाहक रासायनिक पदार्थोंमे जलन के फर्क जानना (१८३)। **असलसे ज्यादह बयान की कसौटी** (१८४) **नैसर्गिक दृष्टीके बहानेकी कसौटी** (१८४)।

चाक्षुप हानीकर चिकित्सा - (आफथालमिक मालप्राकटिस) (१) की वैद्यकीय और शस्त्रक्रियाकी कुछ बाते (१८४) -(१) तिरछे नेत्रकी शस्त्रक्रिया, (२) बेशकलकी अवस्था (३) नेत्रगोलकमें के शल्य, (४) नवजात बालकोंके पूयप्रमेहज अभिष्यद (१८५), मोतीबिन्दुकी

शस्त्रक्रिया (१८५) वक्रीभवन दोष दुरुस्ती आदि **सबंधीके दावे,** (१८५) (२) **दृष्टिविशारदकी वाकिफ गवाह सबंधी कुछ कानूनी बातें** दृष्टिविशारदकी वाकिफ गवाहीका स्वरूप (१८५) वाकिफ वैद्यको गवाह देनेकी बाते (१८५) चाक्षुष हानीकर चिकित्साके सबधमेका कानूनी मत (१८६) कुछ मुतर्फरिक बाते (१८७)। (३) दृष्टिसबधी आर्थिक बाते (१८७–१८८)। (४) नेत्र-गोलककी इजाके वास्ते नुकसानकी भरपाई या बदला (१८९) (१) अनुपयुक्तताका प्रमाण मुकर्रर करना (१८९) इन रोगीके दो वर्ग (१९१) —मज्जातन्तु क्रिया लोपजन्य दृष्टिदौर्बल्य-अपघातजन्य दृष्टि दौर्बल्यके लक्षण (१९१)। (२) द्रव्योत्पादन शक्तिका प्रमाण मुकर्रर करना (१९२) अल्पमात्र अनुपयुक्तता (१९४)। नुकसानभरपाईकी रकम (१९५)।

खंड (३) अध्याय ६ नेत्रका शरीर

नेत्रगुहाकी अस्थिया (१९६)। नेत्रगुहाका अग्र (१९६), नेत्रगुहाका प्रवेशद्वार, दीवाले (१९७) नेत्रगुहामेंके नो छिद्र (१९७) —चाक्षुष छिद्र या दृष्टिरज्जुका छिद्र, उर्ध्व नेत्रगोहिक दरार, गडास्थिमेके छिद्र, झरझरास्थिमेके छिद्र, उर्ध्व नेत्रगोहिक छिद्र, जतु-उर्ध्वदन्तास्थिकी दरार, नासिका या अश्रुवाही नाली। नेत्रगुहाका नाप (१९९)। **नेत्रगुहान्तस्थ घटक** (२००) (अ) **संयोगी घटक** नेत्रगुहाकी दीवालोका आवरण—अस्थ्याश्रित पटल, नेत्रगोहिक पटल, टेननका आवरण, नेत्रस्नायुओका आवरण, प्रतिबधक बद (२०१) नेत्रगुहाका मेदाश्रित पटल (२०२), टेननका आवरण, बानेटका आवरण (२०३) लाकवुड वर्णित नेत्रको लटकानेवाला बन्द (२०३); (ब) **नेत्रगोलके स्नायु** सरलोर्ध्व नेत्रचालनी स्नायु (२०३); सरल बहिर नेत्र चालनी स्नायु, सरलान्तर चालनी स्नायु, सरलाधो नेत्र चालनी स्नायु (२०४), नेत्रगोलकके वक्र चालनी स्नायु—वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु (२०४) वक्राधो नेत्रचालनी स्नायु (२०५)। नेत्र स्नायुओका विवर्तन केन्द्र (२०६) नेत्रच्छदके स्नायु, उर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु (२०७)। नेत्रगुहामेंकी निरंकित स्नायु, परिनेत्रगोलक स्नायु। **(क) नेत्रगुहामेंके संज्ञावहा और चालक मज्जारज्जु दृष्टिरज्जु**—(सज्ञावहा मज्जारज्जु) (२०८) पहला यानी नेत्राभ्यन्तरका भाग (२०९) दूसरा यानी नेत्रगुहामेका भाग (२१०) दृष्टिरज्जुकी कुल लम्बाई (२११), तीसरा भाग (२१२)। दृष्टिरज्जु सधि, दृष्टिरज्जु योजिका (२१३) चाक्षुपपथ। चालक मज्जारज्जुएँ:—**तीसरी मज्जारज्जु** (२१३) इसका मस्तिष्कमेका मार्ग, इसके मस्तिष्कके केन्द्रमे पहला सबन्ध (२१४) दूसरा अप्रत्यक्ष सबध (२१५)। **चौथी मस्तिष्क मज्जारज्जु** (२१५)। **छटवीं मस्तिष्क मज्जारज्जु** (२१५)।

संज्ञावाहक मज्जारज्जु—पाचवी मस्तिष्क मज्जारज्जुकी चाक्षुष शाखा (२१६), चाक्षुष शाखाकी उपशाखाएं (१) अश्रुपिडगा शाखा (२१६), (२) ललाटिका मज्जारज्जु शाखा (२१७), (३) नासिका मज्जारज्जु शाखा (२१७), (४) सयोगी शाखाएँ, (५) आवर्त शाखा (२१७), चाक्षुष मज्जा कद (२१७), वाहक मूल, चालक मूल, आनुकपिक मूल (२१८)। (ड) **नेत्रगुहाकी रक्तवाहिनियाः**– (अ) चाक्षुपरोहिणी (२१९) शाखाएँ—(२१९) स्नायुओकी शाखाएँ, दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी, ताग्कातीत पिडकी रोहिणी शाखाएँ। (ब) चाक्षुष नीला (२२०), आवर्त नीला (२२१), (क) नेत्रगुहाकी लसिका वाहिनिया (२२१),

टनन का लसिकावकाश । (ग) **नेत्रगुहाके चारों ओरके हवाभरे कोटर**—ललाटास्थि कोटर, उर्ध्व दन्तास्थि कोटर, (?) झर्झरास्थि कोटर, जतुकास्थि कोटर (२२२), (त) **अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण** (२२३–२२६)—अश्रुग्रंथी (२२३) ऊपरकी और नीचेकी या सहचारी, अश्रुग्रंथी (२२४), नेत्राश्रुकी रासायनिक रचना (२२४) अश्रु बह जानेका रास्ता —अश्रुके निष्कासिक मार्गके सस्थान, अश्रुग्राही मुख, अश्रु नलिका, अश्रुकोष, नासिका नलिका (२२५) । (न) **भौंहे** (२२५) (म) **नेत्रच्छद या पलक** (२२३–२३१) नेत्रच्छदोंके प्रान्तका विस्तार. नेत्रच्छदका आकार. नेत्रच्छदान्तराल (२२६) नेत्रच्छदकी किनारिया (२२८) **नेत्रच्छदकी रचना** (२२९):—(१) नेत्रच्छदकी बाहरकी चमड़ी (२) नेत्रनिमिलिकी स्नायु (२२९), (३) च्छदपट (२३०), (४) नेत्रगोलिक पटल (२३१), (५) नेत्रच्छदकी ग्रथिया -मायबोमियन ग्रथि वाल्डेयरकी ग्रथिया साल की ग्रथिया, जेम की ग्रथिया (२३१)। (६) पक्ष्म । (७) शुक्लान्तर (२३२)। शुक्लान्तर कोषकी सूक्ष्म रचना। (८) नेत्रच्छदकी रोहिणिया, नील्या, लसिका वाहिनिया, (९) नेत्रच्छदके मज्जातन्तु (२३२)।

नेत्रगोलक का शरीर (२३८-२८१)

नेत्रगोलक, **नेत्रगोलकका आकार** (२३२), **नेत्रगोलक के व्यास** (२३४), **नेत्रगोलकके पटल** (२३४), **नेत्रगोलकका बाहरी तन्तुरपटल या शुक्ल मंडल—तारकापिधान** और **शुक्लपटल**, तारकापिधानका स्थूल शरीर (२३४), सूक्ष्म शरीर (२३४) सूक्ष्म शरीर (२३५-२३६) पाच तहे —कला पेशिओंकी तह, बोमनका आवरण, गाभा, डेसिमेटका आवरण, अन्तःपट कला पेशिया, तारकापिधानकी रक्तवाहिनिया (२३७) तारकापिधानके मज्जा तन्तु (२३७)। **शुक्लपटल**। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर (२३८) **नेत्रगोलकका दूसरा या मध्यपटल कृष्ण मंडल** (२३८) **तारका** स्थूल शरीर तारकाकी बनावट (२३९) सामनेके पृष्ठके दो भाग परिधिकी ओरका और केन्द्रकी ओरका, कनीनिका का भाग (२४०), **ब्रुक का पत्र** (२४०), सूक्ष्म शरीर (२४१), तारकाकी रक्तवाहिनिया (२४२), तारकाक्रोम्याटोफोर। तारकाकी स्नायु (२४२)—सकोचक स्नायु, प्रसरणकारक स्नायु। **तारकातीत पिंड** (२४४) स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर (२४५)। (१) तारकातीत पिंडकी स्नायु—अक्षरेषाकी दिशामें जानेवाला भाग, त्रिज्या सदृश जानेवाला भाग, वलयाकार भाग (२४६) (२) तारकातीत पिंडकी रक्तकी भरती (२४७) (३) स्थितिस्थापक पत्र या परदा (२४७) (४) दरमियानके सयोगी घटकोकी तह (२४७),(५)चक्रदार पत्र, (६) रजित कलातह, (७)तारकातीत पिंडकी कलातह (२४८), (८) आन्तरमर्यादक पत्र या आवरण। **कृष्णपटल**—स्थूल शरीर (२४८), सूक्ष्म शरीर (२४९) (१) परिकृष्णपटल, (२) रक्तवाहिनियाकी तह (२५०) (३) कृष्णपटलकी रक्तवहा केशिनिया (२५१), (४) ब्रुकका आवरण (२५१), कृष्णपटलके मज्जातन्तु (२५१) **नेत्रगोलकमंकी वेश्मनियां** (२५२), **पूर्ववेश्मनी** पूर्ववेश्मनीका कोण (२५३) स्क्लेमकी नाली (२५३) पूर्ववेश्मनीके कोणमेंका जालादार घटक (२५४), काचनाकार बद (२५५), शुक्लपटलका काटा, (२५५) **पश्चिमी वेश्मनी** (२५५) पेटिटकी नाली, ग्रोडोनेकी नाली या हॅनोवरकी नाली (२५५)। झिनके बदके सामनेका भाग, झिनके बदके दोनो भागमेंका अवकाश (२५६), झिनके बदके पीछेका अवकाश या पेटिटकी नाली (२५६)। **नेत्रगोलकका भीतरी पटल, दृष्टिमंडल**

रेटिना (२५६) **दृष्टिपटलका पिछला भाग-पार्स आपटिका रेटिनाः** स्थूल शरीर (२५७), सूक्ष्म शरीर (२५८) दृष्टिपटलकी तहें—(अ) **संज्ञाग्राहक मज्जातन्तुकी कलातह**, संज्ञाग्राहक मज्जातन्तु कलातहके मौलिक तत्व—राड, कोन (२५९)। (ब) मस्तिष्ककी तह (२६०), मस्तिष्क संबधी तहोंके मौलिक तत्व (२६१) (१) संज्ञाग्राहक संस्थान (अ) **द्विध्रुव** पेशिया (२६२) (ब) मज्जाकंद पेशिया (२६२)। (२) संयोगी या इत्तफाककी पेशियोंका संस्थान (ससटेन्टाकुलर न्युरोगलिया सेन्स) (२६३) मूलर्सके तन्तु मकडी पेशिया। दृष्टिपटलके दृष्टिस्थान का या पीत लक्ष्यका भाग (२६३), केन्द्र, दृष्टिस्थान या पीत लक्ष्य, सूक्ष्म रचना (२६४)। दन्तुरित तटपरिणाह (ओरा सिराटा) (२६४) नेत्रबिम्ब-दृष्टिरज्जु शीर्ष (आपटिक डिस्क आपटिक प्यापिला) २६४। नेत्रगोलककी रक्त वाहिनिया (२६६)। कृष्णमडलका रुधिराभिसरण संस्थान (२६७)—१ तारकातीत पिडकी पश्चिमी रोहिणिया (२६७) तारकातीतपिडकी पश्चिमी छोटी रोहिणिया-दो भाग को रक्त की भरती (१) कृष्णपटल और (२) झिनका रोहिणी वलय। तारकातीत पिडकी लम्बी रोहिणिया। (२) तारकातीत पिडकी पुरो रोहिणिया (२६७)। तारकाका बृहत रोहिणीवलय (२६८)।

कृष्ण मडल की नीलाएं (२६९) (१) आवर्त नीलाएं, (२) तारकातीत पिडकी पुरो नीलाएं, (३) तारकातीत पिडकी पश्चीमी नीलाएं। दृष्टिपटलकी रक्तकी भरती २७० दृष्टिपटलकी मध्यरोहिणीकी शाखाएं-आवर्तक शाखा, नेत्रबिंबकी उर्ध्व और अधो रोहिणी शाखाएं (२७०) नीलाएं (२७१) (१) तारकातीत पिडीय दृष्टिपटलकी रक्त वाहिनिया (सिलियो-रेटायनल) (२७१)। हालेरका वलय (२७१) (२) आपटिको सिलियरी रक्तवाहिनिया (२७२)। दृष्टिपटल और कृष्णपटलकी रक्त वाहिनियोंके भेद की तदबीर (२७२) चाक्षुष लसिकावकाश (२७२)। नेत्रगोलके वक्रीभवन मार्ग (२७३)। —चाक्षुष जल (२७३)। स्फटिक द्रव पिंड (२७४)। —स्थूलशरीर—पटेलर फासा, उगर्मकी लकीर, क्लोके या स्टिलिंगकी नाली, हायलाइड रोहिणी। सूक्ष्म शरीर उसकी रचनामेंके कुछ फर्क। **स्फटिकमणि** (२७५)—स्फटिक मणिका नाप (२७६), स्फटिक मणिका आवरण (२७७) स्फटिक मणिके आवरणके नीचेकी कलातह (२७८), स्फटिक मणिका गाभा या अहम भाग (२७८), जीवन बीज (२७९), बाहरी भाग (२८०), स्फटिक मणिमें की सीवनीया (२८०), स्फटिक मणिका लटकाने वाला बंद-झिनका वलय झान्युल (२८१)।

खंड (३) अध्याय ७ (२८२ ३०४)

मानवी नेत्रगोलका विकास—शरीरके विकासकी तरतीब (२८२) नेत्रगोलकके विकास की तरतीब (२८५) कललके पृष्ठके बाह्यन्तक पत्रसे पैदा होनेवाले घटक (२८८)। बाह्यन्तक पत्रके संयोगसे होनेवाले घटक, (२८८) कललके नजदीकके मध्यन्तक पत्रसे पैदा होनेवाले घटक (२८८) आशयिक मध्यन्तक (२८८) नेत्रका निर्धारण (२८९)-स्पेमान के प्रयोग, लेपलाट का संशोधन (२८९)।

नेत्रके संस्थानोका विकास (२९०) (१) कललके बाह्यन्तक पत्रसे विकास होनेवाले घटक (२९०) स्फटिक मणिका विकास (२९०) स्फटिक मणिका आवरण (२९१), तारका

पिधानकी कलानहका विकास (२९२)। (२) कललके न्युरल बाह्यत्वकसे पैदा होनेवाले घटक (२९४) दृष्टिपटलका विकास (२९४)--पहली अवस्था, दूसरी अवस्था (२९०) तीसरी अवस्था (२९५) संज्ञाग्राहक मौलिक तत्त्व (२९६), दृष्टिस्थान (२९७)। तारकातीत पिंडका दृष्टिपटलका भाग (पार्स सिलिआरिस रेटिना)। तारकाका दृष्टिपटल का भाग (पार्स आयरिडीका रेटीना) (२९८) प्रसरणकारक स्नायू (२९८) दृष्टि रज्जुका विकास (२९८)। (३) बाह्यत्वक पत्र और न्युरल बाह्यत्वक पत्रके संयोग के घटकोंका विकास (२९९)— स्फटिक द्रव पिंड–स्फटिक द्रवपिंड और स्फटिक मणिको लटकानेवाले बंदका विकास (२९९) आद्य स्फटिक द्रव पिंड (३००) (४) नेत्रके मध्यत्वक पत्रमें पैदा होनेवाले घटकोंका विकास (३०१) प्राथमिक रक्तवाहियोंका संस्थान (३०१), हायलाइड रोहिणियोंका संस्थान और स्फटिकमणिका रक्तवाहिनियादार आवरण (३०२) कनीनिका पत्र और तारकाका विकास (३०३) तारका बृहत रोहिणी वलय–लघु रोहिणी वलय (३०४) दृष्टिपटलके रुधिराभिसरण संस्थान का विकास (३०४) कृष्णमंडलकी रक्त वाहिनियाका संस्थान (३०४) तारकातीत पिंडका भाग (३०५)। नेत्रका बाह्य पटल–शुक्लपटल और पूर्व वेश्मनी का विकास (३०५) तारकापिधान और पूर्व वेश्मनी। (५) नेत्रगोलके इर्दगिर्दके घटकोंका विकास (३०६).--नेत्रच्छद और शुक्लाम्तर का विकास (३०७) शुक्लाम्तर का चद्रकोरके आकारका झोल (३०७) नेत्राश्रु पिटिका या अश्रुकासारसेका भाग पिंड, झायामिस माल्, मायबोमियन ग्रंथी, अश्रु ग्रंथी (३०७) नेत्राश्रके वहन मार्ग (३०८) नेत्रगोलककी बाह्यस्नायूओंका विकास, टेननका आवरण (३०८)।

खंड (३) अध्याय ८

दृगिन्द्रियकी उत्क्रांति, आकार, और कार्यका तुलनात्मक विवेचन

(३०९) नेत्रकी उत्पत्ति, प्रकाशकी प्रतिक्रिया, प्रकाशजन्य चलन गति (३०९) स्थानान्तरित अवस्था, हकीकी ऋणात्मक (सालिवा निगेटिव्ह) प्रकाशजन्य चलन गति (३१०) दो अवस्थाएं: पहली सज्ञाकी प्रतिक्रिया की, दूसरी स्थानकी प्रतिक्रियाकी अवस्था (३१०) नेत्रकी पैदाईश (३११) पहली अवस्था कुल पेशि, दूसरी अवस्था पेशियोंका कुछ भाग, तीसरी अवस्था। प्रकाश कार्यकी पेशिया (३११)। खास दृष्टिका विकास (३१३) पहली अवस्था प्रकाशके उत्तजनसे चलन, दूसरी अवस्था प्रकाश सज्ञाका ज्ञान, तीसरी अवस्था प्रकाश सज्ञाका खास ज्ञान।

प्राणिके दो वर्गोके नेत्रेन्द्रियका वर्गीकरण (३१४)। सादा नेत्र, प्राथमिक नेत्र, प्यालाकार नेत्र (३१४) नाटिलस जातिके प्राणियोंके नेत्र, पिटिकाकार नेत्र (३१५), सिफालापोड वर्गमेंके नेत्र (३१६) समिश्र या पहलूदार नेत्र (३१७)। पृष्ठवंशहीन कुछ प्राणियोंके नेत्र (३१८) घटाकार श्लेष्मसय जलचर प्राणियोंके नेत्र (३१९) मेडुसा केचुआ-भूजन्तु (३१९) शबुक या घोघोंके नेत्र (३२०), आरथोपोडा वर्गके नेत्र (३२१)।

(ब) पृष्टवशीवाले प्राणियोका मस्तिष्किय नेत्र (३२१)--मस्तिष्किय नेत्रकी प्राथमिक अवस्थाका नेत्र अम्फीआक्ससमे (३२२), पृष्टवशी प्राणियोंके नेत्रोकी नुमाइशमे दिखाई देनेवाली पाच अवस्थाएँ (३२३), परायटल और पिनियल नेत्र (३२३), परायटल नेत्र (३२४) पिनियल नेत्र (३२५)।

पृष्ट वंशवाले प्राणियोंका दृष्टिपटल (३२६), कारडाटा प्राणिवर्ग (३२६), मत्स्यवर्ग भूजलचर प्राणि (३२७), सर्प वर्ग का दृष्टिपटल (३२८), पक्षीवर्ग का दृष्टिपटल (३३०), सस्तनप्राणि-दृष्टिपटल (३३०), कृष्णपटल (३३१), टापिटम (३३१)। नेत्रतलः- लाल रंग नीला रंग और हरे रंगका नेत्रतल (३३२)। तारकातीतपिंड-स्नायु, भ्रुककी ओर कापटनकी स्नायु (३३२)। तारका-कनीनिका (३३२)। प्रकाशके वक्रीभवन मार्गका व्यूह-- तारका-पिधान स्फटिकमणि झिनकावलय, चाक्षुपजल (३३३–३३४)।

नेत्रगुहा (३३४), शुक्लपटल (३३५)। नेत्रच्छद–निकटिटेटिंग पत्र (३३५) नेत्रच्छदा-न्तराल-पक्ष्यन (३३६), नेत्रच्छदके स्नायु-नेत्रगोहिक स्नायु-मूलर की सनयु (३३६)। शुक्लास्तर (३३६)। तृतीय नेत्रच्छद–**क्वाडेटस** और पिऱ्यामिडालिस स्नायु (३३७)। अश्रुजनकेन्द्रियोप-करण–अश्रुग्रंथी–हार्डर्मकी ग्रंथी (३३७) नेत्रगोहिक स्नायु–नेत्रगोलकको पीछे खीचनेवाली स्नायु (३३८)। नेत्रगुहाकी रक्त वाहिनिया–हायलाईड रोहिणी, तारकातीत पिंडकी रोहि-णिया, दृष्टिपटलकी वाम रोहिणिया (३३९)। पक्षीओका पेक्टीन (३३९), कृष्णमंडलकी रक्तवाहिनिया (३४०) दृष्टिरज्जु–दृष्टिरज्जु संधि या योजिका (३४०) नेत्रका चलन (३४०)। नेत्रविकासपर प्रकाश या अंधेरेका परिणाम (३४१)।

खंड (३) अध्याय ९

वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था–आनुवंशिकता–मौरूसी हालत (३४१–३५०) —

जार्ज मेंडेल की कल्पना (३४१) बीजकण, गर्भाधान की अवस्था (३४२) क्षपण विभाजन अवस्था (रिडक्शन डिवीजन)। गुणधर्मोका प्रेपण-प्रबल प्रवृत्ति (अ)–परिवर्तित सुप्तावस्था (डामिनेन्ट कैरेक्टर, रिसेसिव्ह कैरेक्टर)। वंश परंपरा प्राप्त–मौरूसी हालतके मेंडेलियनके नमूने (१) प्रबल प्रवृत्तिकी वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था प्रेपणकी तरह–प्रेपित हुए नेत्र-रोग -जन्मजात रताधी, नीले शुक्ल पटल, केन्द्रच्युत स्फटिकमणि, नेत्रच्छद पात, मोती बिन्दुके अनेक नमूने, फाल, तारकाका अभाव आदि। (२) वंशपरंपरा प्राप्त परिवर्तित सुप्त प्रवृत्ति दिखाई देनेवाले फर्क। (३) लैंगिकान्वित वंश परंपरा प्राप्त अवस्थाके गुणधर्म (सेक्स-लिंक्ड कैरेक्टर) (३४९)—पुरुष लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था या डायांजेनिक वंश-परंपरा (मेल सेक्सलिंक्ड इनहेरिटन्स), होलोजेनिक या स्त्री लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था (३५०)। मर्यादित गुणधर्मोका पुश्त दर पुश्तमें वहनधर्म (३५०)। वाइसनके सिद्धान्त (३५१)।

खंड (३) अध्याय १०

नेत्रगोलकमेंका रंजित द्रव्य (३५२–३६०)

चार संघ– लिपोक्रोम्स–मेल्यानिन–खनिज धातुसे व्युत्पन्न हुए रंजित द्रव्य, र्‍होडापसिन या चाक्षुपनील लोहित पिंग (३५२) मेल्यानिन–नेत्रके दो घटकोंमेका स्थान। इन रंगके नमुने —वलयाकार नमूना, त्रिज्ज्याकार नमूना, बिन्द्वाकार नमूना (पीबाल्ड तारका)। तारकाके रंगके अनुसार मनुष्यका वर्गीकरण (३५३) मेल्यानिन की पैदाईश (३५४), डोपा की रासायनिक रचना (३५५) मेल्यानिनका एँडरिनालिनसे संबंध (३५५) पेशियोंमें की इस प्रतिक्रिया की पैदाईशकी कल्पनाएँ ३—(१) रंजित द्रव्य बाह्यत्वक की कलातहकी पैदा-इश, (२) आन्तरत्वक की कलातहकी पैदाइश (३) दोनो कलातहोंमे पैदाइश (३५६)।

मेल्यानोब्लास्ट (३५६) नेत्रके शुक्लास्तरमें की रंजित अवस्था । कृष्णमंडल का रंजित द्रव्य (३५६) । रंजित द्रव्य धारक पेशियां–कृष्णमंडलकी दो किस्मकी पेशियां–क्रोम्याटोफोर–क्लबके आकार की पेशियां (३५७) ।

चार संघ:—(१) रक्तमें व्युत्पन्न हुए: शरीरकी २ पेशियोंसे पैदा होनेवाले–लिपोक्रमस और मेल्यानिन; (३) खनिज धातुमें पैदा होनेवाले; न्हाडापसिन या चाक्षुष नील-लोहित पिग । मेल्यानिन की पैदाइश:—नेत्रमेंकी पैदाइश दो घटकोंमें (१) मज्जाकी कलातह, (२) कृष्णमंडल ।

रंजित द्रव्यधारक पेशियां (३५८)।

खंड (४) अध्याय ११

केवल मूल तत्वात्मक भौतिक दृक्शास्त्र (३६२–३७१).—प्रकाशकी व्याख्या, प्रकाश-संबंधकी कल्पनाओंकी तवारीख:—पिथागोरसकी कल्पना; परमाणू विसर्जन कल्पना; तेज: परमाणू कल्पना; लहरी रूपकी कल्पना; प्रकाशकी विद्युत चुंबनीय कल्पना (जेमस-क्लार्क म्याक्सवेल); प्रमाण वस्तुभूत कल्पना (३६३); प्रा. आईनस्टीन की सापेक्षत्वकी कल्पना (३६४); प्रकाशका उगम:—जड वस्तुकी रचना; कणादकी कल्पना (३६६) प्रोटान्स और इलेक्ट्रान्सका सर्वव्यापित्व; (३६७) जड वस्तु और किरण विसर्जन शक्ति (३६८); किरण लहरियोंकी लम्बाई (३६९)। प्रकाशकी रचना:–शक्तिकी रचना (३६९); प्रकाश शक्तिकी प्रमाण कण कल्पना (३७०)।

चित्रों का अनुक्रम

—:०:—

चि. नं.	पृष्ठ	चित्रका नाम या वर्णन
१	९	सुश्रुतकालीन मोतिया की शस्त्र-क्रिया का चित्र [ग्रंथकार]
२	५५	नेत्रका पहला चित्र सलाह-उद्दीन इब्न युसफ
		अध्याय ४
		नेत्रकी परीक्षा
३	७४	पुरसृत नेत्रगोलक
४	७५	पुरसृत नेत्रगोलक
५	७६	न्यच्छ
६	७७	ऊपरी नेत्रच्छदको उलटना
७	७८	नाइसकी कर्पणी
८	७८	नेत्रच्छदोंकी किनार
९	८२	प्लासिडोकी तश्तरी
१०	८३	प्लासिडोकी तश्तरीके तारका पिधान परके प्रतिबिंब
११	८४	जव्हालका आफथालमामिटर
१२	८५	आफथालमामिटरका नापन
१३	८६	युगलोन्नतोदर शीशा
१४	८७	जैकसनका द्विनेत्रीयलूप
१५	९५	परकंजी सामसनकी प्रतिबिंबित प्रतिमा
१६	९८	म्याडाक्सकी शलाका
१७	९९	म्याडाक्सकी शलाका की प्रतिमा
१८	९९	म्याडाक्सकी स्पर्शज्या
१९	१००	स्टीव्हन्सका कसौटी यंत्र
२०	१०१	म्याडाक्सकी त्रिपार्श्व की कसौटी
२१	१०१	स्नायुकी क्रियाकी कसौटी
२२	१०२	पंखेकी कसौटी (म्याडाक्स)
२३	१०३	घूमते त्रिपार्श्व
२४	१०४	स्टीव्हन्सका फोरामिटर
२५	१०४	रिस्लेका चक्रवर्ती त्रिपार्श्व
२६	१०६	हरमनकी परदेकी कसौटी
२७	१०७	हरमनका समतुलनका कारट
२८	१०८	स्टिव्हनसनका ट्रापामिटर
२९	१०९	ट्रापामिटरसे नापन
३०	११०	प्रिस्टले स्मिथ का फीता
३१	१११	स्ट्राबिसमामिटर
३२	११२	चष्मेकी कमान
३३	११२	दृष्टिकोण
३४	११३	कसौटी हरूफ
३५	११४	डान्डर्सका आपटामिटर
३६	११५	निकटबिन्दुका नापन
३७	११७	पेरिमिटर
३८	१२१	फास्टर्स फोटामिटर
३९	१२४	रंग ज्ञान जाननेका लालटेन
४०	१२६	रंगीन सवर्णाभासात्मककी ग्रंथकार की तश्तरी
४१	१२७	दृकशक्ति के रंगज्ञान का नापन यंत्र (आलिव्हर)
४२	१३४	फान हेल्थहोल्टझका नेत्रतलकी प्रतिक्रिया का स्पष्टीकरण
४३	१३५	सादे दर्पणसे नेत्रतल का प्रकाशित क्षेत्र
४४	१३६	प्रत्यक्ष परीक्षामें अन्तरवृत्त दर्पणसे नेत्रतलका प्रकाशित क्षेत्र
४५	१३७	अप्रत्यक्ष परीक्षामेंका प्रकाशित क्षेत्र
४६	१३८	प्रकाश को हिलानेसे क्षेत्रका चलन
४७, ४८	१३९	दर्पण को हिलानेसे नेत्रतलके प्रकाशित क्षेत्रकी अवलोकन पद्धति
४९	१४०	प्रत्यक्ष परीक्षामें नेत्रतलका आकार
५०	१४१	प्रकाशित क्षेत्रके चलन की दिशा
५१	१४२	नैसर्गिक दृष्टिपटलके क्षेत्रका चलन
५२	१४२	दीर्घ दृष्टिके दृष्टिपटलके ,, ,,
५३	१४३	ऱ्हस्व दृष्टिके दृष्टिपटल ,, ,,

चि नं.	पृष्ठ	चित्रका नाम या वर्णन
५४, ५५	१४४	दीर्घ दृष्टिमेंकी नेत्रतल प्रतिछाया
५६, ५७	१४५	महाबली ह्रस्व दृष्टिकी नेत्रतल प्रतिछाया
५८, ५९	१४६	नैर्सगिक दृष्टि और ह्रस्वदृष्टि प्रतिछाया
६०, ६१, ६२, ६३	१४७	**नेत्रान्तरंग-दर्शक यंत्रमें** नेत्रतलकी प्रत्यक्ष परीक्षामेंकी दृक् शास्त्रीय तत्ते
६४-६६	१५२	अप्रत्यक्ष परीक्षामें प्रतिमा बनना
६७	१५२	,, ,, प्रतिमाका स्थान
६८-७१	१५३	,, ,, प्रतिमाका अभिवर्धन
७२	१५५	**मारटन** का नेत्रान्तरग दर्शक यंत्र
७३	,,	,, विद्युत ,, ,, ,,
७४	,,	**मारगन**का ,, ,, ,, ,,
७५	१५८	प्रत्यक्ष परीक्षामें परीक्षक और रोगीका सापेक्ष स्थान
७६	१५९	प्रत्यक्ष परीक्षामें प्रतिमाका स्थान और आकार
७७	१६१	अप्रत्यक्ष परीक्षामे परीक्षक और रोगी का सापेक्ष स्थान
७८	१६२	,, ,, प्रतिमाका स्थान आकार
७९	१६५	नेत्रमेंके अपारदर्शक डागका स्थान बतलानेवाल चित्र (स्वान्झी)
८०	१६७	अप्रत्यक्ष परीक्षामें नैसर्गिक नेत्रतलका दृश्य (जीगर)
८१, ८२	१७१	निर्बिन्दुताकी जाच
८३	१७४	बुरदेमनका नेत्रान्तरग परिप्रदीपन यंत्र

अध्याय ५
बहाना करनेवाले के नेत्रकी परीक्षा और कुछ कानूनी बातें

८४	१८१	फिडेनबर्गका दर्पण यंत्र

अध्याय ६ नेत्रका शरीर

चि. नं.	पृष्ठ	चित्रका नाम या वर्णन
८५	१९६	नेत्रगुहाकी अस्थिया
८६	१९९	नेत्रगुहाकी दीवालोंसे बनेहुए कोण
८७	२०१	नेत्रगुहान्तस्थ घटक
८८	२०२	नेत्रगोलकके वेष्टन
८९-९२	२०६	दाहिने नेत्रस्नायुओंके बद्धस्थान
९३	२०८	नेत्रगुहामेंके मज्जा रज्जु
९४	२०९	नेत्रगुहामेंके मज्जा रज्जु-बाहरी दृश्य
९५	२१०	दृष्टिरज्जुका शीर्ष और चोंगा
९६	२११	दृष्टिरज्जुके आवरण
९७	२१४	तीसरी मस्तिष्क मज्जा रज्जुके मस्तिष्किय केन्द्र
९८	२२०	चाक्षुपरोहिणी और शाखाएँ
९९	२२३	अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण
१००	२२७	ऊपरी नेत्रच्छदमेंका काट
१०१	२२८	नेत्रच्छदोकी किनारोका शरीर
१०२	२३३	नेत्रगोलक-लम्बाईमेका काट
१०३	२३५	तारकापिधानमेंका काट
१०४	२३६	तारकापिधानकी परिधिकी रक्तवाहिनिया
१०५	२३७	शुक्लपटल-आडा काट
१०६	२४१	तारकाका त्रिज्जामेंका काट
१०७	२४२	तारकाकी रोहिणिया
१०८	२४६	तारकातीन पिंडकी त्रिज्यामेका काट
१०९	२४९	कृष्णपटलमेंका खडा काट
११०	२५०	कृष्णपटलमेंकी रोहिणिया
१११	२५२	नेत्रगोलककी पूर्ववेश्मनीका दृश्य
११२	२५४	फानटानाके अवकाश
११३, ११४	२५७	दृष्टिपटलकी तहे
११५	२६०	द्विध्रुव पेशिया
११६	२६३	दृष्टिपटलके पीत लक्ष्यमेंका काट
११७	२६५	प्राकृतिक प्याला
११८	,,	,, शुक्ल पटलका वलय
११९	,,	,, चद्रकोर

चि.नं. पृष्ठ चित्रका नाम या वर्णन

१२० २६६ नेत्रगोलकके रक्तभरतीकी तदबीर
१२१ २६८ कृष्णमडलकी रक्तवाहिनिया
१२२ २७० दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनिया.
१२३ २७५ स्फटिकमणि
१२४ २७७ स्फटिकमणिका आवरण-उसके नीचेकी तह
१२५ २७७ स्फटिकमणिका रेखाशमेका काट
१२६ २७९ बालकके स्फटिकमणिका स्लिट लैंपसे दिखाई देनेवाला दृश्य
१२७ २७९ बालिग ,,
१२८ २८० नवजातके स्फटिकमणिके जीवन बीजकी सीवनीया
१२९ २८० बालिगके ,, ,, ,,

अध्याय ७

मानवी नेत्रगोलकका विकास

१३०-३३ २८३ डिम्बके विकास की कल्पना
१३४ २८४ मानवी कललका पिछला दृश्य
१३५ २८४ ,, ,, ,, लबाईका
१३६ २८५ मानवी गर्भ–सामनेका भाग–आडा काट
१३७ २८६ प्राथमिक चाक्षुषपिटिका
१३८ ,, प्राथमिक प्यालाकी खास अवस्था
१३९ ,, दुय्यम ,, स्फटिकमणि पिंड
१४० ,, स्फटिकमणि पिंड अलग हुआ है
१४१ ,, तात्कालीनपिटका भाग और तारका
१४२ ,, नेत्रगोलकका पूरा विकास
१४३ २९२ १३.५ मि मि. लम्बाईके भ्रूण-मेका काट
१४४ २९३ ३८ मि मि ,, ,,
१४५ २९७ चाक्षुषप्यालेके भीतरीतहमेका काट १२. मि. मि का भ्रूण
१४६ ,, १७. ,, ,,

चि.नं. पृष्ठ चित्रका नाम या वर्णन

१४७ २९७ २१ मि मि का भ्रूण
१४८ ,, ४८ ,, ,, ,,
१४९ ,, १७० ,, ,, ,,
१५० ३०१ १५ मि मि मानवी भ्रूणका चाक्षुष प्याला-चाक्षुष रोहिणी
१५१ ३०१ १० मि. मि प्यालेकी किनारका रोहिणी-वलय
१५२ ३०१ रक्तवाहिनियोंके सस्थानका विकास
१५३ ३०५ पूर्ववेश्मनी का कोण ५ मासका भ्रूण
१५४ ३०६ चाक्षुष पिटिका और उसके घटक
१५५, १५६, १५७ } ३०६ ४.५ मि मिटर भ्रूणका विकास
८ मि. मिटर का भ्रूण
१३.७ ,, ,, ,,
१७ ,, ,, ,,

अध्याय ८

दृष्टिन्द्रिय की उत्क्रान्ति, आकार और कार्यका तुलनात्मक विवेचन

१५८ ३११ युग्लेना व्हिरिडिस की प्रकाश कार्यकी पेशिया
१५९ ३१२ ट्रिप्टोम् प्यादिलोअम की प्रकाश की पेशी
१६० ,, घोघा या शबूक की ,, ,,
१६१ ,, किंगाक्ष मारमोसेटकांस ,, ,,
१६२ ,, प्रान्तारियाकी दो पेशिया ,,
१६३ ,, अम्फी आवसस की प्रकाशकी पेशी
१६४ ३१४ मिटलारिया लाकुस्ट्रिसके नेत्रकी पेशिया
१६५ ३१५ कम्तुरावर्गके पटेलाका प्यालेदार नेत्र
१६६ ,, नाटिलसका नेत्र
१६७ ,, मकडीका नेत्र
१६८ ३१६ शबूक या घोघाका नेत्र

चि. नं.	पृष्ठ	चित्रका नाम या वर्णन
१६९	३१६	किफाला पोडाके नेत्रका चित्र
१७०	३१७	पृष्ठवंशहीन प्राणियोंके सादे नेत्रके विकास की तरतीब
१७१	३१८	प्यारीप्लानाटाका ओम्याटिडियम
१७२	,,	ओव्हिया
१७३	,,	सितारेके आकारकी मछलीके नेत्र
१७४	३१९	मेडुसा
१७५	,,	भूजन्तु
१७६	३२०	शंबुकी बनावटका चित्र
१७७	,,	कटल फिश
१७८	३२४	पिनियल नेत्र
१७९	,,	पैरापिनियल नेत्रकी सूक्ष्म रचना
१८०	३२५	पिनियल और पैरापिनियल नेत्र

अध्याय ९

आनुवंशिआ (मौरूसी हालत)

चि. नं.	पृष्ठ	चित्रका नाम या वर्णन
१८१–१९०	३४४	प्रबल प्रवृत्तिका वहन
१९१–२००	३४६	परिवर्तित सुप्त प्रवृत्तिका वहन
२००–२१०	३४७	पुरुष लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था
२११	३४८	पूर्णरंगज्ञान दुर्बलतावाले की वंशावली
२१२	३४९	लालहरे रंगज्ञानवालेकी वंशावली
२१३	३५८	मेंढकमें मिच्युइटरीनके अन्तर क्षेपनका असर

नेत्ररोगविज्ञान शास्त्र

खंड १

अध्याय १

(१) विषयप्रवेश—नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रका विकास

नेत्ररोगविज्ञान शास्त्र का विकास गत डेढ़ या दो सौ सालोंमें खूब हुआ है। इसके बारेमें अबतक बहुत कुछ विचार विनिमय हुआ है और लेखादिभी प्रकाशित हो चुके हैं। लेकिन इस शास्त्रकी प्रगति किस तरहसे हुई, यह सोचना आवश्यक है।

नेत्ररोगविज्ञानशास्त्र, वैद्यकशास्त्र और भौतिक शास्त्र इन तीनोंके पूर्व इतिहासका मनन करनेसे यह मालूम होता है, कि इन तीनोंका प्राथमिक विकास एक समान अवस्थामें हुआ है और तीनोंके विकासमें बहुत समानता दिखाई देती है।

नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रके संबंधमें विचार करनेसे यह मालूम होता है, कि भारतवर्ष, चीन, इजिप्त, ग्रीस आदि मुल्कोंमें ईसासे पूर्व कई शताब्दियोंके पहले बहुतसा काम हुआ है। कुछ बरसोंतक यह काम अलबत्ता बंद रहा, लेकिन ५।६ वीं सदीमें फिर शुरू हुआ; और फिर १३ वीं सदीतक बंद रहा।

पहले हम भारतवर्षमें इस शास्त्रकी प्रगति कबसे और कहांतक हुई इसका विचार करेंगे और फिर अन्य देशोंमें जो प्रगति हुई उसका भी विचार करेंगे।

(१)

प्राचीन भारतीय नेत्रवैद्यक

भारतवर्षमें नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रकी प्रगति बहुत प्राचीन कालसे याने ऋग्वेद कालसे (ई. पू. ४५००) शुरू हुई थी। आर्य वैद्यककी सब शाखाओंके वैद्यराज और शालाकिनोंकी गुणप्रशंसा ऋग्वेदसंहितामें पायी जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है, कि अश्विनी-कुमार, इन्द्र, अग्नि, आदि ऋषिवर्य लोगोंने नेत्ररोग कुशलतासे दुरुस्त किये थे। इसी वजहसे उनकी तारीफ़ जगह जगह मिलती है।

इस विषयके कुछ वचनः—

(१) याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षसे एतवे कृथः १-११२-८ ॥

हे महाबली, आपने किस शक्तिसे परावृजको मदद दी, किस शक्तिसे अंधे लोगोंको दृष्टि दी, और किस शक्तिसे लगडे लोग चलने लगे ?

(२) तमी कवि पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे । १-११६-१० ॥

आपने सब भाण्डारके मालिक, कविशूरको, जो दृष्टि न होनेसे दु.ख करता था, पूर्ण दृष्टि दी ।

(३) तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन । १-११६-१६ ॥

आपने (रिजस्रवको) नेत्र दिये, चमत्कार करनेवाले वैद्यराजोकी सहायतासे उसकी नष्ट हुई दृष्टि फिरसे प्राप्त होनेके बाद उसको दिखने लगा ।

(४) युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा । १-११८-७॥

अधे कण्वकी योग्य स्तुतिको स्वीकार करके आपने उसको दृष्टि दी थी ।

(५) ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् । १-१४७-३ ॥

हे रक्षण करनेवाले किरणो, आपने मामतके अन्धे पुत्रको देखनेही उसकी पीडाको अच्छा किया ।

(६) नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः । २-१३-१२ ॥

गर्तमे गिरे हुए नीच लोगोको आपने ऊपर उठा लिया, लगडे और अधे लोगोको कीर्तिमान किया ।

(७) प्रति श्रोणः स्थाद्व्य१ नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार । २-१५-७ ॥

लूले खडे रहने लगे और अन्धे देखने लगे । ये बाते इन्द्रने सोममे की ।

(८) आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम्

। १०-१६१-१५ ॥

अर्थात् मैने (सचिपालामि) तुझे दृढ कर सुधारा, तेरी यौवनावस्था वापिस मिली; तेरे सब अवयव हो गये, तेरी दृष्टि वापिस आई और तेरा आयुष्य वापिस मिला ।

इसी तरहकी अजीब कहावते तैत्तिरीय सहिता और शतपथ ब्राह्मणमेभी मिलती है । नेत्ररोगोको स्वतत्र जानकर उनकी चिकित्सा करनेवाले लोगोकी उस जमानेमे तारीफ हुआ करती थी ।

अश्विनी-कुमारके कालमे भेषज (वैद्यक) तथा शल्यतत्रकी बहुत तरक्की हुई थी । उससे आयुर्वेदके भिन्न भिन्न भागोकी आवश्यकता हुई और छात्रवर्गको अलग अलग भागोका

विशेष शिक्षण देनेकी प्रथा शुरू हुई। उत्तमाग याने शरीरके गर्दनके ऊपरके भाग, अर्थात नेत्र, नासिका, कान और मुख आदि सबधी रोगोके वैद्यराज और शालाकिनोको **मधुविद्याविशारद** कहते थे। लेकिन अफसोसकी बात है, कि उस समयके कोई भी ग्रथ अब मौजूद नही है।

नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रका यथानुक्रम वर्णन सुश्रुत सहितामें मिलता है। उस समय इस शास्त्रका विकास अच्छी तरहसे हुआ था। सुश्रुतकाल ई. पू. ५०० से ८०० साल पूर्व का है, ऐसा कुछ लोग मानते हैं।

(१) सुश्रुतके टीकाकार डल्लनके मतानुसार हालकी प्रचलित सुश्रुत सहिता नागार्जुनने सुधार कर सटीक प्रकाशित की। नागार्जुन बौद्धधर्मी था, और उसका काल ई. पू. पहली सदी था, याने सुश्रुत नागार्जुनके पूर्वकालका था।

(२) वैदिक या ब्राह्मण कालमे, जब कि बौद्धधर्मका पूरा प्रचार नही हुआ था, सुश्रुत हुआ होगा। अर्थात् अशोक सम्राटके पहले याने ई पू २५२ वर्षका समय सुश्रुतका काल होगा। सुश्रुत ग्रथमें शवच्छेदन करके शारीरका ज्ञान प्राप्त करनेका उल्लेख है और रोगीकी चिकित्सामें मासाहार बताया गया है। ये सब बाते बौद्धधर्मके प्रसारके बाद नष्ट हो गयी। अर्थात् सुश्रुतका काल इनके पूर्वका था, ऐसा मान सकते हैं।

(३) वार्तिककार **कात्यायन**ने सुश्रुतके नामका उल्लेख किया है। कात्यायन वैय्याकरणी पाणिनीका टीकाकार था। उसका काल ई पू. ५०० से ३५० के दरमियान का मानते है। कात्यायनका समय ई. पू ५०० माना जाये, तो सुश्रुत उसके पूर्वकालका होना चाहिये।

इन बातोसे सुश्रुतका काल ई. पू. ५०० से ज्यादह माननेमे कुछ हर्ज नही है। इसलिये सुश्रुत हिपाक्रेटिजसे भी पहले हुआ होगा। (**सोरानसन**ने हिपाक्रेटिजका जीवनचरित्र लिखा है, उसमें हिपाक्रेटिज़के जन्मका साल ई. पू ४६० और मृत्युका साल ई पू. ३७५ दिया है।) इससे यह स्पष्ट होता है, कि हिंदुस्थानमें नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रका विकास ई. पू ८००–६०० तकके समयमें हुआ था, यानी ग्रीक वैद्यकके पहले हुआ था। आश्चर्यकी बात यह है, कि प्रसिद्ध डॉक्टर आसलरने वैद्यक शास्त्रका इतिहास लिखा है, जिसमें ग्रीस, इजिप्त, चीन, जापान, आदि देशोके वैद्यकका तो उल्लेख किया है, लेकिन उसमें हिंदुस्थानके वैद्यक शास्त्रका जिक्र तक नही है।

आयुर्वेदीय शस्त्रक्रियाकी तवारीख जो **डल्लन**ने लिखी है, उससे यह मालूम होता है, कि काशीमें धन्वतरी दिवोदास नामका कोई राजा था। उसने अपने बारह छात्रोको शस्त्रक्रिया-शास्त्र सिखाया था। उनमेंसे सात छात्रोको, जिनमे सुश्रुत एक था, साधारण शल्यतत्र सिखाया। शेष शिष्योको यानी **भोज, निमि, कांकायन, गार्ग्य** और **गालव** इनको कान, नेत्र, नाक और मुख आदि उत्तमागके भागोके रोगोकी चिकित्सा और विशिष्ट शस्त्रक्रिया सिखाई थी।

इन बारह शिष्योने अपने अपने विषयपर स्वतत्र ग्रथ लिखे थे। इन बारह शिष्योमें सुश्रुत कुशाग्र बुद्धिका और कल्पक था। उसने शालाक्य–तत्रपर भी ग्रंथ लिखा है। इसी समय विदेह

सात्यकी, शौनक, करालभट्ट, चक्षुःश्येन और कृष्णात्रेय इन सब लोगोने भी शालाक्य-तंत्र पर ग्रंथ लिखे थे।

काकायन, गार्ग्य और गालव इनके ग्रथ इस समयके आयुर्वेदीय टीकाकार लोगोको पसन्द नही आये, इसी लिये उनकी तरफ किसीने ध्यान नही दिया। मुखरोग पर **भोजके** ग्रंथका आधार लेते है नेत्र, नाक और कानके रोगोके संबधमे **विदेह** और **निमि**का उल्लेख प्रायः किया गया है। उनके पश्चात **करालभट्ट, सात्यकी** और **शौनक** इनके ग्रथोंका अनुक्रम आता है। कृष्णात्रेयका उल्लेख **श्रीकांतदत्त** और **शिवोदास** ने किया है। चक्षुःश्येनका उल्लेख श्रीकानदत्त करता है।

सुश्रुतीय नेत्रविज्ञान शास्त्रकी तुलना विदेह और निमिके ग्रन्थोसे करना ठीक नही है। लेकिन डल्लनने जो सुश्रुतपर टीका की है, उसमे इनके मतोका उल्लेख किया है और सात्यकी और करालभट्टका भी उल्लेख है।

सुश्रुतने ७६ नेत्ररोगोंका वर्णन किया है यह **विदेह** और **निमि**को ज्ञात था। सुश्रुतने बालकको होनेवाले कुकुणक रोगका वर्णन दिया है, करालभट्टने ९६ रोगोका और **कौषीतकी**ने ८० रोगोंका वर्णन किया है, लेकिन सबके नाम नही मिलते।

वाग्भटका कालः—सुश्रुतके पश्चात् वाग्भटके कालतक यानी ईसवी सन ६०० तक नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रमे कुछ भी नई ग्रथ-रचना नही हुई। वाग्भटने वैद्यक–शास्त्रपर जो ग्रथ लिखा, उसको १३ वॉ शालाक्य-तंत्र मानते है। इस ग्रथमे वाग्भटने ९५ नेत्ररोगोका वर्णन दिया है, तथा सुश्रुतके ७७ रोगोमेसे ५७ रोगोके उसमे नाम मिलते है। शेष ३८ रोग भिन्न भिन्न नामोसे लिखे है। सूक्ष्म परीक्षणसे यह मालूम हुआ है, कि ३८ रोगोमेसे १८ रोग सुश्रुतके ही दिये हुए नामोसे और २० भिन्न नामोसे लिखे हुए मिलते है। इन रोगोकी सख्या बढनेका कारण यह मालूम होता है, कि सुश्रुतने जिन रोगोंकी दो या तीन अवस्था-ओका वर्णन दिया था, उनमेसे हरएक अवस्थाको वाग्भटने स्वतत्र रोग समझके उनका वर्णन किया है। वाग्भटके समयमे सुश्रुतकी अपेक्षा कुछ ज्यादह प्रगति नही हुई।

माधवकरका कालः—(ई. स ७००) वाग्भटके पश्चात् एक सदीके बाद माधवकरने नेत्ररोगपर कुछ लिखा था। लेकिन उसने सब जगह सुश्रुतका अनुकरण किया सा दिखाई पडता है। उसके ग्रथमे सुश्रुतके ७७ नेत्ररोगोंके सिवाय एक रोग ज्यादह लिखा है। इसके ग्रथको १४ वॉं शालाक्य-तंत्र कहते हं। इस ग्रथमे किसी किसी जगह रोगोके लक्षण ज्यादह दिये गये है और निदान पद्धति सरल दी गई है।

श्रीकातदत्त इसवी सन १३०० मे हुआ। यह कुशल लेखक था, लेकिन नेत्रविज्ञान शास्त्रमे इसने कुछ नई प्रगति नही की। इसके पश्चात् अभीतक आयुर्वेदीय वैद्यराजोने नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रकी तरफ बिलकुल ध्यान नही दिया है।

सुश्रुत-कालीन नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रकी प्रगति किसी भी अन्य देशके नेत्रविज्ञान शास्त्रकी प्रगतिकी अपेक्षा निःसशय ज्यादह पूर्णताको पहुची हुई थी। सुश्रुतने उत्तर तत्रके

शालाक्य–तंत्र विभागके १९ अध्यायोमे ५९७ श्लोकोमे नेत्ररोगोका वर्णन किया है। पहले नेत्रगोलकका शरीर, फिर अनुक्रमसे नेत्ररोगोकी सख्या, रोगोका स्थानानुसार वर्गीकरण, रोगोके साधारण लक्षण, साध्य या असाध्य रोगोका विवेचन और चिकित्सा, आदि विषयोका विवेचन किया है।

नेत्रगोलकके शरीरका अच्छा वर्णन सुश्रुत सहितामेही मिलता है। अन्य ग्रथकारोने सुश्रुतके शरीरशास्त्रके वर्णनकाही उल्लेख किया है, नई बाते नही बतलाई।

नेत्रगोलकके शरीरका सुश्रुतीय वर्णन:—

नेत्रका स्वरूप :—

विद्याद् द्वयंगुल बाहुल्यं स्वांगुष्ठोदर संमितम्। द्वयंगुलं सर्वतः सार्धं भिषङ्नयन बुद्बुदं ॥ ८ ॥
सुवृत्तं गोस्तनाकार सर्वभूत गुणोद्भवम् ॥ ९ ॥

नेत्रगोलकको नेत्र-बुदबुद नाम दिया है। उसका आकार गोल और गौके थन जैसा होता है। इस गोलककी लम्बाई (यानी सामनेसे पीछेकी ओरको जानेवाली अक्षरेषाकी लम्बाई) दो अंगुल, चौड़ाई अगूठेके उदर जितनी तथा उसकी परिधिका नाप ढाई अगुल अनुमानका होता है। इसमे पाचो पृथिव्यादि भूतोके गुण है।

दृष्टिका वर्णन:—

दृष्टिं चात्र तथा वक्ष्ये यथा ब्रूयाद्विशारदः। नेत्रायामत्रिभागं तु कृष्णमंडल मुच्यते।
कृष्णात्सप्तमामिच्छन्ति दृष्टिं दृष्टिविशारदाः ॥ ११ ॥

नेत्रगोलककी लम्बाई अर्थात् सामनेसे पीछेकी ओरको जानेवाली अक्षरेषाकी लम्बाईके दस समान भाग किये जाये, तो तीसरे भागपर कृष्णमडल (यानी कृष्णमडलकी तारकाका भाग) दिखाई पडता है। और कृष्णमडलसे सातवे भाग पर पीछेकी ओरको दृष्टि होती है। हमारा यह मत है, कि यहा दृष्टि यानी दृष्टिस्थान अथवा नेत्रबिब कहनेका उद्देश है। सप्तम, अध्यायमे दृष्टिका वर्णन जिस श्लोकमे दिया है, वह इसप्रकार है —

मसूरदल मात्रां तु पंचभूत प्रसादजाम्। खद्योत विस्फुलिंगाभ्याम् सिद्धा तेजोभिरव्ययैः ॥ १ ॥
आवृत्तां पटलेनाक्ष्णो बाह्येन विवराकृतिम् शीतसात्म्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयन चिंतकाः ॥ २ ॥

नेत्रकी दृष्टि याने दृष्टिस्थान मसूरकी दालके आकारके समान पचभूतोसे उत्पन्न हुआ है। यह मुख्यतया तेजोमय याने आलोचक अग्निरूप होता है और खद्योत (जुगनू) तथा विस्फुलिंग (अग्निकी चिनगारी या रत्नकी प्रभा) के समान प्रकाशित होता है, लेकिन जलाता नही। यह तेज अक्षयस्वरूप होता है। इस दृष्टिके बीचका भाग विवराकृति होता है, लेकिन उसमे आरपार छिद्र नही होता। यह नेत्रके बाह्य पटलसे आच्छादित होता है।

यहा एक बातका उल्लेख करना आवश्यक है, कि सुश्रुत स्वय. शारीरशास्त्रज्ञ था। नेत्रगोलकके प्रत्यक्ष शारीरका ज्ञान पूर्णतया उसने शवच्छेदन के समय नेत्रगोलकका छेदन करके

सपादित किया था। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है, कि श्लेष्मिक लिंगनाशकी शस्त्रक्रियाके वर्णनमे "दैवकृत छिद्र" यानी कनीनिका (Pupil) तक शलाका अन्दर जानी चाहिये, इस तरहका उल्लेख उसने किया है। और इसी कारणसे यह स्पष्ट है, कि उसको दृष्टिका स्थान, कृष्णमडल, दृष्टिमडल आदिकी बराबर कल्पना थी।

नेत्रके भाग :—

मंडलानिच सधींश्च पटलानिच लोचने। यथाक्रम विजानीयात् पंच षट् च षडेवच ॥ १२ ॥
पक्ष्म वर्त्म श्वेत कृष्ण दृष्टीनां मडलानि तु। अनुपूर्वं तु ते मध्याश्चत्वारोऽन्त्या यथोत्तरम् ॥ १३ ॥

नेत्रमें यथानुक्रम पाच मण्डल, छ सधि और छ पटल होते है। नेत्रमे पक्ष्ममण्डल, वर्त्म मण्डल, श्वेतमण्डल (Sclera), कृष्ण मण्डल (Uvea) और दृष्टिमण्डल (Retina) ये पाच मण्डल है। ये पाचों मण्डल क्रमश. एकके भीतर दूसरे स्थित है। सबसे बाहर पक्ष्ममण्डल, उसके भीतर वर्त्ममण्डल, वर्त्ममण्डलके परे श्वेत मण्डल, श्वेतमण्डलके भीतर कृष्णमण्डल और कृष्णमण्डलके भीतर दृष्टिमण्डल इस क्रममें वे है। उत्तरोत्तर सबसे पहले दृष्टिमण्डल, उसके आगे कृष्णमण्डल, उसके आगे शुक्लमण्डल इत्यादि है।

नेत्रगोलककी संधियाँ:—नेत्रमे छः सधियॉं इस प्रकारकी है

(१) पक्ष्मवर्त्मगत सधि—नेत्रच्छद और उनके बालोकी सधि, (२) वर्त्मगत सधि—अर्थात् नेत्रच्छद और शुक्लमण्डलके बीचकी सधि, (३) शुक्ल कृष्णगतसधि—शुक्लमण्डल और कृष्णमण्डलके बीचकी सधि, (४) कृष्ण दृष्टिगत सधि—कृष्णमण्डल और दृष्टिमण्डलके बीचकी सधि, (५) कनीनकगत सधि—नासिकाकी ओरकी दोनो नेत्रच्छदोकी सधि, (६) अपागगत सधि—कनपटीकी ओरके दोनो नेत्रच्छदोकी संधि।

नेत्रगोलकके पटल:—(Coverings of the Eye)

द्वे वर्त्मपटले विद्यात् चत्वार्यन्यानि चाक्षिणि।

इसमेसे दो पटल वर्त्मपटल याने नेत्रच्छदसे बने है और दूसरे चार पटल नेत्रगोलक-पर होते है।

तेजोजलाश्रित बाह्य तेष्वन्यत्पिशिताश्रितम्। मेदस्तृतीय पटलमाश्रितं त्वस्थिचापरम् ॥ १६ ॥
पंचमांश सम दृष्टेस्तेषां बाहुल्य मिष्यते।

नेत्रगोलकके बाहरकी ओरको तेजोजलाश्रित पटल (टेनन्स कैपमूल जिसमे तेज, आलोचक पित्त और जल रहता है); उसके बाहर पिशिताश्रित पटल याने नेत्रगोलकके मासल स्नायुओसे बना हुआ पटल (आवरण) उसके बाहर मेदाश्रित पटल, याने मेदोमय आवरण (चरबीदार Orbital or ocular fat) होता है, सबसे बाहरकी ओर अस्थ्याश्रित पटल याने (Orbital periostium) होता है।

नेत्रके मर्मस्थान दो होते हैं; एक अपांग स्थानका मर्म, दूसरा आवर्त स्थानका मर्म।

नेत्रोंमें कुल शिराओकी सख्या ३८ है, जिनमेसे वातवाहिनियां ८ (अष्टौ नेत्रयो) पित्तवाहिनिया १०, कफवाहिनिया १० और रक्तवाहिनिया १० होती है। वातवाहिनीका (Nerve) रंग अरुण (लाल); पित्तवाहिनी शिरा (Vein) गरम और नीले रगकी होती है, कफवाहिनी शिरा (Lymphatic), शीतल, सफेद रंगकी होती है, रक्तवाहिनी शिरा (Artery) लाल और न बहुत गरम, न बहुत शीतल होती है।

शिराणां कंडराणां च मेदसः कालकस्य च। गुणाः कालात्परः श्लेष्मा बंधनेऽक्ष्णो शिरायुतः॥ १८॥

नेत्रगोलक शिराओं, कडराओ, मेद और कालकसे एक स्थानपर बन्धा हुआ स्थिर है।

नेत्ररोगकी उत्पत्तिसंबंधी मीमांसा:—शरीरमे रोगोद्भवका असली कारण उसके त्रिदोषकी नैसर्गिक चयापचय (Metabolism) क्रियाका समतुलित अवस्थाका बिगाड होना, यह माना गया था।

दोष धातु मलं मूलं हीं शरीरं।

दोष (वात, पित्त, कफ) धातु (रस, रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) और मल (विष्टा, मूत्र, पसीना; स्त्रियोमें आर्तव और दुग्ध ये दो मल ज्यादह है) ये शरीरके स्वास्थ्यके मूल है।

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमना स्वस्थाभिध

जिस मनुष्यके वातादि दोष, अग्निरसादि धातु, तथा मलक्रियादि समान होते हैं, उसके आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न रहते है, वह स्वस्थ अवस्थाका होता है, याने निरोगी होता है, ऐसा मानना चाहिये। इसी वजहसे रोगीके स्वास्थ्यका रक्षण करना वैद्यका असली कर्तव्य है।

वात, पित्त और कफ ये तीनों घटक शरीरके अन्य घटकोंको याने धातु तथा मलको दूषित करते हैं और इसी वजहसे उनको दोष यह सज्ञा मिल गई है।

वात, पित्त तथा कफ, जिसको श्लेष्मा भी कहते हैं, इन तीनोका असली उद्देश शरीरकी उत्पत्तिमे भाग लेना यही है। इन तीन अविकृत दोषोंका नैसर्गिक स्थान अनुक्रमसे शरीरके नीचेके भागमें याने श्रोणी और गुदमे वात, मध्यभागमे याने पक्वाशयमें पित्त और ऊपरके याने आमाशयमे कफ होता है, जिनसे शरीरमें स्वास्थ्य पाया जाता है। इन तीनों दोषोकी विकृत अवस्था पैदा होनेसे शरीरका नाश होता है। वात, पित्त, कफ और चौथा रक्त इन चारोपर देह (शरीरकी) उत्पत्ति स्थिति और लय अवलम्बित है।

वात:—वात शरीरमें पाच तरहसे रहता है। **प्राण, उदान, समान, व्यान** और **अपान** इसतरह वातके भिन्न भिन्न स्थान और कार्यके अनुसार पाच नाम है। **प्राणके प्रस्पन्दनसे** शरीरके घटकोंकी नैसर्गिक चलनवलनकी क्रिया बराबर होती रहती है, **उदानका उद्वहन** इन्द्रियोंको धारण करता है, **समानके पूरणसे** आहारादि क्रियाएं होती हैं, **व्यानके विरेकसे** मलमूत्र बाहर फेंके जाते है और **अपानके धारणसे** शुक्रादिकोंका धारण होता है।

वात स्वयंभू होता है और उसका कार्य स्वतंत्र रीतिसे होता है। वात शरीरके सब भागोंमे मिलता है और इसी कारणसे शरीरकी उत्पत्ति स्थिति और लय होते है। इसको प्रत्यक्ष देख नहीं सकते, लेकिन कार्यसे इसका अस्तित्व जाना जाता है। इसके सिवा कफ, पित्त, धातु तथा मल स्वयमेव कुछ कर नही सकते। वात सबोंका प्रेरक है।

पित्त:—अविकृत याने नैसर्गिक पित्त पक्वाशयके सिवा यकृत, प्लीहा, हृदय, दृष्टि और त्वचा इन पाच स्थानोंमे पाया जाता है। पित्तका कार्य अग्निके कार्य जैसा होता है, लेकिन वह प्रत्यक्ष अग्नि नही है। **पक्वाशयमेंके** पित्तके कार्यसे शरीरमे दाखल हुए अन्नका पचन होता है और अन्नरस, दोष, मूत्र तथा विष्टा अलग हो जाते है। इसी वजहसे इसको **पाचक-पित्ताग्नि** कहते है! यकृत तथा प्लीहामेंके पित्तसे रक्तमे रग पैदा होता है ओर उसकी वृद्धि होती है और इसी वजहसे इसको **रंजक-पित्ताग्नि** कहते है। हृदयमेंके पित्तको **साधक-पित्ताग्नि** कहते है और बुद्धि तथा स्मरणशक्तिकी वृद्धि करना यह इसका कार्य माना गया है। दृष्टिके पित्तको **आलोचक-पित्ताग्नि** कहते है और इसका असली कार्य रूपका ग्रहण करना यह है। त्वचामेंके पित्तको **भ्राजकाग्नि** कहते है। **पित्तका स्वरूप** पतला, दुर्गंधिदार, पीला, या नीला और तीक्ष्ण होता है, वह गरम होता है और आम्ल या कडवा और तीखा मालूम होता है। **पित्तके लक्षण,** पाचकता रग, ओज, तेज और मेधा यह होते है और इससे शरीरमें गरमी पैदा होती है।

कफ या श्लेष्मा:—अविकृत याने नैसर्गिक कफ आमाशयके सिवा छाती, सिर, कठ, सन्धि और जिव्हामूलमे पाया जाता है। इसका कार्य उदक कर्म होता है, याने शरीरमे आर्द्रता फैलाना यह होता है, इसी वजहसे शरीरके सब घटकोकी चलनादि क्रिया आसानीसे होना सभाव्य होता है। हृदयके कफको **अवलम्बन कफ** कहते है। जिव्हामूलके कफको **रससंज्ञक कफ** कहते है, जिससे जिव्हाको रसकी रुचिका ज्ञान होता है। सिर याने मस्तकके कफको **स्नेहन कफ** कहते है, जिससे इन्द्रियोमे आर्द्रता पैदा होती है और उनका कार्य आसानीसे हो सकता है। सधिके सयोगके कफको **श्लेष्मल कफ** कहते है। **कफका स्वरूप :** प्रकृतिस्थ या नैसर्गिक कफका रग सफेद होता है। वह घन, चिकना, चिपचिपा और शीतल होता है। उसको गरम करनेसे वह थोडा मीठा और **नमकीन** मालूम होता है। इसके कार्य सधियोका सश्लेषण, स्नेहन, रोपण, पूरण और बलको स्थिर करना ये होते है।

अतिसशोधन (वमन विरेचनादि), अतिसशमन, वेगधारण (याने विष्टा मूत्रादिको रोकना), अपथ्यकर अन्नका सेवन या निराहार, मनस्ताप, अतिव्यायाम और अतिमैथुनसे दोष, धातु और मल क्षीण होते है और इससे रोगोद्भव होता है। कुपित हुए दोष शिराओके द्वारा नेत्रमे फैल जाते है जिससे नेत्रकी विकृति पैदा होती है। दूषित श्लेष्मा नेत्रमे घुस जानेसे श्लेष्मिक लिंगनाश याने मोतीबिंदु पैदा होता है और कुछ दिखाई नही देता।

दोष भेदसे नेत्ररोगोंकी पृथक पृथक संख्याः—

नेत्रोंमें वायुसे दस रोग उत्पन्न होते हैं तथा पित्तसे भी दस होते हैं; कफसे तेरह रोग तथा रुधिरसे सोलह रोग होते हैं और सान्निपातिक स्वरूपके पच्चीस रोग होते हैं; और दो रोग बाह्य हैं; ऐसे सब मिलाकर नेत्रोंमें छिहत्तर रोग होते हैं ।

स्थानभेदसे नेत्ररोगोंकी संख्याः—ऊपर जो दोषभेदसे ७६ नेत्ररोगोंका निर्देश किया है, इनमेंसे संधिमें ९ होते हैं । वर्त्ममें २१, नेत्रके शुक्ल भागमें ११ और कृष्णमंडलमें ४ रोग होते हैं । समस्त नेत्रमें १७ रोग, दृष्टिमंडलमें १२ रोग और दो परम दारुण बाहरके अर्थात् आगंतुक होते हैं ।

इन छिहत्तर रोगोंमेंसे ग्यारह रोग **छेद्य** यानी छेदन करनेके योग्य होते हैं; जैसे कि अर्म; नौ रोग **लेख्य** यानी खुरचनेके योग्य होते है; जैसे पोथकी । पांच रोग **भेद्य** यानी भेदन योग्य होते हैं; और पंद्रह **वेध्य** यानी वेधने योग्य होते हैं । बारह शस्त्र विना औषधादिसे सिद्ध होते हैं और सात रोग प्रयत्नसाध्य होते हैं, तथा पंद्रह असाध्य होते हैं । दो बाह्य (आगंतुक) असाध्य अथवा प्रयत्नसाध्य होते हैं । छेदन क्रियामें विकृत अंग शस्त्रसे काट कर निकाल देते हैं; लेखन क्रियामें शस्त्र या औषधसे खुरचते या छीलते हैं (लिखेत शस्त्रेण पत्रैर्वा)

सुश्रुत ग्रंथमें शस्त्रकर्मकी विधि करनेके पहले किस रोगीपर शस्त्रक्रिया की जाय, शस्त्रक्रियाका समय, शस्त्रक्रिया किस जगह की जाय, शस्त्र किस धातुका हो, शस्त्रक्रियाके पूर्व रोगीको किस तरहसे तैयार किया जाय, शस्त्र क्रियाके समय रोगीको किस तरहसे बिठाया जाय, शस्त्रक्रियाके पश्चात् और क्या क्या योजना की जाय, इन बातोंके संबंधमें अनेक नियम दिये गये हैं । प्रत्येक दृष्टिविशारदको इन नियमोंका पालन करना चाहिये, ऐसा उनका आदेश था ।

श्लेश्मिक लिंगनाश (मोतीबिंदु) नेत्रके कफ दोषके विकृत होनेसे पैदा होता है । इसकी सिद्धिके लिये शस्त्रक्रियाका वर्णन है । जिन रोगियोंमें शिरावेधवर्ज्य है, जिनमें नासिकादाह है, जिनकी पाचनक्रिया क्षीण हुई है, जिनके नेत्रोंमें, कानोंमें या मस्तकमें वेदना होती है और जो घबरानेवाले स्वभावके होते हैं उनके ऊपर शस्त्रक्रिया नहीं करनी चाहिये, ऐसी उनकी अनुज्ञा थी । शस्त्रक्रियाकी विधिमें

दक्षिणेन भिषक्सव्यं विध्येत्सव्येन चेतरत
यंत्रितस्यो पविष्टस्यस्वनासां पश्यतः समम्;

रोगीको स्नेहन स्वेदनादि कराकर न अधिक गरमी हो, न विशेष सरदी हो, ऐसे समयमे निर्वात प्रकाशयुक्त स्थानमें शालाकिन अपने सामनेकी ओरको बिठाये; फिर रोगीको अपनी नाककी तरफ सीधे देखनेको कहे फिर शालाकिन नेत्रच्छदोको अच्छी तरहसे खोलकर कृष्णभागोको छोडकर तारकापिधानसे दूर अपांग भागमे शिराजालसे रहित बिदुमेंसे न ऊपरको, न नीचेको, न टेढ़ी तरफमे यवमुख शलाकाको सम प्रयत्नसे अन्दरको दैवकृत छिद्रके किनारतक घुसाये; नेत्रको मध्यमा, और अगूठेसे स्थिर कर रखे; सामनेकी ओरको बैठे हुए रोगीके बांये नेत्रपर दाहने हाथमे और दाहने नेत्रपर बाये हाथसे शस्त्रक्रिया करे, ऐसा लिखा है।

वेधनकर्म बराबर हुआ हो, तो शलाकाकी बाजूसे जलकी बूद निकलती है और कुछ शब्द भी होता है। फिर वह शलाकाके अग्रभागसे दृष्टिमंडलको (याने स्फटिकमणीको लटकानेवाले बंदको Suspensary ligament of lens) खुरचके मोतीबिन्दुको अन्दर ढकेले। जिधरके नेत्रमे वेध किया हो, उससे दूसरी तरफके नासिकाच्छिद्रको बंदकर उस तरफके नासिका छिद्रमे छीक लानेमे मोतीबिन्दु नीचेको गिर जायगा। निर्मल आकाशके सूर्यके समान यदि दृष्टि प्रकाशित हो जावे और उसमे कोई व्याधि न रहे, तो लेखन अच्छा हुआ ऐसा जानना चाहिये। जब सब वस्तुएं ठीक दिखने लग जाये, तब शलाकाको धीरे धीरे बाहर निकाल ले और फिर नेत्रको घीमे चुपडकर पट्टी बाधे। इसके बाद रोगीको विनावायु बिना धूपवाले स्थानमे सुलाये। डकार, खांसी, छीक, थूकना, जंभाई लेना ऐसे कोई भी काम उस वक्त रोगी न करे। इसके बाद स्नेहपान करावे। तीन दिनके पश्चात् नेत्रको छोडकर वायुनाशक **कषायसे** धोये; यह विधि दस दिन तक करे। हलका अन्न और अन्य भोजन कराये, जिससे दृष्टि निर्मल हो जायगी।

उत्तम शलाकाका लक्षण:—

अष्टांगुलायता मध्ये सूत्रेण परिवेष्टिता। अंगुष्ठ पर्व समिमा वक्रयोर्मुकुलाकृति॥
नाम्रायसी शात कौंभी शलाकास्त्वाशर्निन्दिता॥ ८७॥ अ १७

शलाकाकी लम्बाई आठ अगुल होनी चाहिये. बीचमेंसे सूत लपेट देना चाहिये, जिससे हाथमेंसे रपटे नही। वह अँगूठे जैसी मोटी हो और दोनो नोकें बारीक तथा पुष्पकी कलीके आकारकी होनी चाहिये। यह शलाका ताबेकी या लोहेकी या सुवर्णकी हो तो सर्वश्रेष्ठ है।

अर्मच्छेदन की शस्त्रक्रिया:—(Excision of Pterygium)

जिस रोगीके नेत्रके अर्मका छेदन करना हो, उसको स्निग्ध भोजन कराकर सामने बिठावे। फिर सैंधवके चूर्णको लगाकर नेत्रको रोषित किया जाय; इससे अर्म शिथिल होकर फूल जाता है (**संरोषयेत् तु नयनं भिषक् चूर्णैस्तु लावणैः।**) अर्म यदि नेत्रके अन्दरकी नासिकाकी ओर हो, तो रोगीको कनपटीकी ओरको नेत्रको घुमानेको (देखनेको) कहा जाय और यदि अर्म कनपटीकी ओरको हो तो नासिकाकी ओर देखनेको कहा जाय। अर्म फूल जानेपर उसे स्वेदित किया जाय और जहा वह गाढा और इकठ्ठा हुआ सा मालूम हो, वहा उस पर शस्त्र लगाया जाय। अर्मको बडिश याने आकडे से (Hook) या डोरे सहित सुईसे पकड़ लिया जाय। फिर तीक्ष्ण मडलाग्र शस्त्रसे नेत्र गोलकको चिपके हुए अर्मके भाग को

खुरचकर शुक्ल कृष्ण सधिसे अलग करके उसको नेत्रके कोनेतक हटाके फिर छेदन किया जाय (काटके निकाल दिया जाय) फिर **यवक्षार, त्रिकुटी और सैंधवसे** नेत्रका प्रतिसारण करके और फिर स्वेदन करके पट्टी बाध दी जाय। तीसरे दिन पट्टी छोडके नेत्रोको धोकर क्षत के जैसा इलाज किया जाय।

पक्ष्मकोपः—परबाल की शस्त्रक्रिया: भ्रुकुटी ओर नेत्रच्छदकी किनार इन दोनो के बीच के अन्तर के नेत्रच्छद की तरफ के एकतिहाई भागपर और दोनो कोनोके बीच चीरा देना। फिर चमडीकी जखमसे यवाकार यानी बीचमे चौडा और सिरेकी तरफ बारीक ऐसा भाग काटके निकाल लेना। फिर जखम बाल से सीना (बालेन मीव्येत)। बालके सिरे लम्बे रखकर उनको ललाट पर पट्टीसे बाधके रखना। जखमका छिद्र बद हो जाने पर बालोको अलग कर लेना। ऊपर लिखे हुए विवेचनसे सुश्रुत कालमें वैद्यक शास्त्रके साथ साथ नेत्ररोग विज्ञान शास्त्रकी कितनी प्रगति हुई थी, यह बात स्पष्ट होती है। जिनको शस्त्रक्रियामे निष्णात होनेकी इच्छा है, उनको शवच्छेदन करके शरीरके प्रत्येक अगोपागका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है यह सुश्रुतऋषी का मत था। वाचन और शरीरके भागोका प्रत्यक्ष नीरीक्षण करनेमे ही ज्ञान वर्धन होता है ऐसी उनकी शिक्षा थी।

शवच्छेदन के सबधमे शव किस तरह का होना चाहिये और उसे छेदनके लिये किस तरहसे तैयार करना चाहिये, इसका विवेचन शरीर भागके पाचवे अध्याय मे दिया है।

तस्मान्निसशय ज्ञान हर्ता शल्यस्य वांच्छता। शोधयित्वा मृतं सम्यक् द्रष्टव्योंऽसङ्गा विनिश्चयः॥
प्रत्यक्षतो हि यद्दृष्ट शास्त्रं दृष्टं च यद्भवेत। समासस्तदुभय भूयो ज्ञान विवर्धनम्॥

सुश्रुतको कनीनिकाकी प्रकाश-प्रतिक्रियाकी कल्पना थी, यह बात उसके "सकुचत्यातपेत्यर्थ छायायाम् विसृतोभवेत्," इस वाक्यमे स्पष्ट है।

उत्तम वैद्यके गुण और मान्यता:—

इस प्राचीन कालमे जो वैद्य आयुर्वेदके सब (आठो) अगोको पढकर क्रियाओका भी आवश्यक अभ्यास करते थे और इन दोनो विषयोको जानते थे, वही राजामे सम्मानित होते थे। (एतध्यवश्यमध्येयम् अधीत्यच कर्माप्यवश्यमुपासितव्यम् उभयज्ञोहि भिषक् राजार्हो भवति) (सु. अ. ३ ॥ ४६ ॥)

जो वैद्य शास्त्रसे अनभिज्ञ होते हुए अपनी धृष्टताके कारण वैद्यक्रियाओ मे निपुण है, वे उत्तम वैद्यो मे सम्मानयोग्य नही है और राजाकी ओरसे प्राणदड देनेके योग्य होते है। 'यत्सुकर्मसुनिष्णातो धाष्टर्याच्छास्त्र बहिष्कृत.। **ससत्सु पूजांनाप्नोति वधे चार्हति राजतः।**

जो वैद्य अज्ञान पूर्वक चिकित्सा करता है उसको दड करनेका विधान कौटिलीय अर्थशास्त्रमे मिलता है। भिषज प्राणाबाधिक मनाख्यायोपक्रममाणस्य विपत्तौ पूर्वस्माहसदड।

कर्मापराधेन विपनी मध्यम । मर्मवेध वैगुण्य करणे दड पारुप्य विघात ।

जो वैद्य कर्माभ्यासमे अनभिज्ञ होते है, उनके सबध मे भी लिखा है कि:—

स्नेहादिष्वनभिज्ञा ये छेद्यादिपुच कर्मसु ते निहन्ति जनं लोभात् कुवैद्या नृपदोषतः सु अ ॥३ ५१॥

स्नेह स्वेदपूर्वक पच कर्मो और छेद्य, भेद्य आदि शास्त्र कर्मोमें जो वैद्य अनभिज्ञ होते है, वे मूर्ख वैद्य राजाके दोपके कारण लोभसे जनताके प्राणोंका नाश करते है। **चरक**मे भी लिखा है, कि इस प्रकारके अज्ञानी प्राणहारक वैद्योंका जनतामे होना राजाकाही प्रमाद है।

अतो विपर्ययेण विपरीता रोगाणामभिसराः हन्तारः प्राणानां भिषक्छद्म प्रतिच्छन्नाः।
कंटक भूता लोकस्य प्रतिरूपक व्यक्ता धर्माणो राज्ञां प्रमादाश्चरन्ति राष्ट्राणि ॥ (च.सू. २९)

चक्रदत्त अपनी टीकामें लिखते हैं कि:—निष्पन्नेन वैद्येन प्रजापालके राज्ञि आत्मा-गुणत. दर्शनीय.। ततो राजा परीक्ष्य वैद्य. प्रजारक्षार्थमनुमन्तव्य एप धर्म.। अनिष्पन्न वैद्य गण चिकित्सा कुर्वाणो लोकापकारतया राज्ञा शासनीय:।

इससे स्पष्ट है, कि उस समयमे भी वैद्य लोगोपर योग्यताका निर्बंध था।

(२)

चीनी नेत्रविज्ञान शास्त्रका विकास

चीनी लोगोकी दतकथासे यह स्पष्ट होता है, कि ऐतिहासिक कालके पूर्व यानी चार हजार सालके पहले चीनके जो तीन प्रसिद्ध बादशाह हुए थे, उनके समय साधारण वैद्यकशास्त्रके साथ नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रका प्रारभ हुआ। साधारण जनश्रुति ऐसी थी, कि इन तीन बादशाहोके आखिरके बादशाह **हुआंगटी** (ई पू २६७९) मोतीबिदु नेत्ररोगके लिये महत्त्वपूर्ण सूचीकी शस्त्रक्रिया करते थे। और उसी समय वैद्यकशास्त्र और नेत्ररोग-विज्ञान शास्त्रपर ग्रथ भी लिखे गये थे। **सुंग** राजाके समयमे **चेंगटी ह्यू** नामका बडा पडित था। उसके मतानुसार **हुआंगटी आयका** आत्मज्ञानका श्रेष्ठ ग्रथ और **कनफ्यू-शिअसके** पश्चात्का **सूवेन** नामका ग्रथ, जो प्रश्न-रूपका था, ये दोनों **हुआंगटी**के समयमे लिखे गये थे। इस दूसरे ग्रथमे नेत्ररोगोपर बहुत चर्चा की गई है। इन दतकथाओपर विश्वास करे या न करे लेकिन यह बात स्पष्ट है, कि यह ग्रथ आजकल उपलब्ध है। और **चेंगटीह्यू**के मतानुसार यह स्पष्ट होता है, कि चीन देशमें नेत्ररोगविज्ञानका प्रारम्भ कनफ्युशिअसके पहले या पश्चात हुआ था।

चीन देशमे नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रके विकाससबधी विश्वसनीय उल्लेख ई. पू. २५० सालके **हान** बादशाहके समयमे सूची शस्त्रक्रियाके महत्त्वपर **टी ह्यू वू चिंग**ने जो निबध लिखा था, उसपरसे ठीक तरहसे मिलता है। यह ग्रंथ प्रसिद्ध चीनी पडित **पीयन चुईह**ने लिखा। इसके पश्चात् **सुंग** राजाके समयमे **वांग वै टेह** ने और एक ग्रथ लिखा था। उसने

सूची शस्त्रक्रियाके संबधमें बहुतसी नई बातें जमा की थी। लेकिन सबसे श्रेष्ठ ग्रथ **चिंग** राजाके समयमे **चीनशीनने** लिखा था, वही है। इसको **चेनचेहटाचेअन** कहते है। इस ग्रथमे विवरण पूर्ण है और यह ग्रथ चीनी नेत्रविशारदोको मान्य है। इस ग्रथमे वैद्यकसंबधी विवेचन विविध प्रकारका और सचित्र दिया गया है। इस ग्रथमे २० प्रकारके मुख्य नेत्ररोगोका वर्णन दिया गया है।

नेत्ररोगसंबधी पहला स्वतंत्र ग्रथ **टांग** राजाके समयमें यानी सन ६२८ के पश्चात् वैद्यराज **सनसुओ मायावो** ने लिखा था, जिसका नाम **हाइ चिंग वें** था। इस ग्रथमे ८१ नेत्र रोगोका वर्णन किया गया है और अनेक कल्पनाओका विचार तथा सूची शस्त्रक्रिया और अन्तर्वलित नेत्रच्छदको (Entropin) दागना आदि विषयोका वर्णन किया गया है। **लिआन शेग फेंगलि ने** पोथकी (Trachoma) यानी कुकरोंकी अवस्थाको **नेत्रच्छदके रेतीके कण** कहा है। यह विकृत अवस्था ऊपरके और नीचेके नेत्रच्छदोमे दिखाई पडती है। शरीरमे रक्तका प्रमाण ज्यादह बढनेसे आमाशय और पित्ताशय मे ऊष्णता का प्रमाण बढ जाता है और उससे पोथकी यह विकृत अवस्था पैदा होती है। शिराजाल (Pannus) और क्षत ये विकृतिया पोथकीके घर्षणसे काले भाग पर यानी तारकापिधानमें पैदा होती हैं। पोथकी को फोडते थे, या दाग देते थे। प्लीहामे ऊष्णताका जोर ज्यादह होनेसे पोथकी होती है, इसलिये प्लीहा का रक्त निकालनेके लिये पीनेकी दवा देनेको कहा है।

शेह चिंग टग टुंग यानी तारकाभ्रंश (Prolapse of Iris) यकृत और प्लीहा मे ऊष्णताका प्रमाण ज्यादह बढनेसे पैदा होती है, ऐसा मानते थे। प्रकाश असहिष्णुता, आरक्तता, वेदना, और नेत्रोंसे आँसू बहना, ये लक्षण दिये है और इसका इलाज काले भागको सूचीसे छेद करना इस तरहका दिया गया है। इसके पश्चात् सन १६२८ तक कोई नये ग्रथ नहीं लिखे गये। इस सालमें **तामिंग** राजाके पश्चात् **थेन केटा शुआन** नामका ग्रथ प्रकाशित हुआ। इस ग्रथ के छ भाग थे और इनमे १०६ नेत्ररोगोका वर्णन और चिकित्सा दी गई थी। इस ग्रथको इन दिनोंक सब चीनी वैद्यराज प्रमाण ग्रथ मानते है। इस ग्रथमें **नू जोड** यानें अर्म और इसकी शस्त्रक्रिया का विवेचन और मोतीबिन्दु की सूची की शस्त्रक्रिया का पूरा वर्णन दिया गया है। अर्म निकालनेके पहले **भिग फान** यानी फिटकरीके पानीमें बना हुआ लेप लगाते थे। शस्त्रक्रियाके पश्चात् कपासमे बने हुए कागज की पट्टी रखते थे। शस्त्रक्रिया के बाद मासाहार निषिद्ध था। मोतीबिन्दुको निकालनेके लिये सोनेकी सूचीका उपयोग करते थे। इस सूचीकी लबाई दो इच, सूचीका सिर चाकूके जैसा और उसकी बाजूमें दोनों तरफ एक एक छिद्र रहता था। सूचीकी मुष्टि या मूठ लकडी या शृग की बनी रहती थी। शस्त्रक्रिया के पहले सूचीको बुद्ध देवकी प्रतिमाके सामने रखते थे। शस्त्रक्रियाके पूर्व दो या तीन दिन रोगीको कुछ चूर्णादि देकर उसका शरीरस्वास्थ्य सुधारते थे। जिस नेत्रपर शस्त्रक्रिया करनी हो उसको और उसके इर्दगिर्दके भागको धोके साफ करते थे।

शस्त्रक्रियाके समय रोगीको सामने कुर्सीपर बिठाकर उसके हाथोंमे कागजके गोले देकर उनको मजबूत पकडनेको कहा जाता था। रोगीके सिरको दो परिचारक पकडकर

रखते थे। फिर शालाकिन बाये हाथकी उगलियोसे नेत्रच्छदको खोलकर दाहिने हाथकी उंगलियोमें सूची को पकडकर तारकाधिधानके बाहरकी ओरसे नेत्रमे मोतीबिन्दुतक घुसाते थे। फिर रोगी को उगलियाँ दिखाई देनेतक मोतीबिन्दु को ऊपर या नीचे ढकेलते थे। सूची को एकदम बाहर नहीं निकाले, ऐसी अनुज्ञा थी। शस्त्रक्रिया किसीभी मासमें दोपरहके समय करे, शस्त्रक्रिया करनेके पहले बुद्ध देव की पूजा करे, सूचीको मंत्रित नाडा बाँधे, शालाकिन भी बुद्धदेवकी प्रार्थना करे, ऐसी अनुज्ञा थी।

शस्त्रक्रियाके पश्चात् नेत्रको कपासके कागजकी पट्टी बांधे, रोगीको चित्त सुलावे, तीन दिनतक काजी और नरम पका हुआ अन्न दिया जाये, मलमूत्रके समय रोगी जखमपर जोर न आने दे। नेत्रकी पट्टी तीन दिनके बाद छोडी जाय, फिर हररोज खोलकर बाधी जाय, ऐसी सूचनाए दी गई है (इन दोनो शस्त्रक्रियाओका वर्णन सुश्रुतके वर्णनके समानही है।)

सन १६४४ मे **शुन चिह** राजाके समय **वांग शू पाओने येन के टापो वेन** नामका ग्रथ नेत्ररोगपर प्रसिद्ध किया। इसमें एक सौ नेत्ररोगोका वर्णन प्रश्नोत्तर रूपमें किया है। इसके बाद सन १७०६ मे **चिआशिंग** राजाके समय **यांग वूने "येन का एटा चेंग"** नामका ग्रथ प्रसिद्ध किया। इसके पहले भागमे पच चक्र (कुलुन), आठ बाह्य दीवारे (पा का नो) नेत्रपर वातावरणके परिणाम और नेत्रपर होनेवाले सप्त धातुओके परिणाम (Seven moods) आदि कल्पनाओका विवेचन किया है। दूसरे भागमें हृदय, यकृत, प्लीहा आदि इन्द्रियोके रोगोमे होनेवाले नेत्ररोग, तथा खाँसी, बुखार, स्पर्शजन्य आदि रोगोमे होनेवाले नेत्ररोगोका विवेचन किया है। तीसरे और चौथे भागमें चिकित्सा दी गई है।

सन १८२१ में **चेन हाऊ हसीने येनके लिऊ या ओ**-नेत्ररोगके छ मूल तत्त्व-नामक ग्रंथ लिखा था, जिसमे ४८ मुख्य नेत्ररोगोका वर्णन और उनकी औषधीय चिकित्सा है। परबालके लिये शस्त्रक्रियाके सिवाय अन्य इलाज नहीं हो सकता, ऐसा कहा है। इस शस्त्रक्रियाका वर्णन निम्नलिखित है:—एक इच लबाई और तीन मि. मि. मोटाइवाला पीतलका एक टुकडा लेकर उसके एक सिरेपर धागा तग बाँधे और दूसरे सिरेको (मोड़कर) उसका चिमटा तैयार किया जाय। इस चिमटेमे उपरके नेत्रच्छदकी चमडी जितनी जरूरत हो उतनी पकडकर चिमटा बद करके उसके दूसरे सिरेको धागेमे बाँध डाले। चिमटा लगानेके पहले नेत्रच्छद बद रखना चाहिये। यह चिमटा सात दिन तक वैसा ही बंद रखे, जिससे चिमटेमे पकडा हुआ चमडीका भाग सड़ करके गिर जायगा। जखम दुरुस्त होनेके वाद सूखकर वहाँ पपडी तैयार होगी।

सक्षेपमें:—चीनके मुल्कमे हुआगटीके समयमे नेत्ररोग चिकित्सा साधारण वैद्यक शास्त्रका भाग था। लेकिन टाग राजाके समयमे (६२८ इ.) नेत्ररोगपर पहला स्वतन्त्र ग्रथ **इन हाई चिंग वे** इस नामसे प्रख्यात था। इसके पश्चात इस शास्त्रमे जो ज्यादह प्रगति हुई, वह सन १६२८ मे **येन के टा शु आन** नामक ग्रथ जो प्रसिद्ध हुआ, उसमें पाई जाती है और अभीतक यही ग्रथ सबको मान्य है। इसके पश्चात् और तीन ग्रथ प्रसिद्ध हुए, लेकिन उनमे पुनरावृत्ति ही थी। रोगोकी कुल सख्या ७२ या ८१ मानी गई थी।

(३)
असीरो इजिपशियन नेत्रवैद्यक

असीरिया प्रदेश में नेत्रविज्ञान का उल्लेख वैद्यक ग्रंथमें नही पाया-जाता; लेकिन कानूनकी किताबोमे मिलता है। ई० पू २२५० के लगभग असीरियामें हमूराबी के नामका बादशाह हो गया था। इस समयकी कानूनकी किताबोमे नेत्र के बारेमें पांच तरहके उल्लेख मिलते है। (१) नेत्रपर बेकाम इलाज करना. (२) आख के बदले आख निकाल लेना: (३) प्लेबियन याने नीचेके दर्जेके लोगो तथा गुलामो पर और आजाद लोगोपर किये जानेवाले इलाजोमें रहा हुआ फर्क: (४) उस समय शल्यक्रिया के हथियार कासा धातुके बनाते थे· (५) नेत्रविज्ञान शास्त्र की कुछ प्रगति नही दिखाई देती चिकित्सामें मजहबी बाते और जादू आदि बातोका भी बयान मिलता है।

प्राणका असली स्थान रक्तमें और बुद्धिका स्थान हृदयमें होता है, ऐसा असीरो-बेबीलान लोग मानते थे। इन दो कल्पनाओपर शरीर स्वास्थ्य और विकृत शारीर अवलंबित रहता है, ऐसी उस समय के पंडितोकी राय थी। रक्त के दो प्रकार-एक दिनका और दूसरा रातका होता है. याने रोहिणीमे शुद्ध रक्त (Arterial blood) और नीलाओमें अशुद्ध रक्त (Venous blood) होता है। रक्तपर कुछ दैविक या शैतानी असर होनेसे नेत्ररोग पैदा होते हैं, ऐसी उनकी कल्पना थी। उस समय वैद्यका पेशा करनेवाले लोग भिक्षुक वर्गके थे। रोगको हटानेके लिये मंत्र, तंत्र, जादूको ज्यादह इस्तेमाल किया जाता था और यही हालत असीरियामें मंदियोंमे प्रचलित थी।

इजिप्त:—प्राचीन इजिपशियन नेत्र वैद्यक का उल्लेख ई. पू. १६५०।१५५० में पापीरस पत्रके कागजपर लिखे हुए दो हस्त लिखित ग्रंथोपरसे पाया जाता है। इजिपशियन नेत्र-वैद्यक का वर्णन करनेके पहले वैद्यक शास्त्र की उस समय किस तरहकी प्रगति हुई थी, इसका विचार करना मुनासिब होगा। उस समय इजिप्तमें वैद्यककी तालीम अन्य शास्त्रोंके साथ मंदिरोमें दी जाती थी। उस समयके माननीय मंदिर **साइस, आन, मेंफिस** और **थेबिस** ये माने गये थे। वैद्यककी शिक्षा, मंदिरोमें कभी कभी खास शफाखानोंमें खास बीमार लोगोपर व्याख्यान द्वारा देनेकी प्रथा थी। वैद्यक शास्त्रका पेशा करनेवाले लोग पहले भिक्षूक थे, लेकिन पश्चात् अन्य आजाद लोग भी यह पेशा करने लगे थे।

उस समयके इजिपशियन लोगोका शरीरका ज्ञान बहुतही कम दर्जेका था, इसमें कुछ शक नही। वे मानते थे, कियामतके दिन मरे हुए लोग फिरसे जिन्दा होंगे, और इसी वजहसे मृत शरीर आखिरतक अच्छा रहे, सड न जावे, इसलिये मृत शरीरके मस्तिष्कको और आंत्रको निकाल डाल कर उसमें मसाला भरनेकी उनकी रीत थी। इससे उनका शरीरका ज्ञान काफी होगा ऐसा मानना संभाव्य है; लेकिन यह बात उतनी ही सत्य है कि यह ज्ञान उनको नही था।

इजिपशियन लोगोका इन्द्रियविज्ञान शास्त्र काल्पनिक था, तो भी वह शरीरशास्त्रसे ऊंचे दर्जेका था। इनमें श्वासोच्छ्वासकी क्रियाको ज्यादह महत्त्व दिया गया था। असीरियन

लोगोंमे जिसतरह रक्त और हृदयमे दो घटकोको ज्यादह मानते थे उसी तरह इजिपशियन लोग वायु याने वातको ज्यादह मानते थे। अमीरियन लोग जिसतरह रक्तके दो प्रकार मानते थे, उसीतरह मिसरवाले वायुके दो प्रकार मानते थे: एक जीवित अवस्थाका और दुसरा मृत अवस्थाका। मौत-मृतदेह-की रोहिणिया खोखली दिखाई देनेसे इन खोखली नालियोमेंसे वायु शरीरके अन्य भागोंको जाता है, ऐसा वे मानते थे। और यही कल्पना कई सदियोंतक याने हार्वेने रुधिराभिसरणकी क्रियाका शोध लगाया तबतक याने ई. स. १६१६ तक आम जनतामें प्रचलित थी। इजिपशियन लोग नीलाओंको रक्तवाहिनिया समझते थे। रक्तकी पैदाइश आमाशयमें और हृदयमें होती है, ऐसा वे मानते थे। लेकिन अमीरियन लोग रक्तकी पैदाईश यकृतमें होती है, ऐसा समझते थे।

इजिपशियन वैद्य लोगोंकी कल्पनाके अनुसार रोगकी पैदाइशके चार कारण दिये है:— (१) दैविक कोप, (२) शैतानकी बाधा (३) ज्यादह खाना, (४) और जन्तुओका स्पर्श। पुराने जमानेके–प्राचीन इजिपशियन वैद्यलोग उलटी करानेवाली और पसीना निकालने-वाली दवाएँ, रेचक याने दस्त करानेवाली दवाएं और बस्तिका प्रयोग इनका इस्तेमाल करते थे! खून निकाल लेनेकी कोशिश करते थे। उनमें शस्त्रक्रियाकी प्रगति नही हुई थी। उनमें आम जनताके शरीरस्वास्थ्यकी प्रगति हुई थी। स्त्रीरोगकी चिकित्सा और प्रसूतिशास्त्रकी क्रिया करनेवाले वैद्य स्त्रियाँही थी।

ई. पू. ५०० सालके समय हरएक इन्द्रियके रोगोंके विशारद इजिप्तमें थे! लेकिन इसी समय इजिपशियन वैद्यकशास्त्रका ऱ्हास शुरु हुआ।

इजिपशियन नेत्रवैद्यक का पता पपायरस कागजपर लिखे हुए दो हस्त लिखित ग्रथोमे मिलता है। एक ग्रंथ ई. पू. १६५० मे लिखा गया था, और दूसरा ग्रथ १५५० मे लिखा गया था। इसको पपायरस एबर्स कहते है, क्यो कि यह ग्रथ एबर्स नामके जर्मन को मिला था। यह ग्रथ लिबझिक के किताबखानेमे रखा है। यह ग्रथ महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रथके ११० पन्ने है और इस ग्रथमें उस समय के ज्ञात रोगोका वर्णन तथा चिकित्सा दी गई है। इस ग्रथके कुल ११० पन्नोंमेंसे ८ पन्नोंमे नेत्रके रोगोका सक्षिप्त वर्णन तथा चिकित्सा दी है। इस ग्रथका एबर्सने जर्मन भाषामे तर्जुमा किया है। इस पपायरस एबर्स के कुछ महत्त्वके नेत्ररोग और उनकी चिकित्सा निम्नलिखित है —

(१) **नेत्रगोलकके शुक्लास्तरके नीचे दिखाई देनेवाला रक्त;** इसके लिये सुरमा (Antimony), ताबेका कलक और लकड़ीका भूसा इनके इलाज बताये है। (२) **अश्रुपात** पर भूप, उबला हुआ पपायरस (शैबाल) गोन्द और सुरमा और पानीका इस्तेमाल लिखा है। (३) **दृष्टिमांद्यकी अवस्था** (मोतिया, तारकापिधानका फूल आदि) के लिये दलदलकी जगहका पानी और शहद और सूरमेकी पट्टी रखनेको कहा है। (४) **पोथकी** (Blare Eyes) के लिये कलक और प्याज समभागमे लेकर पीसके उसकी पट्टी नेत्रपर रखनेको कहा है। (५) **नेत्रोंमें दुःख होता हो,** तो सुरमा और कोयले के मिश्रण का मरहम लगानेको कहा है। (६) **कनीनिकाके आकुंचनके** लिये शीशमकी लकड़ीका भूसा और साल्ट पिटरसे सेंकना। (७) **नेत्र सफेद हुआ हो,** तो (फूल या मोतीबिन्दू)

शराबमे कछुएके मस्तिष्कको मिलाकर लेप लगाना। (८) **नेत्रमें फतरी** (मायबोमियन ग्रंथिकी कठिनता) को बारबार पोलटीससे सेकना। (९) **नेत्र तिरछा होनेपर** कछुए के मस्तिष्कके वज़न बराबर मसाला मिलाकर नेत्रको लगाना। (१०) **नेत्रमें रक्त जम जाना** बच्चेवाली माताके ताजे दूधसे सुरमेको धोके लगाना। (११) **नेत्रकी पीबदार अवस्थाः** (१२) **नेत्रमें पानी चढ़ जाना** (सम्भवतः काचता या मोतीबिन्दु)। (१३) **नासिकाके नज़दीक की सूजन** (अश्रुकोष की सूजन) (१४) **नेत्रच्छदके पक्ष्म अन्दरकी ओरको घूम जाना।**

(४)

ग्रीक (यूनानी) नेत्रवैद्यक

हालमें हस्तलिखित जो ग्रीक ग्रंथ अस्तित्वमें हैं, उनपरसे मालूम हो सकता है, कि ग्रीक वैद्यकशास्त्रकी नीव पेरिक्लिजके समय (ई पू ५६१–४३०) रची गयी थी। लेकिन ग्रीक वैद्यकका सबसे श्रेष्ठ वैद्य हिपोक्रिटीज था, यह बात निश्चित है।

हिपोक्रिटीज़के पूर्वकी ग्रीक वैद्यककी हालत.—हिपोक्रिटिजके जननके पहले ग्रीस प्रदेशमें वैद्यकका पेशा तीन तरहके लोग करते थे। एक अस्कुलापियस मंदिरके भिक्षु लोग; दूसरे अस्क्लिपियाडी लोग जिनका देवालयसे कुछ तात्लुक नही था, लेकिन जो अपनेको देवताओंके खानदानके मानते थे; तीसरे, वैद्यकपेशेके खास आजाद लोग, जिनका देवालयसे कुछ संबंध नही था। आखिरके दो सिलसिलेके लोग वैद्यक शास्त्र सीखे हुए थे। इनके सिवा प्रचलित सरकारसे वेतन पानेवाले वैद्यलोग थे, जिनका काम गरीब लोगोंको मुफ्त देखकर दवा देना होता था। उस समय सरकार दरबारमें खास वैद्य और शालाकिन तथा लश्कर और समुंदरी–सेनाके वैद्य और शालाकिन थे। उस समय स्त्रियोंके लिये वैद्यक पेशेकी मनाई थी।

ग्रीस देशमें उस समय **सायरेन, र्होड्स, क्निडास** और **कास** मे वैद्यकशास्त्रके मदरसे थे। इन चारों मदरसोंपर मेसापोटेमिया और इजिप्तके वैद्योंका असर हुआ था। इन चारोमेसे पहले दो मदरसे बंद हो गये थे और क्निडास तथा कास के मदरसे मशहूर हो गये थे। इन दोनों मदरसोंके वैद्यक शास्त्रके गुरु अस्क्लिपियाडी वर्गके होते थे। ये लोग बुद्धि प्रधान वैद्यक शास्त्रको इस्तेमाल करते थे, याने इनको मजहबी नादान कल्पनाएँ पसंद नही थी। इनमें खास सीखे हुए वैद्य थे और इसमें कुछ शक नही कि इन्होंने अपने बर्ताव और ज्ञानसे हालके वैद्यक शास्त्रकी नीव रची।

ग्रीस प्रदेशमें तत्वज्ञानके साथ साथ वैद्यक शास्त्रकाभी बीज इजिप्तमेंही बोया गया था और इसका कुछ अंश हिंदुस्थान और चीन देशोंसे भी मिला है। बीज कहींसेभी मिला हो, लेकिन उसको थालिस, सार्केटिस, प्लेटो और आरिस्टाटलकी जन्मभूमीमें अच्छा फल लगा, यह बात उतनीही सत्य है।

हिपोक्रिटीजके पहले झेनोफेनने और एक (इआलेटिक तत्वज्ञान) पथकी स्थापना की थी। इस पंथके ल्युमीपस और डेमाक्रिटिस ये दो तत्वज्ञानीओने भौतिक तत्वज्ञानके पथकी स्थापना की। इनके मनके अनुसार इस जगतका अस्तित्व उसके पूर्वस्थित सूक्ष्म परमाणूओपर और उनके अविनाशित्वपर अवलम्बित होता है। ये सूक्ष्म परमाण अनन्त अवकाशमें फिरते रहते है। और इस हालतमें इन परमाणुओंका अन्य परमाणुओंसे एकाएक सजोग होनेसे नये पदार्थ बनते है।। और वे पारस्परिकसे अलग होजानेसे उस पदार्थका नाश होजाता है। कुछ पदार्थोंका बीज परमाणू होता है। उस समय पश्चातका मशहूर तत्ववेत्ता साक्रेटीज था। उनका जन्म ई. पू. ८५९ में अथेन्स शहरमें हुआ था। वे हिपोक्रिटीजके समकालीन और दोस्त भी थे। उन्होने पूर्व कालके तत्वज्ञानीओंकी भौतिक कल्पनाओंके बदले नैतिक ओर व्यावहारिक कल्पनाओका प्रसार करना जारी किया। मनुष्य अपनी बुद्धिके बलबतेपर ज्ञानेंद्रियोंके जरिये जिन्हे ग्रहणकर सके ऐसे व्यावहारिक नियम और मानसिक दोषोको नैतिकशास्त्र की सहायतासे सुधारनेकी भी उन्होने कोशिश की। इसी समय शारिरीक व्याधिओंको नष्ट करनेके उद्देशसे हिपोक्रिटीजने शास्त्रीय और व्यावहारिक उपचार करना भी शुरू किया।

हिपोक्रिटीजका जन्म कौस दीपके कास विश्वविद्यालयके गावमे ई. पू. ८५० में अस्क्लिपियाडीके खानदानीमे हुआ था। उनकी वैद्यकीय शिक्षा पहले उनके पिताजीके पास हुई थी। वह शिक्षा कोआन वैद्यक साप्रदायके तत्वोंके अनुसार हुई थी। हिपोक्रिटीजने कुल वैद्यक तत्वोका तथा औषधियोका ज्ञान हासिल करनेके लिये पहले यूनाने, असीरिया, आशियामायनर, मिसरा और लीबिया इन मुल्कोंका सफर कियी, फिर कौसको वापिस आकर वहा स्थायी होगये। हिपोक्रिटीजका देहान्त लारिसा गावमे ई. पू. ३७०–३७७ में हुआ।

हिपोक्रिटीजका समय सब तरहके शास्त्र व कलाकौशलकी उन्नतिका सुवर्णकाल माना गया था। इसी समयमें पेरिक्लिज जैसा राजकार्य धुरधर, साक्रेटिझ जैसा तत्त्वज्ञानी, थ्युडायरीज जैसा इतिहासज्ञ, सोफोक्लिज और युरीपायडीज जैसे नाटककार, फेइडियम और प्राक्झीटेलेस जैसे मूर्तिकार ओर झेथ्युक्सीर और पाराहासेलस जैसे चित्रकार हुए थे।

हिपोक्रिटीजको अर्वाचीन पाश्चिमात्य वैद्यक शास्त्रका जनक मानते है। यह सच है, कि मनुष्यके शरीरका उन्होने जो वर्णन किया हुआ वह बिलकुल निर्दोष नहीं लेकिन उससमय मनुष्यके शरीरका शवच्छेदन करनेका रिवाज न होनेके कारण इस तरहकी गलती होना सभाव्य था। उस समय शरीरका ज्ञान, अन्य प्राणियोंके शवच्छेदनसे या यज्ञयागके समयको जिन जानवरोंको मारते थे उनके शवच्छेदनसे प्राप्त किया जाता था। नेत्रगोलकका कियाहुआ उसका वर्णन इस तरह है:—

नेत्रगोलकके तीन पटल होते है, सबसे बाहरी पटल मोटा होता है, बीचका पटल पतला और बिलकुल भीतरका पटल मुलायम व नाजुक होता है। ये तीनों पटल सामनेकी ओरको पारदर्शक होते है। नेत्रगोलकके भीतर अनेक पारदर्शक द्रव पदार्थ होते है।

नेत्रगोलकपर श्लेष्माका आवरण होता है (नेत्राश्रु और श्लेष्मामे उन्होने कुछ फर्क नही समझा था।)। दृष्टिरज्जुका आविष्कार हिपोक्रिटीजके पहलेही अलकमेननने किया था लेकिन उनको इस दृष्टिरज्जुके कार्यकी कुछ कल्पना नही थी। उनकी कल्पना थी, कि स्फटिकमणिकी सहायतासे स्फटिकद्रवपिंडमे दृष्टिका असली कार्य होता है।

हिपोक्रिटीजकी इन्द्रियविज्ञान और विकृत शरीरकी कल्पनाः— इनकी कल्पनाके अनुसार इस जगत्‌की कुल वस्तुएँ जल, अग्नि, वात और पृथ्वी इन चार असली तत्त्वोंके मिश्रणसे बनती है। मालूम होता है, कि यह कल्पना उन्होने आयोनिक पथके तत्त्वज्ञानीओसे ली थी। इन चार तत्त्वोंमे जड वस्तुओमे चार असली गुण अनुक्रमसे आर्द्रता, हरारत, सूखापन व ठंडक दिखाई पडती है। इन चार तत्त्वोंका भिन्न भिन्न प्रमाणमे मिश्रण होनेसे शरीरके घटक बनते है। इस कल्पनाके अनुसार शरीरमे चार असली द्रव (Humours) पदार्थ होते है। याने (१) **रक्त,** जो यकृतमे पैदा होता है, आर्द्र और उष्ण होता है, (२) **श्लेष्मा,** आर्द्रता और हिमताके मिश्रणसे मस्तिष्कमे बनता है, (३) **पीतपित्त,** (Yellow bile) शुष्कता और उष्णताके मिश्रणसे यकृतमे पैदा होता है, (४) **कृष्णपित्त,** शुष्कता और हिमताके मिश्रणसे प्लीहामे बनता है। इन चार द्रव पदार्थोपर शरीरके विविध द्रवकी कल्पना (Humoural theory) रची गई है। और माना गया था, कि इन चार द्रव्योंके कार्यके समतुलित अवस्थापर शरीरस्वास्थ्य अवलम्बित रहता है और उनके कार्योकी समतुलित अवस्थामे बिगाड होनेसे रोगोद्भव होता है। इन विविध द्रवोंकी कल्पनाका पूरा विकास पाच शताब्दियोंके बाद ग्यालनने किया।

हिपोक्रिटीजके मतके अनुसार प्राणियोंके जीवनके लिये जरूरी प्रमुख तत्त्व वातावरणसे पाया जाता है, जिसको वे न्यूमा (याने Oxygen प्राणवायु) कहते थे। उनकी राय थी कि इस न्यूमावातको शरीरमे ग्रहण करनेसे वह श्वास नलिकामेसे हृदयमे जाता है फिर यह इन्द्रिय न्यूमाको रोहिणियोंके द्वारा शरीरके कुल भागोमे पहुंचाता है। इसी सिद्धान्तको न्यूमानिक सिद्धान्त कहा जाता था। हिपोक्रिटीजके मतके अनुसार नेत्रकी व्याधियां दूषित द्रवोंके स्रावसे पैदा होती है, याने मस्तिष्कमेसे विकृत द्रव नेत्रमे उतर जानेसे नेत्रके रोग पैदा होते है। मस्तिष्क यह एक बडी ग्रंथी है, ऐसा वे समझते थे। उनकी मान्यता थी, कि विकृत द्रव सात तरहके होते है उनमेसे (१) एक नासिकामे, (२) एक कानमे, (३) एक नेत्रमे, (४) एक वक्षस्थलमे, (५) एक पृष्टवंशकी मज्जामे, (६) एक रीढ याने मेरुदंडमे और (७) एक सीधा कटीमे जाता है। और नेत्रमे जानेवाले विकृतद्रवसे शुक्लास्तर दाह, (Ophthalmia) और पीठमे जानेवाले विकृत द्रवसे दृक्‌शक्तिमें फरक होता है।

हिपोक्रिटीजने शुक्लास्तरदाहमे होनेवाला मामली स्राव (आखं आना) याने साधा अभिष्यन्द, पोथकी, नेत्रच्छददाह इन अवस्थाओका विचार किया है। नेत्रोमें प्रविष्ट होनेवाले मुख्य द्रव ज्यादह जोरदार हो, तो नेत्रच्छदमे क्षत पड जाते है और कभी कभी वे गोलोपर भी फैल जाते है। इनका असर कालमानके अनुसार ज्यादह जोरदार होना संभाव्य होता है। इनके सिवा उन्होने अर्म लगण (Chalazion), अन्तर्वलित तथा बहिर्वलित नेत्रच्छद, पक्ष्मकोप,

तारकापिधानके क्षत और फूल (अपारदर्शक दाग), प्रकाशकी असहिष्णुता, (दिनांधता) (Nyctalopia) पूर्ण अंधता (amaurosis) दृष्टिमान्द्य आदि रोगोंका वर्णन दिया है।

हिपोक्रिटीजका साध्यासाध्य विचार.—उनकी शिक्षा यह थी, कि कौनसी व्याधि किस वक्त साफ मिट जायेगी, या वह नहीं मिटेगी, इस संबंधमें निर्णय करनेके लिये हरएक वैद्यको चाहिये, कि वह व्याधिके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लक्षणोंको जांचकर उनके असर किस प्रकारके होंगे, इसका ठीक ठीक विचार करे। इससे रोगीके मनमें विश्वास पैदा होगा और वह चिकित्साकी अनुज्ञा व अनुशासनको ठीक मानेगा।

हिपोक्रिटीजने चिकित्साके संबंधमें रोगीका आहार विहार आदि किस तरहका होना चाहिये, इस बातका ठीक विचार किया है। "डी डायेटा" नामकी उसकी लिखी हुई किताबमें खानेमें आनेवाली बहुतसी वस्तुओंके गुणधर्मोंका वर्णन दिया है। खास प्रकारके आहारोंके साथ साथ स्नान, व्यायाम, मालिश करना, गाना, जोरसे पढ़ना आदि बातोंका भी उन्होंने उसमें विचार किया है।

औषधीकी योजना सामत मात्रामें होनी चाहिये ऐसी उनकी अनुज्ञा थी। शरीरके विविध द्रवोंकी समतुल्ति अवस्थाका बिगाड होनेमें व्याधि पैदा होती है, इस तरहकी अपनी कल्पनाके अनुसार उन्होंने व्याधिकी अपक्व, पक्व और परिपक्व इस तरह तीन अवस्थाएँ मानी थीं। पहलेकी यानी अपक्व अवस्थामें ज्यादह दवाओंका इस्तेमाल नहीं करना चाहिये, दूसरी अवस्थामें व्याधिके लक्षणोंसे व्याधिका बीज शरीरसे निकाल डालनेके लिये निसर्गकी मदद करना जरूरी है और इसीलिये सौम्य रेचक तथा उल्टी करानेवाली दवाओंका इस्तेमाल और खूनको बहानेकी कोशिश करनी चाहिये ऐसा उनका कहना था, और इस रीतिसे असली द्रवोंका विपरीत मार्ग सुधारकर व्याधिको हटाना चाहिये ऐसी उनकी अनुज्ञा थी।

हिपोक्रिटीजकी नेत्ररोगकी चिकित्सा भी इसी तरह शरीरके अन्तर्गत विविध द्रवकी कल्पनाके अनुसार ही थी। व्याधिकी तीव्र अवस्थामें आहारका नियंत्रण करके और सेंक लगानेको उसने कहा है। नेत्रमें घुसे हुए द्रवको निकाल डालनेके वास्ते तेज नस्य, लालोत्पादनके लिये चबानेकी औषधियाँ देने और गुल्ला करनेको कहा है। इसके पश्चात् खून बहानेके लिये नसोंको तोडनेका या सिंगी लगानेको कहा है। व्याधिका स्वरूप ज्यादह भयंकर हो, तो नेत्रके इर्दगिर्दकी नसोंका दागदो जलादो या उनको फासणी लगाना। तात्कालिक अवस्थामें स्थानीय औषधियोंका इस्तेमाल करनेके लिये उन्होंने बताया नहीं है। चिरकालिक अवस्थामें स्थानीय औषधियोंका उपयोग करना जरूरी है, इसमें माताके दूध और बकरेके पित्तको इस्तेमाल करनेको कहा है। इसके सिवा तांबे, लोहे और सीसेके भस्मोंको भी इस्तेमाल करना उन्होंने बताया है।

पोथकी याने कुकुरोंकी हिपोक्रिटीज प्रणीत शस्त्रक्रियाको **आफथालमोक्लीसिस** कहा है। इसमें **तकली**के सिरेको ऊन लपेटकर उससे उलटाये हुए नेत्रच्छदकी पोथकीको पहले खूब खून बहजाने तक खुरचने और फिर खुरचे हुए भागको अच्छे कपडेसे पोंछकर ऊपर ताम्रभस्म जैसी दाहक दवाएं लगानेको कहा है।

हिपोक्रिटीजका वैद्यक शास्त्र संबधका कार्य तीन प्रकार था.—(१) उन्होने दई देवता पूजनेकी मजहबी नादान कल्पनाओके बदले शास्त्रसिद्ध वैद्यककी स्थापना की। (२) चिकित्सामेसे मंत्रतंत्र जादू आदि मार्गोको बाहर कर निकाल दिया। (३) यह प्रमाणित कर दिया, कि वैद्य निसर्गका शिक्षक नही, बल्कि उसका नौकर हैं, इसी वजहसे उन्होने शिक्षा दी, की वैद्यने चिकित्साका अतिरेक नही करना चाहिये।

हिपोक्रिटीजने वैद्यकशास्त्रको कुशलतासे इस्तेमाल करनेको बताया है। वैद्यकीय पेशेमे सूक्ष्म निरीक्षण करना जरूरी है ऐसी उनकी अनुज्ञा थी, और वैद्यकीय पेशेमे रोगीकी जो जो बाते उसको ज्ञान होगी, या प्रत्यक्ष दिखाई पडेगी उनको कभी किसीपर प्रकट न करनेकी सोगध लेनेका नियम उन्होने वैद्योके लिये कायम कर रखा था। माना जाता है, कि यह सोगध उन्होने आर्य वैद्यकमेसे ली थी। इन तीन बातोमे हिपोक्रिटीज कितना श्रेष्ठ था इसकी कल्पना होसकती है। प्लेटो और अरिस्टाटल हिपोक्रिटीजको बडे गौरव और अभिमानसे वैद्य श्रेष्ठ कहते हैं। हिपोक्रिटीजके ग्रथोका अरबी तर्जुमा ७५० से ८५० के दरमियानमे हुआ। अरबी वैद्यक ग्रथोमे हिपोक्रिटीजका उल्लेख इबुक्रज या बुकान इस नामसे किया है।

हिपोक्रिटीजके पश्चात् दूसरा ग्रीक पडित **स्टागिरागांव** निवासी **अरिस्टाटल** ये थे (ई. पू. ३८४ से ३३२) अरिस्टाटल खुद वैद्य नही था, तो भी अरबी और यूरोपियन वैद्यकशास्त्रको, उनके ग्रथोमें किये गये प्राणिशास्त्र सम्बन्धी मूल तत्त्वोके और तर्कशास्त्रके अचूक निरीक्षणमे बहुत फायदा मिला। उत्क्रांतिवादका बीजारोपण उन्होने किया यह बात तो स्पष्ट ही है।

अरिस्टाटलके ग्रथोका तर्जुमा असीरियन भाषामे सबसे पहले रास अलयायन गावके **सरजीयस** नामक पडितने किया। फिर आठवी और नवमी सदीमे **जोहानीटियस** ऊर्फ **हुनाईन–इब्न–इशहाक** और उनके सहकारियोने सीरियन ग्रथोका तर्जुमा अरबी भाषामे किया।

यद्यपि **अरिस्टाटलने** नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रपर स्वतत्र ग्रथ नही लिखे है तो भी उनके विविध और बहुतसे लेखोमे नेत्रसबधी उल्लेख मिलते है। उन उल्लेखोको इकट्ठा करनेसे उसके दो भाग होसकते है। पहिले भागमे मानवी नेत्रसबधी उल्लेख है जो तीन हिस्सोमे दिये जासकता है (१) नेत्रगोलकका शरीर (२) नेत्रेन्द्रिय विज्ञान जिसमे प्रकाश कल्पना अन्तर्भूत होती है और (३) नेत्रविकृति उसमे मग्यता वक्रीभवन रोग और वार्धक्यावस्थाकी दृक्सधान क्षीणता उनका समावेश होता है। दूसरे भागमे प्राणियोके नेत्रोके तुलनात्मक विचार सग्रहित है।

अरिस्टाटलके "प्राणियोंके इतिहास" के ८ वे भागमे **नेत्रगोलकके** शरीरसबधी इस तरहकी हकिकत मिलती है। मनुष्यके ललाटके नीचके भागमे दो भाग होती है। उनके नीचेकी ओरको दो नेत्र होते है। नेत्रके बाहर ऊपर और नीचे नेत्रच्छद होते है, जिनकी किनारपर बाल रहते है। नेत्रके भीतर एक आर्द्र भाग होता है, जिसको कनीनिका कहते है। और जिससे मनुष्यको दिखाई पडता है। कनीनिकाकी चारो ओर

तारका होती है; उसके इर्दगिर्द शुक्लपटल होता है। ऊपर और नीचेके नेत्रच्छद परस्पर बाहर और भीतरकी ओरको मिलते है, जिसको कोण कहते है। तारकाका और उसके विविध रंगोका तथा नव जात बालककी तारकाके कुछ नीलेसे रंगका भी वर्णन अरिस्टाटलने प्रारभमे किया है। नेत्र पानीसे भरा हुआ रहता है। और वह मस्तिष्कसे जुड़ा हुआ रहता है। शुक्लास्तर नेत्राश्रुव्यूह, अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण और पूर्ववेदमनी (anterior chamber) इनका उनके ग्रथमे वर्णन नही मिलता। इससे यह स्पष्ट होता है, कि उनको इनका ज्ञान नही था।

अरिस्टाटलका नेत्रेन्द्रिय विज्ञान:–अरिस्टाटलकी दृष्टि विषयकी और प्रकाश सबधी कल्पना बहुत प्रगतिपर थी। इसके पूर्ववर्ती **अल्कमेकान, अनाक्झागोरस और डिमाक्रिटस** की शिक्षा यह थी, कि पदार्थोमे लगातार रगीत प्रतिमाए एकसहा निकलकर उनकी छाप कनीनिकापर पड़नेमे आत्माको पदार्थोका ज्ञान होता है।

एम्पेडाक्लिस, डायोजिनस और प्लेटोकी शिक्षा यह थी, कि देखे हुए पदार्थोमे प्रकाशकिरणे निकलती है और नेत्रमेसे भी किरणे बाहर जाती है और इन दोनो प्रकारकी किरणोका, नेत्र और पदार्थके दरम्यानके अवकाशमे जिस जगहपर सयोग होता है, वहासे नई किरणोकी पैदाईश होती है। इन नई किरणोकी प्रतिमासे आत्माको उत्तेजन मिलता है, जिससे उसे पदार्थका ज्ञान होता है।

अरिस्टाटलने दृष्टिकार्य सबधकी अपनी सुव्यवस्थित और स्पष्ट कल्पनाका प्रसार किया था। यह कल्पना आधुनिकसी मालूम होती है। उनके मतसे सब ज्ञानेन्द्रियोमें ग्रहण शक्ति होती है। उनके सिद्धान्तका सारांश यह है कि, किसी भी पदार्थपर दृष्टि लगानेपर उस पदार्थमे एक प्रकारकी गति पैदा होती है, जिससे नेत्रेन्द्रिय उत्तेजित होते है। जब किसी पदार्थको हम देखते है तब हमको उसका सिर्फ रग ही दिखाई पडता है, लेकिन पदार्थ प्रत्यक्ष नही, परतु प्रकाश मार्गमेसे दिखाई पडता है। इस रगसे प्रकाशमें गति पैदा होकर उस गतिकी छाप नेत्रेन्द्रियपर पडती है, जिसकी वजहसे अपनेको पदार्थ दिखाई देता है।

यदि प्रकाश न हो, तो पदार्थका रग नही दिखाई पड़ेगा और फिर पदार्थ भी नही दिखेगा। प्रकाश कोई जड वस्तु नही है, या जड वस्तुद्रव नही या स्वयभू पदार्थ भी नही है। परन्तु देखे हुए पदार्थके रगकी गतिसे वह पैदा होता है। घ्राणेन्द्रिय या श्रवणेन्द्रियकी ग्रहणशक्तिमे जो क्रिया होती है, वही क्रिया नेत्रेन्द्रियमें भी होती है। गधयुक्त या निनादी पदार्थका सिर्फ स्पर्श उन इन्द्रियोको होनेमें कुछ असर नही होता। पहले पदार्थमे वायु मार्गमे गति उत्पन्न होती है। फिर मार्गकी छाप इन्द्रियोपर पड़नेसे गंध या नादका ज्ञान इन्द्रियोको होता है। यानी इस तरहकी प्रतिक्रिया इन्द्रियोमे होनेसे उनकी ग्रहणशक्तिका अस्तित्व मालूम होता है।

नेत्रविकृत शरीर:–अरिस्टाटलने नेत्रविकृत शरीरके सबधमे दो बातोका उल्लेख किया है: (१) वृद्धावस्थामे दिखाई देनेवाली दृक्सधान शक्तिकी क्षीणता और

(२) वक्रीभवन दोष । दृक्प्रधान शक्तिकी क्षीणता के बारेमें परस्परविरोधी दो कारण दिये है। (१) मनुष्यकी आयुमर्यादा जिस प्रमाणमे बढती जाती है, उसी प्रमाणमें शरीरकी आर्द्रता कम हो जाती है और इसके साथ नेत्रका द्रवांश भी कम होता है, जिसकी वजहसे प्रकाशकिरण नेत्रमें पहले जैसी प्रमाणमें नहीं घुसते। (२) वृद्ध मनुष्यमें नेत्रोंमें बाहर जानेवाले किरण नेत्रसे दूर जाकर केन्द्रीभूत होते है। इसी कारणसे वृद्ध लोगोंको नजदीकका पदार्थ स्पष्ट देखनेके लिये उसे दूर पकडनेकी आवश्यकता मालूम होती है। यह कल्पना उनकी दृष्टिकार्यकी कल्पनासे नहीं मिलती। लेकिन फिर भी वह दृक्शास्त्रसे मिलती जुलती है।

मालूम होता है कि ऱ्हस्व दृष्टित्व और दीर्घ दृष्टित्व इन दोनो वक्रीभवन दोषोंके फरकोंका अरिस्टाटलने पूरा विचार किया था। ऱ्हस्व दृष्टि विवेचनमें उन्होंने लिखा है, कि ऱ्हस्व दृष्टिमें मनुष्यके नेत्र बडे मालूम होते है; दूरका देखनेके समयमें नेत्रच्छदोंके आकुंचन करनेकी और लिखनेमें अक्षर बारीक लिखनेकी उनमे आदत पडजाती है। ऱ्हस्व दृष्टित्व सुधारनेके लिये अर्थात् दूरके पदार्थ, स्पष्ट दिखाई देनेके लिये लम्बी नलीमेंसे देखनेको उन्होंने कहा है।

प्राणियोंके नेत्रः—(तुलनात्मक विचार) : अरिस्टाटलने "प्राणियोंका इतिहास" नामका एक ग्रंथ लिखा है, जिसमें जगह जगहपर प्राणियोंके नेत्रोंके संबंधमें तुलनात्मक विवेचन किया है। उनके तुलनात्मक नेत्रविज्ञान और दृक्शास्त्रसंबंधी विवेचनसे यह स्पष्ट दिखाई पडता है, कि यद्यपि आधुनिक संशोधनमें उनके मत नहीं मिलते, तो भी प्राचीन कालमें तुलनात्मक प्राणिशास्त्र और दृक्शास्त्र इन विषयोंपर इतना उत्कृष्ट विवेचन किसीका भी नहीं है।

इस ग्रंथके दसवे अध्यायमें सब साधारण संज्ञाशक्तिके केन्द्रस्थानोंका विचार किया गया है जिसमें अन्य पंडितों की मस्तिष्क और उसमें मिलनेवाली संज्ञाओंके संबंधमें रही हुई कल्पनाओंसे विरोधी मत प्रकट किया है। उनमेंसे कई पंडितोंका मत यह था कि संज्ञाक्रियाके केन्द्र मस्तिष्कमें होते है, लेकिन उन्होंने इस संबंधमें कोईप्रमाण नहीं दिये है, प्राणियोंकी सब इन्द्रियोंमें मस्तिष्क यह एक विचित्र भाग है और इसी परसे उन्होंने मस्तिष्क और संज्ञाकेन्द्रोंका संबंध जोडा है ऐसा प्रतीत होता है। लेकिन अरिस्टाटलके मतानुसार सब केन्द्रोंका स्थान मस्तिष्कमें नहीं, हृदयमें होता है।

इस कल्पनाके स्पष्टीकरणके लिये उन्होंने चार प्रमाण दिये है—(१) प्राणिव्यवच्छेदन याने जिवित मनुष्योंकी चीरफाड (Vivisection) के समय गिरगट जैसे प्राणियोंका सिर काटा जाता है तब उनको कुछ वेदना नहीं होती और न उनको किसीभी तरहका डर ही लगता है (२) किफालोपोडा श्रेणीके प्राणियोंके अतिरिक्त अन्य निष्पृष्टवंशी—मेरुदंडहीन—सुषुम्नाशून्य प्राणियोंमें मस्तिष्कका अभाव होने पर भी उनमें संज्ञाशक्ति होती है; (३) मस्तिष्क रक्तहीन होता है और शरीरके सब रक्तहीन घटकोंमें संज्ञाका अभाव होता है; (४) मस्तिष्क और संज्ञाग्राहक इन्द्रियोंमें कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है ऐसा दिखाई देता है।

दृक्शक्तिके सबधमें इसी ग्रथमे लिखा है कि यदि दृक्शक्तिका अस्तित्व हो तो मुनासिब है कि वह मस्तिष्कके इर्दगिर्द के भागमे होगा और न कि मस्तिष्कमें क्योंकि मस्तिष्क द्रवरूप और शीतल होता है; और दृक्शक्ति भी पानीके जैसी द्रवरूप होती है। सब पारदर्शक पदार्थोमे पानी ही ऐसा पदार्थ है कि जिसका रोधन हो सकता है।

इन्द्रिय और इन्द्रियगोचरता :—इसके बारेमे अरिस्टाटलने एक जगह ऐसा मत प्रदर्शित किया है, कि दृक्शक्तिका कार्य नेत्रके पानीकी ही सिर्फ पारदर्शकतासे नही बल्कि उसके घटकभी पारदर्शक होनेके कारण यहकार्य होता है। यह पारदर्शकता पानीके जैसी ही हवामे भी होती है। लेकिन पानीमे हवाकी अपेक्षा स्थिती स्थापकता कम होती है और इसमे अवकाशमे पानीका रोधन हवाकी अपेक्षा अच्छी तरहसे हो सकता है। और इसी लिये नेत्र पानीका बना हुआ है। नेत्रको चोट लगनेमे उसमेंमे पानी बहता है यह इसका प्रमाण है।

ऊपर लिखे हुए वर्णनमे यह स्पष्ट होता है, कि उस कालमें शरीरके विविध द्रवोकी समतुलित अवस्थाका बिगडनाही व्याधियोका मूल है यह कल्पना जारी थी। और इसी कल्पनाका अमल आगे कई सदियोतक जारी था।

अरिस्टाटलने अपने प्राणिविषयक ग्रथके दूसरे भागके १३ वे अध्यायमें नेत्र विषयक तुलनात्मक विवेचन किया है। इस की कुछ महत्त्वकी बाते इसतरह है –

मनुष्य, पक्षी, जारज तथा अडज चतुष्पाद प्राणियोके नेत्रोका बचाव करनेके लिये नेत्रच्छदोकी योजनाकी गई है। जारज प्राणियोके दो नेत्रच्छद होते है। नेत्रको बद करने या खोलनेके समयमें दोनो नेत्रच्छदोंका उपयोग होता है। अडज या चतुष्पाद प्राणी और जो पक्षीगण आकाशमे ऊचे नही उडते इनमें नेत्र बद करनेके समय सिर्फ नीचेके नेत्रच्छदका उपयोग होता है। पक्षीगण नेत्रोंको मिचकानेके समय अपने तृतीय नेत्रच्छद (Membrane Nictitans) का उपयोग करते हैं। नेत्र **मिचकाने**की क्रिया अनैच्छिक होती है और इसीसे नेत्रके अन्दर जानेवाली शल्यसे बचाव होता है। यह क्रिया अन्य प्राणियोकी अपेक्षा मनुष्यमे ज्यादह दिखाई देती है। नेत्रच्छद सिर्फ चमडीके बने होते है। उनमे स्नायुओका अश भी नही है यह अरिस्टाटलका मत प्रचलित शोधके मुताबिक ठीक नही है। नेत्रकी शक्ति सतेज रहनेके लिये नेत्र द्रवमय होना है। नेत्रच्छदसे नेत्रका नैसर्गिक रूपसे रक्षण होता है। नेत्रकी बाहरी चमडी अगर सख्त होती तो प्राणियोको अच्छी तरहसे न दिखाई देता।

अडज चतुष्पाद प्राणियोके सिरपर पपडिया होती है और जो पक्षी आकाशमे ऊचे उडते है, उनके सिरपर मोटे पर होते है। इसी वजहसे इनके नेत्रोकी चमडी सख्त होती है, इनके नेत्रके ऊपरके नेत्रच्छदका बराबर विकास नही होता, इसलिये इनमें नेत्र बद करनेका कार्य नीचेके नेत्रच्छदसे ही होता है और नेत्र मिचलनेका कार्य तृतीय नेत्रच्छदसे होता है। अडज चतुष्पाद प्राणी हमेशा जमीनपर चलते है, इससे उनको नेत्र मिचलनेकी आवश्यक्ता नही होती। मछली, और मोटी चमडीवाले कर्क जातीय प्राणियोके नेत्रोमे कुछ फर्क पाये

जाते हैं; लेकिन इनमे नेत्रच्छदोका अभाव होता है. (यह कहना ठीक नही; क्योंकि शार्क मछली के नेत्रच्छद होते है)। जिन प्राणियोमे नेत्रच्छदोका अभाव होता है, उनके नेत्र कठिन होते हैं । इस कठिनताकी वजहसे उनकी दृक्शक्तिकी तीव्रता कम होती है। इसी व्यंगके कारणसे कीटक और कर्क जातिके प्राणियोमे नेत्र प्रत्यक्ष चारों ओर को घूम सकते हैं और अपने भक्ष्यको पकड़ सकते हैं ।

मछली और जिन प्राणियोंको अपने नेत्रका उपयोग बहुत दूरीसे करना आवश्यक होता है, उनके नेत्र ज्यादह द्रवरुप होते है । हवा ज्यादह पारदर्शक होनेसे दृष्टिको इतनी तकलीफ नही होती, लेकिन पानीसे जिसमेकि मछलिया रहती है उनको ज्यादह तकलीफ होती हैं । पानीमे अडचण न होनेसे हवाकी अपेक्षा उसमे चोट लगनेकी सभावना कम होती है । इसी कारणसे इन प्राणियोको परमेश्वरने नेत्रच्छद नही दिये हैं ।

जिन प्राणियोके शरीरपर बाल होते हैं, उनके नेत्रच्छदोकी किनारोपर पक्ष्मराजी दिखाई पड़ती है । लेकिन पक्षीयोमे और कर्क जातीय प्राणियोमे, जिनके शरीरपर पपडिया होती है, नेत्रच्छदपर पक्ष्मराजी नही होती । इस निरीक्षणके लिये लीबियन शुतुरमुर्ग अपवाद होता है, क्योंकि उसके नेत्रच्छदपर पक्ष्मराजी होती है ।

जिनके शरीरपर बाल होते है इन प्राणियोमेसे सिर्फ मनुष्यके दोनो नेत्रच्छदोपर पक्ष्मराजी होती है । बालोका कार्य रक्षण करनेका है । चतुष्पाद प्राणियोमे पीठपर मार लगनेका ज्यादह सभाव्य होता है इसलिये उनकी पीठपर पेट की अपेक्षा ज्यादह बाल होते हैं । मनुष्यमे इससे विपरीत अवस्था दिखाई पडती है यानी उनके सामनेके पेटके भागपर ज्यादह बाल होते हैं । मनुष्य खडा होकर चलता है, इस वजहसे उसके नेत्र सामनेकी ओरको होते हैं और उसके दोनो नेत्रच्छदोपर पक्ष्मराजी होती है । चतुष्पादोमे सिर्फ उपरके नेत्र-च्छदपर पक्ष्मराजी होती है । नेत्रच्छदकी पक्ष्मराजी जहा बारीक रक्तवाहिनियाँ समाप्त होजाती है, उस जगह होती है, और जहाँ चमडी खतम होजाती है वहीं रक्तवाहिनियाँ भी खतम होजाती हैं । जहा चमडी और रक्तवाहिनियाँ खतम होती है वहाका जलोत्सर्ग घन स्वरूप होता है । उसी जगहपर बालोंकी योजना की गयी है, ऐसा मालूम होता है । यह ध्यानमे रखना चाहिये कि अरिस्टाटलके समय रुधिराभिसरणकी कल्पनाका उद्गम नही हुआ था ।

अरिस्टाटलके तुलनात्मक नेत्रविज्ञानमे हालके सशोधनके अनुसार बहुतसी बाते गलत दिखाई देती है । तो भी इसमे कुछ सशय नही है कि इस पंडितका इस शास्त्रका सूक्ष्म और अचूक निरीक्षण और गहन विचार अवर्णनीय है । यह ख्यालमे रखना चाहिये कि इस शास्त्रको इन्होने ही सबसे पहलेमे मनन किया था । उनके समयमे मनुष्यके शरीरका शवच्छेदन करनेकी प्रथा न होनेके कारण उनके सब अनुमान अन्य प्राणियोका शवच्छेदन करके प्राप्त होनेवाले ज्ञानपर ही अवलम्बित थे । यह प्राचीन तत्ववेत्ता अन्य विषयोके साथ इस शास्त्रका भी आद्य जनक था इसमे कुछ सशय नहीं । ई पूर्व १४६ मे कारिन्थ शहरका नाश होनेके बाद ग्रीक वैद्यकका प्रसार रोममे हुआ । लेकिन वहा ग्रीक वैद्यकका विकास होनेके बदले उसकी प्रगति रुक गई । रोम शहरके सब वैद्य अलेक्झाडरिया और

उसके पूर्वके थे। हिपोक्रिटीज और ग्यालन इन दोनों पंडितोके बीचकी पाच सदियोके अवकाशमे अलेक्झाड्रियन वैद्यकमे सिर्फ शरीरशास्त्रकी प्रगति हुई थी।

(५)

रोमन नेत्रवैद्यक

रोममें अपने निजी मशहूर वैद्य और नेत्रवैद्य कोई नही हुए। क्योंकि वहा जो कुछ भी प्राचीन वैद्यक शास्त्र प्रचलित था वह असलमें ग्रीक वैद्यकही था। रोमका सबसे पहला मशहूर वैद्य या वास्तवमे ग्रीको-रोमन वैद्य **आरिलस कारनेलियस केलसस** नामसे ज्ञात था। इसके लिखे हुए वैद्यक ग्रंथका नाम **"दी मेडिसिना"** था। यह वैद्य रोमन वंशका था, और लैटिन भाषा अच्छीतरहसे जानता था सही, लेकिन इसका ग्रंथ पूर्णतया **ग्रीकप्रणालीका** ही था। केलससका जन्म ई पू. २५ मे रोम शहर मे हुआ और इसका मृत्यु ई. सन ५० मे हुआ। केलससने कृषिशास्त्र, इतिहास, साहित्यशास्त्र, न्यायशास्त्र, युद्धशास्त्र, वैद्यकशास्त्र आदि विषयोपर ग्रंथ लिखे थे। "दी मेडिसीना" ग्रथ ई. सन २९ मे प्रसिद्ध हुआ। 'दी मेडिसिना' ग्रथ के आठ खड हैं। पहले खडमें सर्व सामान्य आरोग्य शास्त्र है, जिसमें विशेषतया आहारादि विषयोका विवेचन किया गया हैं। द्वितीय और तृतीय खंडमें साधारण विकृत शारीर और औषधियोका वर्णन है। चतुर्थ खडमें स्थानिक रोगोका विवेचन, और पंचम खडमे औषधियोके गुणधर्म दिये गये है। छठे खंडमे नेत्र, कान, नासिका, मुख, गला, जननेन्द्रियविषयक और मूत्रविषयक रोगोका विवेचन किया गया है। सप्तम खडमे शल्य शास्त्र और अष्टम खडमे अस्थि विषयक रोगोका वर्णन दिया गया है। नेत्र रोगोका विवेचन छठे खडके छठे अध्यायमें और सप्तम खंडके सप्तम अध्याय मे दिया है।

छटे खडके छठे अध्यायमे नेत्ररोग सबधी औषधीय योजनाका विचार किया गया हैं। **हिपोक्रिटीज**ने नेत्ररोग की औषधिया, शिरावेध करना, औषधियोके प्राप्तिके स्थान, शोक और मद्यपान निषेध इत्यादि विषयोका जो उल्लेख किया है उन्ही उपायोका **केलसस** ने भी विचार किया हैं। इसके सिवाय मैथुन त्याग और बस्ति प्रयोग का भी उल्लेख किया है। आशुकारि या उग्र व्याधियोपर **तीव्र वेदनामय तात्कालिक** स्थानिक उपचारोका हिपोक्रिटीज उल्लेख नही करते लेकिन केलसस अंजनोका उपयोग लिखते हैं। इतनाही नही, बल्कि उसकी यह शिक्षा थी कि रोगकी अवस्था जितनी ज्यादह तीव्र होगी, उतनीही ज्यादह ठडक पहुचानेवाले अजन जैसी नेत्रौषधी की आवश्यकता होती है। इन औषधियोमें अंडेकी सफेदी और माके दूध की पट्टी का भी विचार किया गया है। उनकी नेत्र की औषधियां द्रवरूप नही थी।

चिरकालिक नेत्ररोगोंमें पोथकीका वर्णन किया गया है। पोथकीको खुरचनेके लिये अंजीर के पत्तके पिछले भाग का उपयोग करते थे (इसमे सुश्रुतके वर्णनमे बहुत समानता दिखाई पडती है यही इसकी विशेषता हैं।)

मोतीबिन्दु की, जिसे रोमन भाषामे सफ्युसिओ और ग्रीक भाषामे हायपोकायमों कहते है, औषधीय योजना जो केलाससने लिखी है, वह इस तरह है —नासिका या कानमेसे रक्त विमोचन, कनपटी की नीलाको दागना, कुल्लाकराना, उलटी करानेवाली दवाओका सेवन करके कफ को निकाल देना धुनी देना वगैरा । इससे कुछ फायदा न हो तो उसको शस्त्रक्रियासे निकाल डालनेकी भी योजना उसने बताई है ।

अर्म (अंग्रीस-रोमन टेरिजियम) इसके लिये जो शस्त्रक्रिया बताई है, वह सुश्रुत के जैसीही है अर्मको काटनेके बाद जखमपर शहदमे भिगाई हुई पट्टी रखकर नेत्रपर पट्टी बाधी जाय । दूसरे दिन पट्टी छोडकर और जखम धोकर फिर नेत्रको बाध रखे जाये । यह क्रम कुछ दिनोतक जारी रखनेको उन्होने कहा था ।

मोतीबिंदु:—मोती बिन्दुकी शस्त्रक्रियाका वर्णन करनेके पहले **केलसस**के नेत्रगोलकके शारीर सबधका वर्णन करना आवश्यक है । नेत्रगोलकके एक बाहरका और एक भीतर का ऐसे दो पटल होते है । बाह्य पटल को **किराटायडेन्स** कहते थे इसका पिछला भाग सफेद और मोटा होता है । भीतरी पटलको **कोरायडस** नाम दिया गया था । यह पटल बाह्य पटलसे चिपका रहता है । इस पटल के कनीनिका के सामने का भाग पतला और उन्नतोदर गोल होता है और शेष भाग मोटा होता है । ये दोनो पटल नेत्रगोलकके पिछले भाग मे पतले होकर परस्परसे चिपक जाते है । फिर खोपडीके अस्थिमय छिद्रमेसे अन्दरजाकर मस्तिष्कके आवरणसे मिल जाते है । इन पटलोके भीतर कनीनिकाकी पिछली ओरको जरासा खाली अवकाश होता है, जिसको उसने **लोकस व्हेक्युअम** नाम दिया था । इसके पीछे पतलासा आवरण होता है, जिसके मध्य भागमे **हायलायडस** नामका रगहीन काच सदृश बहुत पतला न सूखा न द्रवरूप इस तरहका पदार्थ होता है । **हायलायडस** के चारो और भीतरी पटलसे बना हुआ आवरण होता है । **हायलायडसके** सामने ओर आवरण के भीतरी एक छोटासा गोल बिन्दु होता है । जिसको ग्रीक भाषामें क्रिस्टलाईड यानी स्फटिकमणि कहते थे । [हिपोक्रिटीज के समय क्रिस्टलाईडका ज्ञान नही था । लेकिन इस नये ज्ञानके साथ लोकस व्हाक्युअम नामक गलत कल्पना का प्रसार हुआ] **केलसस** के मतानुसार लोकस व्हाक्युअममे ऊपरसे द्रव पदार्थ उतरता है, जिसके जम जानेसे मोतीबिंदु तैयार होता है । इस जमे हुए द्रव पदार्थसे दृष्टि रुक जाती है और इस पदार्थ को दूर हटानेसे दृष्टि पहले जैसी हो जाती थी, ऐसी उसकी मान्यता थी ।

केलससका पक्का मत था, कि नेत्रेन्द्रियका कार्य स्फटिकमणिमे होता है और शास्त्रक्रियासे सिर्फ लोकस व्हाक्युअममे जमे हुए पदार्थको चीरनेकाही कार्य होता है इस शास्त्रक्रिया का वर्णन सुश्रुतीयवर्णन से बराबर मिलता है ।

ग्यालनका ग्रथ प्रकाशित होनेतक प्राचीन ग्रथोमे **केलसस** का नेत्रविज्ञान ग्रंथही सर्वमान्य था और उसके समयमे हिपोक्रिटीज के समयसे ज्यादह प्रगति हुई थी यह निश्चित है । **केलसस**के पश्चात नेत्रवैद्यक के संबधमे लिखनेवाले मशहूर दो पडित हुए; जिनके नाम **प्लीनी** और एफीसस ग्रामवासी **रूफस** ये थे ।

प्लीनी:—केलससके समकालीन थे। इनके प्रसिद्ध ग्रंथका नाम 'नेचरल हिस्टरी' था इस ग्रंथमे, हालमें जो प्राचीन ग्रीको रोमन ज्ञान उपलब्ध है, उसका संग्रह मिलता है।

रूफस एफिसस:—बड़ा शरीर शास्त्रज्ञ था और अलेक्झांड्रामें **क्लाडीयस** और **नीरो** के समयमें (सन ४०-८०) शरीर शास्त्रका प्राध्यापक था। मानवी शरीर के भिन्न भिन्न भागोके नाम ग्रंथमें इसके एक लिखे थे। इसी ग्रंथमें लिखा है, कि दृष्टि रज्जुके मज्जातन्तु एक दूसरेको पार होकर एक्स (X) जैसा आकार बनाते है।

रोमके सब वैद्य साधारणतया ग्रीक थे। रोमन लोगोका ज्यादह तर झुकाव राजनीति राज्यव्यवहार और कानून की तरफ था। शास्त्र और कलाओ की तरफ उन लोगोका विशेष ध्यान नही था। रोमन वैद्योमें केलससही अकेला था और इसीका "**दी मेडिसिना** ग्रंथ हालमे उपलब्ध है। रोमन प्रजासत्ताके जमाने में कुछ ऊंचे दर्जेके लोग ही वैद्यक का धन्धा करते थे। **ज्यूलियस सीझरने** रोममे स्थायी तौरसे रहनेवाले वैद्योकोही नागरीकता के हक्क दिये तभी जाकर इस परिस्थितिमे सुधार हुआ। ग्यालनके समयमे कुछ गुलाम लोग भी वैद्यकका धधा करते थे। उस समय सिर्फ दवाओंको इस्तेमाल करनेवालोको **मेदिसी** और शस्त्रक्रिया करनेवालों को **चिररजी** और **व्हलनेरारी** कहते थे। उस समय सरकारी वैद्योको **आरकिआट्री पाप्युलारिस** कहते थे। ये लोग बडेबडे शहरोमें और जिन्होंके गावोमे धन्धा करते थे। हर शहरमे वैद्योके लिये संघ थे जिसका सभासदत्व बहुमत पर अवलम्बित था। **आरकिआट्रिओंको** गरीब लोगोंके लिये मुफत दवा देनी पड़ती थी और ये लोग वैद्यक और शस्त्रक्रियापर व्याख्यान देते थे। साधारण तथा सब वैद्य खुद दवाएँ तैयार करते थे ओर वे वैद्यक पत्रिका गैरिक यानी यूनानी भाषा मे लिखते थे! उस समय हर एक विषयके विशारद लोग थे। दृष्टि विशारदोकी सख्या ज्यादह थी लेकिन उनकेलिये कोई खास अभ्यासक्रम नही था।

(६)

ग्रीको–रोमन नेत्रवैद्यक

क्लाडियस ग्यालनने:—(सन १३१ से २१०) वैद्यक शास्त्रका अभ्यास अलेक्झान्ड्रियामे पूरा किया और फिर वह रोमको गया। वहाके कामोडस बादशाहका राजवैद्य ग्यालन ही था। ग्यालनने शरीरशास्त्रपर और वैद्यकशास्त्रपर अनेक ग्रंथ लिखे थे। ग्यालनके ग्रंथमे सिर्फ अलेक्झाड्रियन शरीरशास्त्रका विवेचन ही नही है, कहे तो कह सकते है कि बल्कि उसके ग्रंथ सारे ग्रीक वैद्यकके विश्वकोष ही थे। ग्यालनके ६० ग्रंथोका अरबी भाषामे तर्जुमा हुआ है।

ग्यालनने हिपोक्रिटीजके शरीरसबधी विविध रसोकी कल्पनाका विकास किया। इस्लामी एकेश्वरवादी लोगोने इस कल्पनाओंका स्वीकार किया और फिर इसका प्रसार यूरोपीयन पडितोमे हुआ। प्लेटो और अरिस्टाटलके विश्व रचना शास्त्र के अन्तर्गत इंद्रिय विज्ञान

शास्त्रकी कल्पना इस वक्त प्रचलित थी। सन १५४३ मे **विसेलियसका** शरीरशास्त्र सबधी ग्रथ प्रकाशित होनेतक ग्यालनका शरीरशास्त्रका ग्रथ ही आधारभूत माना जाता था। ग्यालनके पश्चात प्राचीन कालके प्रत्यक्ष शरीरशास्त्रका काल खतम होगया।

ग्यालनका नेत्रविज्ञान शास्त्र:—ग्यालन अपने समयका मशहूर वैद्य और दृष्टि-विशारद था और कल्पक शरीरशास्त्रज्ञ भी था। हालके सशोधनसे उसके शरीर शास्त्रमे जो कुछ गलत बाते दिखाई पडती है, उसका कारण यह है, कि उसके समयमे मनुष्यके शवच्छेदनकी प्रथा नही थी और मनुष्यके शारीरशास्त्रका ज्ञान अन्य प्राणियोके शवच्छेदनसे प्राप्त करना पड़ता था। (स्मरण रहे, कि **टालेमिक** पाठशालामे शवच्छेदन क्रिया शुरू होनेके सदियों पहलेही हिंदुस्थान और चीनमे मनुष्यका शवच्छेदन करके शरीरशास्त्रका अभ्यास करनेकी प्रथा थी।)

ग्यालनने नेत्रविज्ञान शास्त्रपर **आपटिकस** और **डायगनास्टिकस** ऐसे दो ग्रथ लिखे थे। यद्यपि ये दोनो ग्रथ अब नष्ट हो चुके है तो भी उनके अन्य लेखोंमेसे नेत्रसबधी **हकिकतें** एकत्रित करके उसका नेत्रविज्ञान शास्त्र तैयार करना सभव है। ग्यालनने शरीरस्नायुओंमे नेत्रगोलककी छ गतिदायक स्नायुओका तथा अश्रुपिड, अश्रुग्राही मुख (Puncta Lachrymalis) और अश्रुनाली आदिका वर्णन किया है नेत्रच्छदके बाहरकी चमडी भीतरी शुक्लास्तरसे बनती है! दोनो नेत्रच्छदोमे छदपट (Tarsal Plate) और मेदाश्रित तन्तुमय जालासा होता है। छदपटमे बाल बाहर निकलते है और मेदाश्रित तन्तुमय जालसे एक प्रकारके द्रव पदार्थ पैदा होनेसे नेत्रच्छद स्निग्ध रहते है।

नेत्रगोलकका बाह्य पटल सख्त और अपारदर्शक होता है। दृष्टिरज्जु जिस जगह नेत्रगोलकमे घुसती है, वही शुरू होती है। तारकाके किनारेके पास यानी जिस जगह सब द्रव और आवरण एक दूसरेसे मिलते है, वह भाग पतला और पारदर्शक होजाता है। इसके सामनेके भागको किराटायडीया याने (तारकापिधान Cornea) कहते है।

तारकापिधान भाग ज्यादह टेढा होता है। कनीनिका (Pupil) के पिछले भागमे क्रिस्टेलीनस यानी स्फटिकमणि होता है। स्फटिकमणि और तारकापिधान इन दोनो के बीचका अवकाश यानी पूर्ववेश्मनी (ant chamber) जल और वातसे भरी हुई होती है। शुक्ल पटल के भीतर मस्तिष्क के पायामिटर नाम के परदेसे बना हुआ और एक पटल होता है, जो रक्त वाहिनियोसे बनता है। इसको कृष्णपटल (Choroid) कहते है। यह पटल दृष्टि रज्जू और उसकी मध्य रोहिणी के साथ नेत्रगोलकके भीतर जाता है। कृष्ण पटल के सामनेके भागसे कुछ प्ररोहाए यानी तारकातीत पिंडीय प्ररोहाए (Ciliary Processes) सामने को जाती है और इनके सामनेका भाग पारदर्शक तारकापिधानमेसे दिखाई पडता है। कृष्णपटल के इस भागमे एक छिद्र होता है, जिसको कनीनिका कहते है। नेत्रमे घुसनेवाले प्रकाशसे स्फटिकमणि को यदि तकलीफ हो, तो उसको रोकना कनीनिकाका कार्य होता है। कनीनिका और कृष्णपटल इन दोनोके अवकाश मे अन्डेकी सफेदी जैसा एक द्रव पदार्थ होता है, जिससे नेत्रके कुछ भागोकी आर्द्रता कायम रहती है तथा तारकापिधान बाहरकी ओरसे तना रहता है। तारकापिधानमे छेद होजानेसे यह द्रव

पदार्थ बाहर बह जाता है जब तारकापिधान नरम हो जाता है और उसमें झुरीयां पड़ जाती हैं। कनीनिकामे मस्तिष्क का बात भरा रहता है। यह बात दृष्टिरज्जुके छिद्रोमेसे कनीनिकामें आतां है, जिससे कनीनिका खुली रहती है।

दृष्टिरज्जुएं (Optic Nerves) मस्तिष्क के बाह्य कोटर (Lateral Ventricles) में शुरू होकर मस्तिष्क के बाहर जानेके पहले एक दूसरेसे मिल जाती है। इस संयोग को दृष्टिरज्जू संधि या दृष्टिरज्जू योजिका (Optic Chiasma) कहते हैं। इन दृष्टिरज्जुओके तन्तु एक दूसरेसे नही मिलते, सिर्फ उनके अवकाशोका मिलन होता है। रज्जुओकी इस तरह संधि होनेकेबाद हर दृष्टिरज्यूके साथ एक **नीला और एक अन्तर्ग्रैवेयक रोहिणीकी** शाखा नेत्रगोलकमें घूसती है। साधारणतया मस्तिष्कके पायामेटर और डयुरामेटर आवरण मस्तिष्कसे शुरू होनेवाली सब मज्जारज्जुओके साथ उनका पोषण और रक्षण करनेके लिये जाते है। लेकिन दृष्टि रज्जुके आवरणकी रचनामे कुछ फ़र्क होता है। यह फ़र्क दो तरहका होता है (१) इस रज्जुका पोषण करनेवाले आवरणमे रक्तवाहिनियाँ (नीला और रोहिणी) ज्यादह प्रमाणमे होती हैं। क्योंकि स्फटिकमणि Lens और स्फटिक द्रवपिंडमे (Vitreous body) इनका अभाव होनेसे रज्जुकी रक्त वाहिनियोके लिये इन दोनों घटकोका पोषण करना आवश्यक हो जाता है। इन रक्तवाहिनियोसे पहले स्फटिकद्रवपिंडका पोषण होता है और फिर स्फटिकद्रवपिडसे स्फटिकमणि का पोषण होता है। (२) दृष्टिरज्जू नेत्रगोलकमे घूसतेही ये आवरण उससे और परस्परसे अलग हो जाते हैं लेकिन उनका पारस्परीक सबंध प्ररोहामे (Trabeculae) जुड़ा रहता है। इन प्ररोहाओमेसे रक्तवाहिनियां आवरण मे जाती है।

ग्यालनका नेत्रगोलकका शारीर और विविध द्रव कल्पना

दृष्टिरज्जुका नेत्रगोलकके भीतर सुदर जालीदार पटल (दृष्टिपटल Retina) बनता है, जो नेत्रगोलकके भीतरी पृष्ठ और स्फटिकमणिके विषुववृत्तके चारो ओर चिपका रहता है। इस जालीदार पटलसे नेत्रगोलकके अदरके द्रव घटक अपनी अपनी जगहपर स्थिर रहते हैं सही, लेकिन इस पटलका मुख्य कार्य स्फटिकमणिपर गिरी हुई प्रकाश किरणोसे होनेवाले फ़रकोका ज्ञान मस्तिष्कसे कोटरोको (Ventricles) पहुँचाना होता है।

दृष्टिपटलके बाहरकी ओरको पायामेटरसे बना हुआ शिराजालका आवरण होता है। उसके बाहर मस्तिष्कके अरक्नाईड आवरणसे बना हुआ कृष्णपटल (Choroid) होता है। उसके बाहर शुक्लपटल, शुक्लपटलके बाहर नेत्रगोलककी स्नायुओकी कडराओसे बना हुआ आवरण है और उसके भी बाहरकी ओर अस्थाश्रित पटल (Periosteum) होता है। शुक्ल कृष्ण संधिके पास कुल सात संधियाँ होती है। जो इस प्रकार है:—

(१) दृष्टिपटल और स्फटिक द्रव पिडकी संधि, (२) दृष्टिपटल और स्फटिकमणिकी संधि, (३) दृष्टिपटल और शिराजालकी संधि, (४) शिराजाल और कृष्णपटलकी संधि, (५) कृष्ण-पटल और शुक्लपटलकी संधि, (६) शुक्लपटल और स्नायुजन्य कंडरावरणकी संधि और (७) कंडरावरण तथा अस्थाश्रित पटलकी संधि। इनके पास नेत्रगोलकके द्रव पदार्थ मिलते है, यह बात पहले कही गई है।

नेत्रगोलकके भीतर बिलकुल पिछली ओरको चिकना और कांच जैसा चमकदार स्फटिकद्रव जैसा पदार्थ होता है, जिसको स्फटिकद्रव पिंड कहते है। इस स्फटिकद्रव पिंडके सामनेके पृष्ठमें एक गढा होता है, जिसमें पारदर्शक स्फटिकमणि रहता। स्फटिकमणिके सामनेके पृष्ठपर मकडीके जाले जैसा नाजुक लेकिन मजबूत और पारदर्शक आवरण होता है। स्फटिकमणि दृष्टिके जाळीदार पटलसे बंधा रहता है। जान पडता है कि ग्यालनको (Suspensary Ligament) **झिनके** लटकानेवाले **बन्धका ज्ञान** नही था।

अश्रुजनकेन्द्रियोपकरणं:—(Lachrymal Appratus) के ऊपरी और नीचेके ऐसे दो अश्रुपिड होते हैं। दोनोंसे नेत्रगोलकपर सतत अश्रुप्रवाह होता रहता है। अश्रुप्रवाह कुछ भाग नेत्रच्छदके नासिका ओर छोडके पास जो अश्रुनाली (Lachrymal Canal) होती है, उसमे होता है। यदि अश्रुप्रवाह ज्यादह हो, तो वह इसी नालीके मार्गसे नासिकामें बह जाता है। अश्रुकासार (Lachrymal Lake) में स्तनाग्रके जैसा दिखाई देनेवाले एक मांसपिंड होता है, (Caruncle Lachrymalis) जिससे इस प्रवाहको नासिकामें जानेमें मदद होती है।

नेत्रोंको ऊपर, नीचे, दाहिने और बाये ओरको घुमानेके लिये एकएक सरल चालनी स्नायु नेत्रगोलकमे लगी रहती है। इनकी वजहसे नेत्रगोलक चारो ओर घूमता है। और नेत्रोको चारों आस्का दिखाई पडता है। नेत्रगोलक तिरछा घूम सके इसलिये एक ऊपरकी और एक नीचेकी ऐसी दो वक्रचालनी स्नायुएं उसमे होती है। ऐसी नेत्रगोलककी सरल या वक्र चालनी स्नायुएं कुल छ होती है। नेत्रगोलक को पीछेकी ओर खीचनेके लिये सभी सरल चाल्नी स्नायूओके चारों ओर एक और स्नायु होती है। जिसके आकुचनसे यह क्रिया होती है (यह स्नायु मनुष्योमें नही पाई जाती, लेकिन घास चरनेवाले जानवरोंमे पाई जाती है। ग्यालनके लिखे हुए नेत्रगोलकके शरीर का विचार करनेसे यह स्पष्ट होता है, कि दूसरी सदीमे उसकी खूब प्रगति हुई थी। इसके बाद १६ सदी तक **फ्रीसो** और **मैत्रजानके** समयतक निश्चित है कि इससे अच्छा शरीरशास्त्र निर्माण नही हुआ।

शरीरकी विविधद्रव कल्पना:—(Humoral Theory) ग्यालनके इन्द्रियविज्ञान शास्त्रमे **हिपोक्रिटीज** की अपेक्षा ज्यादह प्रगति नही हुई थी। **हिपोक्रिटीज** के समान ग्यालन की भी यही कल्पना थी, कि हरएक जडवस्तु **पृथ्वी, वायु, अग्नि** और **जल** इन-चार महातत्त्वोकी बनी हुई होती है। इन चारो तत्त्वोमें मुख्य **प्राथमिक** गुण अनुक्रमसे शुष्कता (सूखापन) शीतलता या ठंडापन, उष्णता, और आर्द्रता होती है। इन जडवस्तुओके चारोगुणोसे मनुष्यके शरीरमे चार द्रव होते है। (१) श्लेष्मा, (mucus) यह द्रव आर्द्र और ठडा होता है और इसकी उत्पत्ति मस्तिष्कमें होती है। (२) रक्त (Blood) आर्द्र और उष्ण होता है और इसका उत्पत्तिस्थान यकृत है। (३) पीतपीत्त (Yellow Bile) सूखा और ऊष्ण होता है, इसका उत्पत्तिस्थान यकृत है। (४) काळापित्त (Black Bile) सूखा और ठडा होता है इसकी उत्पत्ति प्लीहामें होती है।

असली चार गुणोंके भिन्न भिन्न **परिमाणमें** मिश्रण होनेसे दूसरे गुण बनते है और फिर वे इन्द्रियगोचर होते हैं। शरीरका हरएक असली द्रव इन चार गुणोंके भिन्न भिन्न परिमाणोंमें

होनेवाले मिश्रणसे बना हुआ होता है। इसलिये वे इन्द्रियगोचर नही होते। यही शरीरकी विविधद्रव कल्पना (यानी ह्युमरल थिअरी) है। जबतक ये चारो द्रव समावस्थामे रहते है, तबतक शरीर स्वास्थ्य रहता है।

रुधिराभिसरण-रक्त परिभ्रमण—ग्यालनकी रक्तपरिभ्रमण की कल्पना उनके श्वास-प्रश्वास क्रियाकी कल्पनाके अनुसार थी। रक्त-परिभ्रमण का असली काम श्वास प्रश्वास के साथ हृदयमे लिये हुए प्राणवायु प्राणपदवायु-न्यूमाको सारे शरीरमे पहुँचाना यह था। फुफ्फुम से प्राणपद वायु हृदयके बाँये भागमे जाता है। वहासे रोहिणियोंके साथ शरीरके सब भागोको पहुँचता है। वैसाही आमाशयमे पहुँचा हुआ अन्न पचन क्रियासे तयार होनेके बाद यकृतमे जाता है, वहा उसका रक्त बनके हृदयमे जाता है। फिर फुफ्फुसकी रक्तवाहिनियोसे फुफ्फुममे जाकर वहासे शरीरके सब भागोको जाता है।

ग्यालनका दृक्शास्त्र:—ग्यालनने अपने नेत्रगोलकके शरीरशास्त्रमे लिखा है कि दृष्टिरज्जु और अन्य सज्ञावाहक मज्जारज्जुओमे दो तरहके फर्क पाये जाते है। हरएक सज्ञावाहक मज्जारजु मस्तिष्कमे से बाहर निकलनेके बाद बीचमे एक दुसरीसे सयोग न करते हुए सीधी अपने नियोजित भागको जाती है। लेकिन दृष्टिरज्जु मे यह विशेष फर्क है कि दोनों दृष्टि रज्जुएँ मस्तिष्क के कोटरके बाहर निकलनेके बाद कुछ अन्तर तक अलग अलग जाती है फिर खोपडीमे एक दुसरीसे मिल जाती है, फिर खोपडीके बाहर आनेपर अपनी अपनी ओरके नेत्रगोलको मे जाती है। दृष्टिरज्जु और अन्य सज्ञावाहक मज्जारज्जुओमे दूसरा फरक यह होता है कि, दृष्टिरज्जुमे मास्तिष्क बात या न्यूमा बहनेके लिये एक नाली होती है और जब ये दोनो रज्जुएँ खोपडीमे एक दूसरीसे मिलती है तब उनकी नालीका सयोग हो जाता है।

उनका मत था, कि जब हम अपने एक नेत्रको बद करके दूसरे नेत्रसे सामने की ओर एक चक्र को देखते है, उस समय अपनी कनीनिकामे सामनेके चक्रके केन्द्र की ओरको जानेवाली रेषा हमेशा सीधी होती है, और चक्रके परिघि की ओरको जानेवाली रेषाएँ भी सीधी होती है। कनीनिकासे चक्रकी केन्द्रको जानेवाली रेषामे उसकी परिघि को जोडनेवाली सीधी रेषाओसे शकाकृति बनती है। इस शकुका अग्र कनीनिका के पास और उसकी तल चक्रके पास होती है। शकुका पृष्टभाग समतल होता है, क्योंकि कनीनिका से चक्र की परिघिको जानेवाली रेषाएँ सीधी होती है।

कनीनिका और सामनेके चक्रके केन्द्र को जोडनेवाली रेषापर यानी दृग्रेषापर यदि कोई छोटासा पदार्थ आजाय, तो चक्रका केन्द्र नहीं दिखाई देगा, पदार्थको हटानेसे केन्द्र फिरसे दिखाई पडेगा। इससे यह समझमे आजायगा, कि सामनेका पदार्थ स्पष्ट दिखाई पड़नेके लिये दृग्रेषापर किसीभी तरह की रुकावट नही होनी चाहिये। परिघिको जानेवाली रेषाओसे परिघिका भाग दिखाई पडता है। और इस परसे सब गणित शास्त्रज्ञ लोगोंने ऐसा सिद्धांत बनाय- है कि दृष्टिकार्य सीधी रेषामे होता है।

दृष्टिकार्यके संबधमे ग्यालनने और तीन नियम दिये है; उनको भी ध्यानमे रखना आवश्यक है। (१) जब हम किसि पदार्थपर नज़र डालते है, तब हमको उस पदार्थके साथ उसके

इर्दगिर्दके पदार्थोंका भी कुछ भाग दिखाई पडता है । (२) जब हम कोई पदार्थ दोनो नेत्रोंसे देखते है तब, यदि दाहिने नेत्रको बद करके बांये नेत्रसे पदार्थको देखने लगे, और यदि वह पदार्थ ज्यादह नजदीक हो तो ऐसा भासमान होगा, कि वह बाई ओरको यानी विरुद्ध दिशाको हट गया है । और यदि वह पदार्थ दूर हो, तो वह ज्यादह दाहिनी ओरको हटता हुआसा भासमान होता है । इसी तरह बाये नेत्रको बद करके दाहिने नेत्रसे देखे तो नजदीक का पदार्थ दाहिनी ओरको और दूरका पदार्थ बाई ओरको हटता हुआसा भासमान होगा । दोनो नेत्रोसे देखा हुआ पदार्थ बराबर बीचमे दिखाई देगा । यानी एकही पदार्थ तीन अलग अलग जगहमे दिखाई पडता है; दोनो नेत्रोमे देखाहुआ पदार्थ एक खास जगहमे दिखाई पडता है और प्रत्येक नेत्रमे देखा हुआ, अलग अलग जगह दिखाई पडता है । (३) एक नेत्रगोलक को अंगुली से उपर या नीचे की ओरको दबानेसे उस नेत्रकी कनीनिका ऊपर या नीचेकी ओरको जायेगी, और दोनो नेत्रोमे जो पदार्थ एकसा दिखाई पडताथा वह अब दो पदार्थो जैसा भासमान होगा । इसका कारण यह है, कि पहले दोनो नेत्रोकी दृग्रेषाएं एकही पृष्ठपर एकही जगहमे मिलती थी । लेकिन एक नेत्रको ऊपर या नीचे की ओरको दबानेसे दोनोकी दग्रेषा एक जगह नही मिलती बल्कि वे अलग अलग हो जाती है । ऊपर ढकेले हुए नेत्रकी दृग्रेषा ऊपर जायेगी और पदार्थ ऊपर दिखाई देगा । अर्थात कोई भी पदार्थ दोनो नेत्रोमे एकहीसा मालुम होने के लिये दोनोकी दृग्रेषाएं एक पृष्ठमे होना आवश्यक है । युक्लिडका यह सिद्धान्त है, की जब दो सीधी रेषाएं एक दूसरी को काटके पार जाती है, तब दोनो रेषाएं, तथा उनसे बने हुए कोण और त्रिकोण एकही पृष्ठमे रहते है ।

अपनी दोनो दृष्टिरज्जुएं और उनकी नालिया मस्तिष्कमे एक बिन्दुपर मिलती हैं । जो ऊपरके सिद्धान्त के अनुसार एकही पृष्ठमे होती है । दोनो दृष्टिरज्जुएं और उनकी नालीया जब नेत्रगोलक मे जाती है, तब उनके जाले बन जाते है । इन जालोका अग्रभाग स्फटिकमणिके परिधि भागके चारोओरको फैल जाता है । इससे यह स्पष्ट है, कि कनीनिका, दृष्टिरज्जुओका मूल और मस्तिष्कके सामनेकी ओरका बिन्दु (जहा दोनो दृष्टिरज्जुएं एक दूसरीसे मिलती है) ये तीनो एकही पृष्ठमे होते है । मस्तिष्कके सामनेसे दोनो दृष्टिरज्जुएं एकही पृष्ठमेसे आगे जाती है, और पूरा नेत्रेन्द्रियव्यूह एकपृष्ठमे होता है । अर्थात दोनो कनीनिकाये नीचे ऊपर नही होती, बल्कि एकही पृष्ठमे होती है और इसी कारणसे दोनो नेत्रोकी सज्ञावहा दृष्टिरज्जुओसे कोई पदार्थ द्विधा न दिखाई पडे इसलिये मस्तिष्कके सामनेसे एकही बिन्दुसे वे निकले ऐसी योजना की गई है ।

दोनो नेत्रोकी दृष्टिरज्जुएं मस्तिष्कके स्वतत्र भागोसे निकलती है । लेकिन आगे बढ कर पहले भीतरी ओरको घुमकर परस्परसे मिलती है और फिर अपने अपने नेत्रकी तरफ जाती है । यदि भीतरी ओरको न घुमकर परस्परसे मिले विना सीधी वे नेत्रको जाती तो उनकी दो रज्जुएं हो जाती । सिवाय इसके मस्तिष्क की रज्जुसेसे दोनो नेत्रोकी तरफ बहनेवाली सारी वातशक्ति, एक नालीपर चोट आनेसे, या एक नेत्र बद करनेसे या उसका नाश होनेसे दूसरे नेत्रमे जायेगी । स्याल्लनके मतानुसार उसको दुगुनी

यानशक्ति मिलनेसे दृक्शक्तिकी तीव्रताभी वढजाती है यह इस रचनाका दूसरा फायदा है। ईश्वरनिर्मित कुछ वस्तुओंके असली और गौण ऐसे दो कार्य होते है। दृष्टिरज्जु की नालीयोंके पारस्परीक मिलनेसे पदार्थ द्विधा दिखाई न पडे यह उसका असली कार्य है।

ग्यालनने नेत्रगोलकके शरीरज्ञान की प्रगति की थी। इतनाही नहीं, बल्कि नेत्र-गोलकके विकृत शरीर का संशोधन, और नेत्ररोगोंकी चिकित्सा ये दोनों भाग उसके पूर्ववर्ती किसीभी लेखकसे प्रगतिपर थे।

ग्यालनका नेत्ररोगका विकृत शरीर—(Pathology of the Eye) ग्यालनका यह मत था, कि अनेक प्रकारके नेत्रविभ्रम सिर्फ नेत्ररोगोंसे ही नहीं पैदा होते। लेकिन मस्तिष्ककी विकृत अवस्था, आमाशय की और अन्नमार्ग नलिकाके मुखकी विकृत अवस्था होने से भी दृष्टिविभ्रम होता है। इन विकृत अवस्थाओंसे पैदा होनेवाले दृष्टिविभ्रमका अपक्व मोतीयाबिन्दुसे होनेवाले दृष्टिविभ्रमसे अलग निदान करना आवश्यक है। मोतीया-बिन्दुसे होनेवाला दृष्टिविभ्रम एक ही नेत्रमें जबतक विकृत अवस्था रहती है तबतक होता है। इसके विपरित मस्तिष्ककी विकृत अवस्था, या आमाशय की विकृत अवस्थासे पैदा होनेवाले दृष्टिविभ्रम दोनों नेत्रोंमें होते है। मोतीयाबिन्दुकी वृद्धिके साथ कनीनिकामें अनेक रंग दिखाई पडते है। और तीसरी बात यह होती है, कि मोतीबिन्दुसे दृष्टिविभ्रम एकदम नष्ट नहीं हो जाता।

ग्यालनकी सर्व साधारण विकृत शरीर संबंधी की कल्पना उनकी शरीर की विविध द्रव कल्पनासे मिलती जुलती नहीं है। लेकिन खास इन्द्रियके विकृत शरीर संबंधी की उनकी कल्पना बहुत प्रगतीपर मालूम होती है। क्योंकि उन्होंने प्राणियोंका शवच्छेदन किया था। और भिन्न भिन्न प्रयोगोंके शवच्छेदनसे प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया था। ग्रैवेयिक पाचवी सुषुम्ना मज्जारज्जको काटनेसे ऊपरकी तथा नीचेकी स्पायनेटस स्नायुओंका स्तंभ होता है यह बात उनको ज्ञात थी।

ग्यालनने नेत्ररोगोंके तीन वर्ग किये है: (१) स्फटिकमणि की याने नेत्रेन्द्रियके असली भागकी विकृति (२) मस्तिष्क और दृष्टिरज्जु की याने दृक्शक्तिकी विकृति (दृक्शक्ति मस्तिष्कसे दृष्टिरज्जु द्वारा नेत्रमें जाती है) (३) स्फटिकमणि के सिवाय नेत्रके अन्य घटकोंकी विकृति।

(१) स्फटिकमणिकी विकृति आठ होती है (इनका वर्णन हिपोक्रिटीजके वर्णनसे मिलता है) स्फटिकमणि स्थानभ्रष्ट हो जाता है तब वह ऊपर या नीचेकी ओरको खिच जानेसे द्विधा दर्शन पैदा होता है। मोतीयाबिन्दुकी प्राथमिक अवस्थामें उसको भीतर ढकेल सकते है।

(२) मस्तिष्क और दृष्टिरज्जुकी विकृति भी आठ प्रकारकी होती है। और वे एक दूसरीसे अलग अलग होना संभाव्य है।

(३) कनीनिका, तथा कनीनिका, और स्फटिकमणि के बीचके अवकाश मे के वात और चाक्षुषजल की रचनामें फर्क होनेसे स्फटिकमणिको बाह्य पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता।

चाक्षुषजल पूरी तौरसे जमजाय तो (मोतीयाबिन्दु, हायपोक्लायमा, क्याटराक्ट) दृष्टि पूरी नष्ट हो जाती है। कनीनिकाका चाक्षुषजल पूरा न जमजाय तो दृष्टिमांद्य और ऱ्हस्व दृष्टित्व पैदा होता है। कनीनिकाके कुछ भागका चाक्षुषजल पूरी तरह न जमजानेसे रोगीको दृष्टिविभ्रम होता है और उसके नेत्रोंके सामने मच्छर निशान आदि जैसे आकार भासमान होते है। नेत्रगोलकके नैसर्गिक वातमें फरक होनेसे दृक्‌शक्तिमें फरक होता है। वात स्वच्छ हो लेकिन उसका परिणाम ज्यादह हो तो उसको सिर्फ दूरका स्पष्ट दिखाई पडता है। वात स्वच्छ हो लेकिन उसका प्रमाण कम हो तो रोगीको सिर्फ नजदीकही दिखाई पडता है। दूरका नही दिखाई पडता। वात ज्यादह हो लेकिन वात ज्यादह द्रवरूप हो तो रोगीको दूर दिखाई पडता है लेकिन अस्पष्ट मालूम होता है। यदि वह कम हो तथा ज्यादह द्रवरूप हो तो कुछ दिखाई नही पडता। इनके सिवाय नेत्रच्छदोंके पक्ष्म गिर जाना, नेत्रोंमें के शल्य, शुक्लास्तरका दाह, पोथकी, अर्म, तारकापिधानके क्षत, आदिरोग और उनकी चिकित्सा आदि सबका वर्णन दूसरे भागमें दिया है।

ग्यालनकी कुछ नेत्ररोगोंकी चिकित्सा:—शुक्लास्तर (शुक्लपटलके आस्तर) के दाहके लिये दाहशामक सौम्य दवाओंका उपयोग करना। माके दूधकी पट्टी रखनेको कहा है। तास्वा, केशर, कथ्था और शहदका इस्तेमाल बताया है। तारकापिधानके क्षतके लिये जस्तके फूलका उपयोग लिखा है। इसकी चिकित्सामें ध्यानमें रखनेकी असली बात यह है कि क्षत को सफा रखना चाहिये जिससे नष्ट हुआ भाग आपोआप भर जाय। अर्म शल्य जैसा होता है इसलिये उसको निकाल डाले। नेत्रच्छदको उलटकर पोथकीको खुरचना।

ग्यालनका नेत्रविज्ञानशास्त्र कितनाही सदोष क्यो न हो, और ग्यालन हिपोक्रिटीज जैसा कल्पक नही था तो भी वह उमदा वैद्य था इसमें कुछ संशय नहीं। मध्ययुग कालतक उसको सबसे अच्छा वैद्य मानते थे यह निश्चित है।

(७)

बायज़ेनटाइन ग्रीक नेत्रवैद्यक

ग्यालनके मृत्युके बाद बायजेनटाईन ग्रीक वैद्यक का उदय हुआ। इस कालमें ग्रीक वैद्यक का रक्षण हुआ था। इस कालमें बायजेनटाईन ग्रीक वैद्यकमें मशहूर लेखक बहुत कम हुये थे। उनके लेख साधारणतया हिपोक्रिटीज और ग्यालन के ग्रंथो की नकल थी। यद्यपि उन्हो ने वैद्यक शास्त्रकी प्रगतिमें कुछ ज्यादह काम नहीं किया था तो भी उन्होंने ग्रीक वैद्यकको कायम रखा यह उनका महत्वपूर्ण कार्य था।

ग्यालनके पश्चात मशहूर तीन वैद्य हुए—**अॅन्टीलस, मार्सेलस एम्पीरिकस** और **आरबेसियस** ये उनके नाम थे।

ॲन्टीलस:—तीसरी सदीमें हुए और उनके ग्रंथ बहुत थे। अन्युरिजम की उनकी शस्त्रक्रिया मशहूर है। मोतीयाबिन्दुको बाहर निकालने की क्रियाकी शोध उन्होंने सबसे पहले लगायी ऐसा कोई कोई मानते है।

बातशक्ति मिलनेसे दृक्शक्तिकी तीव्रताभी बढजाती है यह इस रचनाका दूसरा फायदा है। ईश्वरनिर्मित कुछ वस्तुओंके असली और गौण ऐसे दो कार्य होते हैं। दृष्टिरज्जु की नालीयोंके पारस्परीक मिलनेसे पदार्थ द्विधा दिखाई न पडे यह उसका असली कार्य है।

ग्यालनने नेत्रगोलकके शरीरज्ञान की प्रगति की थी। इतनाही नहीं, बल्कि नेत्र-गोलकके विकृत शरीर का सशोधन, और नेत्ररोगोकी चिकित्सा ये दोनों भाग उसके पूर्ववर्ती किसिभी लेखकसे प्रगतिपर थे।

ग्यालनका नेत्ररोगका विकृत शरीर—(Pathology of the Eye) ग्यालनका यह मत था, कि अनेक प्रकारके नेत्रविभ्रम सिर्फ नेत्ररोगोंसे ही नहीं पैदा होते। लेकिन मस्तिष्ककी विकृत अवस्था, आमाशय की और अन्नमार्ग नलिकाके मुखकी विकृत अवस्था होने से भी दृष्टिविभ्रम होता है। उन विकृत अवस्थाओंसे पैदा होनेवाले दृष्टिविभ्रमका अपक्व मोतीयाबिन्दुसे होनेवाले दृष्टिविभ्रमसे अलग निदान करना आवश्यक है। मोतीया-बिन्दुसे होनेवाला दृष्टिविभ्रम एक ही नेत्रमे जबतक विकृत अवस्था रहती है तबतक होता है। उसके विपरित मस्तिष्ककी विकृत अवस्था, या आमाशय की विकृत अवस्थासे पैदा होनेवाले दृष्टिविभ्रम दोनों नेत्रोंमे होते है। मोतीयाबिन्दुकी वृद्धिके साथ कनीनिकामे अनेक रग दिखाई पडते है। और तीसरी बात यह होती है, कि मोतीबिन्दुमे दृष्टिविभ्रम एकदम नष्ट नहीं हो जाता।

ग्यालनकी सर्व साधारण विकृत शरीर सबधी की कल्पना उनकी शरीर की विविध द्रव कल्पनासे मिलती जुलती नहीं है। लेकिन खास इन्द्रियके विकृत शरीर सबधी की उनकी कल्पना बहुत प्रगतीपर मालुम होती है। क्योंकि उन्होंने प्राणियोंका शवच्छेदन किया था। और भिन्न भिन्न प्रयोगोंके शवच्छेदनसे प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया था। ग्रैवेयिक पाचवी सुषुम्ना मज्जारज्जको काटनेसे ऊपरकी तथा नीचेकी ग्यायनेटस स्नायुओंका स्तभ होता है यह बात उनको ज्ञात थी।

ग्यालनने नेत्ररोगोंके तीन वर्ग किये है: (१) स्फटिकमणि की याने नेत्रेन्द्रियके अगली भागकी विकृति (२) मस्तिष्क और दृष्टिरज्जु की याने दृक्शक्तिकी विकृति (दृक्शक्ति मस्तिष्कसे दृष्टिरज्जु द्वारा नेत्रमे जाती है) (३) स्फटिकमणि के सिवाय नेत्रके अन्य घटकोंकी विकृति।

(१) स्फटिकमणिकी विकृति आठ होती है (इनका वर्णन हिपोक्रिटीजके वर्णनमे मिलता है) स्फटिकमणि स्थानभ्रष्ट हो जाता है तब वह ऊपर या नीचेकी ओरको खिच जानेसे द्विधा दर्शन पैदा होता है। मोतीयाबिन्दुकी प्राथमिक अवस्थामे उसको भीतर ढकेल सकते है।

(२) मस्तिष्क और दृष्टिरज्जुकी विकृति भी आठ प्रकारकी होती है। और वे एक दूसरीसे अलग अलग होना सभाव्य है।

(३) कनीनिका, तथा कनीनिका, और स्फटिकमणि के बीचके अवकाश मे के बात और चाक्षुषजल की रचनामे फर्क होनेसे स्फटिकमणिको बाह्य पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता।

चाक्षुषजल पूरी तौरसे जमजाय तो (मोतीयाबिन्दु, हायपोक्लायमा, क्याटराक्ट) दृष्टि पूरी नष्ट हो जाती है। कनीनिकाका चाक्षुषजल पूरा न जमजाय तो दृष्टिमांद्य और ह्रस्व दृष्टित्व पैदा होता है। कनीनिकाके कुछ भागका चाक्षुषजल पूरी तरह न जमजानेसे रोगीको दृष्टिविभ्रम होता है और उसके नेत्रोंके सामने मच्छर निशान आदि जैसे आकार भासमान होते है। नेत्रगोलकके नैसर्गिक वातमें फरक होनेसे दृक्शक्तिमें फरक होता है। वात स्वच्छ हो लेकिन उसका परिणाम ज्यादह हो तो उसको सिर्फ दूरका स्पष्ट दिखाई पडता है। वात स्वच्छ हो लेकिन उसका प्रमाण कम हो तो रोगीको सिर्फ नजदीकही दिखाई पडता है। दूरका नही दिखाई पडता। वात ज्यादह हो लेकिन वात ज्यादह द्रवरूप हो तो रोगीको दूर दिखाई पडता है लेकिन अस्पष्ट मालूम होता है। यदि वह कम हो तथा ज्यादह द्रवरूप हो तो कुछ दिखाई नही पडता। इनके सिवाय नेत्रच्छदोंके पक्ष्म गिर जाना, नेत्रोंमें के शल्य, शुक्लान्तरका दाह, पोथकी, अर्म, तारकापिधानके क्षत, आदिरोग और उनकी चिकित्सा आदि सबका वर्णन दूसरे भागमें दिया है।

ग्यालनकी कुछ नेत्ररोगोंकी चिकित्सा:—शुक्लान्तर (शुक्लपटलके अन्तर) के दाहके लिये दाहशामक सौम्य दवाओंका उपयोग करना। माके दूधकी पट्टी रखनेको कहा है। तांबा, केशर, कत्था और शहदका उरसेमाल बनाया है। तारकापिधानके क्षतके लिये जस्तके फूलका उपयोग लिखा है। उसकी चिकित्सामें ध्यानमें रखनेकी असली बात यह है कि क्षत को सफा रखना चाहिये जिससे नष्ट हुआ भाग आपोआप भर जाय। अर्म शल्य जैसा होता है इसलिये उसको निकाल डाले। नेत्रच्छदका उलटना। पोथकीको खुरचना।

ग्यालनका नेत्रविज्ञानशास्त्र कितनाही सदोष क्यों न हो, और ग्यालन हिपोक्रिटीज जैसा कल्पक नही था तो भी वह उमदा वैद्य था इसमें कुछ संशय नहीं। मध्ययुग कालतक उसको सबसे अच्छा वैद्य मानते थे यह निश्चित है।

(७)

बायजे़नटाईन ग्रीक नेत्रवैद्यक

ग्यालनके मृत्युके बाद बायजेनटाईन ग्रीक वैद्यक का उदय हुआ। इस कालमें ग्रीक वैद्यक का रक्षण हुआ था। इस कालमें बायजेनटाईन ग्रीक वैद्यकमें मशहूर लेखक बहुत कम हुये थे। उनके लेख साधारणतया हिपोक्रिटीज और ग्यालन के ग्रंथों की नकल थीं। यद्यपि उन्हों ने वैद्यक शास्त्रकी प्रगतिमें कुछ ज्यादह काम नहीं किया था तो भी उन्होंने ग्रीक वैद्यकको कायम रखा यह उनका महत्वपूर्ण कार्य था।

ग्यालनके पश्चात मशहूर तीन वैद्य हुए —**अँन्टीलस, मारसेलस एस्पासिकस** और **आरबेसियस** ये उनके नाम थे।

अँन्टीलस:—तीसरी सदीमें हुए और उनके ग्रंथ बहुत थे। अँन्यूरिझम की उनकी शस्त्रक्रिया मशहूर है। मोतीयाबिन्दुको बाहर निकालने की क्रियाकी शोध उन्होंने सबसे पहले लगायी ऐसा कोई कोई मानते है।

मारसेलस एम्पीरिकस का जन्म इ. स. ३४५ में गाल देशमें हुआ था। ये हिपोक्रिटिजके अनुयायी और मंत्रतंत्र सांप्रदायके भी अनुयायी थे। इ. स. ४१० में उन्होंने **डी मेडिक्यामेन्टीस** नामका वैद्यक ग्रंथ गरीब लोगोंके उपयोगके लिये लिखाया। इस ग्रंथके आठवें अध्यायमें नेत्र वैद्यकके उपयोगमें आजाय ऐसी बहुतसी हकिकतें दी हैं।

आरबेसियसः—(ई. स. ३२६–४०३) प्राचीन लेखकोंमें ये आखरी मशहूर लेखक थे। ये बायजेनटाईन ग्रीक थे। ये ज्युलीयन शाहके राजवैद्य थे। उन्होंने हेलिओडोरस, अॅन्टीलस और आरकेजेनिस जैसे प्राचीन लेकिन अप्रसिद्ध लोगोंके ग्रंथोंका सारांशरूप प्रसिद्ध किया था। उन्होंने हिपोक्रिटीज, ग्यालन, डायोस्कोरिडस और अलेकझान्ड्रिया के शरीरशास्त्रके मशहूर हिरोफिलस और इऱ्यासिस्ट्रेटस ऐसे दो अध्यापकों के ग्रंथों की नकलें प्रसिद्ध की थीं। उनके ग्रंथमें एक विशेष बात यह है कि उन्होंने लालापिंड का वर्णन दिया है जो ग्यालन ने नहीं दिया था। आरबेसियस प्राचीन वैद्यक और नेत्रवैद्यक के आखरीके लेखक थे।

केलसस, रुफस, ग्यालन, अॅन्टीलस और आरबेसियस उनके समयमें रोममें वैद्यक शास्त्रकी हालत किस तरहकी थी, इसका विचार करनेसे मालूम होता है कि हिपोक्रिटीज के ग्रीक वैद्यक जैसी रोमकी वैद्यक अंशतया बुद्धिप्रमाण और अंशतया धार्मिक अंध विश्वासोंसे भरा था।

खंड १

अध्याय २

मध्ययुग का नेत्रवैद्यक

मध्ययुगका आरंभ होनेके पहलेही यूरोपके जंगली लोगोंके हमलोंसे रोमन साम्राज्य के अनेक टुकडे हो गये थे। रोमन साम्राज्यका अंत सन ४७६ में हुआ, और उसके साथही साथ ग्रीको रोमन शास्त्रीय ज्ञानका भी ऱ्हास हुआ।

मध्ययुगके नेत्रवैद्यक के विकासका देशमानके अनुसार नीचे तीन भागोंमें विचार किया गया है:–(१) बायजेनटाईन या ग्रीको रोमन मध्ययुग सन ५०० से १६०० तक; (२) सारासिनिक या अरेबियन मध्ययुग सन ८५० से १३५० तक; (३) पाश्चात्य मध्ययुग १०५० से १५१९ तक।

(१)

मध्ययुगीन बायजेनटाईन नेत्रवैद्यक

बायजेनटाईन मध्ययुगमें तीन मशहूर नेत्रवैद्य हुए। इनके नाम हैं–अमिडा गांव निवासी **ऐटियस** ट्रालिसवासी **अलेकजान्डर,** और एजिनाके बासिंदे **पोल**। नेत्रवैद्यकके विकास में उन्होंने बहुत कुछ कार्य किया था और उनके कालमें रोमन साम्राज्य के पूर्व भागमें ग्रीक वैद्यक का संरक्षण हुआ।

मध्ययुगके पहले बायजेनटाईन वैद्य **ऐटियस आमिडेनस** नामक थे। उनका जन्म मेसापोटेमिया प्रान्तके आमिडा गांवमें सन ५०२ में हुआ था। उन्होंने वैद्यक शास्त्रकी तालीम अलेक्ज़ान्ड्रियन विद्यापीठमें ली थी। ये क्रिश्चियन धर्मी थे। अपने अन्तकालतक (इ. स. ५७५) वे बायजेनटाईन मुल्कमेंही रहते थे। उन्होंने वैद्यक शास्त्रपर १६ ग्रंथ लिखे थे। ये सब ग्रंथ आरकेजेनिसके और अन्य ग्रंथों के आधारपर लिखे थे लेकिन उनमें बहुतसी नई महत्त्वपूर्ण और स्वतंत्र रीतिसे लिखी हुई बातें थीं। फिर चंद सालों के बाद इन सोलह ग्रंथों के चार बडे भाग बनाये गये और हर भाग को **टेट्राबिबलान** कहते थे। इनके ग्रंथोंमें प्राचीन नेत्रवैद्यक की कल्पनाओंका संग्रह किया गया था और इसी कारणसे प्राचीन शास्त्रीय ज्ञान आजतक जीवित रहा है। इन ग्रंथोंमें मोतीबिन्दुकी शस्त्र-क्रियाके संबंधमें कुछ भी उल्लेख नहीं मिलते। लेकिन रोग संबंधी औषधोपचार का वर्णन मिलता है। इन ग्रंथोंमें ६१ नेत्ररोगों की औषधीयोंका सूक्ष्म वर्णन दिया गया है। तथा बालकका जनन होतेही होनेवाले अभिष्यन्द का भी उल्लेख है। और साथही साथ अन्तर्वलित नेत्रच्छदोंकी शस्त्रक्रियाके बारेमें लिखते हुए नेत्रच्छदकी चमडीको निकाल डालनेके साथही च्छदपट को भी काट देने को उन्होंने कहा है।

एटियसके नेत्रविज्ञान शास्त्रमे हर रोगपर पूरी तौरसे औषधीयोका वर्णन दिया है। उनका ग्रंथ ग्यालनके ग्रंथका पूरक ग्रंथ हो सकता है। ग्यालनका दृक्शास्त्र, शरीर, और इन्द्रियविज्ञान और एटीयस की चिकित्सा इन दोनो को मिलाके प्राचीन नेत्ररोगविज्ञान शास्त्र पूरा होता है, यह माननेमे कुछ हर्ज नही।

बायजेनटाईन मध्य युगके दूसरे ग्रीक वैद्य मशहूर **"अलेकज़ान्डर"** है (ई स ५२५–६०५) उनका जन्म लिबिया देशके ट्राल्स गावमे हुआ था। उनके पिता "स्टीफन" और भाई "डायासकुरस" ये दोनो भी मशहूर वैद्य थे। अलेकजान्डरने वैद्यक शास्त्रकी तालीम पहले अपने पितासे ली थी। फिर मशहूर हिन्दुस्थानी मुसाफिर **कासमास** के पिता के पास वैद्यक की तालीम ली। वैद्यक शास्त्रकी तालीम पूरी करनेके लिये उन्होने सायरस, स्पेन, गाल, इटली और ग्रीस आदि देशोकी मुसाफिरी की थी, और बादमे रोममे उन्होने अपना निवास-स्थान बनाया। उन्होने वैद्यकशास्त्रपर बारह किताबे लिखी थी। उनके नेत्ररोगके भागमे नेत्ररोगोकी भिन्न भिन्न औषधियोकी सिर्फ फेहरिश्ते है।

बायजेनटाईन मध्ययुगके तीसरे ग्रीक पडित एजिना निवासी **पोल** है (ई स ६१५–६९०) ग्रीक शास्त्रीय ग्रंथ सग्रह–कर्ताओमें यह पडित आखिरके सग्रह–कर्ता थे। उनका उदय इस्लामी लोगोके विजय कालमे हुआ था। ग्यालन, आरबेसियस और एटीयस के ग्रंथोकी बहुतसी बाते उन्होने अपने ग्रंथमे दी है। उनका एक ग्रंथ "सक्षिप्त वैद्यक" के नामका था। **न्हाजेस** नामके शास्त्रज्ञने अपने "किताब–उल–मल्किी" ग्रंथमे इस ग्रंथका बहुत उपयोग किया है। और **"अबुलकासिस"** उर्फ **अलबुकासिस**ने भी इस ग्रंथका अपने शल्यशास्त्रके ग्रंथमे काफी उपयोग किया है। "पोल" एक कुशल शालाकिन थे और उन्होने ब्राकोफोनीकी शल्यक्रिया की थी।

पोलके पश्चात् युरोपमे ग्रीक वैद्यककी अधिक तरक्की नही हो पाई। फिर भी अरबके शास्त्रज्ञ लोगोने उनका फैलाव किया। फारस, अरब और एशियामायनरके ज्यू लोगोका अलेक्ज़ान्ड्रियाके ग्रीक लोगोसे पुरातन कालसे सबध था। मेसापोटेमिया के एडेसा गांवमे नेस्टोरियन्स की पाठशाला थी। सन ४८९ मे नेस्टोरियन्स लोगोपर बहुत जुल्म होनेसे वे जुन्दिशापुरको भाग गये वहाके विद्यापीठमे उन लोगोने हेलेनियन–ग्रीशियन–विद्या व्यासग सुरू किया। नेस्टोरियन्स और ज्यू लोगोने ग्रीक वैद्यकका सीरियाकी भाषामे तर्जुमा किया। सन ५०९ मे प्रथम **जस्टिनियन** बादशाहने अथेन्स और अलेक्ज़ान्ड्रियासे ग्रीक मूर्ति पूजकोको निर्वासित किया, इससे ग्रीक वैद्यक और उनके तत्वज्ञानको पूर्वके फारस देशमे जानेका मौका मिला।

(२)

मध्ययुगीन अरबी नेत्रवैद्यक

ग्रीको-रोमन सस्कृतिके न्हासके पश्चात् ग्रीक ज्ञानका प्रवाह ग्रीस देशसे एशिया खडके सीरिया देशमें चला गया (ई पू ३४०)। वहाके अरबी पंडितोने ग्रीक तत्वज्ञानके साथ

वैद्यक शास्त्रका अरबीमें तर्जुमा करके रक्षण किया। इतिहासकी दृष्टिसे यह कार्य महत्व-पूर्णका था। यदि यह बात न होती, तो कुल ग्रीक शास्त्रीय ज्ञान नष्ट हो जाता और उसके साथ ही साथ वैद्यकशास्त्र भी नष्ट हो जाता। यूरोपकी अवस्था इस वक्त बहुत डावाडौलकी थी। इससे शास्त्रीय पंडित लोगोंकी जीविका चलना तक मुश्किल हो गया था। इसके विपरीत बगदादके खलीफा सब धर्मोंके शास्त्रीय पंडितोंका रक्षण करके उनको हरतरहकी मदद पहुचाते थे। और इसी वजहसे अरबी वैद्यक शास्त्रकी नींव रची गयी, इतनाही नहीं बल्कि उन्होंने उसमें स्वतंत्र रीतिसे प्रगति भी की।

अरबी वैद्यक शास्त्र यानी अरबी भाषामें लिखा हुआ वैद्यक शास्त्र यही समझना चाहिये। क्यों कि इसका मूल ग्रीक भाषामेंसे लिया था और उसमें हिन्दु, पारसिक और सीरियन वैद्यक शास्त्रोंके सिद्धांतोंका समावेश किया गया था, जिसका बहुतसा भाग असीरियन, ज्यू, पारसिक और यनानी पंडितोंनेही लिखा था। खुद अरबी या इस्लामी पंडितोंका लिखा हुआ, भाग इसमें बहुत ही कम था। पहले यूरोपके पंडितोंकी भाषा जिस तरह लैटिन थी, वैसी ही इस्लामके अमलमें इन पंडित लोगोंकी भाषा अरबी थी। इसी कारणसे उन्होंने ग्रीक ग्रंथोंका अरबीमें तर्जुमा किया। १३ वी सदीमें शास्त्र और कलाका यूरोपमें पुनरुज्जीवन शुरू होनेके समयतक ग्रीक ज्ञानका अरब कालोंमे रक्षण किया।

अरबी तत्वज्ञान और इस्लामी धर्म इन दोनोंकी बुनियादका समय लगभग एक ही है। यानी सन ६२२ में जब इस्लामी धर्मगुरु मक्केसे मदीनेको हिजरात कर गये तबसे इस्लामी धर्म शुरू होकर सन तेरहसौ तक बढता गया। उसके पश्चात् मुगल और तार्तार लोगोंके हमलेसे उसकी प्रगति सदाके लिये रुक गयी। इतनाही नहीं बल्कि इन हमलोंकी वजहसे बगदादके खलीफाओंके नष्ट होजानेसे एकतंत्री अरेबियन सल्तनतका नाश होगया। और उसीके साथ अरबका शास्त्रीय विकास भी रुक गया।

दमास्कसके ऊमायाद खलीफाओंके कालमें इस्लामी अमल स्पेन देशके पश्चिम किनारेसे पूर्व दिशाको समरकद तक फैला हुआ था। स्पेनमें गये हुए अरब साधारणतया दमास्कसके असीरियन थे। सन ७५० में ऊमायाद खलीफा **अबदुर रहमानको** दमास्कस छोडकर भाग जाना पडा। उसने सन ७५५ में स्पेन देशके अन्डालुसीया सूबेके **कारडोव्हाको** अपनी शाही राजधानी बनाया। यह शहर शास्त्रीय शिक्षणका असली केन्द्र हुआ।

इस्लामी धर्मके सुवर्णकालके प्रारंभमें अरबी लोगोंने वैद्यक शास्त्रकी तालीम लेनी शुरू की। ग्रीक ग्रंथोंका अरबीमें तर्जुमा किया। शवच्छेदन करना उनके धर्ममें सम्मत नहीं था। इस वजहसे उनको ग्यालनके शरीर शास्त्रके वर्णनपर ही अवलम्बित रहना पडता था।

ग्रीक ग्रंथोंका अरबी तर्जुमा करनेकी पहलेपहल स्फूर्ती खलीफा **मुआविया** के नवासेको यानी शाहजादा **खालीद** को हुई। ऐसा माना जाता है कि उसको किमियाका शोक था। इसलिये इजिप्त (मिसिर) देशके ग्रीक पंडितोंको एकत्रित करके उनके हिपोक्रिटीज, ग्यालन आदि ग्रीक और इजिपशियन हस्तलिखित ग्रंथोंका उसने अरबीमें तर्जुमा कराया।

विदिगटनने वैद्यक शास्त्रकी एक छोटीसी तवारीख प्रसिद्ध की है (इ. स. १८९८) उसमें अरब लोगोंके सबधमें लिखा है, कि सातवी सदीमें अरब लोगोंने स्पेन-देश तक यूरोप-

खड का भाग जीवनमें जितनी अधिक शारीरिक शक्ति दिखाई, उतनीही, आश्चर्यकारक बौद्धिक शक्ति भी बतलाई । इन फतेहमंद लेकिन बेरहम समझे जानेवाले लोगोने जिन राष्ट्रोंसे हस्तलिखित ग्रीक ग्रंथोको जमा करने और उनसे उन्हे मोल लेनेमे जो कमाल करदिखाया था उसे देखकर बायजेनटाईन बादशाहको बहुत अचभा हुआ । अनिच्छासे क्यो न हो लेकिन इन अरबी लेखको को पडित कहनेकी जरूरत कुस्तुन्तुनियाके इन तत्त्वज्ञानी पडितोको महसूस हुई । क्रिश्चियन लोगोंको भी इन सीरियन लोगोकी बुद्धिमानी के बारेमें आदर मालूम होने लगा । इन मुस्लीम लोगोने हिपोक्रिटीज और ग्यालन के खानदानकी ग्रीकज्ञान की बुझती ज्योत को पाचसौ वर्षतक लगातार प्रदीप्त कर रखा यह एक ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्त्व का कार्य है ।

ऊमायाद खलीफाओंके समयमें प्रत्यक्ष वैद्य शास्त्रकी और उसके साथ नेत्रविज्ञान शास्त्रकी प्रगति कितनी हुई यह कहना मुश्किल है । क्योकि इस समयमे (ई. स. ६६१–७५०) सिर्फ तीन या चार वैद्योंकेही नाम मिलते है । और ये भी अरब लोग नही थे, बल्कि इसाई थे । पहले ऊमायाद खलीफा **मूआवियाके** समयमें **इब्न उथाल** नामका वैद्य था । इसके पश्चात **अबूल हकम** और उनका लडका **ईसा** इन दोनोंका उल्लेख मिलता है । ये भी क्रिश्चियनही थे । ईसाने वैद्यक शास्त्रमें **कुन्नाश** नामका ग्रथ लिखा था इसका कुछ भी पता अब नही मिलता । अरबी तवारीखके लेखकोने थिओडोरस नामके ग्रीक वैद्यका उल्लेख किया है । यह **हज्जाज-इब्न-युसुफका** वैद्य था । उन्होंने तीन या चार ग्रंथ लिखे थे, लेकिन वे सब नष्ट हो गये । इस फेहरिस्तमे **जयना बी** नामकी बेडवीन जातिकी जनाना वैद्य का आखिरी नाम मिलता है । यह पाथकीपर इलाज करती थी ।

ऊमायाद खलीफाओंके पश्चात अब्बासिद खलीफाओका राज दमास्कसमें शुरू हुआ । इसका प्रथम खलीफा अबुल-अब्बास खलीफाका तख्त दमास्कससे बगदाद को ले गया । अबासिद खलीफा तालीम के चाहते थे, इसलिये ग्रीक, परशियन और अन्य शास्त्री पडित बगदादमे मिलने लगे । उनमेंसे पारस देशके **जुन्दीशापूरके** पडित लोगोका प्रभाव ज्यादह हुआ था । इन खलीफाओने अरबी लिपी का प्रसार किया । ग्रीक असीरियन, और भारतीय ग्रथोके अरबीमे तर्जुमे किये गये । बगदाद के तख्तके खलीफा **हरून-उल-रशीद** और उसके बाद के दस खलीफाओका काल (ई स. ७५०–८५०) अरबी तत्त्वज्ञानका और वैद्यकका सुवर्णकाल माना जाता है । इसी कालमें प्राचीन वैद्यक ग्रथोंका तर्जुमा हुआ । उसके पश्चातके मध्ययुगीन कालमें (सन ८५०–१३७५) फारसके शास्त्रज्ञ लोगोने उस कालके अनुमान स्वानुभवसे स्वतत्र ग्रथ रचना की ।

अरबी वैद्यकशास्त्रका उल्लेख करनेके पहले एक बातका जिक्र करना जरूरी है । वैद्यक शास्त्रका जिससे बिलकुल नजदीकका संबध है ऐसे रसायनशास्त्र औषधी गुणधर्मशास्त्र और गणितशास्त्र इन सब शाखाओमें अरब-सारासीन लोगोने बहुत प्रगति की थी । इसका उदाहरण यह है कि "केमिस्ट्री" यह शब्द इजिप्त देशका सूचक शब्द **किमा** अर्थात् इजिप्त देशकी काली जमीन इस शब्दसे प्रचारमे आया है । फिर भी इजिप्तमे अरबोके पूर्वकालमे

केमिस्ट्रीमे प्रगति बहुतही कम हुई थी। क्यों कि उनको विनिगर याने सिरकेकी अपेक्षा ज्यादह तीव्र अम्ल मालूमही नहीं था।

आठवी सदीके आखिरी कालमें गेबर नामके अरब शास्त्रज्ञने नत्राम्ल–उज्जहराम्ल इनका शोध किया। नत्राम्लमें थोडा नौसादर डालकर **अक्वा** रीजिया अम्लराज तैयार किया था। सोनेको पिघलानेकी क्रिया करनेवाली दुनियामें सबसे पहले यही व्यक्ति थी। रसायन शास्त्रकी छाननेकी क्रिया, द्रव पदार्थकी भाप करके फिर भापको द्रवरूप करना अर्थात् श्रवणक्रिया, अर्क निकालना, उष्णतामें धातुओंका भस्म बनाना या धातुओंको मारना, या घन पदार्थको एकदम बाष्परूप देना और फिरसे उस बाष्परूपको घन पदार्थका रूप देना उत्क्षेपण (सबलीमेशन) ये सब क्रियाये "गेबरने" शुरू की थी। नोसादर, सोडाकर्ब, फिटकडी, सोरानमक, हिराकस, मद्यार्क, रजतनत्रीन, मरक्युरी बायक्लोराईड ये सब पदार्थ "गेबरने" तैयार किये थे। उनकी रसायनिक सारी क्रियाओंका एक स्वतत्र ग्रंथ है। "गेबर" की बनाई हुई रासायनिक पदार्थोकी एक छोटीसी अरबी फेहरिस्त भी है। कुछ आधुनिक पंडितोंका अलबत्ता यह मत है, कि हिपोक्रिटीज्का ग्रथसग्रह जिसतरह सब उन्हींका बनाया नहीं है, बल्कि अन्य लोगोंके लिखे हुए भाग भी उन्हींके माने जाते है वैसेही अन्य अरबोंका कार्य "गेबर"के नामसे माना जाता है। अरब लोगोंने अलकरमेज, कपूर, क्याशिया (किरवाडा तरोटा आदि वनस्पतिया) जालाप, सोनामुखी, शक्कर, शरबत आदि पदार्थोंका यूरोपमें प्रसार किया।

जुन्दीशापूरकी पुरातन वैद्यक शालाका अरेबियन वैद्यकपर बहुतही असर हुआ था। हालमें इस वैद्यक शालाका सिर्फ नाम ही रहा है। इरान देशके अन्तर्गत खजीस्तान प्रान्तमें शाह आबाद नामका एक मौजा है यहीं पुरातन जुन्दीशापूर शहर था ऐसा विद्वान लोगोंका मत है। जुन्दीशापूर शहरको ससेरियन वंशके बादशाह पहले **शापूर**ने स्थापित किया था।

इस शहरमें बहुतसे निर्वासित ग्रीक लोग आकर रहने लगे। ई सनकी चोथी सदीमें यह शहर राजधानीका शहर हुआ। यहांके राजाने ग्रीक वैद्य थिओडोरसको बुला लिया। उनके ग्रथोंका फारसी भाषामें तर्जुमा हुआ था। जुन्दीशापूरकी वैद्यक शालाकी तरक्की इस्लामी धर्मसस्थापनके समयमें खूब जोरोंपर हुई। इसका कारण यह था, कि बायजेनटायके बादशहाने जिन नेस्टोरियनोंपर धार्मिक जुल्म किया था वे, और मेसापोटेमिया प्रान्तके एदेसा शहरमेंकी नेस्टोरियनकी शालापर भी धार्मिक जुल्म होनेसे वे भी सबके सब जुन्दीशापूरके इरानी बादशाहके आश्रयमें आये (ई स ४८९)। और वहांकी पाठशालामें उन्होने ग्रीक पद्धति शुरू की। और इसी स्थानमें अरेबियन वैद्यकका जन्म हुआ। पाचवी सदीमें **खुशरावशरवान** राजाने अपने राजवैद्य **बुरजूआको** हिन्दोस्थानमें वैद्यकीय ज्ञान प्राप्तीके लिये भेजा था। वह लौटते समय अपने साथ हिन्दू वैद्योको, और "कालिलाव दिमना" नामके ग्रंथ और **शतरंज** खेलको फारस देशमें ले आये।

इस्लामी धर्म सस्थापनके समयमें जुन्दीशापूरकी वैद्यक पाठशाला की बहुत बरक्कत थी। शहरमें युनानी और पौर्वात्य ज्ञान का केन्द्र निर्माण हुआ। ग्रीक और विशेषत असीरियन विद्वानोके प्रयत्नसे जुन्दीशापूरमे वैद्यक शास्त्रकी विशेष प्रसिद्धि हुई। हिपोक्रिटीज और

ग्यालन के ग्रंथोका असीरियन भाषामे तर्जुमा हुआ, और उनके अरबी तर्जुमे भी ८ वी और ९ वी सदीमे हुए। जुन्दीशापूरका वैद्यक शास्त्र ग्रीशियन था। तो भी औषधीय गुणधर्म शास्त्र फारसीही कायम रहा। फारस देशमे इस्लामी धर्म का असर होने के पूर्व वहा की मशहूर अकेमिनियन (क्रि. पू ५५०-३३०) और सेसेरियन सस्कृति (इ. स. २२६-६४०) के समय की स्थानिक विद्याओका नाश ग्रीक और अरेबियन लोगोके हमलेसे हुआ। इससे इन प्राचीन सस्कृतीकी पूरी तरह कल्पना नही की जा सकती। लेकिन जुन्दीशापूरकी वैद्यक पाठशालापर अरबी हमलोका कुछ असर नही हुआ। इ. सन ७६५ मे दूसरा अबासिद खलीफा **अल-मनसूर** बीमार था। उसको बगदादके हकीमोंमे फायदा न मिलनेसे उसने जुन्दीशापूरके रुग्णालय (बीमारस्थान) के मुख्य वैद्य **जुरजिस** को बगदादमे बुला लिया इतना उस समय जुन्दीशापूरका महत्त्व माना जाता था। फिर आठवी सदीके आखिरमे बगदाद इस्लामी धर्मकी राजधानी बनगया, इससे उसका, महत्त्व सब इस्लामीया राष्ट्रोमे बढा, और फिर उसके साथ जुन्दीशापूर का महत्त्व कम हो गया।

इजिप्तो-अरेबियन दृष्टि विशारदोमे सबसे पहला दृष्टिविशारद **हलभ-अट-तुलुनी** नामका था। यह पहले गुलाम था। लेकिन फिर यही मिश्र देशके मुसलमानोका मशहूर वैद्य और दृष्टिविशारद माना गया। नेत्रविज्ञान शास्त्रपर ग्रंथ लिखनेवाला यही प्रथम लेखक था। इसके ग्रंथका नाम था "नेत्रोंकी रचना, उनकी विकृति और चिकित्सा"। यह ग्रंथ उस कालमे बहुत प्रचलित था। इसकी रचनाका काल ९ वी सदीमे माना जाता है।

अरबी वैद्यक लेखकोंकी सख्या चारसो से ज्यादह होगी। उनमेसे जिन्होने नेत्रवैद्यकपर ग्रंथ लिखे है उनके कुछ मशहूर वैद्योका वर्णन सक्षेपमे यहा करनेका विचार है। पहले बगदाद के पूर्वीय खलीफतके वैद्योके बारेमे लिखकर फिर कारडोव्हा की पश्चिमी खलीफत के वैद्योंके बारेमे लिखेंगे।

पूर्वीय खलीफत के अव्वल वैद्यका नाम **युहन्ना-इब्न-मासावाय** (ई स ७७७-८५०) था। इनका लैटीन नाम **मेसू सीनियर** था। इनके ग्रथोंमे नेत्रविषयक दो ग्रंथ थे, जिनके नाम "दृष्टिविशारदोकी परिक्षा," और "नेत्रगोलकके फरक" इस प्रकारके थे। इन्होने एक बुखारपर और एक नाडी परीक्षापर ऐसे दो ग्रंथ और लिखे थे। इनका एक "सूत्ररूप" ग्रंथ था जिसका लैटीनमे तर्जुमा हुआ था। मनुष्यके शवच्छेदन की इस्लामिया धर्ममे मनाई थी। इसलिये शरीरशास्त्रका ज्ञान वे मनुष्य शरीर जैसे शरीर की रचनावाले बन्दर के शवच्छेदन से प्राप्त करते थे। ओर इसलिये युहन्ना-इब्न-मासावायने टायग्रीज नदीके किनारे पर शवच्छेदन के लिये स्वतत्र मकान बनाया था। उनको बन्दरोंकी प्राप्तिके लिये उस समयके **खलीफ-अल-मुतासिम** ने (इ. स. ८३६) खास इजाजत दे रखी थी।

इनके बाद **हुनायन-इब्न-इशाक** (ई स ८०९ से ८७२) हुए। इनका पूरा नाम **अबू-जैद इब्न-इशाक-एल-इबादी** था। इन्हीको **जोहानिटियस ओनान** ऊर्फ **हुमायनस** भी कहते थे। इनका जन्म ईराक देशमे अल्हिरा गावमे हुआ था। यह नेस्टोरियन थे और **मेसुसीनियरके** शिष्य थे। उन्होने ग्रीक ग्रथोका तर्जुमा किया और यही उनका असली काम था। उन्होंने एक स्वतत्र ग्रंथ भी लिखा था, जिसका नाम **इसागाग** था। इस

ग्रंथमें ग्यालनीय वैद्यक प्रकारोका विचार किया है। जिसमे प्राचीन वैद्यक कल्पनाओका जिक्र भी है। इस ग्रंथका लैटीन तर्जुमा १२ वी सदीमें टोलेडोके **मारकस**ने किया। **जोहानिटियसने पोल**के सात ग्रथोंका अरबीमे तर्जुमा किया था।

अलि–इब्न–राबन ९ वी सदीमे हुए। इनका जन्म कास्पियन समुद्रके दक्षिण भागमे फारस देशके ताबारिस्तान सूबेमें हुआ था। उनके मा-बाप सम्भवतः यहूदी होगे। उन्होने **खलीफ अल मुत्तवकिल** की नौकरी स्वीकार करनेके बाद इस्लामी धर्मको स्वीकार किया था। इन्होने अरबीमे वैद्यक ग्रंथ सन ८५० मे पूरा किया जिसका नाम **फिरदावसूल हिकमत** यानी '**ज्ञानका नंदनवन**' था। इसके सिवाय उन्होने और तीन ग्रंथ लिखे थे, ऐसा **फिरिस्ट** का कहना है।

'ज्ञानका नदनवन' ग्रथमे वैद्यकके सिवाय **तत्त्वज्ञान, ऋतुमानशास्त्र, प्राणिशास्त्र, पिंडवृद्धिशास्त्र, मानसशास्त्र** और **खगोलविज्ञान** इन विषयोपर विचार किया है। इस ग्रथकी रचना **हिपोक्रिटीज, अरिस्टाटल, ग्यालन, युहान्नाइब-मासावाय** और **जोहानिटियस** के ग्रंथोसे कीगई है, ऐसा खुद्द उनका कहना है। ईस ग्रथके सात खड है और जिसके तीस विभाग किये गये है। इस ग्रथके कुल ३६० अध्याय है। चौथे खडके १२ विभाग है जिसमे तीसरे विभागके १२ वे अध्यायमे नेत्र और नेत्रच्छदोके रोग तथा कान, नासिका, गला, दात और चेहरा इनके रोगोका वर्णन दिया गया है। इस ग्रंथके सप्तम खंडके आखिरके तीस अध्यायामे आर्य वैद्यकका भी वर्णन है।

इस ग्रंथमे एक जगह **मुताखरीज** शब्दका इस्तेमाल किया गया है, उसका परिभाषिक अर्थ विश्वविद्यालयसे बाहर आये हुए पदवीधर इस तरहका होता है। इससे ऐसा मालूम होता है कि धदा शुरू करनेमे पहले उस समय कुछ परीक्षा देना आवश्यक थी। ८० सालके बाद सन ९३१ मे खलीफ **अलमुक्तादिर** ने एक कानून वनया था कि **ईरानके सिनान-इब्न-याबिटके** लिये हुए इतिहासमे जो उत्तीर्ण होगा, उसीको सिर्फ बगदादमे वैद्यक व्यवसाय करनेकी इजाजत मिलेगी उस समय बगदादमे ८६० वैद्यक पेशा करनेवाले लोग थे, ऐसा **अल–किफ्टी** के ग्रंथमे मालूम होता है।

आरराजी.—(ई स ८४१–९२३) इनको लेटीनमे **-हाजेस** कहते है। इनका पूरा नाम **अबू-बकर-महमद-इब्न-ज़केरिया** था। उस समयके मुस्लीम तत्ववेत्ताओमे ये मशहूर थे और स्वतत्र विचारके थे। उनका ग्रथ लेखन भी बहुत बड़ा था। हिपोक्रिटीज और ग्यालनके पश्चात् इतना बडा ग्रथ–लेखक नही हुआ।

इनका जन्म फारसकी राजधानी तेहरानके नजदीक राय नामके सूबेके गावमे सन ८४१ मे हुआ। **आहुरमज्द** ने जिन बारह शहरोंकी स्थापना की थी, उन प्राचीन शहरोंमे एक मशहूर शहर राय गाव था, जिसका उल्लेख आवेस्तामें किया गया है। आरराजी फारसमे बहुत दिनतक रहा था। आरराजीने गायन शास्त्रकी तालीम ली थी, फिर उसे छोड़कर तत्वज्ञानका अभ्यास शुरु किया और उसके बाद अपनी उम्रके तीसवे सालीसे वैद्यकशास्त्रका अभ्यास शुरू किया। ये राजवैद्य थे; बादमे वैद्यकशास्त्रके बडे अध्यापक होकर आखिरमें वैद्यकशास्त्रके लेखक हुए। बगदादके रुग्णालयके वे प्रमुख वैद्य मुकर्रर किये गये थे।

उस रुग्णालयकी जगह चुननेका काम जब उन्हें दिया गया, तब शहरके भिन्न भिन्न भागोंमें मासके टुकडे उन्होने खुले मैदानमें टांगके रखे। जिस भागमें मासके टुकडे सड जानेकी क्रिया बिलकुल कम प्रमाणमें दिखाई दी उसी भागको, कहा जाता है कि, उन्होने रुग्णालयके लिये पसद किया। उनकी रुग्णपरीक्षा बहुत उमदी थी। इसी कारणसे अनेक प्रान्तोंके लोग उनकी सलाह लेनेके लिये आते थे। उनको मोतीबिन्दु हुआ था। ८२ वर्षकी अवस्थामें उनका अन्त हुआ है।

उनके लिखे हुए ग्रथोंकी सख्या २३७ थी ऐसा कोई कोई मानते है। फेहरिस्तके अनुसार उन्होने ११३ बडे और २८ छोटे ग्रथ लिखे थे। उनके वैद्यक ग्रथका नाम "अल-किताबुल मनसूरी" था और उन्होंने यह ग्रथ **खुरासान** के राजपुत्र **अलमनसूर** को अर्पण किया था। इस ग्रथके दस भाग है। र्‍हाजेसका सबसे बडा ग्रथ वैद्यकका विश्वकोष था जिसको "**आलहवी**" ऊर्फ "**कान्टिनेन्स**" कहते थे। इस ग्रथमें उस समयके वैद्यक सबधी तात्कालिन ज्ञानका सब विवरण पाया जाता है।

उस विश्वकोषकी दूसरी पुस्तकमें नेत्रवैद्यक सबधी उस समयकी बाते मिलती है। उनके अल-किताबुल-मनसूरी ग्रथके ९ वे भागमें नेत्रविषयक बयान साराश रूपमें लिखा है, जिसमें तारकाभिधानका क्षत, नेत्रमें गये हुए शल्य, नेत्रोंके फूल, पोथकी, शिराजाल, नेत्रच्छदोंके कोणोका दाह, अर्म, अश्रुप्रवाह, दृष्टिमान्द्य, शुक्लास्तरका रक्तस्राव, पक्ष्मकोप, मोतीबिन्दु रताधी, कनीनिका का विस्तार और नासूर आदि व्याधिओंका वर्णन दिया गया है।

र्‍हाजेसने नेत्ररोगोंकी हकीकते साराश रूप दी है, जिसमें एक अति महत्वपूर्ण बात कनीनिकाके सबधमें लिखी है। वह यह है कि कनीनिका पर प्रकाश डालनेसे वह सकुचित होती है। इसीको आजकल कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिक्रिया कहा जाता है। उनके वर्णनका तर्जुमा यह है कि—नेत्रगोलकके हिमसम द्रव्यके परदेके (यानी तारकाके) बीचमें एक छोटासा छिद्र (यानी कनीनिका) दिखाई पडता है जो प्रकाशकी जरूरतके अनुसार कम या ज्यादह फैल जाता है, या सकुचित होता है। तीव्र प्रकाशमें वह सकुचित होता है और मद प्रकाशमें फैल जाता है,। पाश्चिमात्य पडितोंका कहना है, कि कनीनिकाकी प्रकाशप्रतिक्रियाका वर्णन पहले पहल र्‍हाजेसहीने किया था, लेकिन हमने पहले स्पष्ट बतलाया है, कि सुश्रुतमें भी उसका उल्लेख है।

इसके सिवाय नेत्रविषयोंपर र्‍हाजेसने छोटे छोटे लेख लिखे है। जैसे कि--- (१) कनीनिका प्रकाशमें क्यों सकुचित होती है और अधेरेसे क्यों फैल जाती है (२) दृक्शक्ति का कार्य (इस लेखमें उन्होंने प्रतिपादन किया है कि प्रकाश नेत्रमेंसे बाहर नही जाता। उस काल की कल्पना यह थी, कि नेत्रमेंसे दृक्शक्तिकी किरणे बाहर जाकर वहा की हवामे मिल जाती है, फिर जिस पदार्थ पर नजर डाली जाती है उसके चारोंओर फैलकर फिर नेत्रमें जाकर नेत्रको पदार्थका ज्ञान देती है। इस कल्पनाका प्रतिकार र्‍हाजेस ही ने नही बल्कि उसके पहलेके आर्य वैद्योने भी किया था।) (३) दृष्टि की अवस्था: (४) नेत्रगोलकका आकार. (५) नेत्रोंकी शस्त्रक्रिया आदि। शीतला और छोटी शीतलापर भी (खसरा) उन्होंने निबध लिखे है। र्‍हाजेस के कान्टिनेन्स ग्रंथ का तर्जुमा लैटीनमे

सन १८२० में सिसली द्विपमें रहनेवाले यहुदी वैद्य **इब्न फरद्अ** ने किया है। इनके अन्य ग्रंथोंके लैटीन और अन्य भाषाओमें भी तर्जुमे हुए हैं।

अली–इब्न–उल–अब्बास–इब्न–उल ऊर्फ **हाले अब्बास:**

ये मशहूर फारसी सन फारसके दक्षिण भागके जुन्दीशापूरके नजदीकके अहवाज गांवके बाशिन्दे थे। इनका जन्म दसवी सदीके प्रारंभमें, और मृत्यु सन ९९४ में हुई। इनकी पढाई अबू माहिर नामके फारसी शेखके पास हुई थी। ये **अमीर अबुदुद्वला फना खुश्रा बुन्हाईद** के खानगी वैद्य थे। इन्होने इस अमीरके लिये **अलमलिकी** नामका **वैद्यक ग्रंथ** लिखा और अमीर को अर्पण किया। यह राजग्रंथ अरबी ग्रंथोमें मशहूर ग्रथ था, और **अविसेनाका कानून** नामका ग्रथ प्रकाशित होनेके समयतक फारसमें वैद्यक शास्त्रका प्रमुख ग्रथ माना जाता था। इस ग्रथका बहुतसा भाग–हाजेमके ग्रथोमे ही लिया गया था। इस ग्रंथके दस दस भागके दो खड थे। पहले खडमे वैद्यक की उपपत्तीका और द्वितीय खडमे उसके प्रयोगोका विवेचन किया गया है। यह ग्रथ सन १८७७ में कैरोमे दो भागोमे छापा गया था। पहले खडके द्वितीय और तृतीय भागमे शरीर सबधी विवेचन किया गया है। इन दो भागोका फ्रेंच भाषामे तर्जुमा सन १९०३ मे हुआ। दूसरे खडके ९ वे भागके ११० अध्यायोमें शल्यतत्र का वर्णन दिया है। **अल मलिकी** ग्रथके पहले खडके १० वे भागके १३ वे अध्यायमें नेत्ररोगोका और नेत्रगोलकके शरीरका वर्णन अनुक्रमसे दिया गया है, जैसे कि —(१) शुक्लास्तरकी विकृति, (२) तारकापिधान की विकृति, (३) तारकातीत पिडकी विकृति, (४) कनीनिका और स्फटिकमणिकी विकृति–मोतीबिन्दुका वर्णन इसी भागमे दिया है, (५) नेत्रच्छदोकी विकृति, (६) नेत्रच्छदोंके कोणोकी विकृति, (७) दृष्टि-रज्जुकी विकृति; (८) नेत्रकी अन्य रज्जुओ और स्नायुओंकी विकृति आदि। दूसरे खडमे नेत्ररोगोकी चिकित्साका वर्णन है जिसमे मोतीबिन्दुकी शस्त्रक्रियाका भी विवेचन किया गया है।

अमर ऊर्फ **अबुलकासिम-अमर-बिन-अली-अल-मोसिली :—**

ये मशहूर अरबी दृष्टिविशारद एक स्वतत्र लेखक थे। इनका जन्म मेसापोटेमिया प्रान्तके मोसल गावमे दसवी सदीके आखिरमे (ई ९९६ मे) हुआ था। ज्ञान प्राप्तीकी लालसामे और दृष्टिविशारदका पशा करनेके उद्देशसे अनेक मुल्कोमें उन्होने प्रवास किया था। कुछ दिनोतक इराक देशमे वे रहे और आखिरमें इजिप्त देशमे आकर वे बसे। इजिप्तमे सुलतान हकीमके समय उन्होने नेत्ररोगपर एक ग्रथ लिखा था। उन्होने मोती-बिन्दुको चूसके निकालनेकी क्रिया का पहले पहल शोध किया था।

"**अमर**"की मोतीबिन्दु को चूस करके बाहर निकालनेकी क्रिया विशेष लोकप्रिय नही हुई और वह तबसे लगभग हजार साल तक वैसीही रही।

अमर की मोतीबिन्दु को चूसके निकाल डालनेकी क्रिया के वर्णनका सारांश इस तरह है:— प्रथम शुक्लास्तरमे बालिदानेकी लम्बाई के बराबर चीरा तारका-पिधान की पिछली ओर को दिया जाये। फिर शुक्लपटलमे छोटेसे चक्कूसे छेद किया जाय। यह छेद मोतीबिन्दु को खुरचने की क्रियामें जिस तरह करते है, वैसाही होना

चाहिये। फिर इस छेदमेंसे "अमर" की खास खोखली शलाका या सूची नेत्र की खाली जगह तक अन्दर की ओरको घुसाई जाये। शलाका अन्दर काफी लम्बी घुसनेके बाद उससे मोतीबिन्दु को ढकेल के दूर हटादिया जाये। इसका परिणाम यह होगा, कि कनीनिका साफ हो जायगी। और मोतीबिन्दुसे ढकी हुई ताम्बे या सूवर्णकी शलाका स्पष्ट दिखाई पडेगी। शलाकाको इसतरह घुमाया जाये कि शलाकाके भीतर के अग्रभाग पर जो खड्डा होता है, उस भागपर मोतीबिन्दु उतरकर स्थिर हो जाये। फिर शलाका की बाहर की नोंकसे अपने मददगार को चूसनेको कहा जाय। जिससे मोतीबिन्दु आवरण सहित शलाकाके खड्डेमे स्थिर हो जाय। मोतीबिन्दु खड्डेमें स्थिर होते ही मददगार को और जोरसे चूसने को कहा जाय और उसीके साथ शलाका को बाहर खीच लिया जाय, जिससे मोतीबिन्दु बाहर आ जायगा।

मोतीबिन्दु बाहर आनेके पश्चात् नेत्रपर पट्टी लगानेके सिवाय और दूसरा कुछ करनेकी आवश्यकता नही रहती। नेत्रपर पट्टी सात दिनतक बाध रखनी चाहिये। चूसनेमे मोती-बिन्दुके आवरणका जरासा भी भाग पीछे नहीं रह जाय ऐसी सावधानी मददगारको लेनी चाहिये। शस्त्रक्रियाके पश्चात् रोगी प्रकाशमें न जाय, छीक या उल्टी न हो यह खबरदारी रखना जरूरी है। चालीस दिन तक स्त्रीसभोग करना भी मना है।

अमरकी खास शलाका या सूचीका वर्णन:—अमरने अपनी मोतीबिन्दु निकाल-नेकी शलाकाका वर्णन इस तरह दिया है। शलाकाकी लम्बाई हाथके पजेकी चौडाईसे डेढ गुनी होनी चाहिये, और यह नोकदार हो। नोककी लम्बाई अंगूठेके नाखूनकी लम्बाई जितनी हो। नोक के ऊपर एक गोल कडी रहे और उसके ऊपर शलाकाका डडा रहे। दूसरा नोक त्रिकोणा हो। इसका उद्देश यह है, कि छेद त्रिकोणाकार बनना चाहिये जिससे जखम आसानीसे भर सके। और दूसरा उद्देश यह भी है कि अग्र त्रिकोणाकार होनेसे वह मोती-बिन्दु पर गिरता है, और शलाकाको बिना घुमाये मोतीबिन्दु उसके अन्दर जा सकता है।

मोतीबिन्दुको चूसके बाहर निकालनेकी शलाका आकारमे खुरचनेकी शलाका जैसी ही होती है। फर्क सिर्फ यही है, कि वह भीतरसे पूर्ण खोखली होती है। और थोडी मोटी होती है। शलाकाकी नोककी एक बाजूमे खोखला भाग होता है।

ईसा-इब्न-अली ये हुनाईन-इब्न-इसा का ऊर्फ जोहानिटसके शिष्य थे। **ईसा-इब्न अलीको जेसुहाले** भी कहते थे। ये क्रिश्चियन पथी थे, और बगदादमे दृष्टिविशारदका पेशा करते थे। इनका काल ग्यारहवी सदीका पूर्वार्ध था। इन्होंने बहुतसे ग्रीक ग्रंथोके तर्जुमे किये थे, और नेत्ररोगोपर स्वतत्र ग्रंथ भी लिखा था। यह ग्रंथ सब इस्लामी देशोमेही नही, बल्कि सब क्रिश्चिअन राष्ट्रोमें भी सर्वमान्य हुआ था और अब भी अरबी वैद्य इस ग्रंथको प्रमाण ग्रंथ मानते हैं। इस ग्रथके प्रकाशित होते ही उसके लैटीन और हिब्रू भाषाओमे तर्जुमे हुए। हिर्शबर्ग और लिपर्ट के तर्जुमे पूरे और उत्कृष्ट माने गये है। कहें तो कह सकते है, कि इस ग्रंथके हिर्शबर्गके तर्जुमे के प्रकाशित होने तक पाश्चात्य लेखकोको अरबी शास्त्रोका कुछ भी ज्ञान नही था। इस दृष्टिसे विचार करनेपर यह माना जा सकता है, कि हिर्शबर्ग नेत्रविज्ञान शास्त्रका पहला इतिहास लेखक था।

ईसा–इब्न–अलीके नेत्ररोगके ग्रंथका तवारीख की दृष्टिसे महत्त्व है। इस ग्रंथमे यह कल्पना की जा सकती है, कि ग्यारहवी सदीमें और उसके पूर्व नेत्रविज्ञान शास्त्रकी कितनी अधिक प्रगति हुई थी ।

ईसा–इब्न–अलीके नेत्रविज्ञान शास्त्रके ग्रंथ के तीन भाग है। पहले भागमे नेत्रगोलकके शरीर और इन्द्रिय विज्ञानशास्त्रका वर्णन दिया है। दूसरे भागमें प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली नेत्रविकृतिका विचार किया गया है। और तीसरे भागमे प्रत्यक्ष न दिखाई देनेवाली विकृतिका विचार है।

पहला भाग

यह भाग साधारणतया ग्यालेन के ग्रथके अनुसार लिखा है। इस भागमे शुरुमे नेत्रगोलकके संबंधमे साधारण विवेचन है; फिर भिन्न भिन्न भागोका वर्णन और उनके कार्योका विवेचन किया गया है।

स्फटिक मणीः—इस ग्रंथकारकी कल्पनानुसार दृष्टिका असली कार्य स्फटिकमणिमे ही होता है। सब रगोका ज्ञान होनेके लिये स्फटिकमणि बिना रगका होता है। और यह थोडा चपटासा होनेसे एकही समय अनेक पदार्थ उसके सामने आ सकते है। साथ साथ बाका–टेढा होनेसे उसको चोट लगनेकी सभावना कम होती है।

स्फटिक द्रवपिंडः—(Vitreous) यह स्फटिकमणिकी पिछली ओरको होता है। और उसीमे स्फटिकमणिका पोषण होता है। स्फटिकद्रवपिंडके पीछे दृष्टिपटल (Retina) होता है। दृष्टिपटलकी रचनामें रक्तवाहिनियॉ और दृष्टिरज्जुके ततु होते है। दृष्टिपटलकी दृक्शक्ति स्फटिकमणिको स्फटिकद्रवपिंडके मार्गमे मिलती है। दृष्टिपटलके सामनेका भाग स्फटिकमणिके विषुववृत्तमे चिपका रहता है। दृष्टिपटलसे स्फटिकद्रव पिडका पोषण होता है।

दृष्टिरज्जुः—(Optic Nerve) इसका वर्णन ग्यालन जैसा ही है यह मस्तिष्कके सामनेके कोटरके (पुरो जवनिका ant Ventricle) पार्श्वभागमे शुरू होती है। दोनो दृष्टिरज्जुएँ आगे मध्य रेषामे जाकर एक दूसरीमे मिलती है। फिर वे अलग होकर अपनी ओरके नेत्रकी तरफ जाकर उसके अन्दर घुसती है। ऐसा होते वक्त दोनोमेके अवकाशका परस्पर सबध होजाता है। दृष्टिरज्जुके दोनो आवरण मस्तिष्कके दोनो आवरणोसे पैदा होते है। इनमेसे सख्त आवरणसे दृष्टिरज्जुका रक्षण और मृदु आवरणसे पोषण होता है। दृष्टिरज्जुसेही दृष्टिपटल बनता है और दृष्टिरज्जुके मृदु आवरणसे कृष्णपटल (Choroid Uvea) बनता है। दृष्टिपटल और कृष्णपटल दोनो स्फटिकमणिके विषुववृत्तको चिपके रहते है। कृष्णपटलसे दृष्टिपटलके सब भागोका पोषण होता है। शुक्लपटल दृष्टिरज्जुके बाह्य आवरणसे बना है। शुक्लपटलसे नेत्रगोलकके सब भागोका रक्षण होता है।

स्फटिकमणिके सामनेके पृष्ठपर मस्तिष्कके तन्तुरजालवत आवरण जैसा आवरण रहता है। आवरणसहित इस स्फटिकमणिमे सामनेसे देखे तो अपनी प्रतिमा दिखाई पडती है।

इस आवरणके सामने चाक्षुष जल रहता है। और इस जलका कार्य स्फटिकमणि तथा कृष्णपटलकी आर्द्रता कायम रखना होता है। उसीसे स्फटिकमणिकी दृक्शक्ति बाह्य सृष्टिके पदार्थोंकी तरफ जाती है। फिर वहासे लौटकर वह स्फटिकमणिमें आती है। इससे बाह्य पदार्थोंकी प्रतिमाएँ स्फटिकमणिपर पडती है।

कृष्णपटल (Iris तारका) चाक्षुपजलके सामने रहता है। इनके कालतक यह कल्पना थी की तारका तारकापिधानको (Coruea) चिपकी रहती है। तारकाका पूर्व पृष्ठभाग चिकना और पश्चिम पृष्ठभाग खुरखरा होता है। चाक्षुपजल और तारकापिधानमें रक्त-वाहिनियां न होनेसे उनका पोषण करनेका कार्य तारका करती है। तारकाके छिद्रसे बाहरकी छाया एकत्रित होकर अन्दर घुसती है। तारकाके बाहरका भाग तारकापिधान होता है। यह पारदर्शक होता है और उसकी रचनामें चार तहे होती है। शुक्लास्तरके जरिये नेत्रगोलक बाहरसे बधा रहता है।

स्नायू (मासपेशी Muscles) —नेत्रगोलककी नौ स्नायुए होती है। उसमेसे एक नेत्रगोलकके भीतरी कोणमे होती है और उसके कार्यसे नेत्र नासिकाकी ओरको घूमता है। एक बाहरी कोणमे होती है, जिससे नेत्र कनपुटीकी ओरको घूमता है। नेत्रके ऊपरकी और नीचेकी ओरकी एक एक स्नायु होती है, जिनसे नेत्र ऊपर और नीचेकी ओरको घूम सकता है। दो तिरछी स्नायुएँ होती है जिनसे नेत्र तिरछा घूमता है।

तीन स्नायु दृष्टिरज्जुके मूलके चारो ओर होती है। इन स्नायुओंको गति मस्तिष्क रज्जुकी दूसरी जोडीसे (आधुनिक तृतीय जोडी) मिलती है। ये मज्जातन्तु दृष्टि रज्जूके पीछे मस्तिष्कमेंसे शुरू होते हैं।

नेत्रच्छद:—उपरके नेत्रच्छदमे उसको ऊपर उठानेवाली एक स्नायु रहती है और उसको नीचे करनेके लिये प्रत्येक कोणमे एक एक, ऐसी दो स्नायुए होती है।

दृक्शक्तिकी कल्पना: प्रथमत: यकृतमे नैसर्गिक शक्ति पैदा होती है। उस शक्तिका स्वच्छ भाग हृदयमे जाता है, जहा उससे चेतनात्मक द्रव शक्तिकी पैदाइश होती है। उसका स्वच्छ भाग श्वासोश्वासमे मिलकर मस्तिष्कमें जाता है, जहा उसकी वातरूपमे दृक्शक्ति पैदा होती है। वहासे दृष्टिपटलमेंसे स्फटिकमणिके विषुववृत्तमे होती हुई स्फटिक-मणिके पूर्व आवरणमे कनीनिकामे पहुँचकर नेत्रकी बाहरकी ओरको जाती है। यह दृक्शक्ति दृष्टिरज्जुके खोखले भागसे नेत्रको पहुँचती है। जब देखनेका कार्य (दृष्टिकार्य) होता है, तब यह वातरूप शक्ति नेत्रकी बाहरकी और जाकर चारो ओरकी हवा से मिल जाती है और जिस पदार्थको देखना हो, उसके चारो ओरको फैल जाती है। फिर वहासे लौटकर तारकापिधान और कनीनिकामेसे पार होकर स्फटिकमणीपर उस पदार्थकी प्रतिमा पडती है। फिर स्फटिकमणिसे दृष्टिपटल और दृष्टिरज्जुद्वारा मस्तिष्कमें जा पहुँचती है। इससे उसको पदार्थका सज्ञाज्ञान मिलता है और इस तरहसे पदार्थ दृष्टीगोचर होता है। पदार्थकी प्रतिमा दृष्टिपटलके अलावा स्फटिकमणिपर तैयार होती है, यह ईसा इब्न अली की कल्पना उसके पूर्ववर्ती पंडितोकी कल्पना जैसीही है।

एक दृष्टिरज्जुके खोखले भागका दूसरे दृष्टिरज्जुके खोखले भागसे जो सबध होता है उसके स्पष्टीकरणके लिये दी हुई बातें इस तरह हैं:-एक नेत्रको बंद करनेसे दूसरे नेत्र की कनीनिका प्रसरण हो जाती है। इस रचनात्मक अवस्थाके दो फायदे होते हैं, (१) यदि एक नेत्रका नाश होवे तो कुछ प्रकाशका प्रमाण दूसरे नेत्रमें एकत्रित होता है, (२) दोनो नेत्रोंसे मनुष्यको दिखा हुआ पदार्थ एक दिखाई पड़ता है।

दूसरा भाग

इस भागमे प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले नेत्ररोग, और उनकी चिकित्सा दी गई है। इन रोगोकी सख्या ५२ है। उनमेसे नेत्रच्छदोंके २९, अश्रुकोषके ३, शुक्लास्तरके ३, तारकापिधानके १३ और तारकाके ४ ऐसे विभाग किये गये है। हरएक रोगकी उत्पत्ति, प्रगति, पूर्णविकास और उतार ऐसी चार अवस्थाएँ दी गई है। रोगकी शुरवातमे विग्रह करनेवाली दवाओको और आखिरमे द्रव करनेवाली दवाओको इस्तेमाल करनेको कहा है। ये दवाएँ वनस्पति वर्ग, प्राणिवर्ग और खनिज वर्गमेंसे चुनी है।

नेत्रच्छदके रोगोमें पोथकी का उल्लेख किया है। इसकी चार अवस्थायें दी गई है। नेत्रच्छदके अन्य रोगोमे **लगण** (chalasia), अंजनी (बिलनी), पक्ष्याधिक्यता, अन्तर्वलित नेत्रच्छद, पक्ष्मस्थकृमि, रक्तरसज सूजन, नेत्रच्छददाह, रसग्रथी आदि रोगोका वर्णन और चिकित्सा दी गई है।

अश्रुकोष के नासूर, अश्रुकोषका जलार्बूद और अश्रु पात (Lachrimation), इन तीन रोगोका वर्णन दिया गया है। शुल्कास्तरका अर्म शिरजालपट और अलजी इन तीन रोगोका वर्णन किया है। तारकापिधान के १३ रोगोमें ७ तरह के क्षत पीटिका, तारका-पिधान की दो तरह की **छिछडियां**, दो तरह के पीपदार क्षत और तारकापिधानके **आहिस्ते आहिस्ते बढते जाने वाले क्षत** (creeping ulcers) इन रोगोका वर्णन दिया गया है।

तारका की चार विकृतियोका, यानी कनीनिका प्रसरण, कनीनिका आकुंचन, तारका भ्रंश (Prolapsed Iris) और मोतीबिन्दु का भी वर्णन इसमे दिया है।

मोतीबिन्दु की उत्पति की कल्पना इस तरह की थी, कि कनीनिका के पृष्ठ पर उत्सर्जित द्रव जम जानेसे उस द्रवका मोतीबिन्दु बनता है। यह द्रव ठोस (कठन) हो जानेसे उसका पडदा बनता है जिस वजहसे वातरूप दृक्शक्तिका बाहर जाना संभाव्य नही होता और इसी कारणसे बाह्य पदार्थ नही दीखाई पड़ते।

ईसा-इब्न-अळीके मतानुसार मोतीबिन्दुके रंग अनेक होते है। हवा का रग, कांचका रग, सफेद रंग, आकाशके जैसा नीला रंग, हरा, पीला, लाल, काला, पारेध्दका रंग, और खडिया मिट्टीका रंग, इस तरह ग्यारह रंगके मोतीबिन्दु होते हैं।

मोतीबिन्दुके होनेके कारण वार्धक्य, बहुत दिनकी बीमारी, चिरकालिक सिरदर्द और चोट ये दिये है।

मोतीबिन्दु की शस्त्रक्रिया का वर्णन सुश्रुतीय शस्त्रक्रियाके वर्णनसे मिलता है। शस्त्रक्रिया करनेके लिये रोगीको किस तरहसे तैयार करना, किस तरहसे बिठाना, शस्त्रक्रिया किस जगह करना, शस्त्र किस धातूका होना चाहिये, शस्त्रक्रियाके पश्चात् की योजना, आदि विषयोंका वर्णन दिया गया है।

तीसरा भाग

इस भागमे प्रत्यक्ष न दिखाई देनेवाले नेत्रके रोगोंका वर्णन दिया है। उसमें स्फटिकमणि की विकृतिया सोलह बताई गई है। स्फटिकमणि स्थानभ्रष्ट होनेसे बालकोंका नेत्र टेढ़ा हो जाता है; स्फटिकमणि नीचे या उपर सरक जाये तो पदार्थ द्विधा दिखाई पड़ते है। स्फटिकमणि रुक्ष होनेसे काच बिन्दु पैदा होकर अंधत्व आता है। और इसके होनेसे दृक्शक्ति कम होती है। यह भी लिखा है।

द्रवरूप दृक्शक्ति की रचनामे या उसके गुणमे फरक होनेसे उसमें अनिष्ट परिणाम होते है। दृक्शक्ति ज्यादा द्रवरूप हो तो दूरका और नजदीकका दिखाई पड़ता है। यदि यह कम हो, या बहुत पतली हो, तो सिर्फ नजदीका ही दिखाई पड़ता है, यह उल्लेख भी है।

रतौंधीके कारण:—द्रवरूप दृक्शक्तिका ठोस होना, स्फटिकमणि द्रवरूप या धुंधला होना, सुर्यप्रकाशमें बहुत कालतक रहना आदिको रतौंधीके कारण कहा गया है। इसके इलाजके लिये बकरेके यकृतको भूजकर उसकी भाप देवें, तथा उसका रस नेत्रोमे छोडें और भुजे हुए यकृतको खिलानेको कहा है। सुश्रूतमें भी यही चिकित्सा बतलाई है। **दिनांधता:** द्रवरूप दृक्शक्तिके रुक्ष हो जानेसे या कम हो जानेसे यह अवस्था पैदा होती है।

स्फटिकद्रवपिंड के बारह ाग कहे है। इन विकृतियोंका परिणाम स्फटिकमणिपर होता है। **दृष्टिरज्जु** मे तीन प्रकारके रोग होते है। पहले प्रकारमें उसके आठो घटको की विकृति या द्रवरूप दृक्शक्तिके वाष्पीभवन होनेसे उत्पन्न होनेवाले रोगोका अन्तर्भाव होता है। दूसरे प्रकारमें दृष्टिरज्जुके अवरोध होने, दबजाने तथा सूखने वगैरासे आनेवाली निष्क्रियताका अन्तर्भाव होता है। तीसरे प्रकारमें दृष्टिरज्जु टूट जावे तो होनेवाली विकृतिका अन्तर्भाव होता है। दृष्टिपटल और कृष्णपटलमें शरीरको रुधिर कम मिलनसे विकृति पैदा होती है। और इन दोनोंकी विकृतिका असर स्फटिकमणिपर होता है। **ईसा-इब्न-अलीने बहिर्वृत्त-अपसृत-नेत्रगोलक**का भी उल्लेख किया है और बतलाया है कि स्नायुओका स्तंभ होनेसे यह अवस्था पैदा होती है। **नेत्रस्नायु** स्तंभित हो, या आकुंचित हो तो नेत्रगोलक घूम जाता है और फिर रोगीको एक पदार्थ द्विधा (दोहरा) दिखाई पड़ता है। शुक्लपटलपर चोट आनेसे या रुधिर खराब होनेसे विकृति होती है।

अविसेना ऊर्फ **अबुअली, अल हुसेन बिन अबदुल्ला, बिन अली अस सरह-आर रईस-इब्नासिना।** इन वैद्यराजको सब अरेबियन वैद्यराजोमे श्रेष्ठ माना जाता था। इनका जन्म सन ९८० में खोरासान गांवमे हुआ था। ये कुशाग्रबुद्धिके थे। अपनी उम्रके दसवे सालमे सारा कुरआनका पाठ इन्हे मुखाग्र था। उम्रके अठ्ठारवे वर्षमे ये वैद्यक शास्त्रमे इतने वाकिफ माने गये थे कि **अमीर नुलबेन मनसूर**ने उनको वैद्यकीय सलाह मशविरेके लिये बुलाया और उस वक्त उनकी दी हुई सलाहकी बहुत तारीफ हुई। इनके पिता बोखारेमें बडे अधिकारी थे। उनकी मृत्यूके पश्चात अविसेनाको सारी दौलत मिली। इससे वे सुखसम्पन्न हुए और उन्होने बहुत यात्रा की। इन यात्रामे उन्होने बहुतसे राजदरबार देखे। वे अच्छे वैद्य, ज्योतिषी, विशाल लेखक और निष्णात शिक्षक थे ऐसी उनकी ख्याति थी। आखिरमे वे हमदान दरबारमे वजिर हुए। लेकिन वहा उनको गदरके अपराधमें जेलमे जाना पडा। वहांसे छूटनेके बाद वे इस्पहानको भाग गये। वहा उनका बहुत सन्मान हुआ और वहां वे १४ साल तक रहे। अविसेना खुद बहुत मेहनती थे, लेकिन स्वभावसे बहुत क्रूर थे। इनकी मृत्यु सन १०३० मे ५८ वे वर्षमे हुई। वे दीर्घाभ्यासी किन्तु उतनेही अति व्यसनासक्त भी थे, इसी वजहसे उनकी मृत्यु जल्दी हुई।

अविसेनाने कमसेकम गद्य और पद्य मिलकर १०५ ग्रंथ लिखे थे, जिनके विषय कानून, ज्योतिष, तत्वज्ञान, गणित, राजनीति और वैद्यक आदि थे। ये ग्रंथ अरबी भाषामें लिखे थे। इन्होने अपनी मादरी भाषामें यानी परशियन भाषामें तत्वज्ञानपर **दानिश नामा–ई–अलाई** नामका ग्रंथ लिखा था। उसकी एक हस्तलिखित प्रत लन्दनके ब्रिटिश म्युझिममे रखी है। उन्होंने नाडी परीक्षापर भी एक छोटासा ग्रंथ लिखा था। ये अचूक और तर्कशुद्ध मशहूर दृष्टिविशारद थे।

अविसेना का वैद्यक शास्त्रपर स्वतंत्र रीतिसे लिखा हुआ कोई ग्रथ नही मिलता। ये एक अच्छे संकलकार भी थे। उनके संकलित कानून के ग्रंथोमे ग्यालन, पोल और अन्य ग्रीक ग्रंथोका क्रमवार सकलन मिलता है, और उन्होंने उनके ऊपर विस्तारपूर्वक टीका भी की है। इन संकलित कानून के ग्रंथोके पांच भाग है। पहले दो भागोमे इन्द्रिय विज्ञान और शारीर स्वास्थ्य संबंधी बाते ग्यालन और अरिस्टाटल के ग्रंथोके अनुसार दीगई है। तीसरे और चौथे भागमे मुख्यतया चिकित्साका विवेचन किया गया है। पांचवें भागमें औषधियोंके गुणदोषो का विवेचन है। नेत्ररोगोकी स्वानुभव जन्य चिकित्सा तीसरे भागके तीसरे अध्यायमें उन्दोंने दी है। लेकिन आश्चर्य की बात यह है, कि उन्होंने मोतीबिन्दु और पोथकी के संबंधमे कुछ भी नही लिखा है।

अल–हासन

इनका पूरा नाम **अबु-अलि-महमद-बिन-अल् हासन-इब्न-अल-हैतम-अल-बसरा** था। ये वैद्य नही लेकिन उमदे गणितज्ञ थे। इनका जन्म सन ९९६ में बसरा शहरमे हुआ। इनकी मृत्यु कैरोमें सन १०३८ मे हुई। उन्होंने दृक्शास्त्रमें जो काम किया उसकी दृष्टि-विशारदोंमें बहुत कद्र की जाती है। **टोलमी** के बाद (सन १५०) आर **केपलर**के पूर्व (स. १६०५) दृक्शास्त्र के विषयका मशहूर लेखक इनके सिवाय दूसरा कोई नहीं था।

इनके अरबी ग्रंथ उपलब्ध नही हैं। जो कुछ पता चलता है, वह सिर्फ उनके ग्रंथोंके लैटीन अनुवादसेही।

अल-हासनने गणितशास्त्र, भौतिकशास्त्र, खगोलशास्त्र और वैद्यक शास्त्रोंपर लगभग दोसौ ग्रंथ लिखे थे। इन ग्रंथोमें प्राचीन ग्रीक ग्रंथोकी नकलें और टीकात्मक अनुवाद थे। लेकिन नेत्रविज्ञान संबंधके ग्रंथ **परस्पेकटायव्हा** यानी दृक्शास्त्र-आपटिक्स, और **डीलूसे** प्रकाश शास्त्र, अरबी भाषामें लिखे हुए इनके दो स्वतंत्र ग्रंथ हैं जो दृष्टिविशारदों के लिये बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन ग्रथोंका पहले लैटीनमे अनुवाद हुआ। फिर जर्मन, अंग्रेजी और अन्य भाषाओंमे भी इनके अनुवाद हुए हैं। इसमे शक नही, कि इन दोनो ग्रंथों की दृक्शास्त्र संबधी बाते प्राचीन अन्य ग्रंथकारोकी अपेक्षा बहुत सरस और शास्त्रशुद्ध हैं। इन दोनो ग्रंथोका साराश इस प्रकार है।

परस्पेकटायव्हा ग्रंथसे दृष्टिविशारदो को चार महत्त्व की बाते मालूम हुई हैं। यद्यापि दृष्टिकार्य के संबंधमे **अल-हासन** की कल्पना ग्यालन की कल्पनानुसार ही थी यानी यह कार्य स्फटिकमणिसे होता है ऐसी थी, तो भी उनकी दृष्टिकार्य की कल्पना प्राचीन लेखकोकी कल्पनाओसे बिलकुल भिन्न थी।

अल-हासन के पूर्व दृष्टिकार्यकी कल्पना तीन प्रकारकी थी —

(१) **एम्पीडाक्लिस, युक्लिड, स्टोइक्स, क्लिओमेडियस, प्लुटार्क** और **ग्यालन** इन लोगोकी कल्पनाएं थी, कि "दृष्टिरज्जुके खोखलेकी वातशक्तिकी किरणे नेत्रमेसे बाहर जाकर दृश्य पदार्थके इर्दगिर्द फैल जाती है, फिर वापिस आकर स्फटिकमणिपर गिरती है"।

(२) **प्लेटो**की कल्पना थी, कि "नेत्रमेसे बाहर जानेवाली वातशक्तिकी किरणे बाहर जाकर पिघल जाती है, और दृश्य पदार्थसे निकलनेवाली किरणोंमे मिल जाती है, फिर वहासे लौट कर नेत्रमे घुसती है"।

(३) **अटामिस्ट एपिक्युरीन** और शायद **पिथागोरस** की कल्पना यह थी, कि "प्रकाशित पदार्थसे नित्य उसकी प्रतिमाएँ चारो ओरको कण रूपमे बाहर निकलती रहती हैं और पदार्थकी ओर देखनेवाले मनुष्यकी कनीनिकामे घुस जाती है"।

लेकिन **अल-हासन** की कल्पना थी की "नेत्रोमेंसे किरण बाहर नही जाते बल्कि पदार्थके हरएक बिन्दुसे अनेक स्वतत्र किरणे निकलकर नेत्रोमे घुसकर स्फटिकमणिपर गिरती है"।

युक्लिड (क्रि. पू. २८०) आदि लोगोंकी कल्पना इस तरहकी थी, नेत्रगोलकके बिंदुसे निकली हुई किरणे कोणाकार होती हैं। इस कोण का अग्र या नोक कनीनिकामे होता है, और ये किरणें जितनी दूरदूर जाती है उतना ही कोण का पाया ज्यादह बडा होकर, पदार्थपर गिरती है।

अल-हासनके समय तक यह गलत कल्पना प्रचलित थी। तबतक दृक्शास्त्रकी कुछ भी प्रगति नही हुई थी। **अल-हासन**ने अपनी कल्पनाका प्रचार करके प्राचीन कल्पनाओंका खंडन

किया यही असली और महत्वपूर्ण कार्य था । इससे **अल-हासन** को अर्वाचिन दृक्‌शास्त्रका जनकही माना जा सकता है । उन्होने और भी एक महत्वका सिद्धान्त प्रस्थापित किया जो इस तरहका है:-"आघात कोण और परावृत्तकोण परस्परके बराबर होते है. आघात किरण, आघात बिन्दुकी लम्ब रेषा और परावृत्तकिरण ये तीनो एकही पृष्ठमें होते है । अल-हासनका तीसरा महत्वका सिद्धान्त यह था, कि नेत्र और दर्पणमे दिखाई देनेवाले पदार्थके प्रतिबिम्बके स्थानका सबंध मालूम होनेसे, परावृत्त बिन्दुके स्थानका निर्णय होना संभाव्य होता है" ।

चौथी बात यह है कि उन्होने परावृत्त किरण और वक्रीभूत किरणोके कठिन प्रश्नोंको सुलभाया ।

अल-हासन का प्रकाशशास्त्र यह एक दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ था । उस ग्रथका तर्जुमा जर्मन लेखक बारमनने सन १८८२ मे किया । नेत्रविज्ञान शास्त्रके विकासमें उसका बहुत कुछ महत्त्व है, इसलिये उसका साराश नीचे दिया जाता है ।

"प्रकाश क्या चीज़ है, इस प्रश्नका निर्णय भौतिक शास्त्रकी सहायतासे होगा और प्रकाश किरण किस तरहसे निकलते है, इसका निर्णय गणित शास्त्रकीसहायतासे । लेकिन प्रकाश, किरण और पारदर्शकता क्या है, और उनका कार्य किस तरहसे होता है इसका निर्णय भौतिक और गणित शास्त्र इन दोनोंकी सहायतासे होगा । यानी प्रकाश, प्रकाश किरण और पारदर्शकता इन तीनोंका निर्णय भौतिक शास्त्रसे ओर इन तीनोके कार्यका स्पष्टीकरण गणित शास्त्रसे होता है" ।

"हरएक तत्ववेत्ताके मतसे प्रत्येक स्वयंप्रकाशित वस्तुमे या तत्वमे प्रकाश उस वस्तुका या तत्वका असली प्रकृतिधर्म होता है । और इसी धर्मसे पदार्थ की घटनाकी कल्पना हो सकती है । लेकिन अपारदर्शक पदार्थोमे प्रकाश दिखाई पड़ना यह एक उसका आगन्तुक धर्म है" ।

"गणित शास्त्रज्ञोके मतानुसार स्वयप्रकाशित पदार्थसे बाहर निकलनेवाली किरणोका प्रकृति धर्म है ऊष्णता; यह ऊष्णता उस स्वयप्रकाशित प्रदार्थमे होती है । उदाहरण के लिये, उन्नतोदर शीशेसे कपासपर केन्द्रीभूत कीई हुई प्रकाश किरणोंसे कपास जल जाता है । या वातावरणमेंसे सूर्य प्रकाश बहुत समयतक जानेसे वातावरण गरम हो जाता है यानी सूर्य प्रकाशमें उष्णता होती है । गणित शास्त्रके अनुसार सब प्रकारके स्वयंप्रकाशित पदार्थ अल्पाधिक मात्रामे उष्णता देनेवाले होते है" ।

"हरएक पदार्थमे चाहे वह पारदर्शक हो, या नही, उसपर पडनेवाले प्रकाश को ग्रहण करनेकी शक्ति होती है । पारदर्शक पदार्थमे प्रकाश सिर्फ अन्दरही नही जाता, बल्कि उसमेंसे वह पार होता है । उसके इस धर्मसे पारदर्शक पदार्थके पीछे कोई अपारदर्शक पदार्थपर प्रकाश देनेवाली वस्तु हो, तो वह दिखाई पड़ता है" ।

"प्रकाश जिन पदार्थो को पार कर जाता है वे दो प्रकारके होते है । एक है वे पदार्थ जिनके सब भागोंमेसे प्रकाश पार होता है जैसे कि आकाश, हवा, पानी, काच और तत्सम

अन्य पदार्थ। दूसरे प्रकारके पदार्थ महीन कपडे जैसे होते है, जिनमें इनके तन्तुओके अवकाशोसे प्रकाश पार होता है और तन्तुओं परसे प्रकाश परावृत्त होता है"।

"स्वयं प्रकाशित पदार्थके हरएक बिन्दुसे प्रकाश निकलकर वह सीधी रेषामें पारदर्शक पदार्थके अन्दर होता हुआ और इर्दगिर्दके अन्य भागोपर भी फैलता है। दर असल यह आविष्कार अल-हासनने सबसे पहले किया था, फिर भी यह माना जाता है. कि पाचसौ वर्ष बाद (१६२९ से १६९५) हुए **क्रिश्चियन यूजेन**नेही पहले यह आविष्कार किया, जो सत्य नही। अंधेरी कोठरीमे जब किसी छिद्रमे से प्रकाश अन्दर आता है, तब वह सीधी रेषामें आता है। और यदि उसके मार्गमे धूल उठती हो, तो वह मार्ग स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इसी तरहसे दिखाई देनेवाले प्रकाशको प्रकाश किरण (गुच्छ) कहते है और उसकी रेषा नैसर्गिक रूपसे सीधी होती है। कैमेरा आबस्क्यूरा यानी तसबीर उतारनेकी अंधियारी संदूककी कल्पना इसी परसे ली गयी है। इसकी एक ओरको छोटा छेद होता है। इस छेदमेंसे बाह्य पदार्थोकी किरणे सदूकमे घुसकर छेदके सामनेकी बाजूपर या परदेपर गिरती हैं और वहा बाह्य पदार्थोकी प्रतिमाओकी छाया मुद्रित होती है। **अल-हासन**ने यह भी बताया है, कि ये प्रतिमाये उलटी होती हैं"।

"पारदर्शक पदार्थोंकी पारदर्शकता यह उनका गुण होता है, और भिन्न भिन्न वस्तुओमे इसका प्रमाण भिन्न भिन्न होता है। इन प्रमाणोके फरकोंका स्पष्टीकरण उसमेसे पार जानेवाली किरणोके वक्रीभूत कोणसे हो सकता है। भिन्न भिन्न प्रमाणके दो पारदर्शक पदार्थोंसे जब प्रकाश किरणें पार जाती हैं, तब उनकी लम्ब रेषासे बने हुए कोण सम होते है। लेकिन जब प्रकाशकिरणे एक पारदर्शक पदार्थसे पार होकर दूसरे पारदर्शक पदार्थमे जाती है, तब उससे बने हुए कोण पदार्थोंकी पारदर्शकता के प्रमाणानुसार भिन्न भिन्न होते है। लघुकोणवाला पदार्थ ज्यादह पारदर्शक होता है। यह शोध दृक्शास्त्र दृष्टिसे महत्वका है"।

ज़ारीन दस्त:—

इन परशियन दृष्टिविशारदका पूरा नाम, **अबु-रूह-बिन मनसूर बिन-अलि अबदुल्ला बिन मनसूर अलियामिनी** था। इनका काल ग्यारहवी सदी (सन १०५०) था। इनका जनन आकसस नदीके किनारे के गुरगाव गांवमें हुआ। इनके नेत्रविज्ञान शास्त्रके ग्रंथ का नाम **नेत्रका प्रकाश** (Light of eyes) था और यह ग्रंथ परशियामें अनेक सदीयो-तक पढा जाता था। यह ग्रंथ यद्यपि प्रश्नोतर रूपमे लिखा गया था, तो भी मध्य-युगीन कालमे अरबी नेत्रविज्ञान शास्त्र की कितनी प्रगति हुई थी इसकी कल्पना इस ग्रंथसे अच्छी तरहसे स्पष्ट होती है। इस ग्रंथके दस भाग है। पहले भागमे नेत्रगोलकका शरीर फिर चार भागमे अनुक्रमसे प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले नेत्ररोग, न दिखाई देनेवाले नेत्ररोग, साध्य और असाध्य रोगोंकी चिकित्सा, छटे भागमें नेत्रगोलकका स्वास्थ्य; सातवें भागमें नेत्रगोलककी शस्त्रक्रिया, आठवे भागमें कांचबिन्दु और नौवे और दसमे भागमे सादी तथा संमिश्र औषधियोंका विचार किया गया है।

शस्त्रक्रियाके भागमें पोथकीका खुरचना, लगण का छेदन, नेत्रच्छदान्योन्यसंयोग (Symblepharon) को अलग करना; अन्तर्वलित नेत्रच्छद, नेत्रच्छदभ्रंश, पक्ष्मकोप को दुरस्त करना और फालतू पक्ष्मराजीको निकालना; नेत्रच्छदके अर्बुदोको निकालना; अश्रुकोषके व्रणको काटना, या भीतरी भाग या अस्थिको खुरचना, या वृत्तक्रकच शस्त्रसे (Trephine) निकालना; अर्मको काटके निकालना; शिराजालको काट देना, पूर्ववेश्मनीके पीबको बाहर निकाल देना, मोतीबिंदुको सूचीसे अन्दर ढकेलना; कनपटीकी शिराको खोलना या दागना आदि शस्त्रक्रियाएँ दी है ।

अल-समरकन्दीः—इनका जन्म साल मालूम नही, लेकिन इनकी मृत्यु सन १२२२ में हुई । इनके नेत्ररोगोके कारण तथा लक्षण; और नेत्रका शरीर ऐसे दो ग्रंथ अरबीमे थे । दूसरा ग्रंथ ग्यालन के ग्रथ परसे लिखा गया है ।

सलाह-अद्दीन-इब्न शुसफ अल-काहात-बिन-हामत.

ये असीरियन दृष्टि विशारद **हामा** शहरमें तेरहवी सदीके आखिरमें हुए । इन्होंने "नेत्रका प्रकाश" नामका एक ग्रथ लिखा था । इस ग्रथके दस भाग थे । पहलेमे नेत्र क्या है तथा उसकी रचना और उसके प्रत्येक घटक और नेत्रच्छदके शरीरका वर्णन उन्होने दिया है । दूसरेमे दृष्टिका कार्य और उससे दिखनेवाले पदार्थ कैसे दिखाई देते हैं । तीसरेमें भिन्न भिन्न नेत्ररोग, उनके कारण और चिकित्सा का वर्णन । चौथेमे दृष्टिको किस तरहसे बचाना, नेत्रच्छदके रोग कारण और चिकित्साका विवेचन । पाचवेमे नेत्रच्छदान्तराल कोषकी विकृति । छटमे शुक्लास्तरकी विकृति । सातवे और आठवे मे अनुक्रमसे तारकापिधान तथा कृष्णमडलकी विकृति । नौवेमे तारकाके सामनेका मोतीबिन्दु और दसवेमें नेत्ररोगोके इलाजका वर्णन है ।

सलाह-अद्दीनने नेत्र गोलकका बनाया हुआ चित्र

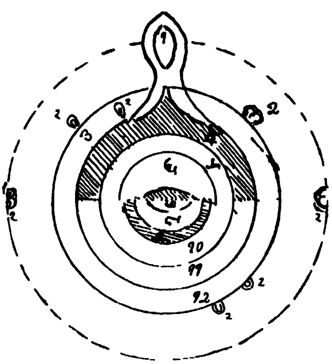

चित्र नं. २:– १ दृष्टिरज्जुका खोखला:, २ स्नायु', ३ सख्त आवरण :, ४ कृष्णपटल., ५ दृष्टिपटल , ६ स्फटिक द्रवपिड :, ७ स्फटिक.' ८ आरक नाइड का आवरण ., ९ अण्डेके सुफेदा जैसा पदार्थ :, १० कोराईड तारका-पिधान., ११ सख्त आवरण., १२ शुक्लास्तर ।

इस ग्रंथके पहले भागमे नेत्रका चित्र दिया है; यह नेत्रका सबसे पहला चित्र है । इस चित्रको बराबर समझनेके लिये यह ध्यानमें रखना चाहिये कि एक तो नेत्रको पीछेसे दो पृष्ठोमे काटनेसे जैसा दिखाई देगा वैसा वह निकाला गया है । दूसरे चित्रका भाग दो पृष्ठोमे काटे हुए वर्तुलके एक चौथाई भागकी तरह दिखाई देगा ऐसा हिर्शबुर्गका कहना है । दूसरे भागमें उस कालमें प्रचलित दृष्टि कार्यकी कल्पनाका भूमितिय चित्र लेखनसे स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है । **सलाह अद्दीन** के पहले इस कल्पनाका स्पष्टीकरण किसीने भी नही किया था ।

३

कारडोव्हा की पश्चिमी खलीफत के वक्तका नेत्रवैद्यक

उमायाद खलीफा अबदूर रहमान को दमास्कससे भाग जाना पड़ा। पहले हम बता चुके हैं कि उसने स्पेन देशके अंडालुसीया प्रान्तमे अपना राज्य स्थापन किया था। इससे इस्लामी साहित्यिक और शास्त्रीय प्रणालीमे नया उपक्रम शुरू हुआ, ऐसा माननेमे कुछ हर्ज नही है। वहा अब अन्य शास्त्रोके साथ वैद्यक शास्त्रका भी अभ्यास जारी हो गया। इस्लामी धर्म के अमलमे सब दर्जेके लोगोमे इस्लामी धर्म और शास्त्र का प्रसार शुरू होने लगा था। इसका असर उनके समयके यहुदी लोगोपर भी हुआ।

इस्लामी सलतनत के पूर्व भागके बगदादी राज्य और पश्चिम भागके कारडोव्हाके इस्लामी राज्योके दो स्वतत्र विभाग होने पर भी दोनोंमे पारस्परिक बौद्धिक व्यवहार कायम रहा था। इसमें खंड न होने का कारण दोनों भागोके धनिक लोग इस कार्यमें खुले दिलसे मदत देते थे। और इसीसे पूर्व भाग की कला और शास्त्र का प्रसार पश्चिम भागमे भी हुआ।

नोवी से बारहवी सदीतक पश्चिम भागके अरब लोगोने यूरोपकी शिक्षा का दर्जा बहुत बढ़ाया। कारडोव्हा के क्रिश्चियन, यहुदी और अरब पडितोने अनेक ग्रथ लिखे। कारडोव्हाके तीसरे खलीफा **अबदुर रहमान** (९१२-९६१) और उनके पश्चातके खलीफा **अल-हकीम** (९६१-९७५) इन दोनों खलीफाओका काल मुस्लिम स्पेनका सुवर्ण काल था। **खलीफा अल-हकीम** के समयमे तत्वज्ञान, शास्त्रीय ज्ञान और वैद्यक शास्त्रका अभ्यास **अंडालुसियाके** विद्यापीठमे शुरू हुआ। इसी कालमें **कारडोव्हा, टोलेडो** और **सेव्हिल** ये शहर पश्चिम यूरोप के शिक्षणके केन्द्र बन गये। उमायाद खलीफाओं की वजहसे शास्त्रीय ज्ञानका रक्षण हुआ, यह स्पष्ट है।

कारडोव्हा के विश्वविद्यालय की स्थापना आठवी सदीमें हुई। और यह शिक्षणका केन्द्र बगदाद जैसा ही मशहूर हुआ। यह शहर मुख्यतया प्रागतिक इस्लामी शिक्षणका केन्द्र माना गया था। और वहांके विद्यार्थियोके बुद्धि के तेजसे वह लोगोके लिये आकर्षणका एक केन्द्र बन गया। इस वजहसे सब क्रिश्चियन मुलकोंके लोग सारासिनिक शिक्षण लेने के लिये वहां जमा होने लगे और यहाके तालीम चाहना विद्यार्थीयोंका दर्जा यूरोप के पंडितोमें बढ़ गया।

कारडोव्हा पश्चिम खिलाफत की राजधानी थी। इसके सिवाय यह धार्मिक और तत्वज्ञानीओका निवासस्थान भी होनेका कारण अंडालुसीया प्रान्तका ज्ञानदीप माना गया था। उसकी जन संख्या इस्लामी अमलके अत्युच्च कालमे दस लाख थी, और पचास बडेबडे रुग्णालय भी यहा बने थे। वहांके कुतुबखानेमे दो लाख पचीस हजार के करीब ग्रंथ थे। कारडोव्हा विद्यापीठ का वैद्यक और तत्वज्ञान समूचे अरबी वैद्यक व तत्वज्ञानमे सर्वश्रेष्ठ माना गया जो अविसेना के तत्वज्ञानसे बिलकुल विपरीत समझा गया था। कारडोव्हा केन्द्र का पश्चिमके क्रिश्चियन और यहुदी लोगोंसे संबध होनेकी वजहसे यहांके प्रकाशित हुए ग्रंथोंमे बहुत कुछ फर्क था। मुस्लिम स्पेनका वैद्यक प्रत्यक्ष देखी हुई बातोंपर रचा गया था, केवल तर्क पद्धतिसेही नही लिखा गया था।

अवेनगुफेट—

पश्चिमी खलिफाके वक्तके ये मशहूर नेत्रवैद्यक—**ऱ्हाजेस** और **अविसेना** के पश्चात नेत्रविज्ञान शास्त्रमे जिनको कुछ मान्यता थी ऐस ये एक मशहूर वैद्य थे । इनको **इब्नूल–माफिद्** वा **इब्न वफेद्ल लछमी** भी कहते थे। इनका जन्म स्पैनिश–अरेबी वशमें सन ९९८ मे हुआ था । ये मशहूर वैद्य होनके साथ साथ राजकार्य धुरंधर भी थे । वे टोलेडोके राजाके वजीर और वहाके रुग्णालयके प्रमुख वैद्य भी रहचुके थे। "**दृगिन्द्रिय की विकृति**" नामका इनका ग्रंथ स्पेन देशमे बहुत सालतक प्रचारमे था; लेकिन अब इस ग्रंथका पता नही लगता। इनके साधारण वैद्यक ग्रंथही विशेष सम्मानित थे। इनकी मृत्यु सन १०७० के करीब हुई होगी ऐसा अनुमान है ।

अव्हेनज़ार ऊर्फ **अबूमेरवान** ऊर्फ **अबदुल मालिक इब्न ज़ुहूर**:–इनको **अयेमिरान** या **अबूमेरान** कहते थे । ये उसवक्तके मशहूर वैद्य और दृष्टिविशारद माने जाते थे । इनका जन्म सेव्हिल शहरके नजदीकके पेन्टाफ्लार गांवमे बारहवी सदीमें मशहूर यहूदी वैद्य और तत्ववेत्ताओके वंशमे हुआ था । इनके पिता तथा दादा भी वैद्य और तत्ववेत्ता थे । ये **ग्यालन**के अनुयायी थे तो भी उन्होने अपनी कल्पक बुद्धिका स्वतंत्र उपयोग भी किया था। उनकी मौलिक किताब का नाम था, **अल–तैसिर** यानी "रोग प्रतिकारक औषधोपचारका ग्रंथ" । ये कल्पक और पूर्णतया आशावादी वैद्य थे । मोतीबिन्दुको बहार निकाल लेनेके बदले उसको भीतर ढकेल देना ठीक होता है, ऐसा उनका मत था । इनका देहावसान सन १२१२ में हुआ ।

अव्हेरास ऊर्फ **अबुलवालिद् महमद्** :—इनका जन्म सन ११२६ में **कारडोव्हा** शहरमे हुआ । ये **अव्हेनजार** के शिष्य और समकालीन मित्र भी थे । इनके पिता तथा दादा न्यायाधिकारी थे, और ये खुद काज़ी भी नियुक्त किये गये थे । सन ११९६ मे **अन्डालूसीया** प्रात के ये सर्वाधिकारी बनाये गये। लेकिन उनके ऊपर कुछ इलजाम आनेसे उनको कारडोव्हासे निर्वासित किया गया। उनको पहले **अनानिसादा** भेजा गया और फिर वे वहासे मोरोक्को को गये जहा उनकी मृत्यु सन ११९८ मे जेलमे हुई।

अव्हेरासने वैद्यकके सिवाय तत्वज्ञान, भाषाशास्त्र और खगोल विज्ञान आदि विषयोपर ग्रंथ लिखे थे। उनके वैद्यक ग्रंथ का नाम **किताब–अल–कुलियात** था। इस किताबका लैटीन नाम **कालिनेट** था, इसमे वैद्यक का साराश दिया गया था । इस किताबके सात भाग थे । दृष्टिविशारदोमे **अव्हेरास** का दर्जा उपर या **अलिबेन** की अपेक्षा नीचा था। लेकिन उनका दृक्शास्त्रका ग्रथ बहुत महत्व का था । नेत्रोसे द्रव पदार्थ बाहार आकर दृश्य पदार्थपर गिरते है, और फिर उनके नेत्रमे लौट जानेसे पदार्थका ज्ञान होता है, इस तरहकी कल्पना उनके पूर्वकालमे प्रचलित थी । इस कल्पनाका उन्होने खंडन किया इससे ये दृष्टिविशारद माने गये थे । उनके ग्रंथका लैटीनमे तर्जुमा पादुआके **बोनोकोसा** नामक ज्यूने किया था ।

अव्हेरासके समयमें ही इस्लामी अमल कम होने लगा, और मुस्लिम राष्ट्रके लोगोंकी बुद्धिमत्ता भी कम होने लगी, धार्मिक दुराग्रह बढने लगे और नैतिक अवनति भी होने लगी। इसी वजहसे उनकी मृत्युके पश्चात बारह सदीके आखिरमें मुस्लिम लोगोमें उनके वैद्यक शास्त्रसंबंधी ज्ञान का लोप हुआ। लेकिन "अव्हेरासने" अरिस्टाटलके तत्वज्ञानके ग्रथोका तर्जुमा किया था, उसका प्रसार स्पैनिश ज्यू लोगोंने किया और उसी कारणसे उनको पश्चिमी खलीफाके बडे अरब शेख माना जाता था।

अलेम्पास ऊर्फ **अबुबेकर-इब्न बाद्जेह**:—ये मशहूर स्पैनिश-अरेबियन वैद्य और कवि थे। इनका जन्म सन ११३८ में हुआ था। उन्होंने औषधियोके गुणधर्मपर लेख लिखे थे, जिसमें नेत्ररोगोपर इस्तेमाल करने लायक औषधियोका उल्लेख किया था। उनका निवास पहले सारागोसामें और फिर सेव्हिल, ग्रानडा और आखिरमे फेज़ शहरमे हुआ था।

हालिफा-बिन-अबिल महसन:—ये अलेप्पोमे वैद्यक का पेशा करते थे। और **सलाह-अद्दीन**के समकालीन थे। उनका नेत्रविज्ञान शास्त्रका ग्रंथ बहुत महत्त्व का था। हालिफा एक आखरीके मुस्लीम लेखक थे। उन्होने अपने ग्रथमें उनके कालतक के सब दृष्टिविशारदो की ओर नेत्रविज्ञान के ग्रथो की फेहरिश्त दी है। उसी ग्रंथमे नेत्रगोलकका सशास्त्र चित्र दिया है; नेत्र की शस्त्रक्रियामे जिन शस्त्रोका उपयोग होता था उनके सशास्त्र चित्र भी दिये थे, और अरबी नेत्रविज्ञान शास्त्रका सारांश भी दिया था। इससे इस ग्रथ का महत्त्व है।

अस-सादिल:—ये अरबी दृष्टिविशारदोमें आखिरी वैद्य थे, जो तेरहवी सदीके आखिरी अर्ध शतकमे हुए। उनका ग्रथ अरबिक भाषाका आखिरी ग्रथ था। इनके ग्रंथ का नाम **दृगिन्द्रिय विकार तथा दृष्टिका इलाज** था। इस ग्रथके पांच भाग थे और हर भागमे कल्पना और उस सबध की सोपपत्तीक क्रिया का वर्णन दिया गया था।

पहले भागमें नेत्रगोलकके शरीर का और उसके घटकों के कार्योंका वर्णन दिया है। दूसरे भागमे सब वैद्यक और नेत्रसंबंधी मूल तत्वोका उल्लेख किया है। तीसरे भागमें नेत्रगोलकके प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले रोग, उनके लक्षण और उनकी चिकित्सा दी है। चौथे भागमे प्रत्यक्ष न दिखाई देनेवाले रोगोका वर्णन और पाचवे भागमे नेत्ररोगमे इस्तेमाल की जानेवाली और अन्य औषधियोंका गुण वर्णन किया है।

पहले और चौथे अध्यायमें दृष्टिकार्यकी तीन कल्पनाओंका उल्लेख किया गया है:— (१) दृश्य पदार्थोमेसे कुछ विशेष *द्रव्य* नेत्रमें घुसता है (२) नेत्रमेंसे पदार्थोकी ओर को दृक्शक्ति जाती है: (३) दृश्य पदार्थ और नेत्र इन दोनोंमेंसे कुछ भाग निकल कर एक दूसरेसे मिल जाता है। **अस-सादिल** को तीसरी कल्पना सम्मत थी; क्योकि उनका मत था, कि नेत्रके इर्दगिर्द का वातावरण पूर्ण साफ होनेसे वह एक प्रकारसे दृगिन्द्रियही बनता है और मस्तिष्कके खोखलेपनसे दृष्टिरज्जुके खोखले का सबंध होनेसे इस खोखले की क्रिया जारी रहती है। इस कल्पनासे यह स्पष्ट होता है, कि **अस-सादिलका अल-हासनसे** सहमत नही था।

अल-सादिलीके ग्रंथकी और भी एक विशेषता है, कि अरिस्टाटलके पश्चात् नेत्रके शरीरका और इन्द्रियशास्त्रका तुलनात्मक विचार अरबी भाषामे उन्होने पहले पहल किया है। इसका वर्णन उनके ग्रंथके पहले भागके छटे अध्यायमें दिया है ।

यहां मध्ययुगीन अरबी नैत्रवैद्यकके विकास के इतिहासका साराश पूर्ण हुआ ।

(४)

मुस्लिम सलतनतके अतिरिक्त युरपके अन्य पश्चिमी देशोंका नेत्रविज्ञान

ग्रीको-रोमन सलतनतका नाश होनेके पश्चात् प्राचीन शास्त्रीय ज्ञानका भी लोप होगया । और यूरोपियन रियासते एक हजार सालतक गाढी नीदमे सोती रही । ऐसेही समय यूरप पर दो आपत्तियां आई जिस वजहसे उनकी निद्रा भग हुई । निद्राभंग करनेवाली प्रथम आपत्ति थी इस्लामी धर्मवालोके यूरपपरके हमले । लेकिन इन हमलोके होते हुए भी ग्रीक ज्ञानकी ज्योतिको अरेबियन सारासिनिक लोगोने किस तरहसे प्रज्वलित रखा और उस ज्ञानको किस तरहसे बढाया इसका वर्णन हम पूर्वही कर चुके है ।

चद रोजके बाद इस्लामी धर्मवालोंको यूरप खड छोड देना पडा, तो भी उनका अमल आफ्रिका खडके उत्तरमेंके इजिप्त, एशिया खडके असीरिया, बाबिलोनिया, फारस और हिंदोस्तानके उत्तरके भागोमे कायम रहा था । अरबी खलीफाओने उनके अमलके प्रथम पाचसौ सालतक अपनी हुकूमत बहुत होशियारीसे चलाई । लेकिन फिर इ. स १०५० के समयमें **सेलज्यूकियन तार्तार** लोगोने हमले करके उन अरबोंको जीतकर उनके ऊपर अपना अमल कायम किया । यद्यपि ये तुर्क लोग इस्लामी पथके थे, तो भी वे स्वभावसे क्रूर होनेकी वजहसे उनके समय शहरोके रहनेवाले इसाइयोपर और पलिस्तीनको जियारतके लिये जानेवाले लोगोपर जुल्म शुरू हुआ और उसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि यूरपके पश्चिम देशोमे मजहबी हरारतकी लहर पैदा हुई । इस लहरको **पीटर हरमिट** नामके धार्मिक मनुष्यका प्रोत्साहन मिलनेसे पलिस्तीनमे धर्मयुद्धका डका बजा । यही दूसरी आपत्ति थी । इस आपत्तिका काल करीब दोसौ साल (१०९६-१२७६) रहा । इतने समयमें कुल आठ लड़ाइया हुई, जिनमे चार बडी और चार छोटी लडाईया थी । इस मजहबी लडाईमे लाखो लोग जानसे मारे गये और सपत्तिका भी बहुत नाश हुआ । यूरपके जागीरदारी अमलसे लोगोंके नैतिक आचरणका ऱ्हास होना शुरू हुआ था, जो इस लडाईसे ज्यादह बढ गया । बुराईमें से भी कभी कभी भली बात निकलती है । इस लडाईसे भी एक अच्छी बात पैदा हुई सो यह, कि शास्त्रीय ज्ञानके सबंधमें यूरपके लोग गाढी नीदमेसे जाग उठे । इस मजहबी लडाईमे जो सिपाही शामिल हुए थे वे अन्य देशोकी मुशाफिरीकी वजहसे चेलकर शास्त्रसंशोधन व अध्ययनकी तरफ प्रवृत्त हुए ।

इस मजहबी लड़ाईके पूर्वही **कान्स्टन्टाईन आफ्रिकन** नामके मशहूर भिक्षुके प्रयत्नसे अरबी शास्त्रीय ज्ञानका प्रसार पश्चिमी यूरपके प्रान्तोमे शुरु हुआ था। **कान्स्टन्टाईन** का जन्म सन १०१८ मे कार्थेजमे हुआ था। इन्होनें कैरोके मदरसोमे शिक्षण लेकर बहुतसे देशोंमे सफर किया। ये "सालरनो" के विश्वविद्यालयमे अध्यापक भी थे। आखिर "सालरनो" के नजदीक काम्पानियाके **मान्टी कासिमके** आश्रममे जा बसे और वही सन १०८५-८७ में उनका शरीरान्त हुआ। मध्ययुगके आखिरतक जनतापर इनका बहुत कुछ असर था। उस समयके लोग इनको पौर्वात्य और पाश्चिमात्य डाक्टर कहते थे। इन्होने बहुतसे अरबी ग्रंथोका लैटीनमें अनुवाद किया। उन्हीमे **लीब्र-दु-आक्युलन्स** नामका एक नेत्रविज्ञान शास्त्रकाभी ग्रथ था। इसके सिवा एक विशेष महत्वकी बात यह है, कि **कैटरेक्ट** यह शब्द इन्होने प्रचारित किया। अरबीमे इस विकृतिको **अल-मा-अन-नाझील फिल ऐन** यानी नेत्रोमें उतरनेवाला पानी (मा यानी पानी) इस नामसे पहचाना जाता था। इसी अवस्थाको लैटिन भाषामे **सफ्युज़िओ** और ग्रीकमें **हायपो कायमा** कहते थे।

मास्टर ज़कारिया:—ये दृष्टिविशारद ग्यारहवी सदीमें "सालरनो" शहरमे रहते थे, और उस कालमें मशहूर थे। इन्होने **कुस्तुन्तुनियामें इमैन्यअल** बादशाहके राज-वैद्य **थिओफायलसके** पास तीन सालतक वैद्यक शास्त्रका शिक्षण लिया था। इन्होने नेत्रविज्ञापर ग्रथ लिखा था जिसके तीन भाग थे। पहले भागमे नेत्ररोगोका निदान और चिकित्सा, दूसरे भागमे रोगोके कारण और खासखास रोगोकी खासखास दवाइया और तीसरे भागमे **औषधी पत्रिकायें-नुसूखे** दिये हैं। इस ग्रथका नाम **लिब्र आक्युलोरम कि व्होकाटूर-सिसिला-सेरा-इद्-ए-सेक्रिटा सेक्रिटोरम** ऐसा था।

बेन वेनुटस आफियस ऊर्फ **बेनव्हेंगुट डी सालेरन:**—ये दृष्टिविशारद बारहवी सदीके मध्यभागमे **येरुशलममे** मशहूर थे। इन्होंने **येरुशलमके** अरब **वैद्यके** पास शिक्षण लिया था। "मोतीबिन्दुको ढकेल देने वाले" वैद्य इस नामसे इनकी यूरपमें ख्याति थी। इन्होंने **प्रैक्टीका आक्युलोरम** नामका नेत्ररोगपर ग्रथ हिब्रु भाषामे लिखा था। इस ग्रथमे ग्रीक और अरबी ग्रथोकी बाते दी थी। इसका लैटीन तर्जुमा भी हुआ था।

पीटर दी स्पानियर्ड:—ये मशहूर दृष्टिविशारद **बेनव्हेंगुटके** पश्चात हुए। इन्होने भी नेत्ररोगोपर ग्रंथ लिखा था, जिसके पहले तीन भागोमें **कान्स्टन्टाईन** तथा **ज़कारिया** आदिके ग्रंथोका सारांश, और चौथे भागमे अनेक औषधियोके नुसूखे दिये थे। येही **इक्कीसवें पोप** नियुक्त हुए।

पीटर दी स्पानियर्डके पश्चात पश्चिम यूरपमें **आरनाल्ड** नामके एक वैद्य और अच्छे लेखक हुए। ये "व्हानोलोव्हा" के बाशिन्दे थे। इन्होने **पोप पंचम क्लिमेन्ट** की अज्ञानुसार नेत्ररोगोपर छोटासा ग्रंथ लिखा जिसमे अरब वैद्य **येसूके** ग्रंथसे नेत्रगोलककी स्वास्थ्यसंबंधी बाते उद्धृत की थी।

तेरहवी सदीमे भिक्षू **फ्रान्सीस राजर बेकन** नामके शास्त्रज्ञ पश्चिम यूरपमे मशहूर हुए। इनका जन्म इग्लदके सामरसेटशायरके परगनेमे **इलचेस्टर** गांवमें सन १२१४ में हुआ।

इन्हीको **डाक्टर मिरा बिलस** भी कहते थे, क्योंकि ये रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, यांत्रिक कला, गणित और तत्वज्ञान आदि अनेक शास्त्रोंमे पारगत थे। इनको दृक्‌शास्त्र और चश्मेके सबधमे भी ज्ञान था। लेकिन चश्मोका शोध इन्होनेही पहले किया या नही इसके बारेमें सदेह है। क्योंकि **फ्लारेन्स**के बाशिदे **अरमातिने बेकन**के पूर्व सन १२८५ में चश्मेका शोध किया ऐसा भी कोई कोई कहते हैं। और **फ्लारेन्स** के **सारविन दी अरमाति** की कबरपर चश्मेका शोध लगानेवाला ऐसा लिखा है।

राजर बेकन के **ओपस मेजस** नामके ग्रंथमे चश्मेके बारेमें जो कुछ लिखा है, उसका सार यह है:—यदि कोई भी मनुष्य काच या तत्सदृश पारदर्शक पदार्थोंके बने हुए गोलकको किताबोके अक्षरोपर, उसका उन्नतोदर पृष्ट अपनी तरफ करके रखे, तो उस मनुष्यको अक्षर बडे दिखाई देंगे। क्योकि गोल पारदर्शक पदार्थोंके कार्य सबधीके पाचवें नियमानुसार पदार्थ बडा मालूम होता है। यह नियम इस प्रकार है: कोई भी पदार्थ गोलकके नीचे लेकिन गोलकके केन्द्रके इसपार यानी स्फटिक काच और उसका केन्द्र इन दोनोके बीचमें रखा जाय और उस स्फटिकका उन्नतोदर भाग देखनेवालेकी तरफ हो, तो उसका कोण बडा होगा और पदार्थकी प्रतिमा बडी होगी, और पदार्थ देखनेवालेके नजदीक आगया है ऐसा मालूम होगा। इसलिये इसका उपयोग वृद्ध लोगोको और क्षीण दृष्टिवाले लोगोके लिये अच्छा होता है। **राजर बेकन**की इस कल्पनाके विवेचनमे एक बात मालूम होती है कि इस कल्पनाका–यानी वृद्ध लोगोंको या क्षीणदृष्टि लोगोंको उन्नतोदर शीशेमे फायदा होता है–सबसे पहला प्रतिशोधक अलबत्ता यही था।

गॉयड शोलियाक:—राजर बेकनके पश्चात् इन्हेही मशहूर शालाकिन माना गया था। इनका जन्म सन १३०० मे फ्रान्स देशके "शोलियाक" गावमे हुआ था। इनका शिक्षण **मान्टपेलियर, बोलोन,** और **पैरिसके** मदरसोमें हुआ था। ये बहुत दिनोतक **लियान्स**के बाशिदे रहे, और वहा शालाकिनका (सर्जन) का पेशा करते थे। **छटे क्लेमन्ट, पंचम अरबान,** और **छटे इनोसेन्ट** ऐसे तीन पोपके ये वैद्य भी रह चुके हैं। इन्होने शल्य तंत्रपर **चिरर्जिया मैगना** और **चिरर्जिया पारवा** नामके दो ग्रंथ लिखे थे। इनके **चिरर्जिया मैगनामें** नेत्ररोगोंके संबंधमे विवेचन किया गया है जिसमे मोतीबिन्दुके (कैटरेक्ट) विषयमें जो कुछ लिखा है उसपरसे उस समयके मोतीबिन्दु सबधके प्रचलित मतका स्पष्टीकरण होता है।

मोतीबिन्दुकी गॉयड शोलियाक की कल्पना:—मोतीबिन्दु यह एक त्वचामे बना हुआ घटक नेत्रमें पैदा होता है। यह घटक कनीनिकाके सामनेकी ओर हो तो उससे दृष्टिकार्य रुक जाता है। यह घटक बाहरके द्रवसे पैदा होकर नेत्रमे उतरता है, जो नेत्रकी ठडक की वजहसे जम जाकर सख्त हो जाता है। यह द्रव तारकापिधान और तारकाके बीचमे, या चाक्षुपजल और स्फटिकमणि इनके बीचमे जम जाता है तब उसका कुछ महत्व नही होता। इस विकृतिकी तीन अवस्थाएँ होती हैं: पहली अवस्था **दृष्टि विभ्रमकी** (इल्यूजन आफ साईट), दूसरी अवस्था **जलवर्षाकी** (फालिंग आफ वाटर), तीसरी अवस्था **जलप्रपात** (कैटरेक्ट)। मेघाच्छन्न आकाशसे गिरनेवाले पानी-मेसे जैसे सूर्य प्रकाश नही आसकता, उसी तरहसे इससे दृक्‌शक्ति रुक जाती है।

हिरानिमस ब्रुन्सवीक—इनका जन्म सन १४२४ में हुआ । इनका शिक्षण **बोलोन, पदुआ** और **पैरिस**मे हुआ था । ये निष्णात शालाकिन थे । मध्ययुगीन कालमे नेत्रमेके धातुओंके कणोकों बाहर निकालनेके लिये इन्होने लोहचुम्बकका या चुम्बक पत्थरका इस्तेमाल किया था। ध्यानमें रखना चाहिये, कि सुश्रुत ग्रथमे भी नेत्र तथा शरिरके अन्य भागोके जखमोसे शल्य निकालनेके लिये **आयस्कान्त** यानी लोहचुम्बकका इस्तेमाल करनेको कहा है । (अनुलोम मनुबद्धमकर्णमनल्पमुखमयस्कान्तेन ।) इजिप्शियन और ग्रीक लोगोको भी लोहेको अपनी ओर खीचनेका लोहचुम्बकका धर्म मालूम था, और वे अजनमे इसका उपयोग करते थे ।

हिरानिमसके पश्चात सन १६२८ मे **फॅम्ब्रिशियस हिलडेनस**ने इसी प्रकारके कार्यके लिये लोहचुम्बकका उपयोग किया था । सन १८४२ में **निकोलस मेयर**ने शुक्ल पटलके जखमपर लोहचुम्वक लगाके नेत्रगोलकका शल्य निकाला था । सन १८७४ मे **बेलफास्टके** बाशिन्दे **म्याकीननने** स्फटिकद्रवपिडमे लोहचुम्बककी नोक घुसाकर शल्य निकालनेका प्रयत्न किया था । सन १८७५ मे **हिर्शबर्ग**ने भी विद्युत लोहचुवकका शोध किया ।

लिओनारडो-दी-व्हिन्सी:—ये मध्ययुगीन कालके आखिरी दृष्टिविशारद थे । ये **फ्लारेन्स**' के बाशिन्दे और वकील के पुत्र थे । इटली देश के ये एक मशहूर चित्रकार और मूर्तीकार भी थे । उत्कृष्ट कवी, शिल्प शास्त्रज्ञ, स्थापत्य विशारद, दृक्शास्त्रज्ञ और इन्द्रिय विज्ञान शास्त्रके भी ये ज्ञाता थे। इनके "नेत्र और प्रकाश" सबधी के लेख हालके दृष्टि विशारदोके लिये मननीय है । **लिओनारडो-दी-व्हिन्सी**ने अपनी **मोना लीज़ा** नामक कलाकृति निर्माण करके "श्रेष्ट कलाभिज्ञ" ऐसा नाम भी कमाया ।

दृष्टिका असली कार्य स्फटिकमणि मे नही, बल्कि दृष्टि पटलमे होता है, यह शोध इस कालमे पहले पहल इन्होने लगाया और दृक्शास्त्रमे विचार क्रान्ति पैदा की । अधियारी सन्दुकमे गिरनेवाली प्रतिमाओके तत्वोका इन्होने नेत्रोकी प्रतिमाओके स्पष्टीकरण के लिये उपयोग किया ऐसा मानते थे । सूर्य के प्रकाशसे चंद्र प्रकाशित होता है, यह शोध उन्हीका है इसमें सदेह नही । **लिओनारडो**के दृक्शास्त्र सबंधके विचार एक जगह नहीं, लेकिन उनके अनेक लेखोंमे बिखरे हुए होनेसे उन्होंने कौन कौन नये शोध किये, इस संबधमें अनेक लोगोंके अनेक मत है । इस वजहसे इस जगह इन विचारोंको हमने एकत्रित किया है ।

प्रकाशकी लहरीरूप कल्पनाके संबधमे निम्न लिखित वाक्य उन्होने दिया है । "पानीमे कंकर डालनेसे जैसे उस जगहसे समकेन्द्रिक वर्तुल बाहर फैलते जाते है, और हवाकी लहरे वातावरणसे वर्तुलाकार फैलती जाती है, उसी तरहसे प्रकाशित वातावरण के हरएक पदार्थ अपनी प्रतिमा या आकारको वर्तुलाकार फैलाकर कुल वातावरणमें व्यापित करती है"। थोड़ासा विचार करनेपर प्रकाशकार्यकी उनकी यह कल्पना प्राचीन लोगों-कीसीही मालूम होती है, जिसमें बतलाया है, कि प्रकाशित पदार्थकी प्रतिमायें नेत्रमें बाहरसे घूसती है और पदार्थोका ज्ञान होता है । **अल-हासन** की कल्पना "कि पदार्थोंसे

प्रकाश बाहर पडता है प्रतिमा नही" इससे अधिक प्रगतिपर है यह हम पहलेही कह चुके है। प्रकाशकी लहरी रूपकी उपर्युक्त कल्पनाका प्रतिपादन दर असल **ह्युजेसने** सन १६७८ में पहले पहल किया था।

लिओनारडोके मतानुसार पदार्थोकी प्रतिमायें नेत्रगोलकके पिछले भागमे उलटी नहीं होती, लेकिन कनीनिकामे या उसके बिलकुल पीछे उलटी होती है। उनका यह भी मत था, कि इन उलटी प्रतिमाओके किरण केन्द्रीभूत होकर प्रतिमा फिर सीधी होती है। ओर ये सीधी प्रतिमायें दृष्टिपटलपर नही, बल्कि स्फटिकमणिके पार्श्वपृष्ठपर या दृष्टि-रज्जुके शीर्षपर गिरती होगी। ये समझते थे कि दृक्कार्यका असली स्थान स्फटिकमणि नही है। उनका यह मत उस समयतकके सब शास्त्रज्ञोके मतसे अधिक प्रगतिपर था इसमे कुछ संदेह नही।

सिर्फ नेत्रविज्ञान शास्त्रकी दृष्टिसे विचार करें तो मालूम होगा, कि **लिओनारडोके** पश्चात् मध्ययुगीन नेत्रविज्ञान शास्त्रकी तवारीख समाप्त हुई।

नेत्रविज्ञान शास्त्रके विकासकी तवारीख जो अबतक दी गई है, उसकी कुछ प्रमुख बातोंकी द्विरुक्ति तो जरूर होगी, लेकिन फिर भी उसका साराही दिया जाता है।

(१) भारत खडके प्राचीन कालमे यानी ऋग्वेदके कालमे भी नेत्रविज्ञान प्रख्यात था। और **सुश्रुतमें** इस शास्त्रका पूरा विचार किया था जिसमे मोतीबिन्दु, अर्म, आदि की शस्त्रक्रिया सपूर्ण दी है।

(२) चीनमें इसापूर्व २६७९ के समय **हु अंग टी बादशाहके** अमलमे नेत्ररोगकी महत्वकी योजना यानी सूचीकी शस्त्रक्रिया का प्रचार था।

(३) असीरिया देशमे ई. पू. २२५० मे **हमूराय** राजवशके समयमे वैद्यक ग्रंथोके बदले कानूनके ग्रंथोमें नेत्रवैद्योका और धर्मगुरुके मत्र और तत्रोका भी उल्लेख मिलता है।

(४) इजिप्तमे नेत्रविज्ञान शास्त्र संबंध की हकीकते धार्मिक वचन, जादूटोना आदि संमिश्र अवस्थामें मिलती है।

(५) इनके पश्चात ग्रीक वैद्यकमें **हिपोक्रिटीजने** नेत्ररोग संबधकी कल्पनाओको धार्मिक अंध विश्वासोसे अलग किया। **अरिस्टाटलने** तुलनात्मक नेत्रविज्ञान शास्त्रका विचार किया। रोमन शालाकिन **सेलससने** नेत्ररोगोकी शस्त्रक्रिया संबधी स्वतत्र प्रणालिया कायम की जो **हिपोक्रिटीजके** विवेचनसे आगे बढ़ी हुई थी। इसके बाद अलेक्झान्ड्रीयन वैद्यक पाठशालाके प्रभावसे ये प्रणालिया सुश्रुतीय ग्रथ के समान हुई थी। **प्लीनी** के समय मे वैद्यक शास्त्रमे या मुख्यतया नेत्रविज्ञान शास्त्रमे कुछ प्रगति नही हुई। लेकिन उसके पश्चात् **रूफस** नामक शास्त्रज्ञने यह शोध लगाया, कि एक ओरकी दृष्टिरज्जु पार होकर दूसरी ओरको जाती है, और स्फटिकमणिको आवरण रहता है।

(६) इसके पश्चात् **ग्यालन** का समय आया। उन्होंने, प्राचीन दृकशास्त्रमे बहुतसी प्रगति की। नेत्रगोलक के शारीर और इन्द्रिय विज्ञानशास्त्रमें इतनी बडी प्रगति की, कि

सोलहवीं सदीतक उसमें कुछ ज्यादह तरक्की नहीं हुई। नेत्रगोलकके विकृत शारीर, चिकित्सा और शस्त्रक्रिया संबंधके उनके शोध **हिपोक्रिटीज** था **सेलसस** के शोधोंसे बढके थे।

(७) मध्ययुगके प्रारंभमें अमिडावासी **ऐटियस** ने उनमें ज्यादह तरक्की की थी। दृकशास्त्र और शस्त्रक्रियामें यद्यपि उनके समय कुछ प्रगति नहीं हुई थी, तो भी विकृत शारीर और चिकित्सा का कार्य **ग्यालन**से बहुत कुछ बढ़कर पूर्णताको पहुँचा था। सत्रहवीं सदीके मध्य कालतक कुछ विशेष तरक्की नहीं हुई।

(८) **ऐटियस** के पश्चात् **पोल**ने सिर्फ शल्य शास्त्रमें तरक्की की।

(९) मध्य युगीन कालके सारासीनके अरबोंके कालमें **राहजेस** ने कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिक्रिया का प्रसार किया। (१०) **अमर**ने मोतीबिन्दुको चूस के निकालनेकी क्रियाका शोध लगाया। (११) **अलि-बेन-ईसा**ने नेत्रविज्ञान शास्त्र पर पहले पहल स्वतंत्र ग्रंथ लिखा। (१२) इनके पश्चात् **अल-हासन** ने दृक्शास्त्र की क्रान्तिकारक कल्पनाओंका प्रसार किया और **ग्यालन** ओर अन्य शास्त्रज्ञोंकी इस संबंध की पिछडी हुई कल्पनाओंका खंडन किया। उन्होंने बतलाया कि प्रकाश पदार्थकी प्रतिमा या उसका आकार नहीं, बल्कि यह एक विसर्जक शक्ति है। और प्रकाशकी किरणें नेत्रसे बाहर नहीं जातीं, बल्कि पदार्थसे नेत्रमें घुसती हैं। (१३) इनके पश्चात् **हालिफा** का काल आता है। यही नेत्रविज्ञान शास्त्रके प्रथम सचित्र लेखक थे। (१४) **अस-सादिली** यही **अरिस्टाटल**के पश्चात् तुलनात्मक नेत्रविज्ञान शास्त्रके पहले ग्रंथ लेखक थे।

(१५) मध्य युगीन कालके पश्चिम यूरपके **लिओनारडो व्हिन्सीने** चश्मेका उपयोग पहले पहल शुरू किया और संसारपर अनन्त उपकार किये।

खंड १ ला

अध्याय ३

अर्वाचीन नेत्रवैद्यक का विकास

नेत्रविज्ञान शास्त्रका विकास इधर हालही की डेढ या दो सदियोंमें खूब हुआ । प्राचीन ग्रीक तत्ववेत्ताओंने इसके पूर्व सैकडों सालमें पदार्थविज्ञान शास्त्र, खगोल-विज्ञान या ज्योतिष शास्त्र, गणित शास्त्र और वैद्यक शास्त्र आदिकी नींव रची । उन्होंने भौतिक तत्वज्ञान का गहन विचार किया था । उनके तर्कज्ञान की वे कल्पनाये आधुनिक तत्वज्ञान की नींव है । **ॲरिस्टाटल** ही इन सब पाश्चिमात्य पंडितोंके मूल अध्यापक थे । उनका कहना यह था कि अनुभव ही ज्ञानकी नींव है । और उससे निकाले जानेवाले अनुमान यदि निश्चित बातोंपर आधारित न हों, तो वे निर्दोष न होंगे । लेकिन बादके विद्वानोंनें **अरिस्टाटल** की इस शिक्षाको छोडदिया । इसीसे शास्त्रकी प्रगति रूक गई, और वह तेरहवीं सदीतक वैसीही पिछडी रह गई ।

इसके पश्चात बहुत सालोंके बाद **लीओनारडो-डी-व्हीन्सी** और **कोपरनिकस** (सन १४७९-१५३९) तथा उनके अनुयायियोंनें भौतिक शास्त्रका पुनरुज्जीवन किया। और सत्रहवीं सदीमें प्रयोग और शास्त्रीय संशोधन व आविष्कार करनेकी प्रथा शुरू हो गई । इससे यह फायदा हुआ, कि प्रत्यक्ष ज्ञान अचूक हुआ और तार्किक कल्पना बराबर है या नहीं यह जांचना संभाव्य हुआ । और इस तरह आधुनिक ज्ञानके आलोक का नव निर्माण जारी हुआ ।

प्राचीन रसायन शास्त्र प्राय: तार्किक स्वरूपका था, न कि अनुभवजन्य प्रयोग के स्वरूपका । प्राचीन कालमें इस शास्त्रका उपयोग व प्रयत्न हलकी धातूसे सूवर्ण जैसी धातूएँ तैयार करनेकी इच्छासे होता था । और इसीको किमिया-रससिद्धि-या अलकेमी कहते थें। लेकिन सोलहवीं सदीमें **पारासेलमस**ने (१४९३-१५४१) प्रतिपादन किया, कि रसायन शास्त्रका उपयोग किमियाके बदले दवाएँ बनानेमें करना आवश्यक है।

यही स्थिति वैद्यक शास्त्र संबंधमें भी थी । ग्रीक या यूनानियोंके बाद इस शास्त्रमें कुछ विशेष प्रगति नहीं हुई । रोगीके इलाजमें जादुटोना या मंत्रतंत्र आदिके प्रयोग मिलाये गये । उनको अलग हटाकर वैद्यक शास्त्रकी नींव प्रत्यक्ष नीरीक्षण और अनुभवजन्य ज्ञानपर अब रची गई, और रोगोंके लक्षण का ज्ञान होनेसे निदान कला भी पैदा हुई । **पारासेलमस** का मत था, कि रोगोद्भव और शारीरस्वास्थ्य का बिगाड इन दोनोंमें कार्य कारण का जरूर कुछ संबंध होगा । इसीसे आगे शरीरकी विविध रस कल्पना का प्रसार हुआ । इस कल्पनाके अनुसार शरीर स्वास्थ्य शरीरके विविध रसोंके समतोलन पर

अवलम्बित रहता है; इसमें बिगाड होनेसे रोगोद्‌भव होता है । यह कल्पना युक्तियुक्त होनेके कारण सबको सम्मत हुई ।

कोआन सांप्रदायके वैद्यलोग रोगोंको नाम न देते थे, इससे उस समय निदान करनेकी क्रियाका अच्छीतरह विकास होना सभाव्य नही हुआ । रोगोंका इलाज करनेमें स्थानिक औषधीय योजना करनेके बदले वे सिर्फ रोगोके लक्षणोंपरही सर्व सामान्य इलाज करते थे । इसी वजहसे उनको प्रत्यक्ष शरीरशास्त्रके ज्ञानकी आवश्यकता मालूम नही हुई । और अलेक्‌जान्ड्राके वैद्यक विद्यापीठकी स्थापना होनेतक शरीरशास्त्रका विकास नही हुआ । वे सिर्फ आरोग्य रक्षण की तरफ ही ध्यान देते थे ।

क्रीडीयन वैद्योंने विकृत शरीरपर विशेष ज़ोर दिया । और वे रोगीकी अपेक्षा रोगचिकित्साकी ही फिक्र ज्यादह करते थे । वे हर लक्षणको एक भिन्न रोग मानते थे, जिसकी वजहसे अनेक कल्पनाओका प्रसार हुआ, और अनेक वैद्यकीय प्रकार भी शुरु हुए । कुछ अन्यान्य लोगोने शरीरकी विविध रस कल्पनाके विपरीत कल्पनाका भी प्रसार किया । इस तरह प्रत्यक्ष नीरीक्षण की प्रथाका प्रसार होनेपर भी **हिपोक्रिटीज**की वैद्यकीय प्रणालीका वैसा विकास नही हुआ, जितना आवश्यक था । और यही अवस्था सैकडो साल तक कायम रही । **ग्यालन**के अनुयाईयोने प्रत्यक्ष नीरीक्षण की कला की तरफ ध्यान देना भी छोड दिया और इसीसे वैद्यककी प्रगति पाश्चिमात्य देशोमे कुछ कालतक रुक गई । यही परिस्थिती वैद्यक शास्त्रके पुनरुज्जीवन के समयतक (१४ वी सदीतक) कायम रही थी । इससे यह स्पष्ट हो सकता हैं, कि प्राचीन कालमे एक तो राजनीतिक दासता और दूसरे शास्त्रीय प्रयोग, अनुभवजन्य ज्ञान तथा संशोधक के अभावमे वैद्यक शास्त्रकी प्रगति रूक गई थी ।

१५ वी सदीमें **लीओनारडो-डी-व्हिन्सी** और १६ वी सदीमें **विसेलियस**ने अर्वाचीन शरीर शास्त्रका प्रसार किया । १७ वी सदीमे **हार्वे**ने रुधिराभिसरणके प्रयोगसे इन्द्रिय विज्ञान शास्त्र की स्थापना की । फिर १८ वी सदीमे **मारग्यागनी**ने (१७६१) विकृत शरीर की नीव रची । शरीरशास्त्र, इन्द्रिय विज्ञान शास्त्र और विकृत शरीर शास्त्र ये तीन शास्त्र आधुनिक वैद्यक शास्त्रके असली आधार स्तंभ हैं ।

व्हिसेलियस के सस्मरणीय शरीरके ग्रंथमे नेत्रगोलककी रचनाके सबंधमें बहुतसी बातें दी गई है जो उस समय प्रचलित थी । उसमें स्फटिकमणि, दृष्टिपटल, और दृष्टिरज्जु के संबंधमे कुछ नया उल्लेख पाया जाता है जो इस तरह है : (१) नेत्रगोलकके स्फटिकमणिसे, उन्नतोदर शीशेके जैसे, पदार्थ बडे मालूम होते हैः (२) दृक्‌शक्तिका कार्य दृष्टिपटलपर अवलम्बित होता हैः (३) अधे नेत्रकी दृष्टिरज्जु बारीक हो जाती हैः ।

व्हिसेलियसके पश्चात्‌के नेत्रवैद्योने नेत्रगोलकका च्छेदन और पृथक्करण करके और उनके रेखाचित्र तैयार करके नेत्रगोलकका शारीर ज्ञान बढाया । लेकिन यह प्रगति १७ वी सदीके मधयकालतक विशेष नही हुई । इनके बाद सूक्ष्मदर्शक यंत्रका प्रसार होनेसे इस शास्त्रकी प्रगति जोरोसे होने लगी ।

ल्युवेनहाकने (१६३२–१७२३) सूक्ष्मदर्शक यंत्रकी सहायतासे स्फटिकमणिके तन्तु, तारकापिधानकी तहें और दृष्टिपटलके रॅाड और कोनकी तहें आदिका वर्णन किया ।

सन १७५५ में **झिन**ने नेत्रगोलक के शरीरपर स्वतंत्र पहला लेख लिखा। यही इस विषय पर संपूर्ण लेख था। नेत्रगोलकके शरीरके प्रागतिक ज्ञानके रुग्णविषयक योजनामें और शालाक्य तंत्रमें कुछ विशेष फायदा नही पहुंचा।

नेत्रगोलकके शरीरके ज्ञान की वृद्धिके पश्चात् दृगिन्द्रिय विज्ञान शास्त्रकी प्रगति शुरु हुई। सन १६०० में **केपलर**ने दृगिन्द्रियके दृक्शक्तिकी नीव रची। लेकिन यह ध्यानमें रखना चाहिये कि इसके तीन सदिया पहलेही चष्मोंका उपयोग किया जाता था। इसके पश्चात् १७ वी १८ वी सदीयोमें **स्किनर, म्यारिऑट, ह्युजिन्स** और **पाटरफिल्ड** आदि शास्त्रज्ञोने दृगिन्द्रियके दृक्शक्तिको बहुत बढाया। ये सब लोग भौतिक शास्त्रज्ञ होनेसे दृष्टिविशारद लोगोने इनके कार्यके तरफ दुर्लक्ष किया।

अर्वाचीन नेत्रवैद्यकके जो तीन आधारस्तभ, यानी नेत्रगोलकका शरीर, दृगिन्द्रिय विज्ञानशास्त्र और नेत्रगोलकका विकृत शरीर है, उनमेसे पहले दो के संबंधमें ऊपर कहा जा चुका है। तीसरा आधारस्तंभ यानी नेत्रगोलकका विकृत शरीर शास्त्र की नीव **मारग्यागनी**ने सन १७६१ मे रची। उस सालमें उन्होने नेत्रगोलकके **विकृत शरीरका परीक्षण** नामक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया। उसके बाद सन १८०८ में **बारड्रापने** ही नेत्रविकृत शरीरपर एक निबध प्रकाशित किया। उसका महत्व इस आधुनिक कालमें भी बहुत कुछ माना जाता है। नेत्रगोलकके शरीरशास्त्रमें और इन्द्रिय विज्ञान शास्त्रमें यद्यपि बहुत प्रगति हुई, तो भी उससे रुग्णविपयक कुछ फायदा नही हुआ क्योकि साधारण वैद्योंका नेत्रवैद्यक और उनकी शस्त्रक्रियाके संबंधमे विशेष अच्छा मत नही था। १५ वी १६ वी सदीयोंमे नेत्ररोगोकी चिकित्सा सिर्फ दृष्टिविशारदही करते थे। लेकिन सोलहवी सदीके आखिरमे शल्यतंत्रमें नेत्ररोगोंका उल्लेख होना शुरू हुआ। **बारस्टिक**ने सन १५८३ मे जर्मन भाषामे और **गिलेमो**ने फरेच भाषामे सन १५८५ मे स्वतंत्र ग्रंथ लिखे थे। फिर आहिस्ते आहिस्ते नेत्ररोग शल्य तत्रकाही एक भाग माना जाने लगा।

इनके बाद नेत्रविज्ञान शास्त्रका नया युग शुरू हुआ। १७०९ में **ब्रिसो**ने, पहले स्फटिकमणि को नेत्रगोलकमे ही ढकेल के फिर नेत्रका छेदन किया और यह बात सप्रमाण सिद्धकर दी, कि नेत्रमे ढकेला हुआ पदार्थ अपारदर्शक स्फटिकमणिही होता है, और न कि कनीनिका के पृष्टपर जमा हुआ द्रव पदार्थ। **ब्रिसो** का यह शोध बहुत क्रान्तिकारक था। सदीयों तक स्फटिकमणिको नेत्रगोलक के भीतर की ओरको ढकेल के दृक्शक्तिको सुधारनेकी प्रक्रिया जारी थी। लेकिन भीतर क्या ढकेला जाता था। इसकी किसीको कल्पना नही थी।

नेत्ररोगोंपर असली नीरीक्षण और अनुभव पर रचे हुए दो ग्रंथ—एक सन १७०७ में **मैट्रजान**ने और दूसरा सन १७२२ मे **सेन्ट आयव्हिस** ने प्रकाशित किये थे। इन ग्रंथोंके अनेक भाषाओंमे अनुवाद हुए है। स्वयं इंगलेड मे भी इस विषय की प्रगति बहुत धीरे धीरे हो रही थी। १८ वी सदीके आखिरमे अंग्रेज शालाकिनोंका ध्यान इस विषय पर खीचा गया।

१८ वी सदीमें नेत्ररोगोके ज्ञानमें अनुभवजन्य ज्ञान की और नीरीक्षण की बहुत भरती हुई। लेकिन सबसे महत्व की बात यह थी, कि **डेव्हियल**ने सन १७४६ में मोती-

बिन्दुको नेत्रगोलकके बाहरी ओरको निकाल लेनेकी क्रिया शुरू की। मूलमें यह कल्पना थी कि शरीरके विविध रसोके समतोलनमें बिगाड होनेसे शरीर स्वास्थ्य का बिगाड होता है। नेत्रके अनेक प्रकारके अभिष्यन्द एक दुसरेमें मिल गये थे, उसके बदले अब उनका व्यवस्थित वर्गीकरण हुआ। सोजाकजन्य-पीबदार प्रमेह बद होनेके बाद पीबदार मेहज शुक्लास्तर दाह अभिष्यन्द-पैदा होता है यह बात पहले पहल **सेन्ट आयव्हिसने** बताई। १८ वी सदीके आखिरमें **वेबरने** यह सिद्ध किया, कि शुक्लास्तर कोषको प्रत्यक्ष संसर्ग होनेसे प्रमेहजन्य शुक्लास्तर दाहकी उत्पत्ती होना संभाव्य है। इस लिये इन रोगियोके कपडोको बहुत सावधानीसे हाथ लगाना चाहिये। लेकिन **स्कारपा** और **बीअर** नामक मशहूर शालाकिनोंका मत यह था, कि सोजाक के स्राव आदि नेत्रोमें जानेसे दाहज क्रिया सौम्य तरह की होती है। और यही बात सन १८२० मे **वेबरने** सप्रयोग सिद्ध करके बताई।

इतने सालोतक शरीरके विविधरस की कल्पना कैसी प्रचलित रही यह आश्चर्य की बात है। हजारो बरस तक इस कल्पनापर वादविवाद होकर आखिरमे उन्नीसवीं सदीमे इस कल्पना का खंडन हुआ।

नये पैदा हुए बालकके अभिष्यन्द का महत्त्व उसके आवर्तन और वह पूयप्रमेहजन्य दाहसे होता है इस संबंधका लिखाण सबसे पहले सन १७५० में लिखा गया था। पोथकी की पूरी कल्पना पाश्चात्य लोगोको उन्नीसवी सदीके प्रारभमे हुई। लेकिन आर्यावर्त, चीन और ग्रीस देशोके प्राचीन वैद्योंको ईसा शकके पूर्वही थी यह बात मालूम थी यह हम पहले ही कहचुके है। पोथकी के सूक्ष्म जन्तुका शोध जपानी (वैद्य) **डा. नोगचीने** हमी हालही में किया है। **तारका दाह** और उसके अभिष्यन्द के निदान का पूरा और निश्चयात्मक वर्णन, व्हियेना साप्रदायके शास्त्रज्ञ **श्मिडट** और **बीअरने** उन्नसवी सदीके शुरुआतमे किया। इससे यह स्पष्ट होता है, कि रुग्णविषयक नये नये आविष्कार निश्चयात्मक रूपसे धीरे धीरे हो रहे हैं। सन १८३४ मे नेत्ररोगोंपर एक अत्युत्तम ग्रंथ **मॅकंझीने** प्रसिद्ध किया।

उन्नीसवी सदीमें अति उच्च कल्पना शक्तिके जो शास्त्रज्ञ पैदा हुए उन सब लोगोंमें **थामस यंग** अग्रगण्य थे। उन्होने अन्य शास्त्रोमे भी कार्य किया था। उनके नेत्रविज्ञान शास्त्रके प्रमुख कार्यकी वजहसे दृकशक्तिके संबंधका लोगोंको पूरा ज्ञान हुआ। इनके पश्चात् पाव सदीमें **परकंजीने** इस विषयमे बहुत कुछ तरक्की की और उनके पश्चात पाव सदीमें **हेल्महोल्टझने** महत्व का कार्य किया। उन्नीसवी सदीके पूर्वार्धमे सूक्ष्म दर्शक यंत्रकी सहायतासे नेत्रगोलकके घटकोके सूक्ष्म शरीर तथा विकृत सूक्ष्म शरीरके ज्ञानमें ज्यादह उन्नती हुई।

इसी सदीमे रासायनिक पृथक्करणसे कनीनिका विस्तृत करनेवाले और आकुंचन करनेवाले अनुक्षार द्रव्योंका शोध होनेसे इस ज्ञानमें और भी तरक्की हुई। **बेलाडोना** औषधीका ज्ञान सोलहवी सदीके शुरुआतमे ही हुआ था; और कुछ नेत्ररोगोंपर उसका इस्तेमाल भी किया जाता था। लेकिन सन १८२१ में **अट्रोपीन** इस क्षार सदृश अनुक्षारका शोध होनेसे उसका नेत्रोंपर किस तरहका असर होता है, इसका अचूक ज्ञान होने लगा। सन १८३१ में **पोट्याशियम आयोगईड** और सन १८३४ **फिनाइलका** शोध

हुआ। सन १८३३ में **हायोसिनामिन**के अनुक्षारका शोध लगाया गया। सन १८५५ में **कोकेन**का शोध और सन १८६४ में **एसरीन** या **फायसोस्टिगमीन**का शोध लगा। सन १८७५ मे **पायलोकारपिन** और सन १८७९ मे **होम्याट्रापिनका** आविष्कार हुआ।

एक समय ऐसा था कि जब अन्य वैद्यराज दृष्टि विशारदोको तुच्छताकी दृष्टिसे देखते थे। इतनाही नही बल्कि उनके साथ सामाजिक व्यवहार भी करनेको तैयार नही थे। लेकिन उन्नीसवीं सदीके पूर्वार्धमें इस परिस्थितिमें फर्क हुआ और कुछ वैद्य लोग और शालाकिन नेत्रविज्ञान शास्त्रमें प्रत्यक्ष भाग लेने लगे।

उन्नीसवीं सदीके पूर्वार्धमें नेत्रविज्ञान शास्त्र की प्रगति पूर्वलिखित बातोमे हुई, इसमें कुछ संदेह नही। लेकिन उसके साथसाथ यह निश्चीत है, कि साधारण वैद्यक और शल्य शास्त्र की प्रगतिसे और भी उत्तेजन मिला। वैद्यक और शल्यशास्त्र की भिन्न भिन्न अवस्था-ओंके उदाहरणो के नीरीक्षणसे सार्वत्रिक नियम बनाना मुष्किल है। इसलिये **डा. लुईस** की सुचना है, कि रोगोंके कारण ओर उनके औषधीय उपायका अभ्यास च्यौरेवार विवरणा-त्मक खानापुरीकी या आकडे शस्त्रीय पद्धतिसे करना आवश्यक है। अन्य शास्त्रोके समान इस शास्त्रमे भी तर्क पद्धति की आवश्यकता है। लेकिन साथमें अचुक नीरीक्षण तथा काफी प्रयोग की कसौटीकी भी जरूर होती है।

उन्नीसवी सदीके मध्य भागमें शास्त्रोकी जितनी प्रगति हुई, उतनी प्रगति, **ग्यालिलियो** और **न्यूटन** के कालको छोडकर और दूसरे किसी भी कालमे नही हुई थी। नेत्रविज्ञान शास्त्रके विकासमे इस कालमें इन शास्त्रज्ञोकी एक परम्पराही बनी गयी थी। **हेल्महोल्टझ** भौतिक शास्त्रज्ञ और इन्द्रियविज्ञान शास्त्रविशारद थे। नेत्रान्तरगदर्शक यंत्र उनसे जगत्को मिली हुई एक बडी न्यामत थी जिसकें लिये दृष्टिविशारदोके साथ साथ ससार हमेशा उनके ऋणी रहेंगे। **डान्डर्स** इन्द्रियविज्ञान शास्त्रज्ञ और दृष्टिविशारद थे। उन्होने वक्रीभवन विषयको इतना आसान बनाया, की वह अन्य वैद्यो की भी समझमे आसानीसे आता है। इनके सिवाय **बोमन** (लंदन), **आर्लेट** (प्राग), **डेसमार** (पैरिस) **आलफ्रेड ग्राफ** ये सब इसी परम्परामें शामिल थे। **फान ग्राफ**ने नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रका उपयोग रुग्णविषयक परिक्षामे किया और उसका प्रचार किया। **हेल्महोल्टझ**ने अपने यंत्रकी खबर सबसे पहले सन १८५१ लोगोमें प्रसृत की। लेकिन **कारटन जोन्स** का कहना था, कि **हेल्महोल्टझ** के पहले सन १८४७ में **बाबेज**ने इस तरहका यंत्र तैयार किया था।

नेत्रविज्ञान शास्त्र की प्रगति इतनी जल्दी होनेके दो कारण थे। एक तो यह, कि **फान ग्राफ, हेल्महोल्टझ, डान्डर्स** जैसे मशहूर कल्पक शास्त्रज्ञ पैदा हुए, और दूसरे नेत्रविज्ञान शास्त्रकी तरफ प्रेमसे देखनेवाले वैद्य इस शाखामें काम करने लगे। नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे नेत्ररोगोंकी तसबीरे दिखाई पडनेसे उनकी स्पष्ट कल्पना होने लगी। इतनाही नही बल्कि उसकी सहायतासे अन्य शारीरिक व्याधिया तथा इन्द्रियोंके रोगोका नेत्ररोगसे किस तरहका संबंध होता है, यह बात भी स्पष्ट मालूम होने लगी। इस यंत्रके शोधसे नेत्र और दृष्टिकी परीक्षा अच्छी तरहसे करना संभाव्य हुआ। दृक्शक्तिकी तीव्रताका नाप और परीक्षा, परिधिदृष्टि, केन्द्रस्थ प्रकाश ज्ञान, दृक्क्षेत्रका नापन, द्विधादर्शन नापन इन सब

बातोंके परीक्षण अचूक होने लगे । और नापन करनेवाले यंत्रोका शोध लगा और उनका उपयोग अधिक मात्रामे होने लगा ।

प्राचीन दृष्टिविशारदोंको दृक्क्षेत्रकी कुछ अस्पष्ट कल्पना थी । लेकिन **थामस यंगने** सन १८०१ में दृक्क्षेत्रको नापकर उसके विस्तार और मर्यादाका अचूकवर्णन करनेमे पहला कदम उठाया । सन १८२३ मे **परकंजीने** दृक्क्षेत्र नापनेके यंत्रका शोध किया । और यह शोध विशेष महत्वपूर्ण था । केन्द्रस्थ दृष्टि यानी प्रत्यक्ष दृष्टि और परिधि दृष्टि यानी अप्रत्यक्ष दृष्टिके फरकोंका वर्णन उन्होंने किया । दृक्शक्ति, केन्द्रसे परिधिकी ओरको किस तरह कम होती जाती है, परिधि क्षेत्रकी सापेक्ष रंगज्ञानकी शक्ति कितनी होती है, आदि बातोंका उन्होने वर्णन किया है । पाव सदीके बाद इन सब बातोंका उपयोग **फान ग्राफने** अपने रुग्णविषयक परीक्षाके कार्यमे किया ।

यहां एक बात कहना आवश्यक है, कि नये आविष्कृत सब यंत्रोका जिस तरह पूरा उपयोग दृष्टि विशारदोने किया, उतना उपयोग अन्य शास्त्रोमे नही हुआ । इसका उदाहरण यह दिया जा सकता है, कि **ग्यालिलियोने** सोलहवी सदीके आखिरको उष्णता मापक यंत्रका शोध किया । और उसके पश्चात **सान्टोरिनीने** मुखकी उष्णता नापनेका यंत्र निकाला । लेकिन आश्चर्य की बात है, कि उसके अढाईसौ सालके लम्बे अरसेके बादही इन विषयोंपर ग्रंथ प्रकाशित हो सके । सिर्फ नये यंत्रोंका शोध करनेसे कुछ नही होता । उसके प्रसार होनेके लिये अन्य लोगोको चाहिये, कि वे उसका उपयोग करनेके लिये तैयार हो । ठीक और अचूक यंत्रोकी सहायतासे सूक्ष्म नीरीक्षण अचूक हो सकता है, यह बात नेत्रविज्ञान शास्त्रके विकासकी तवारीखसे जैसी स्पष्ट होती है वैसी वह अन्य किसी भी शास्त्रकी तवारीखसे नही होती । **वायर मिचल** का मत है कि अचूक यंत्रके उपयोगसे प्रयोग करनेवालोको ही नया ज्ञान प्राप्त होता है, ऐसा नहीं बल्कि उसके सहकारियोंको भी उससे फायदा मिलता है । इन यंत्रोकी सहायतासे अपने प्रत्यक्ष इन्द्रियोको जो बाते सदियोसे अगम्य थी, उनका आसानीसे अचूक नीरीक्षण करना इन यंत्रोंके शोधनसे संभाव्य हुआ है ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रसार होनेके पश्चात्के पाव शतकमें नेत्रविज्ञान शास्त्रमें अच्छी प्रगति हुई । **फान ग्राफ** और उनके सांप्रदायके लोगोंने इस कालमें अनेक मासिक पत्रों और निबंध आदि लेखोमे इस शास्त्रका सार्वत्रिक प्रसार यूरप भरमें किया । अनेक रोगोंका नया वर्गीकरण किया । उनकी कारण मीमांसा निश्चित करके अन्य शारीरिक या इन्द्रियोकी व्याधियोसे उनका संबंध भी जोडा ।

उन्नीसवी सदीके तीसरे भागमें जो उत्साह दिखाई पड़ता था, वही आखिरके भागमें भी कायम रहा । इस कालमे परीक्षा करनेके नये नये मार्गोका प्रसार हुआ । इसी कालमे सूक्ष्मजन्तु शास्त्रका उपयोग शुरू हुआ । वक्रीभवन दोष अच्छी तरहसे जांचनेके लिये, स्कायास्कोपी यानी दृष्टिपटलके अप्रकाशित भागकी छाया की गति की सहायतासे परीक्षण करनेकी प्रथा शुरू हुई । **जव्हालके** आफथालमामिटर—नेत्रनापन यंत्र का प्रचार शुरू हुआ । जन्तुघ्न और रोगाणुरहित (एसेप्टिक) दोनो तरहके उपाय शुरू हुए ।

क संज्ञाशून्यता करने के कोकेनके धर्म का शोध लगा और उपयोग भी शुरू हुआ। शास्त्रकी अन्य शाखाओंकी प्रगतिका असर नेत्रविज्ञान शास्त्रपर भी हुआ, जैसे कि कके परीक्षणसे दृष्टिविशारदोको उसके दृष्टिके केन्द्रोका तथा दृष्टिरज्जु या चाक्षुष तन्तुओंके मार्गका बोध हुआ। अंधत्व प्रतिबधक योजना इसी समय शुरू हुई। क्रेडीकी योजना का समावेश होता है।

उन्नीसवीं सदीके मध्य कालके बाद नेत्रविज्ञान शास्त्रका जो चमत्कृति जनक विकास उसके असली कारण ये हैं कि इस समय अचूक यत्रोका उपयोग होने लगा है। ही साथ अध्यापकोंकी सशोधन वृत्ति तथा भौतिक और प्राणिशास्त्रके विकासोका शास्त्र और अन्य शास्त्रोंकी शाखाओंको उत्तेजन भी मिल रहा है। इससे यह स्पष्ट ' वैद्यकशास्त्र और शल्य शास्त्र की शाखाओसे नेत्रविज्ञान शास्त्रका विकास नही हुआ र न भौतिक, रासायनिक और गणित शास्त्रोंसे भी। बल्कि इसके निकासमे अचूक करनेवाले नये नये संशोधित यत्रोका ही बहुत कुछ उपयोग हुआ है।

अब वीसवी सदीका पुर्वार्ध क़रीब करीब ख़तम हुआ ही। लेकिन लगभग ४०-५० इस अवधिमे तारकापिधानका कलम करना, और नागूचीके पोथकी सबधी शोधको र कहना पड़ता है कि नेत्रविज्ञान शास्त्रमे कुछ महत्त्व पूर्ण शोध नही किये गये। ा नया वर्गीकरण भी किसीने नही बनाया। सिर्फ पिटयुइटरी ग्रथी की विकृतिसे षण क्रियाका बिगाड होनेसे, या जीवन सत्वोके अभावसे पैदा होनेवाली विकृतियो उल्लेख किया गया है।

इस काल की महत्वकी प्रगति यही कही जा सकति है, कि निदान करनेमे और सा करनेमें "क्ष" किरणोंका उपयोग अब होने लगा है। तारकापिधान की जाच ाले सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायतासे जिन्दी अवस्थामेंही रोगीके नेत्रगोलकके सामनेके की विकृत अवस्थाओंकी प्रत्यक्ष जांच करना संभाव्य हुआ है। नेत्रान्तरंगदर्शक यत्रमे ब बहुतसे नये सुधार हुए हैं। परीक्षण ज्यादह अचूक होता है। प्रकाश परिवर्तनसे ली तकलीफें भी अब मिट गई हैं। निदान व इलाजमे भिन्न भिन्न रगोके प्रकाश का उपयोग आजकल किया जाने लगा है। लाल रग रहित प्रकाश, या एकवर्णी का उपयोग करना शुरू हुआ है। नेत्रोंके गोलापायन (स्फेरिकल अबरेशन) और ेपको (क्रोम्याटिक अबरेशन) सुधारना संभाव्य हुआ है।

नेत्रगोलक के प्रत्येक घटक की पोपण क्रिया, उसके चाक्षुषजलकी रासायनिक रचना ा सप्रयोग सशोधन जारी है। इससे मोतीबिन्दु या कांचबिन्दु के भिन्न भिन्न प्रका- ज्ञान होगा ऐसा मालूम होता है। और भिन्न भिन्न प्रकारकी किरण विसर्जन शक्तिके : होनेवाले परिणामोंका सशोधन भी जारी है। नेत्रगोलक का शरीर, इन्द्रियविज्ञान, द्धि और विकृत शरीरके गूढ़ प्रश्नोंका संशोधन करना ही सब संशोधकोका उद्देश्य है।

हालका युग यांत्रिक युग है ऐसा माना जाता है। लेकिन उसके साथ साथ यह ी उतनीही सत्य है, कि मनुष्यके श्रम और दुःख कमती होनेके बदले ज्यादह बढ

गये हैं। नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रमें ही अचुक यंत्रोका शोध हुआ है। और इनके वृद्धिका रोगी तथा दृष्टिविशारदों को फायदा मिलता है।

ज्ञान की वृद्धि जिस प्रमाणमें बढती जा रही है उसी प्रमाणमें अज्ञानके दृश्य भी ज्यादह स्पष्ट होने लगे हैं। कूट प्रश्न ज्यादह कूट जैसे भासमान होते हैं। इन्द्रियोंका पोषण और उनको दुरुस्त करनेके लिये इस्तेमाल किये हुए बाह्य पदार्थ, या उनके भीतरीके पदार्थोंकी पेशिघटक और उनके जीवनरस पर होनेवाली प्रतिक्रिया, इनके संबंधोंके प्रश्न कूट ही रहे हैं। इनका संशोधन करनेवाले इन्द्रियविज्ञान शास्त्रज्ञ, विकृत शारीर शास्त्रज्ञ और जीवनशास्त्रज्ञ लोगोंकी सहायताकी ऋणविषयक संशोधन करनेवाले लोगोंको जरूरी होती है। इसी वजहसे विद्यापीठीय प्रयोगशाला और चाक्षुष संस्थाओंकी वृद्धि होना जरूरी है। इनके पारस्परीक सहकारसे शास्त्रय शोध होंगे और फिर नेत्रविज्ञान शास्त्रमें ज्यादह प्रगति होनेकी अपेक्षा है।

खंड द्वितीय

अध्याय ४

रोगी के नेत्रकी परीक्षा

नेत्रपरीक्षा का अनुक्रम

नेत्रपरीक्षा दो कारणों से की जाती हैं। नेत्ररोगका निश्चित निदान करना और नेत्रकी वक्रीभवन अवस्थाकी परीक्षा करना। नेत्रकी परीक्षा दिनमें सूर्यप्रकाश और अंधेरेमें दीप प्रकाशकी सहायतासे होती है। नेत्रपरीक्षामें निम्नलिखित मार्गोंका अवलंबन करना श्रेयस्कर है। प्राचीन **वाग्भट** का वचन देखिये:

दर्शन स्पर्शन प्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणाम्। रोगनिशानं प्राग्रूप लक्षणोंपया त्रिभिः॥

दर्शन यानी प्रत्यक्ष नीरीक्षणसे नेत्रोंका व्यापार तथा रंगरूप नैसर्गिक है या नहीं यह देखना। स्पर्शन यानी उंगलीयोंसे दबाके जाँचना। रोगी की कौटुंबिक अवस्था, तथा उसकी जन्मजात, आनुवंशिक और संपादित व्याधियोंके इतिहास की खोज करना, सुरापान, धुम्रपान, या अन्य आदतें तथा धंधा आदिका विचार करना, ये सब बातें प्रश्नमें आती हैं। उन्नतोदर शीशेसे देखना और नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र की सहायतासे नेत्रान्तरंग देखनेसे निदान निश्चित होता है।

रोगी की सामान्य परीक्षा

नेत्ररोग कुछ शारीरीक व्याधियोंसे शुरू हुआ है या और किसी कारणसे यह निश्चय करनेके लिये रोगीकी शारीरिक पूर्ण परीक्षा करनी आवश्यक है। टयुबरकल, या मज्जा-तन्तुगत व्याधिओंका तलाश करना, पेशाब तथा रक्त की परीक्षा करना वगैरासे भी बहुतसी बातें ज्ञात हो जाती हैं। संधिवात या उपदंश हुआ था या नहीं, इसका तलाश करना जरूरी है। **वासरमन** या **फान परकिट** प्रतिक्रिया को देखनेसे उपदंश का और **कामेट** की प्रतिक्रियासे टयुबरकल का तलाश होता है, लेकिन कामेट की प्रतिक्रियामें कभी कभी धोखा भी होता है। यह बात ध्यानमें रखना चाहिये, कि **कामेट** की प्रतिक्रियामें शुक्लास्तर कोषमें टयुबरक्युलिनका घोल डाला जाता है, जिससे कभी कभी उसकी प्रतिक्रिया तीव्रतर पाई जाती है, और फिर शुक्लास्तर का दाह या तारकापिधान का दाह या क्षत पैदा होकर कुछ मिसालोंमें अंधत्व भी पैदा होता है।

नेत्रकी बाह्य परीक्षा:—रोगीकी सामान्य परीक्षा करनेके बाद दोनों नेत्रों की जाँच करनी चाहिये। दोनों नेत्रोंमें कुछ फर्क तो नहीं है, यह बात इससे मालूम हो जाती है। चेहरेके दोनों अंग समान हैं या नहीं यह बात भी ध्यानमें आ जाती है। नेत्र एक है या दो, नेत्रगुहामें नेत्र सामनेकी ओरको उभरे हुए हैं या अन्दर नेत्रगुहामें घुस गये है

नेत्र सीधे हैं या तिरछे हैं, नेत्र फूले हैं या नहीं और अगर हों तो उनकी सूजन सादी है या दाहजन्य है, अर्बुद या क्षत है या नहीं, इन सब बातों को देखना जरूरी है।

१ नेत्रगोलक और नेत्रगुहाका पारस्परिक संबंध

नेत्रगोलक नेत्रगुहामें सामनेकी ओर ज्यादह उभरा हुआ होगा, या आपसेआप स्थानभ्रष्ट हुआ दिखाई देगा और नेत्रगोलक नेत्रगौहिकपट (सेपटम आरबिटेल)–के बाहर आनेसे नेत्रगुहा खोखली दिखेगी। (यह ख्यालमें रखना चाहिये कि कोई कोई लोग स्वेच्छासे नेत्रगोलकको नेत्रगुहाके बाहर निकाल सकते हैं।) नेत्रगोलक नेत्रगुहाके सामनेकी ओरको उभरा हुआ जब दिखाई पड़ता है तब उस अवस्थाको **पुरसृत नेत्रगोलक** (एक्सआफथालमस) कहते हैं। यह अवस्था **ग्रेव्हज** या **बासडो** की विकृतीमें, या नेत्रगोलक के पिछले भागमें अर्बुद या दाहजन्य अवस्था या रक्तस्राव पैदा होनेसे दिखाई पड़ती है। नेत्रगुहामें नेत्रगोलकके पीछे कुछ शल्य रहा हो, तो भी यह पुरसृत अवस्था प्राप्त होती है। पुरसृत अवस्थाका बराबर **प्रमाण** दोनों नेत्रोंकी तुलनासे या **हरटल**के एक्सआफ–थालमामिटरसे मालूम हो सकता है। साधारणतया नेत्रगुहाके प्रवेश द्वारकी ऊपर की किनारसे नीचेकी किनार को सीधी पट्टी लगाई जाय, तो वह तारकापिधानके सामनेके पृष्ठभागको स्पर्श करती है याने स्पर्शज्या होती है। पुरसृत अवस्थाका कारण अर्बुद हो, तो नेत्रगुहाकी जाँच उंगलीसे की जा सकती है; रोहिणीकी ग्रंथी से हुई हो तो उसके धड़कनेके साथ नेत्रगोलक धक धक होता हुआ मालूम होता है। नेत्रगुहाकी चारों ओरकी कोटरोंकी (जतुकास्थि कोटर, झरझरास्थि कोटर, ललाटास्थि कोटर और ऊर्ध्वदन्तास्थि कोटर) पीबदार अवस्थामें ही यह अवस्था दिखाई पडती है। उनकी और नासिकाकी गुहाकी परीक्षा करनी चाहिये। अर्बुद की परीक्षा विद्युत प्रकाश या "क्ष' किरणोंसे या ट्रान्सइल्यु-मिनेशसे करना आवश्यक है। नेत्रगोलक सामनेको उभरा होनेके बदले जब नेत्रगुहाके अन्दर घुसा हुआ होता है तब इस अवस्थाको नेत्रगोलकक्षय या **पार्श्वसृत नेत्र** कहते हैं। यह अवस्था साधारणतया नेत्रगोलक पर चोट आनेसे पायी जाती है, लेकिन कभी कभी आनुकंपिक मज्जा-मंडलके ग्रैवेथक भाग की क्षतिसे भी स्वयंसिद्ध (इडियोप्याथिक) जैसी दिखाई पड़ती है। नेत्रगुहामें के पेशिघटकोंका (सेल्युलर टिश्यु) तथा उसके चरबीदार घटकोंका क्षय, या हैजे

चित्र नं. ३ पुरसृत नेत्रगोलक

यह मस्तिष्ककी अवस्थासे पाया गया था
(दि. धों. साठये–ग्रंथकार)

की बीमारीमें नेत्रगुहाके द्रव का नाश या उसका फोडा (ऍबसेस) इनकी बजहसे भी नेत्र-गोलककी यह अवस्था पायी जाती है ।

२ नेत्रगोलक को जांचना

इसलिये दोनों नेत्रच्छदों को अच्छी तरहसे अलग करना आवश्यक है । नेत्रच्छद में यदि कंप होता हो, तो उनको अलग करनेमें कठिनाई मालूम होती है । कंप यदि जोरदार हो, तो पलकोंको जोरसे नहीं खोलना चाहिये । क्यों कि कभी कभी इससे तारकापिधानके फट जानेका, या स्फटिकमणि भी बाहरकी ओरको एकाएक निकाल पड़नेका डर रहता है । इस अवस्थामें पहले नेत्रको कोकेन बिन्दुओंसे बधिर कर देनेसे नेत्रच्छदोंको आसानीसे खोल सकते हैं ।

३ नेत्रच्छद-नेत्रवर्त्म-पलक (आयलिडस) की परीक्षा

पक्ष्मकोप नेत्रच्छदकी किनारपर बाल हैं, या नहीं; बाल हों तो नियमित है या अनियमित; कम हैं या ज़ादा हैं इसको पहले पहलही देखना जरूरी है । नेत्रच्छदकी किनारोंके बालोंकी संख्या, उनका आकार वे लम्बे हैं या ओछे, उनकी पंक्ति नैसर्गिक है या अन्तर्वलित है इत्यादि बातोंका विचार करना जरूरी है । बाल अन्तर्वलित हों तो उनकी पंक्ति अनियमित है (ट्रिकियासिस) या नहीं यह देखना । बाल दो या अधिक अनियमित पंक्तिमें (डिसट्रिकियासिस) हैं या नहीं यह भी देखना जरूरी है । बाल नैसर्गिक स्थानमें होते हुए भी टूटे जैसे या काटे हुए जैसे दिखाई पडेंगे, तो रोगीने उनको खास काटा था या वे जल गये थे, इसका तलाश करना जरूरी है। नेत्र-च्छदोंके बालोंकी जडोंमें जूँए पडी हैं या नहीं, यह भी देखना चाहिये। बाल चिपटे होंगे तो अभिष्यन्द यानी शुक्लास्तर दाह–कोयेके अस्तरके दाह की कल्पना करना संभव है । नेत्रके भीतरी कोणमें दो चीजें–मांसपिंड (लाक्रिमल कारंकल) और रोंगटे हैं या नहीं, यह भी देखना चाहिये । ये दोनों अवस्थाएँ नेत्रक्षोभके कारण हो सकती हैं ।

चित्र नं. ४ पुरसृत नेत्रगोलक

यह अवस्था उर्ध्वदंतास्थी कोटरके अर्बुदसे पैदा हुई है। (ग्रंथकार)

सबसे पहले नेत्रच्छदोंके रंग, आकार तथा उनकी किनारकी वक्रताका विचार करना चाहिये । फिर नेत्रच्छदोंकी गति नैसर्गिक है या नहीं यह देखना चाहिये, और नेत्रच्छद सूजा हुआ है या नहीं यह भी देखना जरूरी है । अदाहज सूजन मूत्रपिंडकी दाहजन्य अवस्थासे या नेत्रच्छदकी चमडीके नीचे हवा भर जानेसे पैदा होती है । इस दूसरी अवस्थामें सूजनको

उंगलीसे दबानेपर दो उंगलियोंमें बालोंको मसलनेसे जैसी कुरकुर आवाज होती है, वैसीही आवाज होती है। या नेत्राश्रुकोषमें पिचकारीसे पानी डालनेपर वह कभी कभी अश्रुकोषमें जानेके बदले नेत्रच्छदकी चमडीके एक खास भागमें भर जाता है, ऐसी हालतमें भी नेत्रच्छद सूजे हुएसे दिखाई पडेंगे। दाहज सूजन अंजनीमें भी दिखाई पड़ती है। संपूर्ण नेत्रच्छद की सूजन शुक्लास्तरका पूयप्रमेह–परमा–जन्य दाह, दद्रु या उनपर चोट आनेसे पायी जाती है। नेत्रच्छदपर सूजन क्षत, खुजली, छाजन (एक्झीमा), झान्थेलेझ्मा, आदि चमडीकी विकृतियोंमें भी दिखाई पडती है।

नेत्रच्छदकी सूजन स्थानिक अदाहज हो तो वह अश्रुग्रंथी (पिंड) (लाक्रिमलग्लैन्ड) स्थान भ्रष्ट होनेसे या लगणकी सूजन से (इनफ्लेमड कलाझियां) पैदा हुई होगी। दूसरी अवस्थाकी अदाहज सूजन गोल, सख्त और छर्रे जैसी मालूम होती है। नेत्रच्छदकी आम दाहज सूजन नेत्रच्छदपर चोट आनेसे, विसर्पसे या प्रमेहजन्य शुक्लास्तर दाहमें दिखाई पड़ती है।

नेत्रच्छदपर उपदंश का क्षत पाया जाता है तब कानके सामनेकी लसिका ग्रंथी की वृद्धि होती है। नेत्रच्छदकी सांघातिक वृद्धि (एपिथेलिओमा) भी दिखाई पड़ती है। नेत्रच्छदपर न्यच्छ–केशिनीकी शिराग्रंथी (नीव्हस) भी कभी कभी दिखाई पडता है।

नेत्रच्छदकी गतिमें भी फरक मालूम होगा। नेत्रच्छद ठीक बंद न होनेसे नेत्रगोलक खुला रहता है। सातवीं मस्तिष्क-रज्जुको लकवा मारनेसे यह अवस्था पायी जाती है। ऊपरका नेत्रच्छद बराबर खुलता न हो, तो नेत्रगोलक ढका रहता है। तब उस अवस्थाको **नेत्रच्छदपात** (टोसिस) कहते हैं। साधारणतया तीसरी मस्तिष्करज्जु के घातसे यह अवस्था पैदा होती है। कभी कभी यह अवस्था जन्मजातसे दिखाई पड़ती है। नेत्रच्छद दाहज सूजनसे भी शायद नहीं खुलता होगा पुरसृत नेत्रगोलककी वजहसे नेत्रच्छद की गति नैसर्गिक नहीं होती। नेत्र-च्छदों की गति पहचाननेकी तीन कसौटियाँ होती हैं।

चित्र नं. ५ न्यच्छ

नेत्रच्छद और इर्दगिर्द भागोंकी शिराग्रंथी (ग्रंथकार)

(अ) **फा. ग्राफ.की कसौटी**:– रोगीको ज़मीन की तरफ देखनेको कहें, तो उसका नेत्र तो नीचेकी ओरको घूम जाता है, लेकिन ऊपरका नेत्रच्छद बीच ही में अटक जाता है।

(ब) **डालरिम्पल की कसौटीः**—इसमें नेत्रच्छदान्तराल खुला रह जाता है ।

(क) **स्टेलबाग की कसौटीः**—इसमें नेत्रच्छद अनियमित खुलते हैं, और बंद होते हैं। इसके पश्चात् नेत्रच्छदकी किनार की परीक्षा करनी चाहिये । यह अन्दर या बाहरकी ओरको मुडी हुईसी दिखाई पडेगी । जब किनार अन्दरकी ओरको मुड जाती है तब उस अवस्थाको **अन्तर्वलित नेत्रच्छद** (एन्ट्रोपियान) और बाहरकी ओरको मुड जाती है तब **बहिर्वलित नेत्रच्छद** (एक्ट्रोपियान) कहते हैं। नैसर्गिक अवस्थामें नेत्रच्छदोंकी किनारोंकी अन्दरकी बाजू सीधी होती है । लेकिन पोथकी ट्राकोमा (घोबा) के विकारसे किनारकी भीतरी बाजू घिसकर बोयरी या गोल हो जाती है । नेत्रच्छदपर चोट आने से या जल जानेसे उस जगह पपडी पड़ती है, जिसके संकोचसे नेत्रच्छद का आकार बदल जाता है । नेत्रच्छदकी नीला (वेन्स) मोटी होती हैं ।

नेत्रच्छदकी दाहज सूजनके सिवा, नेत्रच्छदपात, गर्दन के आनुकंपिक मज्जातन्तु जिनसे मूलरकी स्नायुको तन्तु पहुँचते हैं उनका लकवा मारनेसे पाया जाता है, सप्तमी मस्तिष्क मज्जारज्जु को लकवा मारनेसे नेत्रच्छद ठीक बंद नहीं हो पाते । नेत्रच्छदोत्यापिका स्नायुका कार्य दूसरी स्नायु या स्नायुओंके संघके साथ होता है । इन मिसालोंमें नेत्रच्छदपातकी अवस्था जन्म जातसे ही हमेशाह से होती है । इस रोगीको मुख पूरी तौरसे खोलकर नीचेकी ओरको देखनेको कहें और जबड़ा दोनों बाजूको घुमानेको कहें । जब नेत्रच्छदोत्यापिका स्नायुसे नेत्रच्छद तारकापिधान की ऊपर की किनार तक उठाय, जा सकता है । कुछ मिसालोंमें नेत्रच्छद और नेत्रगोलक को उपरकी ओर को उठानेवाली स्नायुओंकी क्रिया अन्तर सरल चालनी स्नायुके साथ होती है; इस आवस्थामें नेत्रगोलकों की एक-केन्द्राभिमुखतासे ऊपरका नेत्रच्छद खींचा जाता है ।

ध्यानमें रखिये, कि नेत्रच्छदकी रूपरेषा जखम व्रण या जलन के क्षतचिन्हसे बदल जाती है । ऊपरी नेत्रच्छदके नीचेके भागको (ऊपरसे) और नीचेके नेत्रच्छदके उपरी भागको (ऊपरसे) उंगलीसे जांचकर देखिये कि अन्दर कहां मोठा हुआ भाग है या नहीं । मोठासा भाग मालूम हुआ तो समझना चाहिये कि च्छदपटका दाह या मायबोमियन ग्रंथी की नलियोंमें रूकावट है । नेत्रच्छदोंकी किनारोंके नैसर्गिक स्थानमें फर्क हो जाता है । किनार अन्दरकी ओर को घूमगयी हो तो उसको अन्तर्वलित नेत्रच्छद और बाहरकी ओरको घुम गयी हो तो उसको बहिर्वलित नेत्रच्छद कहते हैं । अन्तर्वलित नेत्रच्छदके पक्ष्मसे तारकापिधान घिस जाता है; बहिर्वलित नेत्रच्छदसे सूजा और मोटा हुआ शुक्लास्तर बाहरकी ओरको दिखाई पडेगा, इस हालतमें आंसु गालोंपर बहते रहते हैं ।

चित्र नं. ६

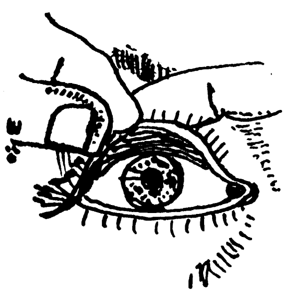

ऊपरी नेत्रच्छद को उलटना

ऊपरी नेत्रच्छदके भीतरी पृष्ठभागको देखनेके तरीकेः—(१) नेत्रच्छदकी किनार अंगूठे और तर्जनीसे पकड़ कर जरा नीचे खींचकर रोगींको नीचेकी और देखनेको कहना

फिर दूसरे हाथ की छिंगुलीसे नेत्रच्छदकी नीचेकी किनार और ऊपरकी किनारके ठीक बीचमें दबाकर रखना फिर उसके ऊपर अंगूठा और तर्जनीसे पकडी हुई किनार को पलटनेसे नेत्रच्छदकी भीतरी पृष्ठ दिखाई पडेगा । (२) एक हाथके अंगूठेके अग्र भागसे नीचेकी नेत्रच्छदकी किनारको ऊपरके नेत्रच्छदकी किनारके भीतर ढकेलिये; फिर उसी हाथकी तर्जनी नेत्रच्छदपर रखकर अंगूठा और तर्जनीसे उसको पकडकर उलटिये । अभ्याससे यह कला सुलभ हो सकती है। नेत्रच्छदको उलटनेसे शुक्लास्तरके अनेक विकार, जैसे की पोथकी की पपडी आदि पहँचान जा सकते है । बच्चोके नेत्रच्छद सावधानीसे तथा आहिस्ते आहिस्तेसे उलेटना चाहिये। नेत्रच्छदको दुबारा उलटनेके लिये नाप्स की कर्षणीका या चिमटेका उपयोग करना ठीक होगा । इससे शुक्लास्तरकी पोथकी की परीक्षा की जा सकती है ।

चित्र नं. ७

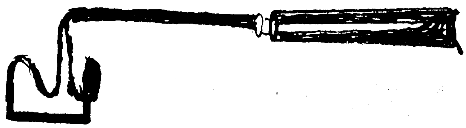

नॉईस की कर्षणी

बालिग रोगीका ऊपरका नेत्रच्छद जांचनेके समय परीक्षक रोगीके कुर्सीके पीछे खडा रहे । और नीचेका नेत्रच्छद जांचनेके लिये रोगीके सामने कुर्सीपर बैठ जावे.

बालकके नेत्रच्छदों को उलटनेके लिये परीक्षकने सेविकाके सामने बैठ जाना चाहिये : सेविकाने बालकके हाथ और पैर को पकडकर उसका सर परीक्षक की ओरको घुमाकर बालकको आडा सुलाना । फिर परीक्षकने बालकका सर अपने दोनों जानुमें मजबूत पकडना जिससे दोनों हाथ छुट्टे रहते हैं ।

४ शुक्लास्तर कोषकी (कनजंक्टायव्हल स्याक) परीक्षा

नेत्रच्छदके शुक्लास्तरके भागकी परीक्षा करनेके लिये ऊपरके नेत्रच्छद को उलटकर और नीचेका नेत्रच्छद नीचेकी ओरको खींचकर की जाती है । नेत्रगोलकके शुक्लास्तर की

चित्र नं ८

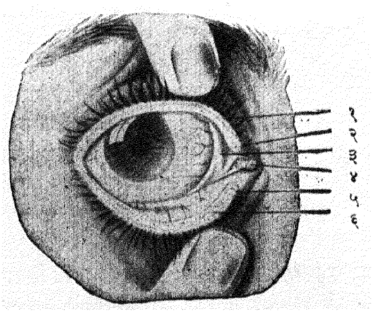

(१) किनारोंमेंकी दरर
(२) ऊपरका अश्रुग्राही मुख
(३) शुक्लास्तरका चंद्रकोरके आकारका झोल
(४) अश्रुकासारमें का मांसपिंड
(५) नीचेका अश्रुग्राही मुख
(६) च्छदपटके ग्रंथीओंके मुख

नेत्रच्छदोंकी किनारोंका नया शुक्लास्तरकोशका शरीर

परीक्षा खासकर बालकोके बारेमे और नेत्रच्छदोके कंपमे डेसमारीकी कर्षणीका उपयोग करनेसे आसानीसे होती है।

नैसर्गिक शुक्लास्तर सुफेद और पारदर्शक होता है। और वह शुक्लपटलपर आसानीसे हिल सकता है। नैसर्गिक अवस्थामे उसकी रक्तवाहिनियाँ दिखाई नही पड़ती। (अ) शुक्लास्तरकी पश्चात् याने पिछली रोहिणियाँ (पोस्टेरियर आरटरीज) कफाभिष्यन्दमे फूल जानेसे शुक्लास्तरो भी (कनजंक्टायव्हल फारनिक्स) लाल सुर्ख दिखाई पडती हैं। (ब) उसकी पुरो याने आगेकी रोहिणी और तारकातीत पिंडकी रोहिणियाँ इन दोनो के मेलसे तारकापिधानके इर्दगिर्द जालासा बनता है, जिससे शुक्लकृष्ण सधिके स्थानमे आरक्तता दिखाई देती है। यह आरक्तता तारकापिधान्तस्थ घटकके दाहकी प्राथमिक अवस्थामे ज्यादह पायी जाती है। (क) तारकातीत पिंड की पुरी याने आगेकी रोहिणियोकी अवेधक शाखाओसे परिशुक्लपटल के घटकोको और वेधक शाखाओसे शुक्लपटल, तारका तथा तारकातीत पिंडको लहू मिलती है। इन शाखाओमे रक्त संचय ज्यादह होनेसे तारका-पिधान के चारो ओर गुलाबी रंग की आरक्तता दिखाई पड़ती है। यह ललाई शुक्ला-स्तरके साथ हिलती नही, यह इसका विशेष है, और वह तारका तथा तारकातीत पिंडके दाहमें पायी जाती है, यह भी ध्यानमे रखना चाहिये।

शुक्लास्तरमे पोथकी, शल्य, क्षत तथा अर्बूद है या नही, इस बातकी जाच करनी चाहिये। शुक्लास्तरसे तारकापिधानपर रोहिणियाँ अखंड जाती है, ऐसा दिखाई देता हो तो समझना चाहिये, कि शिराजालपट (पानस) की वृद्धि हुई है। आरक्तता का स्थान शुक्लास्तरमे है, या उसके नीचे है यह पहँचानने के लिये नेत्रच्छदसे शुक्लास्तरको नेत्र-गोलकपर हिलाइये। जब उसके चलन के साथ आरक्तता भी हिलती जैसी मालूम होगी, तब आरक्तता शुक्लास्तरमें है ऐसा समझना चाहिये। और न हिलती हो तो वह शुक्लास्तरके नीचे के घटकोमे है ऐसा समझना चाहिये। लेकिन यह भी ख्यालमें रखना चाहिये, कि दोनो घटकोमे एक साथही आरक्तता हो सकती है।

नेत्रगोलकके शुक्लास्तरका सादा क्षत चपटा और चौडा होता है, लेकिन टयुबरक्युलर क्षत मोटा, अनियमित आकारका और ग्रंथीदार दिखाई पड़ता है। चौडा और सख्त अन्त.सेचन उपदंश की प्राथमिक अवस्थामे या कलार्बुद (सघातिकक्षत) की शुरूआतमे दिखाई पड़ता है। शुक्लास्तरमे या उसके घटकोमें सादा अर्बुद पाया जाता है।

५ अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण—नेत्राश्रव्यूह (लाक्रिमल अपारेटस)

नासावश (ब्रिज् आफ दी नोज) के बाजूमे और **नेत्रच्छदान्तराल**के (पालपेब्रल फिशर) भीतरी कोणके पास अश्रुकोप होता है। उसकी जगह सजन दिखाई पड़ती है, या नही यह देखना चाहिये। यदि सूजन हो, तो उसको उगलीसे दबाके देखिये दबानेसे अन्तस्थ द्रव घटक नासिकामे घुसकर या **नेत्राश्रुग्राही मुख**मेसे (पंक्टालाक्रिमालिस) बाहर आकर फूला हुआ भाग बैठ जाता है, या नही यह भी देखना चाहिये। यदि नेत्राश्रुग्राही मुखोमे से द्रव पदार्थ बाहर आवे तो समझना चाहिये कि **नासिका नाली**मे (नेझल डक्ट)

अश्रुप्रवाहको रुकावट होती ह, जिनकी वजहसे अश्रुकोष फूल जाता है । अन्दर जमा हुआ जल स्वच्छ है या पीबदार यह भी देखना चाहिये । नासिका नाली खुली है, या नही यह देखने के तरिके:

(१) नेत्रमे २% फ्लुरीसिन या मरक्युरोक्रोमके बूद डालिये रंग नासिकामें उतर आवे, तो नासिका नाली खुली है और रंग न उतरे तो नासिका नालीमे रुकावट है ऐसा समझना चाहिये । कभी कभी बेचैन लोगोके नेत्रको कोकेनसे पहले सुन करना जरूर होता है । यह नासिका नालीकी सूजन दाहज है, या अदाहज है इसका निर्णय करनेके लिये अश्रुकोषमें सूप्रारिनलके बूद पिचकारीसे डालिये । सूजन दाहज हो, तो वह कम होजाती है, यदि सूजन के आकारमें कुछ फरक नही दिखाई पडा, तो ऐसा समझना चाहिये कि रुकावट सेन्द्रियरूपकी (आरग्यानिक) है ।

(२) नेत्राश्रुग्राही मुखमेसे अश्रुनालीमे बोरिक आसिडके घोलसे भरी हुई पिचकारीकी बोथरी सूचीको अन्दर घुसाकर पिचकारी मारना । यदि नासिका नाली खुली हो तो घोल नासिकामे उतर आयेगा, यदि नालीमे रुकावट हो तो घोल दूसरे अश्रुग्राही मुखमेंसे बाहर आजायेगा ।

अश्रुकासारमे की (लाक्रिमल लेक) **नेत्राश्रुपिट्टिका-मांसपिंड** (चित्र नं ८ देखिये) (कारंकल) जो स्तनाग्रके जैसी दिखाई देती है, वह कभी कभी उसके नैसर्गिक स्थानसे च्युत हुई होती है, नैसर्गिक अवस्थामें नेत्रच्छद खोले बिना नेत्राश्रुग्राही मुख नही दिखाई पडते । लेकिन कुछ अवस्थाओमे इनके बाहरकी ओरको झुक जानेसे आसू अश्रुकासारमे मे इनमे नही जा सकते, जिससे वे नासिकामे जानेके बदले बाहरकी ओरको बह जाते है । कभी कभी नेत्राश्रुग्राही मुखमें बाल आदि पदार्थ घुस जानेसे, या लेप्टोथिक्स-छत्रक उगनेसे अश्रुप्रवाह नासिकामे जानेसे रुक जाता है ।

अश्रुपिंड ग्रंथीः—(लाक्रिमल ग्लॅन्ड) नैसर्गिक अवस्थामे बाहरसे नही दिखाई देती और उसकी परीक्षा करना संभव नही होता । लेकिन ऊपरके नेत्रच्छद अच्छीतरहसे ऊपर उठावे तो सहकारी अश्रुपिंड दिखाई पडते है ।

६ तारकापिधान (कारनिया) की परीक्षा

तारकापिधान की परीक्षामे निम्न लिखित पद्धतिओका अवलम्ब किया जा सकता है ।

(१) रोगीको खिडकीके तरफ मूह करके कुर्सीपर बिठाकर सामनेके खिडकीका प्रतिबिम्ब देखना । तारकापिधानमे अपारदर्शकता या अनियमितता हो तो प्रतिबिम्ब खिलाफ दिखाई पडेगा ।

(२) तारकापिधानपर प्रकाश केन्द्रीभूत करना यह एक अजीज तरतीब है । इसमे युगलोन्नतोर शीशेसे, जिसका नाभ्यन्तर दोसे अढाई इंच होता है, तारकापिधानपर दिवाका प्रकाश केन्द्रीभूत किया जाता है । इस परीक्षामे **क्रिस्टले स्मिथ**की मोमबत्तिका भी इस्तेमाल हो सकता है । सरपर रखनेके दर्पणसे प्रकाश तारकापिधानपर डाल सकते

है। ध्यानमे रखिये कि तारकापिधानपर प्रकाश किसीही तरहसे डाले लेकिन तारकापिधानको अभिवर्धक शीशेसे देखना जरूरी है। तारकापिधानमे घुसे हुए शल्यको देखनेके लिये प्रकाशको लघु कोणमेंसे केन्द्रीभूत करना चाहिये। और प्रकाश तारकापिधानपर केन्द्रीभूतकरके वह क्षेत्र अभिवर्धक शीशेमे देखनेमे उसकी छोटी छोटी क्षति और खिलाफ प्रतिबिम्ब जाने जा सकते है।

(३) सूर्यप्रकाश या दिवाके प्रकाशको नेत्रतल प्रतिछाया गति निरूपण पद्धतिमे के नतोदर दर्पणमे तारकापिधानपर केन्द्रीभूत कर सकते है।

(४) प्लासिडोकी तश्तरीका इस्तेमाल करना।

(५) क्षत की परीक्षा के लिये फ्लुरीसिन (२%) का इस्तेमाल करते है। **बेनसन**का तजरबा यह है कि कई मिसालोंमे तारकापिधानके क्षत पर फ्लुरीसिनसे हरा रंग नही चढता और कभी कभी विनाविकृत अवस्थामे ही तारकापिधानपर रग चढ जाता है। फ्लुरीसिनके बदले मरक्युरोक्रोमका (२%) भी इस्तेमाल हो सकता है।

(६) नेत्र नापन यत्रका इस्तेमाल करना। इसके इस्तेमालसे तारकापिधानके क्षत चिन्हकी परीक्षा हो सकती है और हृदयकी गतिके साथसाथ शवासाकृति तारकापिधानका चलन जाना जा सकता है।

(७) तारकापिधानकी संज्ञा शक्ति जाचना।

(८) द्विनेत्रीय लूप—बायनाक्युलरलूप: इस यंत्रमें दोनो नेत्रोंसे देखनेके लिये दो शीशे लगे रहते है। एकही दृश्य की दो जुड़या तसबीरे जब इसके द्वारा देखी जाती है तो ऐसा मालूम है मानो उभरी हुई तसबीर देख रहे हो। इस यंत्रमे तारकापिधान, पूर्व-वेश्मनी और तारकामे के सुक्ष्म फर्कोकी जाच हो सकति है। **ज्याकसन**के लूप शिवा **ई. ट्रिचर. कालिन्स** और **झाइसिम्मके** लूप भी मिलते है। इस यत्रको लचकदार याने स्थितिस्थापक फीतामे या कमानसे कपालपर बिठा सकते है।

तारकापिधान का सूक्ष्मदर्शक यत्र—जिन्दी अवस्थामे तारकापिधानकी परीक्षा इस यत्रसे पहले पहल सन १८५५ मे **लिब्रिक**नेकी। सन १९०३ **झापर्स्कीने** तारकापिधानका सूक्ष्मदर्शक यंत्र का शोध किया।

गुलस्ट्रान्डका स्लिट लेंप इस यत्रकी सहायतासे तारकापिधान और तारकाके शारीर, विकृत शारीर और भुणु अवस्थाके फर्कोको अच्छी तरहसे जान सकते है।

नैसर्गिक तारकापिधान साफ पारदर्शक होना है। पारदर्शकतामे कुछ फरक दिखाई देता हो तो उसमे कुछ विकृति हुई होगी, ऐसा मानना चाहिये। तारकापिधान की आपारदर्शकता जन्मजात, या सपादित या दाहजन्य यानी चोट लगनेसे पैदा होती है। कभी कभी कुछ खास पेशेवालोंमे भी तारकापिधान पर अपारदर्शक छीटे दिखाई पडते है।

तारकापिधानकी परीक्षामे निम्नलिखित बातोपर ध्यान देना चाहिये (अ) तारकापिधानका आकार तथा रचना; (ब) तारकापिधानका पृष्ठभाग; (क) तारकापिधानकी अपारदर्शकता; (ड) तारकापिधानकी संवेदना शक्ति।

(अ) **तारकापिधानका आकार तथा शक्लः**—तारकापिधान दीर्घ वृत्ताकार होता है। उसका आड़ा व्यास १२ मि. मि. लम्बाईका और खड़ा व्यास ११ मि. मि. लम्बाईका होता है । उसके सामनेका पृष्ठभाग बहिर्वृत्त शीशेके जैसा उन्नतोदर होता है । तारकापिधानके आकारमे जन्मजात विकृति, या संपादित चोटसे, या दोनो कारणोमे फरक हो जाता है। लघुनेत्रगोलकका तारकापिधान छोटा और बृहनेत्रगोलकका बड़ा होता है । कभी कभी तारकापिधान कोणाकार, या पूर्ण वृत्ताकार दिखाई पड़ता है ।

(ब) तारकापिधानकी परीक्षामें उसके पृष्ठभागकी वक्रता, समता और चमक देखना आवश्यक है। वक्रताकी अनियमितताका फ़रक ज्यादह हो, तो वह जल्दी ध्यानमें आ जाता है। फ़रक सूक्ष्म हो तो परावृत्त प्रतिमाओंकी सहायतासे, या अभिवर्धक शीशेकी (म्यागनीफाईग ग्लास) सहायतासे परीक्षा निश्चित की जा सकती है। तारकापिधान उन्नतोदर दर्पणके जैसा होता है । उसकी वक्रताका समानुपात जितना ज्यादह होगा, उसीके अनुसार सामनेके पदार्थोंकी प्रतिमाएँ छोटी मालूम होगी ।

(१) **परावृत्त प्रतिमाओंकी कसौटीः**—इस कसौटीका तारकापिधानकी वक्रताको जाचनेके लिये उपयोग किया जाता है। रोगीको खिड़की की ओर मुह करके बिठाना चाहिये । फिर बाहरकी वस्तुओकी प्रतिमाएँ तारकापिधानपर देखना चाहिये । (त्रि न ८ देखिये) उसकी वक्रता नैसर्गिक हो तो वस्तु विकृत नही दिखाई देगी । वस्तु विपर्यस्त जैसी दिखाई पडे, तो उसकी वक्रतामें फ़र्क है ऐसा समझना चाहिये । फर्क कौनसे भागमे हुआ है, यह जांचनेके लिये नेत्रगोलकको चारो ओर घुमानेको कहिये, इससे किस भाग का प्रतिबिम्ब विपर्यस्त जैसा दिखाई पड़ता है यह जाना जा सकता है । वक्रताके फ़र्क के अनुसार प्रतिबिम्बित प्रतिमा बडी या छोटी मालूम होती है ।

(२) **प्लासिडोकी तश्तरी-डिस्कः**—यह एक छोटी गोल तश्तरीसी होती है जिसको पकडनेके लिये एक छोटासा डंडा होता है । इस गोल तश्तरीके केन्द्रस्थानमें दर्शन छिद्र होता है; और एक सुफेद बाजूपर छिद्रको समकेन्द्रिक काले रंगके वर्तुल होते है। इसके उपयोगसे वक्रताका फरक जाना जा सकत है । रोगीको खिड़कीकी तरफ पीठ करके बिठाइये । फिर इस तश्तरीके वलयाकित पृष्ठको रोगीकी तरफ करके उसके केन्द्रस्थ छिद्रमें से रोगीके तारकापिधान को देखिये ।

चित्र नं. ९

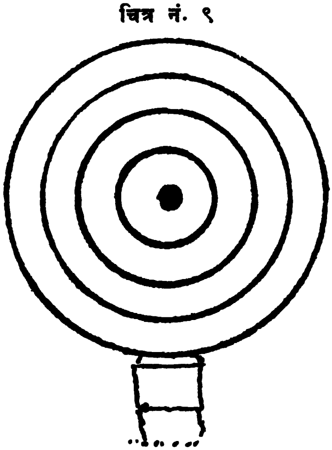

प्लासिडोकी तश्तरी

जब तश्तरीपरके समकेन्द्रिक वर्तूलोका प्रतिबिम्ब तारकापिधान पर दिखाई देगा । तारकापिधानकी वक्रता नैसर्गिक हो तो तश्तरीपरके प्रतिबिम्ब समकेन्द्रिक और नैसर्गिक जैसे मालूम होगें; लेकिन वक्रतामे फ़र्क हो तो वे विपर्यस्त

मालूम होंगे । इससे तारकापिधानकी वक्रता सम या असम है, तथा उसके ऊपर अपारदर्शकता है या नहीं, इसको बोध हो सकता है ।

गुलस्ट्रान्डकी तश्तरी भी इसी तरहकी होती है को जव्हालके आफथालमामिटरमें बिठाके परीक्षा की जाती है।

चित्र नं. १०

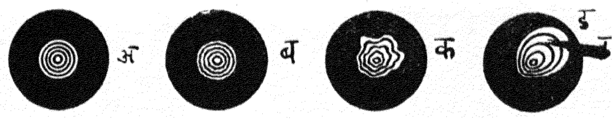

ग्लासिडोकी तश्तरीके तारकापिधान परके प्रतिबिम्ब

अ. नैसर्गिक प्रतिबिम्ब : **ब.** बाह्यपृष्ठकी अनियमिततासे प्रतिबिम्ब (काचबिन्दु–तारकापिधानान्तस्थ घटक दाह): **क.** अनियमित क्षतचिन्हका प्रतिबिम्ब : **ड..** शंक्वाकृति तारकापिधानके प्रतिबिम्ब ।

तारकापिधानके बांकका नापः—उसके सामने मोमबत्तीकी ज्योति पकडें तो उस ज्योतिकी प्रतिबिम्बित प्रतिमा तारकापिधान पर दिखाई देती है । उसका नाप हो सकता है । उस ज्योतिके आकारसे और तारकापिधान और मोमबत्तीके बीचके अन्तरसे तारकापिधानके बांककी की त्रिज्या की कल्पना कर सकते हैं । लेकिन नेत्र हमेशा स्थिर न रहनेसे ठीक नाप करना कुछ मुश्किल होता है । इसका प्रतिकार करनेके लिये ऐसी कल्पना या तरकीब निकाली गई, कि एकही प्रतिमा द्विधा याने दुहरानी दिखाई देगी । इस कल्पनाकी योजना **हेल्महोल्टझ**ने अपने आफथालमामिटर यंत्र, (नेत्रनापन यंत्र) की रचनामें की है । प्रतिबिम्बित प्रतिमा दुहरानी करनेकी कल्पना ज्योतिविज्ञान शास्त्रमेंसे ली गई है । हेल्महोल्टझका आफथालमामिटर शास्त्रीय उपकरणकी दृष्टिसे ठीक है । लेकिन रुग्णविषयक परीक्षामें **जव्हाल** और **स्किओट्झके यंत्र**काही इस्तेमाल करते हैं । इस यंत्रकी सहायतासे तारकापिधानकी वक्रता जांची जा सकती है । तारकापिधानके पृष्ठभागकी समता, तथा उसकी चमकसे तारकापिधान उज्ज्वल दिखाई देता है । उसकी वक्रता सम हो, तो उसके ऊपरके प्रतिबिम्बि विपर्यस्त नहीं दिखाई देंगे । तारकापिधानकी असमता क्षत या सूजनसे पैदा होती है ।

तारकापिधानपरकी प्रतिबिम्बित प्रतिमा स्पष्ट और बडी दिखाई देनेके लिये ज्योतिके बदले जिनपरसे प्रकाशपरिवर्तन विस्तृत होगा ऐसी चतुष्कोणी तश्तरीओंका उपयोग इस यंत्रमें किया गया है । इन तश्तरीओके आकारका प्रमाण ऐसा रखा गया है कि उनकी प्रतिमाओंका आकार तारकापिधानके रेखांशके चतुर्थ भागके बराबर होजाय ।

इस **आफथालमामिटर यंत्र**में दुर्बीन जैसी नलिका होती है । इस नलिकाकी अक्षके ओर घूमनेवाली एक धातुकी कमान या मेहराब ग–ग होती है । नलिकाको नीचे या ऊपर

सरकाकर उसको रोगीके नेत्रके समतल करनेके लिये एक पेंच होता है। नलिकाके अन्दर रखे हुए दो नीरंग (अक्रोम्याटिक) उपदृश्य शीशे (आवजेक्टीव्हज) के दरमियान एक त्रिपार्श्व (प्रिसम ककचायत) होता है। इस त्रिपार्श्वकी वजहसे पदार्थकी प्रतिमा द्विधा होती है। ये दो प्रतिमाएँ कमानकी पृष्ठको समानान्तर रहती है। नलीमेंसे देखनेवालेके तरफके चक्षुलग्नी (आयपीस) मे मकडीके तन्तु जैसा एक बारीक तन्तु होता है। धातुकी

चित्र नं. ११

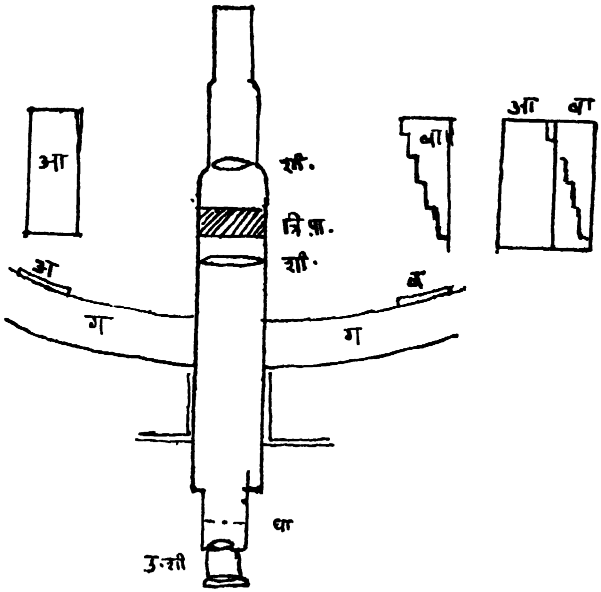

जव्हाल का आफथाल्मामिटर

जव्हालके नेत्रनापन यत्र का रेखाचित्र: आफथालमामिटर (काजेनार): **अ. ब.** सीढीयोका आडाकाट : **आ. बा.** तश्तरीया जमीनपर पडी रखनेसे जैसी दिखाई पडेगी: **शी. शी.** उपदृष्यशीशे (आबजेक्टीव्हज) : **धा.** मकडीके जैसे बारीक धागा . **त्रि. पा.** त्रिपार्श्व : **ग. ग.** धातुकी कमान या मेहेराब . **उ. शी.** उपशीशा या चक्षुलग्नी (आयपीस) प्रमाण कंस।

कमानके दोनों पार्श्वपर जिसे हटा सकते है ऐसी दो चतुष्कोणी, सफेद और समतल, पोरसेनेलकी बनी हुई. तश्तरीयाँ रखी होती है। इन दो तश्तरीयोंमेसे एक सीढी जैसी आकारकी होती है। और हरएक सीढी एक डियापटरके अंश प्रमाणकी होती है। ये तश्तरीयां उनके पीछे रखी हुई बिजली की बत्ती की वजहसे प्रकाशित होती है।

इस यंत्रमें दूसरी भी एक अंश चिन्हांकित कमान होती है, उससे वक्रीभवनके लघुतम और महत्तम रेखांश का नाप हो सकता है। नापनेके समय रोगीका मस्तक स्थिर रहनेके

लिये धातुकी कमानके सामने एक आधार पट्टी होती है। तारकापिधानका नाप उसके केन्द्रके इर्दगिर्द ओरका १.३ मि. मि. हिस्साही नाप सकते है। रोगीको यंत्रके सामने इस तरहसे बिठाना चाहिये कि उसका नासिकाग्र यंत्रकी दुर्बीनकी समपृष्ठमें होवे। फिर एक नेत्रको बंद करके खुले नेत्रसे रोगीको दुर्बीनकी नलिकाके केन्द्रमे देखनेको कहे। जब शालाकिन दुर्बीनमेंसे रोगीके तारकापिधान को देखेगा तब उसमें दो चतुष्कोणी तश्तरियोंकी चार प्रतिबिम्बित प्रतिमाएँ दिखेगी। चारमेंसे बाहरकी दो प्रतिमाओको छोडकर सिर्फ अन्दरकी दो प्रतिमाओंको नापना चाहिये।

कमानके उपरकी एक तश्तरीको स्थिर करके दूसरी तश्तरीको पहली की तरफ इतना हटाना चाहिये कि बीचकी दो प्रतिमाएँ **अ–अ** आपसमें स्पर्श करे। फिर उस **ग–ग** कमानको ९० अशोमे घुमाएँ और बीचमेंकी प्रतिमाऐं आपसमे स्पर्श करती है या नही यह देखे। यदि बीचमेंकी दो प्रतिमाएँ बराबर स्पर्श करती हो तो तारकापिधानका बाक दोनो रेखांशमें एक जैसा है ऐसा समझे। अगर कसको फिरानेसे बीचकी प्रतिमाएँ एक दुसरीपर चढ जाएँ या उससे अलग हो जाएँ तो उस रेखांशके बाकमें फरक समझे। तश्तरीकी एक सीढी ढकी हो तो दोनो रेखाशके वक्रीभवनमे एक डियापटरका फरक है ऐसा समझना, दो ढकी हो तो दो डियापटरका फरक होगा। इस यत्रसे किये हुवे वक्रीभवनका नाप और नेत्रतल प्रतिछाया गति मापन पद्धतीसे (स्कायास्कोपि) किये हुए नापमे .५ डी या १० डी का फरक रहता है, इसका नाप अधिक होता है यह ख्यालमें रखना चाहिये।

चित्र नं. १२

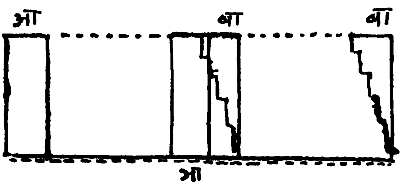

द्वयम स्थान

नेत्रनापनयंत्रके (आफथालमामीटरके) उपयोग:—इस यत्रमें (१) तारकापिधानकी वक्रीभवनता और निर्बिन्दुताका (अस्टिगम्याटिझम) प्रमाण और उसकी मुख्य रेखांशकी दिशा, (२) उसके बाक की त्रिज्ज्याओका नाप तथा, (३) उसके उपरके अपारदर्शक छीटोको जाच सकते है। तारका आकारमें बडी दिखाई देती है। किन्तु निर्बिन्दुता न्हस्व दृष्टित्वकी या दीर्घ दृष्टित्वकी हो यह नही समझ सकते। इस यत्रका उपयोग बालक बहिरे या गूगे रोगिओंमे अच्छा होता है। इस यत्रमे नाप त्वरित और ठीक होता है।

(**क**) **तारकापिधानकी अपारदर्शकता**:—तारकापिधानके अपारदर्शक भागोकी परीक्षा उसके ऊपर **युगलोन्नतोदर शीशेसे** (बायकानव्हेक्स) निर्यक् प्रकाशको केन्द्रीभूत करनेसे की जा सकती है। इस तरीकेसे बहुत फायदा होता है। इस शीशेका नाभ्यन्तर २ या ३ इंच होता है। इस तरीकेमे मोमबत्तीकी ज्योतिका इस्तेमाल किया जा सकता है। तारकापिधानके शल्यको जांचनेके लिये, प्रकाशको उसपर लघुकोणमेंसे केन्द्रीभूत करना चाहिये।

दिन-प्रकाश-सूर्यप्रकाश या अन्य प्रकाशको, **नेत्रान्तरंग-दर्शक यंत्रके नतोदर दर्पण**से जिसका नाभ्यन्तर पचीस सेन्टीमिटर है, तारकापिधानपर केन्द्रीभूत कर सकते हैं।

चित्र नं. १३

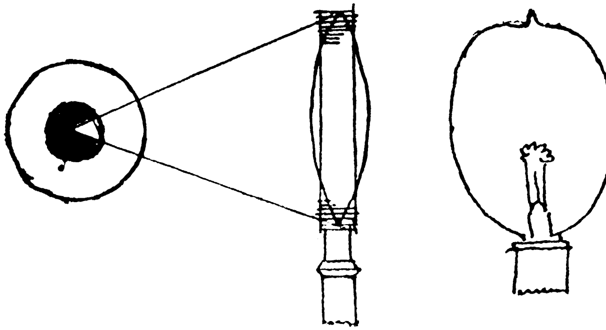

युगलोन्नतोदर शीशेसे तिर्यक प्रकाश केन्द्रीभूत करनेकी तरह

तारकापिधानके क्षतकी परीक्षा **फ्लुरिसिन** नेत्रमें डालकर करते हैं। यह क्षत फ्लुरीसिनसे हरे रंगका दिखाई पड़ता है। क्षतपर रंग चढ़ा न हो, तो वह पुराना है ऐसा समझिये।

तारकापिधानका वक्रीभवन नापनेकी तरह:—कार्गेनारके दृक्क्षेत्र नापन यंत्रकी (चित्रनं. ११ देखिये।) तश्तरी **आ** को कमानकी बायें भुजके भागपर जहां २० संख्या लिखी है स्थिर करना। फिर दुसरी तश्तरीको दाहिने भुजपर इतनी सरकानाकि उनके तारकापिधानके प्रतिबिम्बके उभयनिष्ट आधार पारस्परीकसे सिर्फ स्पर्श करे। दाहिने भुजपरकी संख्याको पढ़कर उसको पहलेकी २० संख्यामें मिलानेसे जो उत्तर पाया जायगा यह तारकापिधानके वक्रताका डीयाप्टरमें नाप होगा।

तारकापिधानकी त्रिज्ज्याका ठीक नापकी संख्या जांचनेके लिये ३३७ संख्याको ऊपर जांचे हुए दोनों संख्याकी जोडफलकी संख्यासे भाग देनेसे जो फल पाया जायगा, वही तारकापिधानकी जांचे हुई अक्ष रेषाकी त्रिज्ज्याका मिलिमिटर रूपमें नाप होगा।

ऐसा समझिये कि बायी तश्तरी २० संख्यापर और दाहिनी तश्तरी २२ संख्यापर स्थिर है। इन दोनोंका जोड फल ४२ होता है, इस संख्यासे ३३७ संख्याको भाग देनेसे उत्तर $\frac{३३७}{४२}$=८ मिलिमिटर्समें तारकापिधानके त्रिज्ज्याका नाप होगा।

(ड) तारकापिधानकी संवेदना शक्ति:—यह नैसर्गिक है या नहीं, यह देखनेके लिये तारकापिधानको **रुईके रेशोंसे** स्पर्श कीजिये। संवेदनाशक्ति नैसर्गिक हो, तो झट नेत्रच्छद मुंद जाते हैं। इसीको **नेत्रच्छदकी परावृत्त प्रतिक्रिया** (लिड-रिफ्लेक्स) कहते हैं। इस प्रतिक्रियाका अभाव कांचबिन्दु और पांचवी मस्तिष्करज्जुकी चाक्षुष शाखाके स्तंभमें दिखाई पड़ता है। तारकापिधान संवेदनाहीन होते ही, रुईके रेशोंको देखते ही

रोगीके नेत्रच्छद मूंद जाते है। इस प्रतिक्रियाको **दृष्टिपटलजन्य नेत्रच्छदकी परावृत्त प्रतिक्रिया** कहते हैं। ऐन्द्रिय संवेदना हीनतामें परावृत्त प्रतिक्रियाका अभाव होता है (रेटायनल लिडक्लोज़र रिफ्लेक्स) लेकिन मज्जातंतु संक्षोभमें वह दिखाई पड़ती है। इस हालतमें दूसरे नेत्रकी नियंत्रक परीक्षा करनी चाहिये (कन्ट्रोल टेस्ट) तारकापिधानकी परीक्षाके लिये तारकापिधानके **लूप, गुलस्ट्राल्डका स्लिट लैंप** और **सूक्ष्मदर्शक यंत्रका** भी उपयोग करते हैं। **द्विनेत्रीय लूप** (बायनाक्युलर लूप) से देखा हुआ भाग बड़ा और घन दिखाई पड़ता है। इसके इस्तेमालसे तारकापिधान, पूर्ववेश्मनी और तारकामेंके सूक्ष्म फरकोंको जान सकते हैं। तारकापिधानका खास सूक्ष्मदर्शक यंत्र और गुलस्ट्राल्डका स्लिट लैम्पकी सहायतासे तारकापिधान और तारकामेंके भ्रुणु शरीर और विकृत शरीर संबंधीके सूक्ष्म फरकोंको जान सकते हैं।

चित्र नं. १४

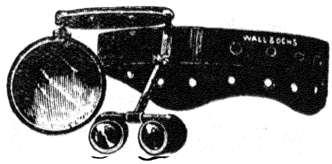

जॅकसनका द्विनेत्रीयलूप

७ शुक्लपटल (स्क्लेरा) की परीक्षा

जवानी की अवस्थामें नैसर्गिक शुक्लपटल साधारण तथा सफेद होता है। लेकिन बुढापेमें उसमें कुछ पीलीसी छटा दिखाई पड़ती है। और बाल्यावस्थामें उसमें कुछ नीलीसी छटा मालूम होती है। लेकिन नीले रंगका शुक्लपटल विकृत अवस्थाका लक्षण समझा गया है। इन नीले शुक्लपटलवाले लोगोंकी श्रवण शक्ति कम होती है, और माना जाता है, कि उनकी हड्डियां कमजोर होती हैं। शुक्लपटलकी **स्थानीय सूजन** हो, तो वह दो कारणोंसे हुई होगी। एक उस जगह पहले चोट लगी हुई होगी, या दूसरे उसके भीतर नेत्राभ्यन्तर में अर्बुद की वृद्धि होती होगी। यदि सूजन पर प्रकाश केन्द्रीभूत करनेसे नेत्राभ्यन्तर प्रकाशित (ट्रान्सइल्युमिनेशन) न हो, तो सूजनके स्थानमें अर्बुद या दूसरा अपारदर्शक पदार्थ घटक होगा यह कल्पना की जा सकती है।

८ चाक्षुषजल (एकियस फ्लुईड)

नैसर्गिक अवस्थामें यह स्वच्छ पारदर्शक होता है। विकृत अवस्थामें वह रक्त, पीब या रससे मिला हुआ होता है।

९ पूर्ववेश्मनी (एन्टेरियर चेम्बर) की परीक्षा

यह **उथली** है या **गहरी,** और उसमें शल्य, रक्त द्रवोत्सर्ग या पीब आदि हैं या नहीं यह देखना चाहिये। नैसर्गिक पूर्ववेश्मनी की गहराई २·५ मि. मि. होती है। कांचबिन्दु, नेत्राभ्यन्तर का अर्बुद, मोतीबिन्दुकी प्राथमिक अवस्था, या स्फटिकमणि को चोट लगनेसे उसका फूलजाना और तारकापिधान की वक्रता कम हो जानेसे वह गिराहुआ होना इन अवस्थाओंमें पूर्ववेश्मनी उथली होती है। स्फटिकमणिको निकाल डालनेस, तारकातीतपिंडका लसिकादार दाह (सिरस आयरिडो सायक्लाइटीज) होनेसे, या तारकापिधान सामनेकी ओरको ढकेला जानेसे पूर्ववेश्मनी की गहराई ज्यादह होती है। तारका सामनेकी ओरको

चिपट जानेमे गहराई कम होती है, और वह पिछली ओरको चिपट जानेमे बढ़ जाती है। इसकी परीक्षा तिर्यक् प्रकाशसे हो सकती है। लसिकायुक्त तारकानीत पिडके दाहमे तारकापिधानके पिछले पृष्ट भाग पर लसिकाके कण चिपटे जैसे दिखाई पड़ते है। तिर्यक् प्रकाशकी सहायतासे पूर्व वेश्मनी मे घुसी हुई शल्य आदिकी परीक्षा की जा सकती है। लोहा या फौलाद के कण निकालनेके लिये अयस्कान्त याने लोहचुबक का उपयोग किया जाता है।

१० तारका-तारा-आयरिश की परीक्षा

तारकापिधान और चाक्षुषजल साफ हो, तो तारकाकी परीक्षा सुभीतेसे हो सकती है। तारकाका रग, तेज, गति और उसकी शक्लका निरीक्षण करना चाहिये। उसके रग तेज और गतिमे फरक हुआ हो, तो तारकामे दाह हुआ है, ऐसा समझना चाहिये। तारकाके खास भागमे सूजन और उसकी चारो ओरके रगमे फरक हो, तो वह तारकाके शल्य, नेत्राभ्यन्तर का अर्बुद परोपजीवी जन्तु या तारकाका उपदश इन अवस्थाओमे होता है यह ध्यानमे रखना चाहिये। स्फटिकमणिके अभावमे बिलकुल मामूली कारणसे भी तारकामे कप होता है।

११ कनीनिका-पुतली-प्युपिल

कनीनिका की परीक्षा सावधानीसे करना आवश्यक है। क्योंकि अन्य विकृत अवस्थाओमे जिन बातोका बोध नही हो सकता उन बातोका बोध कनीनिका की खास अवस्थाओमे होना सभाव्य है। ध्यानमे रखिये, कि नये जन्मे हुए बालक और वृद्धोकी कनीनिका बहुत सकुचित होती है। लेकिन अति सकुचित या अति प्रसृत कनीनिका विकृत अवस्थाका लक्षण समझना चाहिये। इसलिये रोगीके नेत्रोमे या शरीरमे ऐसा असर करनेवाली कुछ दवाओका प्रयोग हुआ था, या नही, इस बातका तलाश करना चाहिये।

कनीनिका का संकुचन करनेवाली औषधियां:—एसरीन, पायलोकार्पिन या आरकोलिन नेत्रमे डालनेसे कनीनिकाका सकोचन होता है। अफीम तथा निकोटीन पेटमे जानेसे भी कनीनिका सकुचित होती है।

कनीनिका का प्रसरण करनेवाली औषधियां:—अट्रोपीन, होम्याट्रापिन, स्कोपाल अपिन, और कोकेन नेत्रमे डालनेसे कनीनिका का प्रसरण हो जाता है। बेलाडोना, हायोसिन, स्कोपालअमिन पेटमे जानेसे भी कनीनिका प्रसृत हो जाती है। तारकाकी स्थानिक विकृतिसे कनीनिका अनियमित हो जाती है। काचबिन्दुमे कनीनिकाका प्रसरण होता है। तारकाके क्षयमे कनीनिका सकुचित होती है।

कनीनिकाका आकार गोल है या नही, दोनों नेत्रोंकी कनीनिका समान है या असमान, तथा वे केन्द्रस्थ है या केन्द्रच्युत यह देखना चाहिये। कनीनिका गोल होकर भी पिछली ओरको चिपटी रहती है यह भी ध्यानमे रखना आवश्यक है। प्रकाशकी प्रतिक्रियासे तथा नजदीकसे देखने या पढनेमे कनीनिका सकुचित होती है या नही यह देखना भी जरूरी है। और एक बात अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये, कि कभी कभी विना दृक्संधान कार्यसे

तथा विना नेत्रकी एक केन्द्राभिमुखतासे कनीनिका सकुचित होती है। इस अवस्थाको स्वेच्छिक कनीनिका (व्हालंटरी प्युपिल) कहते हैं।

शरीरस्वास्थ्य हो, तो दोनो कनीनिका समान होती है, असम नही दिखाई देती। असम कनीनिका निम्न लिखित अवस्थाओंमे दिखाई पड़ती हैं— कीरी (कलायखंज टेबीज); मस्तिष्कका उपदंश; सुषुम्नारज्जुकी कठिनता व वृद्धि (स्क्लेरोसिस ऑफ स्पायनल कॉर्ड); पक्ष वातज उन्माद अपस्मार या मृगी (एपिलेप्सी); दंतरोग; तारकाका चोट लगनेसे फटजाना; और एक नेत्र अंधा हो जाना, आदि विकार। पागलपनके झटकेकी शुरूआत में कनीनिकाएँ असम याने एक संकुचित और दूसरी प्रसृत दिखाई पड़ती है। यह भी ध्यानमे रखना चाहिये, कि पूर्ण शरीरस्वास्थ्य होते हुए भी वक्रीभवन दोष हो, तो कनीनिका असम होती हैं।

कनीनिकाका चलनवलन:—यह देखनेके लिये रोगीको खिड़कीके सामने बिठाकर उसको दूरके पदार्थोकी तरफ देखनेको कहिये। फिर उसके दोनो नेत्रोंपर ढक्कन रखके देखें, तो ढकनीके पीछे दोनो कनीनिका प्रसृत हुई है ऐसा दिखाई पडेगा। फिर दोनों नेत्रोपरका ढक्कन एकदम निकाल लेनेसे दोनो कनीनिका एकदम एकसाथ संकुचित हुई हैं ऐसा दिखाई पड़ना चाहिये। यह क्रिया ठीक न हो और काचबिन्दुका अभाव हो, तो कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवा नेत्रमें डालकर देखना चाहिये, कि कनीनिका चिपक गई है या नही।

कनीनिकाके नैसर्गिक संवेदना व्यापार दो तरहके होते हैं (१) कनीनिकाका सकोचन होना; (२) कनीनिकाका प्रसरण होना।

(१) कनीनिकाके संकोचनकी संवेदनाके व्यापार

(अ) प्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रिया (डायरेक्ट लाईट रिफ्लेक्स):—कनीनिकापर प्रकाश डालनेसे कनीनिका सकुचित होती है, तब उसको "प्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रिया" कहते हैं। **(ब) साधर्म्य-शरीरधर्मजनित-संवेदन प्रकाश प्रतिक्रिया:—(कानसेन-शुअल लाईट रिफ्लेक्स)** एक नेत्रको ढाककर दूसरे नेत्रपर प्रकाश डालनेसे उसकी कनीनिका संकुचित होती हैं और उसके साथ ढके हुए नेत्रकी कनीनिका भी संकुचित हो जाती है। ढके हुए नेत्रकी कनीनिकाके संकुचनको "साधर्म्य संवेदन प्रकाश प्रतिक्रिया" कहते हैं। **(क) एक केन्द्राभिमुखनाजन्य संकोचन प्रतिक्रिया (कनव्हरजन्स रिफ्लेक्स-अकोमोडेशन कनव्हरजन्स रिफ्लेक्स)**—दूरीके पदार्थोंकी तरफ देखते हुए नेत्र जब एकदम नज़दीकके पदार्थोको देखते हैं, तब कनीनिका सकुचित हो जाती है। इस सवेदनाके व्यापारको "एक केन्द्राभिमुखता-जन्य संकोचन प्रतिक्रिया" का व्यापार कहते हैं। **(ड) नेत्रच्छद निमीलन प्रतिक्रिया (लिड क्लोझर रिफ्लेक्स):**—नेत्रच्छदको जोरसे बद करनेसे कनीनिकाका संकुचन होना, **गळासि** प्रतिक्रिया, **फा-ग्राफने** जाहिर कीई। इस सवेदना प्रतिक्रियाका उपयोग कनीनिकाकी सकोचन करनेवाली स्नायूको लकवा हुआ है, या नही यह जाननेमें होता है। **(ई) बृहन्मस्तिष्कके बाह्य कवचकी प्रतिक्रिया (सेरिब्रल कारटेक्स रिफ्लेक्स):**—रोगीको अधियारी कोठरीमे बिठाकर उसको दूर देखनेको कहना,

फिर सिर या गर्दनको बिना झुकाये सिर्फ प्रकाशमय वस्तुका विचार भर करनेसेही कनीनिकाका सकोचन होता है। इसी कारणसे इस सवेदन प्रतिक्रियाको "बृहन्मस्तिष्क बाह्य कवचकी प्रतिक्रिया" कहते है। इसीको **हाव** की प्रतिक्रिया भी कहते हैं।

(२) कनीनिकाकी प्रसरणकारक संवेदना

(अ) प्रत्यक्ष छाया प्रतिक्रिया:—जब नेत्रोंको सिर्फ ढाकने मात्रसे कनीनिकाका प्रसरण होता है, तब उस सवेदनाको "प्रत्यक्ष छाया प्रतिक्रिया" कहते हैं। **(ब) साधर्म्य संवेदन छाया प्रतिक्रिया:**—एक नेत्रको ढाकनेसे दूसरे नेत्रकी कनीनिका का जब प्रसरण होता है, तब उसको "साधर्म्य सवेदन छाया प्रतिक्रिया" कहते हैं। **(क) दृक्संधान-शक्ति शिथिल होनेसे दिखाई देनेवाली प्रतिक्रिया (रिल्याक्स्ड अकोमोडेशन रिफ्लेक्स):**—नजदीक के पदार्थपरसे एकदम दूरके पदार्थको देखनेसे कनीनिका का प्रसरण होता है तब यह अवस्था दिखाई पडती है। **(ड) संज्ञानवाहक प्रतिक्रिया–(स्किन प्युपिल रिफ्लेक्स) कनीनिकाकी त्वक् सवेदना:**—चमडीको चिऊटी काटनेसे कनीनिका का प्रसरण होता है तब यह "त्वक सवेदना" दिखाई पडती है। **(ई) मानसिक प्रतिक्रिया (मेन्टल रिफ्लेक्स):**—भय, सताप आदि विकारोंमें जब कनीनिका का प्रसरण होता है तब यह सवेदना दिखाई पडती है।

कनीनिकाका संकोचन क्षोभजनक, या स्तभिक–पक्षाघातग्रस्त–रूपका भी होता है।

कनीनिकाके संकोचनके क्षोभजनक कारण:—(१) नेत्रगोलकके आगेके अंगोका यानी तारकापिधान, तारका और तारकातीतपिडका दाह, तथा तारकापिधान और शुक्लास्तरमे घुसे हुए शल्य; (२) वाचन लेखनादि नजदीक के काम लगातार बहुत समयतक करनेसे तारकाके तथा तारकातीत पिडके स्नायुका आकुचन, (३) एसरीन, पायलोकारपिन, आरकोनीन, मस्करिन, निकोटिन तथा अफीम आदिका उपयोग बहुत समयतक करना; (४) मस्तिष्क सेतुमे रक्तस्राव (पान्टीन हेमरेज); (५) मृगी, मज्जातन्तू-सक्षोभ तथा रक्तज मूर्च्छा और उन्मादवायूकी प्रारंभिक अवस्था, (६) तीसरा मस्तिष्क रज्जु या उसके केन्द्रका अर्बुद, तथा चतुष्पिडके सामनेके पिडके पासका अर्बुद; (७) मस्तिष्क या मस्तिष्कावरणका दाह। इन सब अवस्थाओमे तीसरे मस्तिष्क रज्जुका उद्दीपन या क्षोभ होनेसे कनीनिका सकुचित हो जाती है।

कनीनिकाके संकोचनके स्तंभिक कारण:—(१) आनुकपिक-पिगल-मज्जातन्तु जालके स्तंभ पर अवलम्बित रहनेवाले कारण (सिपथेटिक रिफ्लेक्स), (२) ग्रैवेयिक सुषुम्नाकी चोट, रक्तस्राव, अर्बुद या दाह; (३) फुप्फुसान्तरालका (मिडियास्टायनम्) अर्बुद; (४) अन्नमार्गनलि का साघातिक अर्बुद (म्यालिग्नन्ट टयुमर ऑफ ईसाफेगस्); (५) ग्रीवामेंके आनुकम्पिक मज्जा रज्जुकदको निकाल डालना। इन कारणोसे कनीनिकाका स्तंभिक सकोचन होता है।

कनीनिकाके प्रसरणके कारण स्तंभिक या उद्दीपक—ऐंठनदार ऐसे दो तरहके होते हैं।

(१) कनीनिका प्रसरणके स्तंभिक कारण:—(१) तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुका स्तंभ जो सिलव्हियन नालीके रक्तस्राव या अर्बुदसे होता है; (२) तीसरी मस्तिष्क मज्जा-

रज्जुके मार्गमें दाह; कांचबिंदु, जवनिकामे लहु जमना, (३) अट्रोपीन, डयुबोसीन, धतूरीन, हायोसायामिन, हायोसिन और होम्याट्रापिन इन दवाओंका उपयोग, (४) नेत्रगोलकको घूसा लगनेसे इन रज्जूओका स्तभ होना ।

(२) कनीनिका प्रसरणके उद्दीपन जन्य ऐंठनदार कारण:—डर, लहूमे कर्बादि प्राणिल वायू (CO_2) का सचय आदिसे आनुकंपिक मज्जातन्तुओका स्तंभ होना, अपस्मार, प्रसूति वेदनाऐं, सुषुम्नाका दाह या अर्बुद, कीरीकी (टेबिज) प्रारंभिक अवस्था, कृमि, सीसेकी (रागा) विषबाधा, पित्ताशयका अश्मरीजन्य शूल, ग्रैवेयिक अर्बुद, उन्मादवायु, औदासिन्य, बहुत समयतक कोकेनका उपयोग, मूत्र-कृच्छ (पथरी) आदि विकारोसे आनुकंपिक मज्जातन्तु मंडल का क्षोभ होता है ।

कनीनिकाकी प्रतिक्रियाके संबंधम कुछ ध्यानमे रखने लायक बातें:—(१) कनीनिका के क्षोभजन्य संकोचनमें उसके उपर प्रकाश डालनेसे वह ज्यादह संकुचित होती है। दोनो नेत्रोको एक केन्द्राभिमुख करनेसे दृक्सधान शक्ति ज्यादह बढानेसे, या नेत्रोमें एसरीन डालनेसे संकुचित कनीनिका और भी ज्यादह सकुचित होती है । इसीमें अट्रोपीन डालनेसे वह प्रसृत होती है। **(२) कनीनिकाके स्तंभिक संकोचनमें** अट्रोपीनका कुछ असर नही होता । प्रकाश, नेत्रोंकी एक केन्द्राभिमुखता ओर दृक्संधान शक्ती की वृद्धीसे थोडा असर होता है । **(३) कनीनिकाके स्तंभज प्रसरणमें** प्रकाश, एक केन्द्राभिमुखता और दृक्-सधान शक्तीकी वृद्धि आदि प्रतिक्रियायें नहीं होती, एसरीनका असर थोडा होता है। **(४) कनीनिकाके ऐंठनदार प्रसरणमे** प्रकाश, दृक्संधान शक्ती, एक केन्द्राभिमुखता और एसरीनसे संकोचन होता है ।

कनीनिकाकी कुछ अनियमित प्रतिक्रियायें

(१) आ. रा. कनीनिका ("आरगाईल राबर्टसन" प्युपिल) इस अवस्थामे दृक्सधान शक्ति या एक केन्द्राभिमुखता की क्रियाओमे कनीनिका संकुचित होती है; लेकिन प्रकाशसे सकुचित नही होती, या अगर हो भी तो बिलकुल कम मात्रामे होती है । इस अवस्थाको तारकास्तभजन्य प्रतिक्रिया (रिफ्लेक्स आयरीडोप्लेजिया) कहते हैं। इस क्रियाके स्पष्टीकरणके लिये नेत्रोपर पहले प्रकाश डालना, और फिर नेत्रोंको ढांककर यह देखना चाहिये कि कनीनिकाका सकुचन या प्रसरण होता है या नही । फिर नेत्रके सामनेकी १० इच दूरीकी वस्तु देखनेको कहनेसे ऐसा मालूम होगा कि कनीनिका तुरन्त सकुचित होती है।

यह **आ. रा.** कनीनिका प्रतिक्रिया कुछ खास मज्जातन्तुओंके विकारोंमे पाई जाती है। जैसे कि उपदंश, कीरी, बुद्धिभ्रम हुए मनुष्यकी लकवेकी अवस्था । कभी कभी कृष्ण-पटलके दाहमे या नेत्रस्नायुओंकी केन्द्रिय स्तंभकी अवस्थामें यह **आ. रा.** कनीनिका प्रति-क्रिया दिखाई पड़ती है। जिसकी विचारशक्ति नष्ट हुई हो ऐसे वृद्ध मनुष्यमें, मज्जातन्तु पेशियोका काठिन्य, मस्तिष्क-सुषुम्नाका उपदंश, मृगी, प्रागतिक स्नायुक्षय-(प्रोग्रेसिव्ह मसक्युलर अट्रफी) लकवा, हृदमहारोहिणीकी रक्तजग्रंथी, और सीसेके जहरके परिणाम आदि विकारोमे यह **आ. रा.** कनीनिका प्रतिक्रिया दिखाई पड़ती है ।

"वरनिग"की कनीनिका प्रतिक्रिया

यह प्रनिक्रिया नेत्रके अर्ध भागके अधत्व–अर्ध दृष्टिमें (हेमिअनोपीया) दिखाई पड़ती है। इस प्रतिक्रियाका उपयोग दृष्टिपटलके अर्ध भागके अधत्वका स्थान निर्णय करनेमें हो मकता है। दृष्टिपटलके जिस भागमें अधत्व दिखाई पडता है उसी भागपर प्रकाश डालनेसे कनीनिकाका सकुचन होता है या नही यह देखना चाहिये। यदि कनीनिकाका सकुचन हो तो समझना चाहिये कि विकारके उद्गमकी क्षतीका स्थान (लिज़न) चतुर्ष्पिडके पिछले भागके क्युनियस खड (लोब) मे या चतुर्ष्पिडसे मस्तिष्कगामी मज्जातन्तुओमें हैं। किन्तु दृष्टिपटलके अधे भागपर प्रकाश डालनेसे कनीनिका सकुचित न हो, तो समझना चाहिये, कि क्षतिका स्थान चतुर्ष्पिडके सामनेकी ओरको यानी दृष्टि या चाक्षुप पथ, दृष्टि रज्जुसधि (ऑप्टिक ट्राक्ट एन्ड कायेझमा) या दृष्टिरज्जु इनमेंसे किसी एक भागमें होगा। इस प्रतिक्रियाके स्पष्टीकरणके लिये रोगीको अधियारी कोठरीमें बिठाकर उसके नेत्रपर सादे दर्पणसे प्रकाश डालिये और फिर पहले नतोदर दर्पणसे अंधे भागकी कनीनिकापर और बादमें अच्छे भागकी कनीनिका पर प्रकाश डालके दोनो प्रतिक्रियाओकी तुलना कीजिये।

विरोधाभासात्मक कनीनिका प्रतिक्रियाः—(प्यागडाक्सिकल प्युपिलरि रिऍक्शन) कुछ मज्जातन्तुओके विकारोमें कनीनिकाका व्यपार विरोधाभासात्मक होता है। कनीनिका का प्रकाशसे प्रसरण और छायासे सकुचन दिखाई पडता है। यह प्रतिक्रिया निम्नलिखित विकारोमे पाई जाती है; जैसेकि, मस्तिष्कावरणका दाह, कीरी, प्रागतिकस्तंभ, अनेक मज्जा-तन्तु पेशियोकी कठिनता, मस्तिष्कका उपदंश और आनुकपिक मज्जातन्तु मंडलके विकार आदि। कभी कभी नेत्रोकी एक केन्द्राभिमुखता या दृक्सधान शक्तिमे कनीनिकाके सकुचनके बदले प्रसरण दिखाई पड़ता है और दूर देखनेमे संकुचन होता है।

हिप्पसः—जब कनीनिकाका स्थिर प्रकाशमे तालबद्ध सकुचन तथा प्रसरण होता है तब उस अवस्थाको **हिप्पस** कहते हैं। यह दृश्य दोनो नेत्रोमे एक साथ दिखाई पडता है। **नाइज़**के मतानुसार यह अवस्था तीसरी मज्जारज्जुके स्तभं अच्छा होनेके समयमें दिखाई पडती है। इस समय अनैच्छिक नेत्रविभ्रम दिखाई पड़ता है। यह दृश्य स्नायविक दुर्बलता, मज्जातन्तु क्रियाकी दुर्बलता (न्युरेसृथेनिया) **अपतंत्रक मज्जातन्तु संक्षोभ** (हिस्टेरिया), मगी और मस्तिष्कके अर्बुदमें दिखाई पड़ता है।

अंधत्वमें कनीनिकाकी दिखाई देनेवाली अवस्था

नेत्रगोलक और चतुर्ष्पिडके दरमियानके किसी भी भागको चोट लगनेसे, या दोनो नेत्रोके दृष्टिपटलको चोट लगनेसे या अन्य विकार होनेसे दोनों नेत्रोमे अंधत्व पैदा होता है, तब दोनो कनीनिका प्रसृत हो जाती है। चोटका स्थान चतुर्ष्पिड और मस्तिष्क इन दोनोके दरमियानके भागमे हो, तो कनीनिकाका प्रसरण मध्यम मात्रासे कुछ कम होता है। पहले याने चतुर्ष्पिडके स्थानमे प्रकाश परिवर्तन क्रियाके व्यूहमे-अंग समूहमें खड होता है; लेकिन दूसरे स्थानमे यह व्यूह-समूह अखडित रहता है। जब एक नेत्रमे दृष्टिपटलके या दृष्टि-रज्जुके विकारसे अंधत्व पैदा होता है, तब उसकी कनीनिका, अविकृत नेत्रको ढांकनेसे प्रसृत हो जाती है। अंधे नेत्रपर प्रकाश डालनेसे दोनोकी कनीतिकापर कुछ परिणाम नही दिखाई

पड़ता । लेकिन अच्छे नेत्रपर प्रकाश डालनेसे उसकी कनीनिका संकुचित होती है, और अंधे नेत्रकी भी कनीनिका संकुचित होती है ।

दृष्टिरज्जुसंधिके सामनेके या पिछले भागमे या कोई भी एक दृष्टिपथमे विकृति हुई हो तो दृष्टिपटलोके आधे भागमे अंधत्व दिखाई देता है । दृष्टिपटलके इस अधे भागपर प्रकाश डालनेसे कनीनिका सकुचित नही होती । चतुष्पिडके पीछेसे मस्तिष्कतकके किसी भागमें विकार होनेसे कनीनिकाके व्यापारपर कुछ असर नही होता, कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिकिया कायम रहती है ।

अंधत्वके कुछ प्रकारोमें कनीनिका प्रतिक्रिया दिखाई पडती है । मूत्रज मूर्च्छाजन्य अधत्व, प्रासूतिक अंधत्व, तथा मस्तिष्कके नीचेके तलके आवरणका दाह इन विकारोमे नेत्रपर प्रकाश डालनेसे कनीनिका सकुचित होती है। **फास्टरमूर** के मतानुसार इन विकारोंके जहरोंका परिणाम मस्तिष्कके बाहरी भागपर होता है, प्रकाश परिवर्तन क्रियाके उस व्यूह पर नही होता, जिससे प्रकाश परिवर्तन क्रिया दिखाई पडती है। दृष्टिरज्जु क्षयज अंधत्वमें ही प्रकाश परिवर्तन क्रिया पाई जाती है ऐसा कोई कोई मानते हैं ।

तारकाका स्तंभः—इसके दो प्रकार होते हैं. (१) **तारकाका संपूर्ण स्तंभ**—लकवा (अॅबसोल्युट आयरिडोप्लेजिया)—इसमे कनीनिकाकी प्रकाशपरिवर्तन क्रिया का पूर्ण लोप हो जाता है, और नेत्रोकी एक केन्द्राभिमुखता तथा दृक्सधान शक्तिमे कनीनिका सकुचित नही होती । (२) दूसरे प्रकारमे प्रतिक्रिया **आ. रा.** कनीनिका जैसी दिखाई पडती है । दृक्संधानशक्ति स्तंभित होनेसे एक बाजूकी तारकास्तभकी प्रतिक्रियाकी अवस्था दिखाई पड़ती है । यह अवस्था कीरी और उपदशके विकारमे पाई जाती है । चोट लगनेके बाद सिर्फ एकही कनीनिका विस्तृत और अचल हो, तो समझना चाहिये कि चोट उसी ओरको लगी है ।

कनीनिका के क्षेत्र की परीक्षा तिर्य्यक् प्रकाशमे करनी चाहिये । कनीनिका और स्फटिक-मणिमे बंध (ऍड्हीजन्स), उत्सर्जित द्रव्य (एक्झुडेट्स), शल्य और रजितकण है या नही, इसकी जाच करनी चाहिये ।

कनीनिकाके क्षेत्रमें के स्फटिकमणिके भाग की परीक्षा की रीतिया अनेक होती हैं:— जैसेकी (१) तिर्य्यक् प्रकाशसे; (२) नेत्रान्तरंगदर्शक यत्रके नतोदर दपर्णसे; (३) शुक्लपटल पर प्रकाश केन्द्रीभूत करके नेत्रान्तरंगको प्रकाशित करनेसे; (४) स्लिटलैम्पसे । रेटिनास्कोपी का दर्पण गोल और बडा होनेसे प्रदीपन अच्छा होता है ।

इस क्षेत्रमें अपारदर्शकता या शल्य है या नही इसका तलाश करना चाहिये । तिर्य्यक् प्रकाशसे अपारदर्शकता काले परदेपर भूरे या सुफेद रगकी जैसी दिखाई पडती है। दर्पणसे देखनेसे लाल नेत्रतलपर काले रगकी जैसी दिखाई पडती है । इससे सिर्फ कनी-निकाके क्षेत्रमें की अपारदर्शकता दिखाई देती है । स्फटिकमणिके परिधि भागकी अपार-दर्शकता जाचनेके लिये कनीनिकाको प्रसृत करना जरूरी होता है ।

बाजे वक्त इस क्षेत्रमे शल्य घुसे है ऐसा मालूम होगा। लेकिन साधारणतया स्फटिकमणिके फूल जानेसे वे नज़रमे नही आते। इस हालतमें स्फटिकमणिकी "क्ष" किरणोसे तसबीर लेना अवश्य होता है। तिर्य्यक् प्रकाशमे स्फटिकमणिके आवरणका शल्यसे फटा हुआ भाग दिखाई पडेगा। शल्य सूक्ष्म हो तो कई बर्सोतक वह कभी कभी कुछ भी लक्षण विना अन्दर रहजाता है।

तिर्य्यक् प्रकाशसे परीक्षा करनेके बाद दृष्टिविशारदने नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रके दर्पणके छिद्रके पीछे +१०.० डी बलका शीशा रखकर प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिका इस्तेमाल करके स्फटिकमणिकी परीक्षा करना। इस तरकीबसे देखे हुए भाग बडे दिखाई देते है। स्फटिकमणि स्थानभ्रष्ट हुआ हो, तारकाका फाल हो या तारकाका च्छेदन किया हो तो स्फटिकमणिकी किनार दिखाई पडेगी। कभी कभी स्फटिकमणिको लटका रखनेवाला बंद या तारकातीर्नापिंडकी प्ररोहा भी दिखाई पडती है।

१२ स्फटिकमणि (ताल, शीशा, लेन्स)

स्फटिकमणिकी परीक्षा करनेकी अनेक रीतिया होती हैं। एक तिर्य्यक् प्रकाशसे और दूसरी नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके नतोदर दर्पणकी सहायतासे। वृद्ध मनुष्यका स्फटिकमणि पारदर्शक होते हुए भी तिर्य्यक् प्रकाशसे भूरे रगका भासमान होता है, जिसकी वजहसे उसमें भूलसे मोतीबिन्दुका निदान किया जाना संभव है। किन्तु अधियारी कोठरीमे नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे उस मनुष्यका नेत्रतल साफ दिखाई पडेगा। स्फटिकमणिकी परीक्षा दो कारणोंके लिये आवश्यक होती है; एक उसकी अपारदर्शकता और दूसरे उसमे शल्य है या नहीं यह देखनेके लिये। तिर्य्यक् प्रकाशसे अपारदर्शकता भूरे रगकी मालूम होती है। लेकिन अंधियारी कोठरीमे नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रके दर्पणसे अपारदर्शक भाग लाल पर्देपर काले धब्बे जैसे दिखाई पडते है।

स्फटिकमणिकी परिधि भाग की परीक्षा करनेके लिये प्रथमतः प्रसरणकारक दवासे कनीनिका विस्तृत करना जरूरी होती है। इस लिये होम्याट्रापिन, मायड्रिन यूफथालिन का उपयोग किया जाता है। स्फटिकमणिकी सूक्ष्म परीक्षा अधियारी कोठरीमें नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दर्पणके दृष्टिछिद्रमे +२०.० डी बलका शीशा रखकर अच्छी तरहसे होती है। कनीनिका पूरी तौरसे विस्तृत हुई हो, तो तारकातीर्तपिड की प्ररोहा, स्फटिकमणिको लटका रखनेवाला बंद और उसका परिधि भाग दिखाई पड़ना संभव होता है। स्फटिकमणिका परिधि भाग लाल प्रकाशित भागमे काले रगकी कमान या मिहराब जैसा दिखाई पड़ता है।

स्फटिकमणि स्वस्थानमे है, या स्वस्थानसे भ्रष्ट हुआ है यह देखना चाहिये। यह परीक्षा "**परकंजी-सामसन**" की **प्रतिमाओंसे** हो सकती है। ये नैसर्गिक अवस्थामे तीन होती है। ये प्रतिमाये परावृत्त किरणोसे बनती है। इनमेंसे एक तारकापिधानसे परावृत्त हुए किरणोंसे तैयार होती है और बाकी दो प्रतिमाये स्फटिकमणिके सामनेके और पिछले पृष्ठसे बनती है। स्फटिकमणिको निकाल डाला हो, या वह स्थानभ्रष्ट हुआ हो, तो स्फटिक-

मणिकी ये दो प्रतिमायें दिखाई नहीं पडेंगी। सिर्फ तारकापिधान परकी प्रतिमा दिखाई पडती है। इन तीन प्रतिमाओंमेंसे बिलकुल सामनेकी पूर्ण तेजदार सरल और भ्रामक होती है। यही तारकापिधानकी प्रतिमा होती है। दूसरी भी प्रतिमा तेजदार, सरल और भ्रामक होती है; यह स्फटिकमणिके सामनेके पृष्ठसे बनती है। तीसरी प्रतिमा सबसे छोटी, उलटी और सच्ची होती है; यह स्फटिकमणिके पिछले पृष्ठसे बनती है। स्फटिकमणि अपारदर्शक होनेसे तीसरी प्रतिमा नहीं दिखाई पड़ती।

चित्र नं. १५

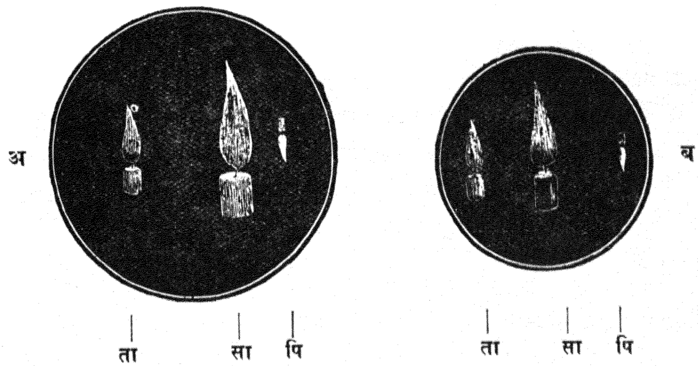

परकंजी सामसन की प्रतिबिम्बित प्रतिमा (फालिन)

अ. कनीनिका प्रसृत हुई है और दृक्संधानशक्तिका अभाव है।

ब. कनीनिका संकुचित है और दृक्संधानशक्तिका इस्तेमाल किया गया है।

ता. तारकापिधान की उन्नतोदर पृष्ठकी प्रतिमा। **सा** स्फटिकमणिके सामनेके उन्नतोदर पृष्ठ की प्रतिमा। **पि.** स्फटिकमणिके पिछले पृष्ठके नतोदर सीमाकी प्रतिमा,

१३ स्फटिक-द्रवपिंड (व्हिट्रीयस बॉडी)

स्फटिकमणि पूर्ण पारदर्शक हो, तो स्फटिकद्रवपिंड के सामने के भागकी परीक्षा तिर्य्यक् प्रकाशसे करना संभव होता है। लेकिन इस पिंडकी परीक्षा अंधियारी कोठरीमें नेत्रान्तरंग-दर्शक यंत्रसे अच्छी हो सकती है। कनीनिकाको पूर्ण विस्तृत करना आवश्यक है। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके नतोदर दर्पणका उपयोग इस लिये करते हैं। स्फटिक-द्रवपिंडमें अपारदर्शक कण हैं, या नहीं और हों तो अचल हैं या चल हैं इसका निर्णय करना आवश्यक है। इस निर्णयके लिये रोगीको पहले ऊपर, नीचे, बाजूमें नेत्र जल्दी जल्दी घुमानेको कहते हैं, और फिर नज़र सामनेको स्थिर करनेसे ऐसा मालूम होगा, कि अपार-दर्शक कण नेत्रमें घूमते हैं। इस तरीकेसे बड़ेबड़े अपारदर्शक कण स्फटिकद्रवपिंडमें दिखाई पड़ते हैं। सूक्ष्म कणोंके लिये नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे देखनेकी आवश्यकता होती है। कभी कभी "क्ष" किरणसे भी जांचना आवश्यक होता है।

१४ तारकातीतपिंड की परीक्षा नेत्रगोलकको देखनेसे और उसको उंगलीसे दबाके की जा सकती है। इसके अर्बुदमें नेत्रच्छदपरसे दबानेमे बहुत वेदना होती है ।

१५ नेत्राभ्यन्तर दबाव और नेत्रगोलकपर आनेवाला तनाव (इन्ट्राआक्युलर प्रेशर ऍन्ड टेनशन)

नैसर्गिक नेत्रगोलकमे नेत्राभ्यन्तरके दबाव की मात्रा पारेकी १९ से २५ मि. मि. ऊंचाईके बराबर होती है । ज्यादहसे ज्यादह मात्रा ३५ मि. मि. और कमसे कम अनुपात १० मि. मि. हमने अनुभवमे प्रत्यक्ष देखा है । काचबिन्दु और नेत्राभ्यन्तरका अर्बुद इन अवस्थाओमें और कभीकभी तारकातीतपिंडके दाहमें नेत्राभ्यन्तरका दबाव बढ जाता है। दृष्टिपटलकी स्थानभ्रष्टता, स्फटिकद्रव ज्यादह पतला होना और नेत्रगोलकमे छेद होना इन अवस्थाओंमें दबावकी मात्रा कम होती है । मज्जातन्तु की कलाके अर्बुदके आभासमे (सूडो न्यूरो एपिथेलिओमा) भी दबाव कम होता है ।

नेत्राभ्यन्तरके दबाव का नाप उगलीयोसे और नेत्राभ्यन्तरके दबाव के नापनेके यत्र से करते है । उंगलीसे दबाव नापनेके लिये रोगीको अपने सामने बिठाकर नेत्रच्छदोको बंद करके सामनेकी ओरको देखनेको कहना चाहिये । फिर अपने दोनो हाथोकी अनामिका और बीचकी उंगलीया रोगीकी दोनो कनपटियोपर रखकर एक तर्जनी को एक नेत्रके बंद नेत्रच्छदपर रखिये । फिर दूसरे हाथकी तर्जनीको पहली तर्जनीके पास रखकर नेत्रच्छदके ऊपरसे नेत्रगोलकको आहिस्ते से दबाके नेत्रगोलकमे छाप पडती है, या नही यह देखते है ।

हमारे दो हजारसे ज्यादह नेत्रगोलकोका दबाव का संशोधन दाखिल करनेमें नीचेके संक्षिप्त लफ्जोका इस्तेमाल किया है:—**द नै**=नैसर्गिक दबाब, द+?=संभाव्य बढाव; द+१= जाहिर बढा हुआ दबाव; द+२=ज्यादह बढा हुआ दबाव, द+३=पत्थर जैसा सख्त नेत्रगोलक । नेत्राभ्यन्तरके उतरे हुए दबावको, द–?, द–१; द–२; द–३, इन लफ्जोसे दाखिल किया है ।

१६ नेत्रगोलक के स्नायु

नेत्रगोलक की बाह्य स्नायुएँ छ होती हैं । इनमेसे चार सरल चलन देनेवाली स्नायुएँ होती हैं, एक ऊपर, एक नीचे, एक अन्दर और एक बाहरकी ओर को होती है। इनके नाम है सरलोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु, सरलाधोनेत्र चालनी स्नायु, सरलान्तर्नेत्र चालनी स्नायु और सरल बहिर्नेत्र चालनी स्नायु । दो वक्र स्नायुएँ, एक ऊपर और दूसरी नीचेकी ओरको, होती है, इनके नाम हैं वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु और वक्राधोनेत्र चालनी स्नायु । ये सब नेत्रगोलक के कोयेसे चिपकी रहती है । सातवी स्नायु ऊपरके नेत्रच्छदमें चिपकी रहती है और इसका नाम है ऊर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिका स्नायु ।

इन स्नायुओंकी कार्यकी परीक्षा:—नैसर्गिक अवस्थामे नेत्रस्नायु समतोल होती हैं । सरल स्नायुओंकी प्रवृत्ति नेत्रगोलक को पीछेकी ओरको खींचनेकी होती है, लेकिन वक्रस्नायु की प्रवृत्ति नेत्रगोलक को सामने की ओरको खीचनेकी होती है । इन दोनो तरहके स्नायुओंका कार्य बराबर होता रहता है, तब उनकी परस्पर विरोधी क्रिया नष्ट हो जानेसे नेत्रगोलक तुली हुई अवस्थामे रहता है । सरल बहिर्नेत्र चालनी और सरलान्तर्नेत्र चालनी

स्नायुओंकी क्रिया ठीक होती है, तब नेत्रगोलक मध्यरेषामे तुला हुआ रहता है। मनुष्य जब कुछ काम नही करता, तब उसके दोनों नेत्रों की अक्ष रेषाएँ समानान्तर रहती हैं। लेकिन निद्रावस्थामें यानी शारीरिक विश्रान्तिकी अवस्थामे नेत्रगोलक की अक्षरेषाएँ सामनेकी ओरको फैली रहती है। नेत्रगोलक की एक स्नायु या स्नायुसघ कमजोर हो, तो नेत्रगोलक के तुली हुई अवस्थामे रहनेके लिये कमजोर स्नायुको मज्जातन्तु की जोरदार क्रिया की आवश्यकता होती है। ऐसा न होनेसे अनेक तरहकी तकलीफें पैदा होती हैं। नेत्रकी असमतुलित अवस्थाएं निम्नलिखित जैसी होती है।

समदृष्टि.—दोनो नेत्रोकी स्नायुओकी समतोलनता–समतुलित अवस्था–**आरथोफोरिया**।

वामदृष्टिः—दोनो नेत्रोकी स्नायुओकी असमतोलनता– असमतुलित अवस्था–**हिटरोफोरिया**।

उर्ध्वच्यवनित नेत्र.—एक नेत्र की दुसरे नेत्र के ऊपर की दिशामे घुम जानेकी अवस्था–**हायपरफोरिया**।

अधोच्यवनित नेत्र.—एक नेत्रकी दूसरे नेत्र की नीचेकी दिशामे घुम जाने की अवस्था–**हायपोफोरिया**।

बहिर्च्यवनित नेत्र·—नेत्रकी अक्षरेषा की बाहरकी ओरको घुम जानेकी अवस्था–**एक्झोफोरिया**।

आन्तर्च्यवनित नेत्र.—नेत्रकी अक्षरेषाकी भीतरीकी ओरको घुमजानेकी अवस्था–**इसोफोरिया**।

बहिरोर्ध्वच्यवनित नेत्र·—एक नेत्रकी अक्षरेषाकी बाहर और ऊपर घुम जानेकी अवस्था–**हायपरएक्झोफोरिया**।

बहिराधोच्यवनित नेत्र.—एक नेत्रकी अक्षरेषाकी बाहर और नीचे की ओरको घुमजानेकी अवस्था–**हायंपोएक्झोफोरिया**।

आन्तरोर्ध्वच्यवनित नेत्रः—एक नेत्रकी अक्षरेषा की भीतर और उपरकी ओरको घुमजानेकी अवस्था **हायपरइसोफोरिया**।

आन्तराधोच्यवनित नेत्रः—एक नेत्रकी अक्षरेषा की भीतर और नीचेकी ओरको घुमजानेकी अवस्था **हायपोइसोफोरिया**।

वृत्तगत नेत्रः—वक्रचालनी स्नायुओकी असमतुलित अवस्था **सायक्लोफोरिया**।

नेत्रस्नायु तुला हुआ है, या नही इसकी परीक्षा करनेकी अनेक कसौटियाँ होती है. जैसे कि ढक्कन फलक, स्थैर्यबिन्दु कसौटी, म्याडाक्स राडकी कसौटी, म्याडाक्स की दो मखरूत यानी त्रिपार्श्व की कसौटी, आदि।

दोनो नेत्रोके स्नायु तुले हुए है या नही, इसकी परीक्षा जब मनुष्य २० फीट या ज्यादह फासलेपर के पदार्थोंको देखता है, तब करते हैं। इसके लिये मोमबत्ती के दीपक

का उपयोग करते हैं। और नज़दीक के लिये यानी १२ से १४ इंचपर बारीक हरूफ या काले तक्ते पर सुफेद बूंद बने हुए तक्तेका उपयोग करते हैं। स्नायुओंकी तुली हुई अवस्थाकी परीक्षा नेत्रमें अट्रोपीन आदि दवायें डालनेके पहले करना मुनासिब होता है। दृष्टि अनैसर्गिक हो, तो वक्रीभवन दोष की परीक्षा करनेके पश्चात स्नायुओंकी तुली हुई अवस्थाकी परीक्षा करनी चाहिये।

(१) स्थैर्यबिन्दुकी कसौटी (फिक्सेशन टेस्ट):—रोगीके सामने नेत्रके समतलके १३ इंच फासलेपर अपनी उंगली पकडकर उसकी तरफ रोगीको देखनेको कहते हैं। फिर उस उंगलीको धीरे धीरे रोगीकी नासिकाकी तरफ ३।। इंच अन्तर तक ले जाते हैं। दोनों नेत्र एक सहा उंगलीपर स्थिर होना चाहिये। उस समय यदि रोगीका एक नेत्र बाहरकी ओर को घूम जाय तो उस नेत्रमें बहिर्च्यवनकी अवस्था है, ऐसा जाना जा सकता है। इस कसौटीसे कौनसे नेत्रकी **सरलान्तर नेत्र चालनी स्नायु** कमजोर है इसका बोध होता है।

(२) ढक्कन फलककी कसौटी:—**(कव्हरटेस्ट)** इस कसौटीका उपयोग करनेके समय २० फीट अन्तरपर और रोगीके नेत्रोंके समतलमें नासिकाके सामने एक मोमबत्ती रखके रोगीको उस मोमबत्ती की ज्योतीकी तरफ देखनेको कहते हैं। और फिर पहले उसका एक नेत्र और बादमें दूसरा नेत्र ढक्कन फलकसे ढांकते हैं। पहले नेत्र परसे ढक्कन फलक को हटानेके पहले उस नेत्रमें किस तरहका चलन होता है यह देखते हैं। ढक्कन फलकको दूर हटानेके समय यदि नेत्र नासिकाकी ओरको घूम जाय, तो ढक्कन फलकके पीछे वह नेत्र बाहर यानी कनपटीकी ओरको घूमा था, यानी नेत्र बहिर्च्यवनकी अवस्थामें (एक्झोफोरिया) था, यह निश्चित है। ढक्कन फलकको हटानेसे नेत्र नीचेकी ओरको घूमजाय, तो नेत्रमें ऊर्ध्वच्यवनकी अवस्था (हायपरफोरिया) है यह निश्चित समझना चाहिये। इस ढक्कन फलकका उपयोग नज़दीककी परीक्षाके समय भी हो सकता है।

चित्र नं. १६

म्याडाक्स की शलाका

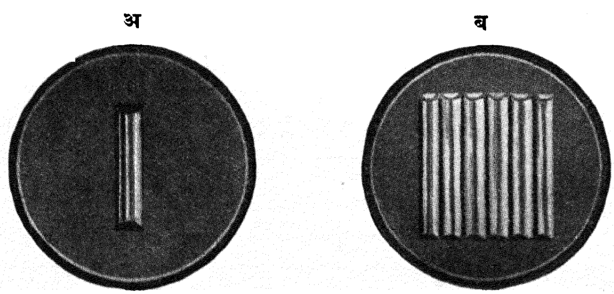

अ एक शलाका ब अनेक शलाका

(३) म्याडक्सकी शलाकाकी कसौटी:—यह कसौटी सांचेमें बिठाई हुई कांचकी एक या ज्यादह छोटी शलकाकी बनी हुई होती है। इस कसौटीका विशेष यह होता है

कि शलाकामें मोमबत्ती की ज्योतिकी तरफ देखनेसे ज्योति लम्बी प्रकाशकी रेषा जैसी मालूम होती है। कसौटीका उपयोग अंधियारी कोठरीमें किया जाता है। **प्रयोगः—** रोगीको अंधियारी कोठरीमे बिठाकर उसके सामने २० फीट फासलेपर और नेत्रोके समतलमें और बीचमें मोमबत्तीको रखकर उसकी ज्योतिकी तरफ देखनेको रोगीको कहना। फिर नेत्रोंके सामने नासिकापर चश्मेकी खाली कमान रखना, फिर यह म्याडाक्सका शलाका यंत्र, चश्मेकी कमानमे मान लीजिये, की नेत्रके सामने—दाहिने नेत्रके सामने आडी रखना और फिर रोगीको ज्योतिकी तरफ दोनो नेत्रोसे देखनेको कहना। यदि दोनो नेत्रोके स्नायु तुली हुई अवस्थामे (आरथोफोरिया) हो, तो बाये नेत्रसे ज्योति नैसर्गिक दिखाई पडेगी' और दाहिने नेत्रसे ज्योतिके बदले खडी प्रकाशित लम्बी रेषा ज्योतिके ठीक बीचमेसे जाती है ऐसा मालूम होगा।

चित्र नं. १७

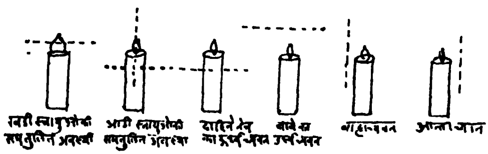

म्याडाक्स राड की प्रतिमा

यदि प्रकाश रेषा ज्योतिकी दाहिनी या बायीं ओर या ऊपर या नीचेकी ओरको दिखाई पडे तो दोनो नेत्रोके स्नायु तुली हुई अवस्थामे नही है ऐसा समझना चाहिये।

यदी दीपकी प्रकाशरेषा ज्योतिकी दाहिनी ओरको हो, तो उस दाहिने नेत्रमें अप्रकटित अन्तर्च्यवन—अप्रकटित एक केन्द्राभिमुखता (इसोफोरिया-लेटन्ट कनव्हरजन्स) है ऐसा समझना चाहिये। यदी प्रकाशरेषा ज्योतिकी बायी ओरको दिखाई देती है, तो उस नेत्रमें अप्रकटित बहिर्च्यवन (एक्झोफोरिया—लेटन्ट डायव्हरजन्स) है ऐसा समझना चाहिये। यदी म्याडाक्सकी शलाका चश्मेकी कमानमे खडी रखी जाय तो दीप प्रकाशकी रेषा ज्योतिके ऊपर या नीचे पडी हुई जैसी दिखाई पडेगी। यदि दीपकी प्रकाशरेषा ज्योतिके बराबर मध्य भागमेसे आडी जाती होगी, तो दोनो नेत्रोंकी स्नायुएँ समतोल अवस्थामे (आरथोफोरिया) है ऐसा मानना चाहिये। यदि दीपकी प्रकाशरेषा ज्योतिके ऊपर हो, तो **दाहिने** नेत्रका ऊर्ध्वच्यवन, और नीचेकी ओरका दिखाई पड़ती हो तो अधश्चवन समझना चाहिये :

चित्र नं. १८

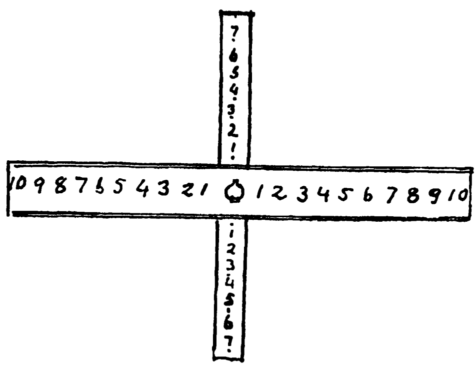

म्याडाक्स की स्पर्शज्या

म्याडाक्सकी स्पर्शज्या या मानदन्डकी कसौटीः— (म्याडाक्सेस टैनजन्ट स्केल) स्नायुका च्यवन खड़ी या आड़ी

रेषामें होता हो, तो उसका ठीक ठीक नाप म्याडाक्सकी स्पर्शज्या से आसानीसे हो सकता है । स्पर्शज्या क्रूस जैसी होती है । इसके दो भुज जिस जगहपर एकके ऊपर दूसरा लगा रहता है उस जगहमें एक छिद्र होता है । इस छिद्रके उस पार चिराग़ रखा जाता है जिस पर रोगी नज़र रखता है । इस स्पर्शज्या को दीवालकर रोगीसे १५ फीट दूर रखकर परीक्षा करते हैं। रोगीके दाहिने नेत्रके सामने म्याडाक्सकी शलाका पहले खडी तौरसे रखकर उसको दोनों नेत्रोंसे क्रूसके छिद्रमेंसे चिराग़ की तरफ देखनेको कहना। स्पर्जज्यासे ढके हुए दाहिने नेत्रसे दीप प्रकाशरेषा और बायेंनेत्रसे ज्योति उसको दिखाई पडेगी ।

यदि रोगी १५ फीट अन्तरपर हो, तो उसको बायें नेत्रसे स्पर्शज्या दिखाई पडेगी और दाहिने नेत्रकी प्रकाशरेषा आडी जैसी साडेतीन अंशपर दिखाई पड़ेगी (उर्ध्वच्यवन) ।

म्याडाक्सने १० इंच फासलेपरका देखनेके इसी तरहके त्रिपार्श्वके साथ उपयोग करनेकी मानदंडकी कसौटी निकाली है।

अप्रकटित केन्द्राभिमुखता की शक्ति की कसौटी:—पढनेके साधारण अन्तर की केन्द्राभिमुखताकी शक्तिका नापन **मार्के. डी. स्टीव्हनसनके** यंत्रसे जल्द किया जा सकता है। (चित्र. नं. १९) यदि रोगीके हर नेत्रकी दृक्शक्ति काफ़ी प्रमाणकी होतो उसको नावक (तीर) और हरूफकी दो प्रतिमाएँ एकके ऊपर दूसरी ऐसी दिखाई पडेंगी। रोगीको पूंछना, कि नीचेके तीर की प्रतिमा ठीक उपरके तीर के नीचे है या नहीं, यदि वह ठीक नीचे नहो, तो ऊपरके हरूफोंकी रेषाके कौनसे हरूफको बतलाता है। यदि नीचेका तीर दाहिनी ओर के हरूफको बतलाता हो, तो समझिये कि एक केन्द्राभिमुखता की नाकाबिलियात है, और बायीं ओरकी हरूफको बतलाता हो तो एककेन्द्राभिमुखता ज्यादह है। दोनों अवस्थाओंका प्रमाण साथके मानदंडसे समझा जाता है ।

चित्र नं. १९

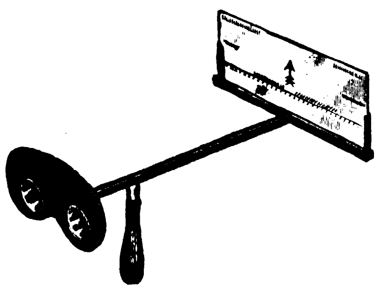

स्टीव्हनसनकी अप्रकटित अन्तर्वलित नेत्र की शक्ति जांचनेकी कसौटी

म्याडाक्सकी दो त्रिपार्श्व-क्रकचायत-मखरूती की कसौटी:—(म्याडाक्सस डबल प्रिझम टेस्ट) इस कसौटीसे नेत्रगोलक के सरल तथा वक्र चालक स्नायुओंकीभी कार्यशक्तिकी नाकाबिलियात नाप कर सकते हैं। इस यंत्रकी रचनामें चष्मेकी कमानमें ठीक बैठनेवाले दो त्रिपार्श्व या मखरूतीयां ३ से ६ अंश तककी ताकतके होते हैं । इनका तल एक दूसरेसे लगा रहता है । रोगीके नेत्रोंके सामने नासिकापर चश्मेकी खाली कमान रखकर उसमें त्रिपार्श्वका आदर्श वलय इस तरहसे रखना चाहिये कि दोनों त्रिपार्श्वके तल जिस रेषामें परस्परसे मिलते हैं वह रेषा कनीनिकाके केन्द्रके सामने ठीक आडी जैसी आ जायगी । यदि यह वलय दाहिने नेत्रके सामने और बायें नेत्रके सामने लाल रंगकी कांच रखकर, सामनेके पदार्थपर नज़र लगाई जाय, तो उसको दोनों नेत्रोंसे पदार्थकी तीन प्रतिमाएँ दिखाई पडेंगी । एक

बायें नेत्रकी लाल रगकी सच्ची प्रतिमा और उसके ऊपर और नीचे एक एक, कुल मिलकर तीन प्रतिमाये दिखाई पडेगी । त्रिपार्श्वका वलय नेत्रके सामने आडी रेषामें रखनेसे द्विधादर्शन लम्बरेषामे दिखाई पड़ेगा यदि दोनो नेत्रोकी स्नायु तुली हुई हो, तो तीनो

चित्र नं. २०

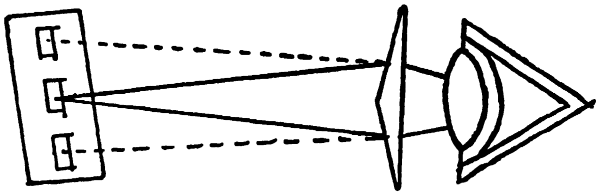

म्याडाक्स की दो त्रिपार्श्व की निकट बिन्दु जांचनेकी कसौटी

प्रतिमाये एक ही लम्ब रेपामे दिखाई पड़ेगी । यदि एक नेत्रमे अन्तर्च्यवनकी अवस्था हो, तो बाये नेत्रकी लाल प्रतिमा बांई ओरको जायेगी । बहिर्च्यवनकी अवस्था हो, तो लाल रगकी प्रतिमा दाहिने ओरको जायेगी । बाये नेत्रमे उर्ध्वच्यवन (हायपरफोरिया) हो तो लाल प्रतिमा नीचेकी ओरको, और अधोच्यवन (हायपोफोरिया) हो तो लाल प्रतिमा ऊपरकी ओरको जायेगी । इसी सरहसे त्रिपार्श्वका वलय लाल कांचके स्थानमें अदल बदल करनेसे दाहिने नेत्रकी परीक्षा की जा सकती है ।

स्नायुओंकी असमतुलित अवस्था नापनेके लिये जिस नेत्रके सामने लाल रंगका सादा काच रखा हो उसमे बढते सानुपातवाले बलके त्रिपार्श्वके तल ऊपरी, भीतरी, बाहरी और नीचेकी ओरको रखकर स्नायुकी समतुलित अवस्था दिखाई पड़ने तक देखना चाहिये ।

चित्र नं. २१

१ दाहिनी वक्रोर्ध्व चालिनी स्नायुकी नाकाबिलियात ।

३ बाईं वक्रोर्ध्व चालिनी स्नायूकी नाकाबिलियात ।

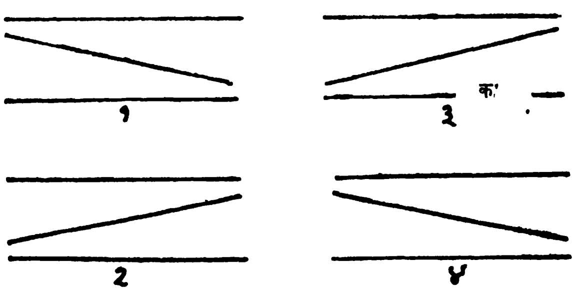

२ दहिनी वक्रधो स्ना. की नाकबिलियात

४ बाई वक्राधो. स्ना. की नाकाबिलियात

साव्हेजके मतानुसार वक्र स्नायुओंकी जांच भी इसी कसौटीसे कर सकते हैं। म्याडाक्सके दो त्रिपार्श्व ६° बलके होते हैं। वक्र स्नायुओंकी नाकाबिलियात दो समान्तर रेषामें की बीच की रेषा समानान्तर नहीं होती इस अवस्थापरसे दिखाई पड़ति है। यदि दाहिने नेत्रके सामनेही त्रिपार्श्व रखा है ऐसा समझिये। यदि बीचकी और नीचे की रेषा-ओंके दाहिने अग्र (चित्र नं. १) संसृत या पारस्परीकसे मिलनेवाले होते हैं तो वक्रोर्ध्व-चालनीस्नायुकी नाकाबिलियात है। और यदि ऊपरकी और बीचकी रेषाओंके दाहिने अग्र संसृत–मिलनेवाले हों तो (चित्र २) वक्राधोचालनी स्नायु नाकाबिलियात है ऐसा समझना। लेकिन साव्हेजका यह मत सब लोगोंको पसंत नहीं है। इनके मतानुसार यह दृश्य ऐन्द्रिय रूपका ही है।

म्याडाक्सकी वामदृष्टि जांचनेकी पंखेकी कसौटी : इस कसौटीका पढनेके फासले पर सब तरहकी पार्श्विक, **उर्ध्वाधर** या घूमता च्यवन की जांच करनेके लिये इस्तेमाल किया जा सकता है। इस कसौटीकी मुख्य कल्पना यह होती है कि हरएक नेत्रका क्षेत्र समयोजित पंखेसे स्वतंत्र रीतिसे जांचा जा सकता है। ये पंख यंत्रके देखनेके खांचे और देखनेके पदार्थके बीचमें रखे हुए होते हैं। इस यंत्रमें न कोई शीशा या त्रिपार्श्व होता है और दिनके प्रकाशमें भी इसका इस्तेमाल किया जा सकता है जिससे प्राकृतिक अवस्थामें कुछ भी रुकावट नही होती। पढनेके हरूफ भी एक सीधी लकीर में होनेसे दृक्संधान शक्तिकोभी कुछ तकलीफ नहीं होती।

पार्श्विक चलनकी जांच करनेके लिये नापन चिन्ह जिसपर आडे तौरमें लिखे हुए होते हैं ऐसे कारटका इस्तेमाल किया जाता है। ये पंख पार्श्विक तौरसे रखकर उनको नेत्रोंके नज-दीक जितना सरकाना संभाव्य होगा उतना सरकाना। पंखेकी वजहसे दृक्क्षेत्र के दो आधे से भाग होते हैं, जो पारस्परीककी सीमासे स्पर्शीय तौरसे और नेत्रोंके च्यवनकी विरुद्ध दिशामें सरक सकते हैं। नीचेके क्षेत्रमेंका छापा हुआ तीर ऊपरके क्षेत्रमें के हरूफोंकी निर्देश करता है, जिससे च्यवनका प्रमाण जाना जा सकता है।

चित्र नं. २२

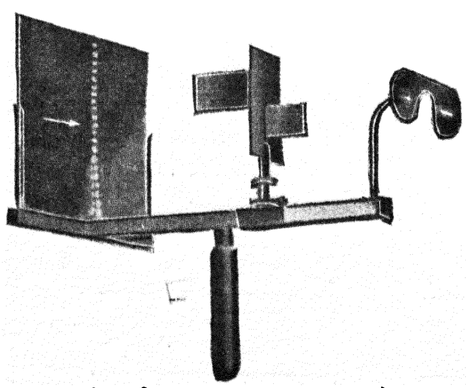

चित्रमें उर्ध्व च्यवनका नापन बतलाया है।

उर्ध्वच्यवन की जांच करनेके लिये इसी तरहके कारटका उसको खडी तौरसे रखकर इस्तेमाल किया जाता है। पंखोंको लम्बाईके रुखमें घुमाकर नेत्रोंसे जितना दूर

हटाना संभाव्य हो उतना दूर सरकाना । खडे तोरके परदेसे एक नेत्रसे तीर छुप जाता है और दूसरे नेत्रसे अंक छुप जाते हैं । फिर उर्ध्वच्यवनकी खोज कर सकते हैं ।

इसके साथ धातूका पकडवाला तीर होता है, इस पकडसे तीरको कारटकी कडाको इस तरहसे लगा सकते हैं कि तीर की नोंक वांच्छित अंक की तरफ हो जावे । जब दृक्शक्ति की तीव्रता इतनी कम होती है कि अंक पढना मुष्किल होता है तब इस तीरको ऊपर या नीचेकी ओरको इतना सरकाना कि दोनों तीर पारस्परीकके सामनेकी ओरको हो जावें । फिर परीक्षक धातुके तीरके सामनेके अक्षर या अंक को देखे ।

वृत्तगतच्यवनको नापनेके लिये कारटके साथ दो स्थितीस्थापक धागोंका इस्तेमाल किया जाता है । पंख को उर्ध्वच्यवन नापनेके लिये जिस तौरसे रखते हैं उसी तौरसे रखनाँ । धागोंको पारस्परीकसे कुछ फासलेपर समानान्तर लटका रखना । हर धागेका एक सिरा कारटके नीचेकी किनार परके खांचेमें लगा रहता है । रोगीको उसके हर नेत्रसे एकही धागा दिखाई पडेगा । फिर वह कारटके उपरकी किनारपर उंगली रखकर एक स्थिति-स्थापक धागेको इतना खींचेगा कि उसको वह धागा दूसरे धागेको समानान्तर सा भास-मान होगा । फिर परीक्षक वह धागा अपने पहलेकी समानान्तर अवस्थासे कितने मिलिमिटरतक सरकाया गया है इसकी खोज करे । इस संख्याको भग्नांक (फ्रॅंकशन) की लकीर के ऊपरवाली संख्या समझना और लकीरके नीचेकी संख्याके स्थानमें दृश्य स्थिति-स्थापक धागेकी मिलिमिटरकी लम्बाईकी संख्या रखे । इस भग्नांकको सो संख्यासे गुणा करनेसे पायाजानेवाला फल, त्रिपार्श्वके डियापटर अंश जितना वृत्तगतच्यवनका नाप होगा ।

फोरामिटर और चक्रावर्ती-घूमते-त्रिपार्श्व—नेत्रके स्नायुओंकी नाकाबिलियात अवस्था फौरन जांचनेके लिये इन यंत्रोंका काफी इस्तेमाल होता है । स्टिवन्सके यंत्रमें दो घूमती तश्तरिया होती ते हैं, हर एकमें ५° अंशवाला एक त्रिपार्श्व होता है । हर तश्तरीके एक बाजूमें दांत होते हैं और इन दोनों तश्तरीयोंके बीचमें दांतदार पहिया (गीयरव्हील) होता है जिसकी वजहसे दोनों साथहीसाथ घूम सकते हैं । एक बाजूको मानदंड होता है जिसके मध्यभागमें शून्य अंश होता है और उसके दोनों ओरको एक से आठ तकके अंक लिखे हुए होते हैं जिससे त्रिपार्श्वके वक्रीभवन कोणका प्रमाण जाना जा सकता है । यंत्रका असली भाग समतल डंडेपर (लेव्हलिंग राड) रखा हुआ होता है और यह डंडा टिपाईपर स्थिर रहता है । यंत्रकी समतल अवस्था एक

चित्र नं. २३

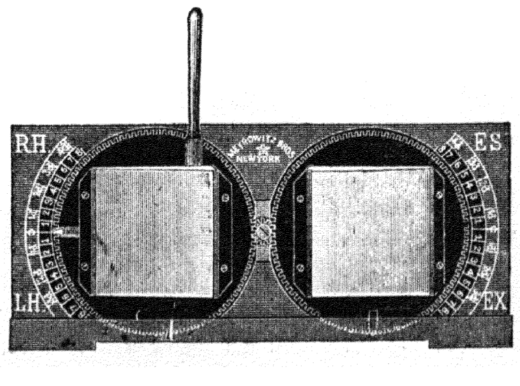

पेंचसे कायम की जा सकती है। यंत्रका इस्तेमाल करनेके वख्त फोरामिटरके समतल डंडेके खांचेमें साचेको इस तरहसे रखना कि सांचेपर के निशान आर. एच. और एल. एच. रोगीके दाहिने नेत्रकी तरफ होवें और ई. एस. ई. एक्स. निशान रोगीके बायें नेत्रके सामने होवे। उर्ध्वच्यवनको जांचनेके वख्त डंडेको समतल करके तीरको शून्य अंश की ओर करना, और रोगीको २० फीट फासलेपर रखी हुई मोमबत्तीकी तरफ त्रिपार्श्वमेंसे देखनेको कहिये जब उसको दीपकी दो प्रतिमाएँ दिखाई पडेंगी। यदि ये प्रतिमाएँ एक समतलमें हों, तो समझना चाहिऐ की स्नायु समतुलित अवस्थामें हैं। यदि एक प्रतिमा दूसरीके ऊपर हो तो त्रिपाश्वको इतना घुमाना चाहिये कि दोनों प्रतिमाएँ समतलमें आ जावें। तीरके स्थानसे उर्ध्वच्यवनका प्रमाण और उसकी तरह मालूम हो सकती है।

त्रिपार्श्नको आहिस्ते आहिस्ते घुमानेसे भूलका प्रमाण ज्यादह और अच्छी तौरसे जाना जा सकता है। आन्तरच्यवन और बहिर्च्यवनकी अवस्था जांचनेके लिये तीरको खडा रखना। नैसर्गिक अवस्थामें दोनों प्रतिमाएँ एकही रेषामें दिखाई पडेंगी। यदि एक प्रतिमा दाहिने या बायें ओरको दिखाई देती हो तो त्रिपार्श्वको इतना घुमाना चाहिये कि दोनों प्रतिमाएँ एक खडी रेषामें होवें और फिर नाकाबिलियातका प्रमाण ई. एस. ई. एक्सके बाजूके मानदंड परसे जाना जा सकता है।

चित्र नं. २४

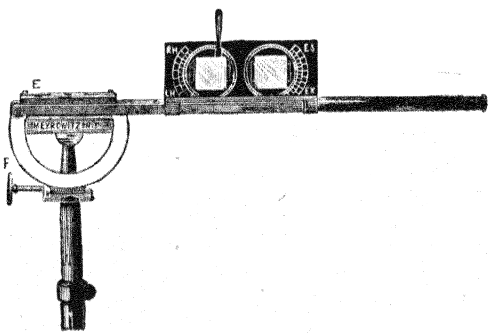

स्टीव्हन्स का फोरामिटर

रिसलेका चक्रावर्ती या घूमता त्रिपार्श्व : स्नायुओंकी असमतुलित अवस्थाका नापन रिसलेके घूमते त्रिपार्श्वसे जल्द कर सकते हैं।

चित्र नं. २५

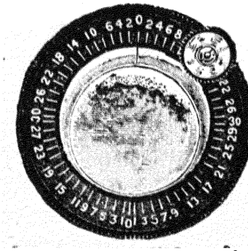
रिस्लेका चक्रावर्ती त्रिपार्श्व

इस यंत्रमें दो समबलके त्रिपार्श्व एकके उपर दूसरा रखा हुआ होता है। इसमें जो यांत्रिक योजना होती है उससे दोनोंको विरुद्ध दिशामें घुमा सकते हैं। जब एक त्रिपार्श्वका शीर्ष दूसरे त्रिपार्श्व के शीर्षपर सन्निपतित होता है तब उनका संयुक्त बल हरएक त्रिपार्श्वके बलसे दुगना होता है। और जब उनके शीर्ष पारस्परीक से विरुद्ध दिशामें होते हैं तब एक त्रिपार्श्व दूसरे त्रिपार्श्व के प्रभाव को नष्ट करता हैं। इन दो प्रमाणमें च्यवनका कोई भी प्रमाण पाया जा सकता है। इस्तेमाल करनेके

समय त्रिपार्श्वको चश्मे की कमान में रखकर इस कमानको रोगीके नेत्रके सामने रखना, और रोगीको २० फूट फासलेपर रखी हुई मोमबत्तीके ज्योतिकी तरफ देखनेको कहे रोगीका दूसरा नेत्र खुला रहता है। दोषका प्रमाण मानदंड से जाना जा सकता है।

नेत्रस्नायुओंकी असमतुलित अवस्था की कसौटीका वर्णन किया गया। अब नेत्रगोलक के नैसर्गिक व्यापार यानी नैसर्गिक अन्तश्चलन (ॲडक्शन), बहिर्चलन (ॲबडक्शन), उर्ध्वच्यलन (सूपरडक्शन) का विचार करना चाहिये।

नेत्रस्नायुओंके व्यापार:—मनुष्य के नेत्रस्नायुओंके व्यापार का नापन करनेके लिये नेत्रके सामने २० फीट दूरीपर दीपज्योति रखकर उसकी ओर दोनो नेत्रोंसे देखनेको कहना। उसी समय एक नेत्रके सामने त्रिपार्श्व रखनेसे दीपज्योतियां दो दिखाई पडती हैं। इसी को **द्विधादर्शन** (डिप्लोपिया) या **प्रतिमाका दोहरा दर्शन** कहते है। लेकिन स्नायुके व्यापार की ताकनसे दो प्रतिमाओंको एकत्रित करके एक प्रतिमा करनेकी शक्ति नेत्रस्नायुओंमें होती है। ज्यादहसे ज्यादह अंशके बलवाले जिस त्रिपार्श्वसे द्विधा दर्शक परिणाम स्नायुकी शक्तिसे नष्ट हो सकता है, वह त्रिपार्श्व उस स्नायुकी शक्तिका नाप होता है।

अन्तश्चलन (ॲडक्शन त्रिपार्श्वीय ससरण) यानी शरीरकी मध्य रेषाकी ओर या नासिका की ओरको नेत्रको घुमानेवाली सरलान्तर नेत्र चालनी स्नायुका व्यापार या शक्ति नापनेके लिये नेत्रके सामने २० फीट दूरीपर दीपक रखकर दोनों नेत्रोंसे दीप-ज्योतिकी तरफ देखनेको रोगी को कहना; फिर एक नेत्रके सामने त्रिपार्श्व (मखरूती), उसका तल कनपटी की ओरको हो, इस तरह रखनेसे दीपज्योतिया दो मालूम होगी। शुरूआत १५ अंशके बलके त्रिपार्श्वसे करके धीरे धीरे ज्यादह बलके त्रिपार्श्व रखते जाइये। स्नायुकी व्यापार शक्तिसे जिस त्रिपार्श्वसे पैदा हुआ द्विधा दर्शन नष्ट हो सकता है वही त्रिपार्श्व स्नायुकी अन्तश्चलन व्यापार शक्तिका नाप होता है। नैसर्गिक अवस्थावाले नेत्रमें स्नायुकी यह शक्ति ३० से ६० अंश बलके त्रिपार्श्व की ताकत के बराबर होती है। इसी तौरपर **बहिर्चलन** (ॲबडक्शन) त्रिपार्श्वीय अपसरण का भी नाप कर सकते हैं। इस समय त्रिपार्श्वका तल नासिका की ओरको रखना चाहिये। बहिर्चलन ६ से ८ अंश इतना होता है। **रिसले** की राय है, कि अन्तश्चलन से बाह्यचलन का अनुपात ३ : १ होता है। ऊर्ध्वचलन व्यापारकी शक्तिका नाप करनेके लिये त्रिपार्श्व (मखरूती) का तल नीचेकी ओरको रखना होगा। साधारणतया यह नाप ३ होता है। दोनोकी यह शक्ति समान होनी चाहिये। दाहिने नेत्रकी ऊर्ध्वचलन शक्ति की मात्रा नापनेके लिये उस नेत्रके सामने त्रिपार्श्वका तल नीचेकी ओरको हो या बायें नेत्रके सामने त्रिपार्श्वका तल उपरकी ओरको हो। इसीतरह बाये नेत्रकी इस शक्तिकी मात्रा नापनेके लिये उसके सामने त्रिपार्श्वका तल नीचेकी ओरको, या दाहिने नेत्रके सामने त्रिपार्श्वका तल उपरकी ओरको रखना चाहिये। २० फीट अन्तरपरकी कसौटीके हरूफ–निकषाक्षर–इकहरे दिखते हैं या दोहरे यह भी जाचना चाहिये। ध्यानमें रखिये, कि यदि रोगीके नेत्रमें वक्रीभवन दोष हो, तो आखरी निर्णय लेनेके पहले इस दोषको जाचना चाहिये।

नेत्रकी नजदीककी शक्ति नापने के लिये १३।१४ इंच फासले परके हरूफ बिन्दु या स्वस्तिक देखते हैं। जब दृक्संधान शक्तिके स्नायुओंकी शक्तिका नापन करना जरूरी हो तब रोगीने पढनेके मुनासिब चष्मेका इस्तेमाल करना आवश्यक है। इस कसौटीको **दृक्संधान शक्तिकी कसौटी** कहते हैं।

द्विनेत्रीय एकदर्शनकी इच्छा शक्तिका नापन:—(मेझरमेंट आफ डिझायर फॉर बायनाक्युलर व्हिजन) मनुष्यकी जिस इच्छाशक्तिसे दोनों नेत्रोंसे पदार्थ दोहरा दिखाई न देकर स्पष्ट इकहरा दिखाई पड़ता है, उस शक्तिका नापन करनेके लिये **हरमन**की तारका सदृश आवरण कसौटीका उपयोग किया जाता है। रोगीको १३।१४ इंच फासलेपर रखे हुए कसौटीके फलकपरके बिन्दु या स्वस्तिककी तरफ डायफ्रामके छिद्रमेंसे दोनों नेत्रोंसे देखनेको कहना। दोनों नेत्रोंसे उसको कसौटीपरका कुछ भाग दिखाई पडेगा, इस भागको चाक्षुष संतोलनका भाग कहते हैं।

चित्र नं. २६

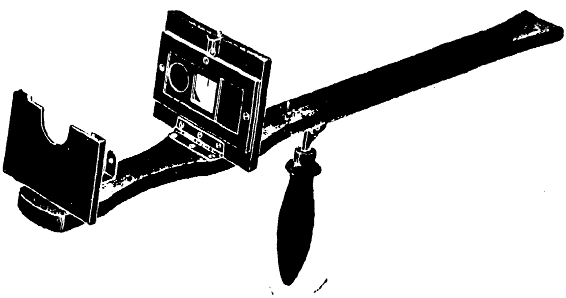

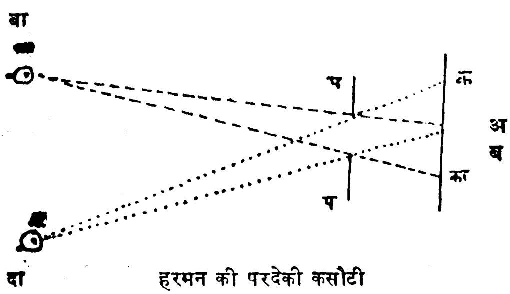

हरमन की परदेकी कसौटी

चित्रमें अब यह भाग दोनों नेत्रोंको दिखाई पड़ता है। साधारणतया इसका नाप २ से ४ मि. मि. होता है। कुछ लोगोंमें यह नाप ६।७ मि. मि. पाया जाता है। नेत्रके अप्रकटित तिरछे पनमें यह अन्तर जरूर ज्यादह होता है। इस कसौटीके सहायतासे दोनों नेत्रोंकी दृक्शक्तिकी तीव्रताकी मात्रा समान है या नहीं; द्विनेत्रीय एकदर्शनका अस्तित्व,

दोप या लोप, तिरछे नेत्रकी दृक्‌शक्तिकी तीव्रताकी परीक्षा एक नेत्रके कल्पित अधत्वका सशोधन, पदार्थोकी प्रतिमाओका बोध या दुर्बोधताके सबधकी प्राकृतिक बाते, आदिका ज्ञान होना है । यही परिक्षा हरमन के कारटसेभी करते है ।

चित्र नं. २७

अ ब

पहले भारतवर्षमें इस शास्त्रकी प्रगति कबसे और कहातक हुई इसका विचार करेगे और फिर अन्य देशोंमे जो प्रगति हुई इसका विचार करेंगे ।

भारतवर्षमे नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रकी प्रगति बहुत प्राचीन कालसे यान ऋग्वेद कालसे (क्रि. पू. ४५००) शुरू हुई थी । आर्य वैद्यकके सब शाखा ओके वैद्यराज और शालाकिनोकी गुणप्रशसा ऋग्वेदसहितामे पायी जाती है । इससे यह स्पष्ट होता है कि अश्विनी–कुमार, इन्द्र, अग्नि, आदि ऋषिवर्य लोगोने नेत्ररोग कुशलतासे दुरुस्त किये थे । इसी वजह उनकी तारीफ जगह जगह मिलती है ।

हरमनका चाक्षुप समतोलन बतावेवाला कारट

नेत्रगोलकके परिभ्रमणका नापन—यह नापन **स्टिव्हन्स ट्रोपामिटर**की यत्रकी सहायतामे करते है । डॉ. जी. टी स्टिव्हन्स, इस यत्रके सशोधक के मतानुसार नेत्रके सपाति या अपसृत तिरछेपनका नापन करना अति महत्त्वकी बात है । क्यो कि येमानते थे, कि नेत्रगोलक की जो स्नायू खडी लम्ब रेपामें कार्य करती हे उनके ज्यादह तनावसे होता है और यह कार्य स्वतत्र रूपका होना है, नेत्रकी आन्तर और बहिर चाल्नी स्नायुकी तनावसे इसका कुछ तालुक नहीं होता । वामदृष्टि की अन्य अवस्थाएँ इसी वजहसे होती होंगी ऐसा उनका मत है ।

इस यत्रमे दूरबीन जैमी नली होती है । इसमे देखे हुए नेत्रकी उलटी प्रतिमा चक्षुलग्नी के पास दिखाई पडती है जब इस हवामे की प्रतिमाका या धुधले काच परकी प्रतिमाका चलन यथार्थतामे नापना सभाव्य होता है । चक्षुलग्नीमे के चिन्हित मानदडको या स्केलको घुमानेसे नेत्रके हरएक दिशाके चलनका नाप कर सकते है । इस स्केलके बीचमे एक लम्ब रेपा होती है और लम्ब रेपाके दोनो बाजूको विरुद्ध दिशामे जानेवाली और उसको समकोन करनेवाली अनेक रेषाएँ, कसके १०° फासलेपर निकाली हुई, होती हैं; और एक बडा वर्तुल जिसका व्यास ६० डिग्रीके फासले जितना होता है । यदि शख्स के सर को प्राथमिक स्थानमे मजबूत पकडकर सिर्फ नेत्रको खास दिशामे घुमावे तो तारका पिधान की सीमा जिस वृत्तमेसे घूम जायेगी उसका नापन स्केलसे मालूम हो जाता है । ऐमा समझिये कि शख्सको बिलकूल ऊपरकी ओरको देखनेको कहा है; तब तारकापिधानकी सीमा स्केलके नीचेकी ओरको४०° तक घूमी है ऐसा मालूम होगा ।इस स्केलको एक यात्रिक रचनासे लम्बरेषामे, आडीरेषामे या तिरछी रेषामे घुमा सकते है और दूसरी तरकीबसे उनके विरुद्ध दिशाके अंशका नापन कर सकते है ।(चित्र नं. २९ देखिये)

स्टिव्हन्सके मतानुसार ऊपरका चलन ३३°; नीचेका चलन ५०°; अन्दरकी ओरका चलन ५५° और बाहरी ओरका चलन ५०° होता है ।

चित्र नं. २८

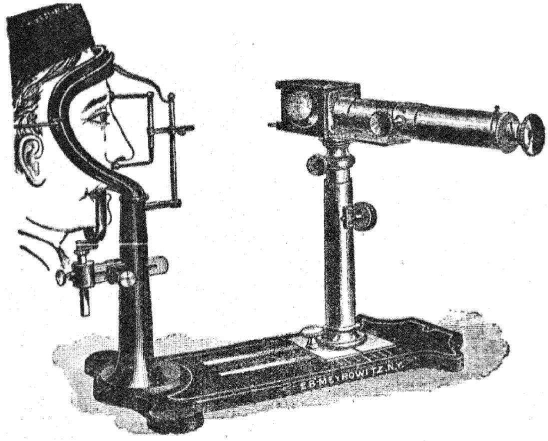

ट्रापामिटर (सिद्धनसन)

नेत्रके तिरछेपनका नापनः—इस कार्यका नापन **हर्शबर्गकी कसौटी, ढक्कन कसौटी, दृक्क्षेत्रनापन यंत्र** और **प्रीस्टले स्मिथ** का फीता इसकी सहायतासे होसकता है ।

हर्शबर्गकी कसौटीः—सामने एक फुट फासलेपर रखी हुई मोमबत्तीकी ज्योतिकी तारकापिधान पर परावृत्त होनेवाली प्रतिमाके स्थानसे नेत्रके तिरछेपनका प्रमाण नापा जा सकता है । **प्रयोगः**—रोगीको दोनों नेत्रोंसे सामनेकी मोमबत्तीकी ज्योतिकी तरफ देखनेको कहना । नैसर्गिक नेत्रोंमें ज्योतिकी प्रतिमायें तारकापिधानके केन्द्रके स्थानमें दिखाई पडती हैं । यदि कनीनिकाका आकार ३·५ मि. मि. है, और प्रतिमा कनीनिकाके केन्द्र और उसकी किनारके बीचमें दिखाई देती हो, तो नेत्रके तिरछेपनकी मात्रा १० अंशसे कम है, ऐसा समझना चाहिये । प्रतिमा कनीनिकाके किनारके पास हो, तो तिरछेपनकी मात्रा १२° ते १५° इतनी समझनी चाहिये । यदि प्रतिमा कनीनिकाकी किनार और शुक्ल-कृष्ण संधीके बीचमें हो, तो तिरछेपनकी मात्रा २५° होती है । ज्योतिकी प्रतिमा शुक्ल-कृष्ण संधिके पास हो, तो सानुपात ४५° से ६०°, और शुक्लपटलपर हो, तो ६०°।८०° इतना समझते हैं ।

दृक्क्षेत्र नापन यंत्रसे नापनाः—नेत्रके तिरछेपन का नापन दृक्क्षेत्रनापन यंत्रसे भी कर सकते हैं; लेकिन इस यंत्रका उपयोग बिलकुल छोटे बच्चोंके लिये बराबर नहीं हो सकता । इसके लिये दृक्क्षेत्रनापन यंत्र और एक मोमबत्तीकी आवश्यकता होती है । प्रयोगः— रोगीको दृक्क्षेत्रनापन यंत्रके सामने कुर्सीपर इस तरहसे बिठाना चाहिये कि उसका

मुंह याने ठोड़ी आधारपर आसानीसे टिक जाय । फिर यत्रकी कमानको तिरछे नेत्रके आड़े अक्षके समानान्तर रखना । फिर रोगीको दोनो नेत्रोंमें कमानके केन्द्रकी ओर देखनेको कहे, तो नैसर्गिक अवस्थावाला नेत्र कमानके केन्द्रस्थानपर स्थिर हो जायगा । लेकिन तिरछे नेत्रका दृगाक्ष दूसरी दिशामें घूमा है, ऐसा मालूम होगा । फिर मोमबत्तीकी ज्योति कमान की ओरसे इतनी घुमाना चाहिये, कि ज्योतिका प्रतिबिम्ब तिरछे नेत्रकी कनीनिकाके केन्द्र-स्थानमें दिखाई पडेगा । फिर कमानके केन्द्रसे ज्योतिका अन्तर कितना है यह देखना चाहिये । यह अन्तर ही तिरछेपनके कोणका अंशात्मक नाप होगा । तिरछेपनके इस कोणके सानुपातमें

चित्र नं २९

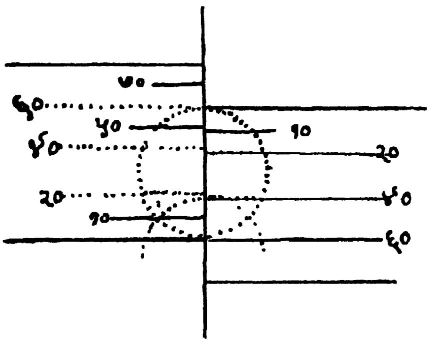

"गामा कोण" का नाप मिलानेमें तिरछेपनके सपूर्ण कोनका ज्ञान होगा । [स्थैर्य रेषाके साथ दृगाक्षके बनानेवाले कोणको **गामा कोण** कहते हैं ।] "गामा कोण" की मात्रा निकालनेके लिये रोगीको दृक्क्षेत्र नापन यत्रके सामने बिठाकर और नैसर्गिक अवस्थावाले नेत्रको ढाककर तिरछे नेत्रमें कमानके केन्द्रकी ओर देखनेको कहना । यदि इस समय ज्योतिका प्रतिबिम्ब कनीनिकाके केन्द्रके भागमें दिखाई पडेगा, तो "गामा कोण" का नाप शून्य है, ऐसा समझना चाहिये । यदि ज्योतिका कमानपरका स्थान स्थैर्य बिन्दुकी ओर हो, तो "गामा कोण" है, ऐसा समझना चाहिये । कमानपरके जिस अंशपर ज्योति दिखाई देती हो वही अंश "गामा कोण" का नाप होता है । यदि ज्योतिका स्थान तिरछे नेत्रकी कनपटीकी ओरको हो, तो गामा कोण (+) धनचिन्हांकित और नासिकाकी ओर को हो, तो "गामा कोण" (−) ऋण चिन्हांकित है ऐसा समझना चाहिये । "गामा कोण" और तिरछेपनका कोण इन दोनोंका जोड करनेमें धनचिन्हांकित अवस्थामें सपूर्ण कोणकी मात्रा ज्यादह और ऋणचिन्हांकित अवस्थामें सपूर्ण कोणकी मात्रा कम होगी यह ध्यानमें रखना चाहिये ।

ढकन कसौटी:—रोगीको सामने दूरीपर रखे हुए पदार्थको देखनेको कहना । नैस-र्गिक नेत्रको ढाकनसे तिरछा नेत्र पदार्थकी ओरको घूम जायगा । फिर नीचेके नेत्रच्छदकी किनारपर स्ट्राबिसमामिटर इस तरहसे लगाना, कि ऊपरका शून्यका निशान तिरछे नेत्रकी

कनीनिकाके केद्रके सामने दिखाई पडे । फिर नैसर्गिक नेत्रपरका ढक्कन निकाल देनेसे वह नेत्र पदार्थकी ओर देखेगा और तिरछा नेत्र घूम जायगा । उसके घूम जानेकी यह मात्रा स्ट्राबिसमामिटरसे जानी जा सकती है। इस कसौटीका उपयोग सार्वत्रिक हो सकता है।

प्रिस्टले स्मिथ के फीतेकी नापन कसौटी

इस कसौटीके लिये अधियारी कोठरी, दीपक, नेत्रांतरंग-दर्शक यंत्र या नेत्रतल प्रति-छायागति-दर्शक दर्पण (रेटिनास्कोपी मिरर) और नापनेका फीता, इतनी सामग्री आवश्यक होती है। नापनेके फीतेके एक एक मीटरके लम्बे दो टुकडे एक छल्लेसे जुडे रहते है। इनमे एक फीता काला और दूसरा रगीन होता है। रगीन फीतेपर पाच, दस, पंधरह इस तरहसे साठ तक बारह समभाग लिखे हुए होते है। फीतेके नीचेके छोडपर एक वजन लटका रहता है, जिससे फीता तना रहे।

चित्र नं. ३०

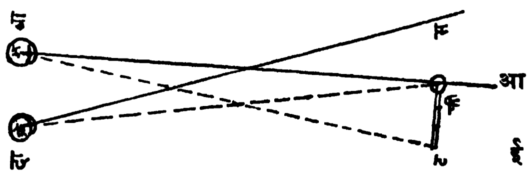

प्रिस्टले स्मिथ के फीतेसे निकट बिन्दुका नापन

प्रयोगः—रोगीको अधियारी कोठीमें बत्तीकी तरफ पीठ करके बिठाया जाये; फिर काले फीतेके नीचेके छोडको अव्यंग नेत्रके नीचेकी ओर पकडनेके लिये रोगीसे कहा जाये और उस फीतेके वलयांकित अग्रभाकको पकडकर परीक्षक एक मीटर फासलेपर खडा रहे। नेत्रान्तरंग-दर्शक यत्रके दर्पणको हाथमे पकडकर रोगीको उस दर्पणमे देखनेको कहे। परीक्षकको यह मालूम होगा, कि दर्पणका परिवर्तित प्रकाश प्रतिबिम्ब तारकापिधानके केन्द्र-स्थानमे नही, बल्कि उसके बारहकी या भीतरकी ओरको पड़ा है। यदि प्रतिबिम्ब तारका-पिधानके बाहारकी ओरको पडे, तो रोगीके नेत्रका तिरछापन सपाती तिरछेपनके (कनव्हरजंट स्क्विन्ट) रूपका है, और प्रतिबिम्ब तारकापिधानके केन्द्रके भीतरकी ओरको हो तो नेत्रमे अपसृत तिरछापन (डायव्हरजंट स्क्विन्ट) है ऐसा समझना चाहिये फिर परीक्षक रंगीन फीतेको छल्लेके पास दो उंगलियोमे इस तरहसे पकडे, कि रोगी परीक्षकके हाथको देख सके। फिर तिरछेपनकी विरुद्ध दिशामे हाथको दर्पणके साथ लेजाकर परीक्षक आहिस्ते आहिस्ते फीते को छोडता जाये। रोगीके लिये यह आवश्यक है, कि वह दोनों नेत्रोकी नज़र परीक्षकके हाथ परसे न हिलाये। जब दर्पणका प्रकाश प्रतिबिम्ब तिरछे नेत्रके तारका-पिधानके केन्द्रमें दिखाई पडेगा, तब फीते परके किस निशानके सामने प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, यह देखना चाहिये। फीतेपरकी अंश संख्या ही तिरछेपनके कोणका नाप होगी।

स्पष्टीकरणार्थ समझिये कि "दा" और "बा" अनुक्रमसे दाहिने और बायें नेत्र है। और दाहिने नेत्रमें सपाती तिरछापन है। परीक्षक अ, आ, फीतेको बाये यानी अव्यंग नेत्रके नीचे लगाकर "दा" पर दर्पणसे प्रकाश डाले तब उसका प्रतिबिम्ब "दा" के तारका-

पिधानके केन्द्रके बाहर दिखाई देगा। इससे यह स्पष्ट होता है, कि "दा" नेत्र अन्दरकी ओरको "स" दिशामें घूम गया है। फिर अंश संख्यावाले फीतेको पकडकर दीपकके साथ बाहरकी ओरको तबतक ले जाइये, कि जब प्रतिबिम्ब तारकापिधानके केन्द्रमें दिखाई पडेगा। तिरछे नेत्रका अक्ष "स" से "आ" < स ओ आ कोणमें घूम जायगा। अव्यंग बायें नेत्रका अक्ष उसी समय "आ" से < आ ए इ सम प्रमाण कोणमें घूम जायगा। "बा" नेत्रकी कोनीय गति (एँग्युलर मूव्हमेंट) जो फीतेमे नापी जा सकती है; वह 'दा" नेत्रकी कोनीय गतिके बराबर होगी।

नेत्रके तिरछेपनका नापन सरल रेषासे भी करते हैं। इस नापनके लिये **स्ट्राबिसमामिटर**की आवश्यकता होती है।

प्रयोग:—रोगीको अपने सामने २० फीट अन्तर परके किसी दृश्य पदार्थकी तरफ दोनों नेत्रोंसे देखनेको कहना; फिर तिरछे नेत्रके तारकापिधान की बाहरी किनारके नीचे अधोनेत्रच्छदकी किनारपर एक निशान करना। फिर नैसर्गिक नेत्रको ढांककर तिरछे नेत्रसे सामनेके पदार्थपर नज़र स्थिर करनेको कहनेसे उसमें चलन दिखाई पडेगा। तिरछा नेत्र पदार्थपर स्थिर होनेके पश्चात उसके तारकापिधानकी बाह्य किनारके नीचे अधोनेत्रच्छदपर फिरसे दूसरा निशान करना। पहले और दूसरे निशानके अन्तरका नाप स्ट्राबिसमामिटरसे जाना जा सकता है।

चित्र नं. ३१

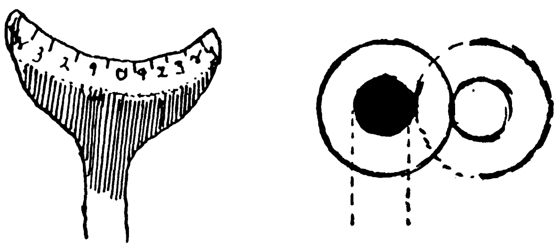

स्ट्राबिसमामिटर से नेत्रकी परीक्षा

नत्रकी साधारण बाह्य परीक्षा पूर्ण करनेके पश्चात चाक्षुप संज्ञा जांच करना। ये तीन तरहकी यानी (१) आकार ज्ञान या दृक्शक्ति की तीव्रता, (२) प्रकाश ज्ञान और (३) रंगज्ञान इस, प्रकार की होती है।

आकारज्ञान या दृक्शक्तिकी तीव्रता:—भिन्न भिन्न आकारके पदार्थोंमेंका फर्क जाननेकी शक्तिको आकारज्ञान या दृक्शक्तिकी तीव्रता कहते हैं। इसकी परीक्षामें मुख्यतया रोगी पश्नोंका जो कुछ उत्तर देगा, उसीपर अवलम्बित रहना पड़ता है। इस कारणसे बालक, अज्ञानी और ढोंगी लोगोंमें इसका उपयोग संदेहास्पद होगा, निश्चित न होगा यह बात ध्यानमें रखना चाहिये।

दृक्शक्तिकी तीव्रता यानी आकारज्ञान की परीक्षा करनेके लिये **स्नेलनकी कसौटीके हरूफों** या तसबीरोंके तख्तेका उपयोग करते हैं। ये हरूफ इस तरहसे बनाये गये हैं कि

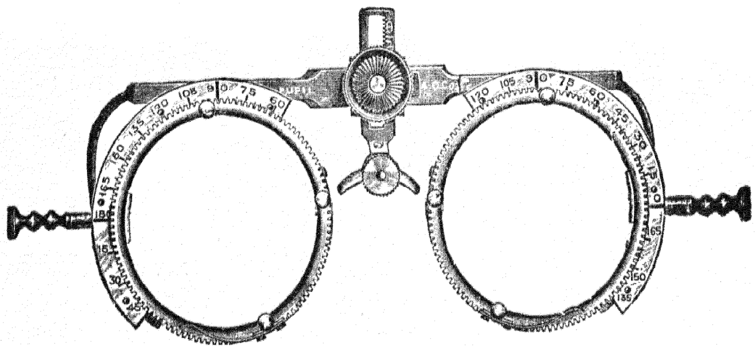

चित्र नं ३२ चष्मेकी कमान

हरएक हरूफ़ चौकमें जिसके हरएक बाजूके पांच समान भाग किये होते हैं, बैठ जा सकता है। हरूफोंका आकार ऐसा रखा जाता है कि वे अव्यंग नेत्रको खास निश्चित अन्तर पर पांच मिनीटके दृष्टिकोणमेंसे दिखाई पड़ें। और इन पांच छोटे छोटे चौकोंमेंका हरएक चौक एक मिनीटके दृष्टिकोणमेंसे, जो मनुष्यके अव्यंग नेत्रका कमसेकम परिणामका दृष्टि-कोण माना गया है, दिखाई पड़े। सब अन्तरपर यही समान कोण बने इस लिये हरूफोंका अन्तर नेत्रसे जिस प्रमाणमें बढता जायेगा उसी प्रमाणमें हरूफोंका आकार भी बड़ा होना चाहिये।

चित्र नं ३३ दृष्टिकोण

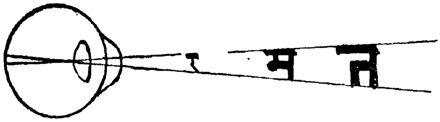

३ मि. ४ मि. ५ मि.

यदि स्नेलनके हरूफ़ नापका सर्व मान्य परिणाम माना गया है तो भी पांच मिनीट परिमाणके दृष्टिकोणसे दृक्शक्तिकी तीव्रताका बराबर नाप नहीं हो सकता। और इसी वजहसे अब कसौटीके हरूफ़ चार मिनीट कोणके बनाते हैं। स्नेलनके हरूफोंकी लकीरों-मेंके अन्तर को इतराज़ लिया गया है। इसी कारणसे 'मोनोयेर'ने दशांशिक नापकी लकीरोंकी श्रेणी बनाई है जिसमें लकीरोंमेंका अन्तर $\frac{१}{१०}$ होता है और अंश ०.१ से १.० तक जाते हैं।

कसौटीके हरूफ़ सफेद कागज़पर काली स्याहीसे लिखे हुए होते हैं। लेकिन कोईकोई दृष्टिविशारद काले पृष्ठपर लिखे हुई सफेद हरूफ ज्यादह पसंद करते हैं।

स्नेलनका इस संबंधका सूत्र यह है:–दृ. श: = $\frac{\text{रो. ह. अ}}{\text{प्र. अ.}}$ यह दृ. श दृक्शक्तिकी तीव्रता, रो. ह. अ रोगीका कसौटी हरूफ़से अन्तर, और प्र. अ. प्रत्यक्ष अन्तर जिस परसे हरूफ़ पढ़ना चाहिये, माना गया है।

छः मिटर अन्तर परसे स्नेलनकी कसौटीके सबसे छोटे हरूफ़ पहूंचाननेपर रोगीकी दृक्शक्तिकी तीव्रताका प्रमाण जाना जा सकता है।

दृक्शक्तिकी तीव्रता यानी आकारज्ञानकी परीक्षा करनेके बाद यदि रोगीके नेत्रोंमें वक्रीभवन दोष हो तो उसको चश्मेसे सुधारना चाहिये।

चित्र नं. ३४

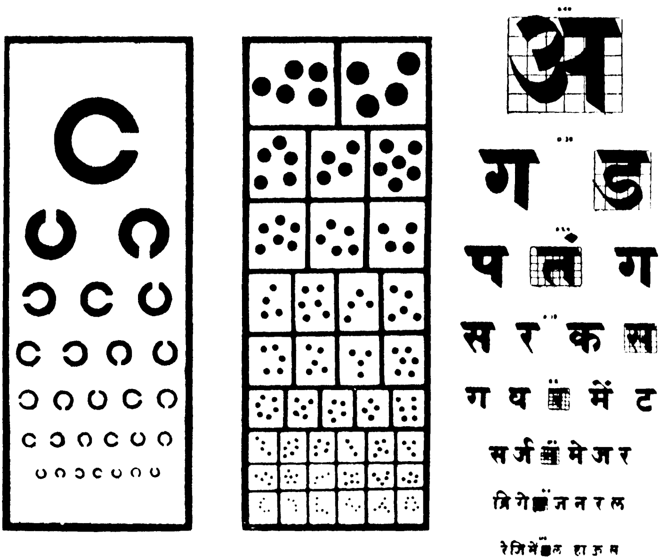

दृक्शक्तिका तीव्रता नापनेकी कसौटी

दृष्टिके दूरबिन्दु (फार पाईन्ट) की परीक्षाः—दोनों नेत्रोंके दूरबिन्दुकी परीक्षा अलग अलग करते हैं। पहले छः मिटरपरसे स्नेलनके कसौटीके अक्षरोंके तख्तेपरकी कौनसी पंक्ति दिखाई पड़ती है यह देखना। यदि उसको छः मिटर परसे तख्ते परकी बिल्कुल ऊपरकी बडे पंक्तिवाले हरफ़ भी दिखाई न देता हो तो उसको ऊपरका बड़ा हरूफ कौनसे अन्तर परसे दिखाई पड़ता है, यह देखना चाहिये। यदि रोगीको बड़ा हरूफ भी नहीं दिखाई पड़ता हो, तो उसे कुछ इंच अन्तरसे हाथकी उंगलीयां दिखाई पड़ती हैं, या नहीं यह देखना चाहिये। उंगलीयां भी नहीं दिखाती हो, तो उसको प्रकाशज्ञान है, या नहीं यह देखना चाहिये। जिनको अक्षरज्ञान नहीं होता, उनके लिये काले बुंद या जानवरों या

पदार्थोंकी भिन्न भिन्न आकारोंकी तसबीरोंका उपयोग करते हैं। यह ख्यालमें रखना चाहिये कि, बालक, अज्ञानी और ढोंगी लोगोंके लिये नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र और नेत्रतल प्रतिछायाकी गतिकी कसौटीका अवलम्ब करना आवश्यक है।

रोगीकी प्रकाशज्ञान की परीक्षा अंधेरी कोठरीमें करते हैं। अंधेरी कोठरीमें उसको बिठाकर नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दर्पणसे हरएक नेत्रपर अलग अलग रीतिसे प्रकाश लाडकर उसको प्रकाशज्ञान है या नहीं यह बात जान सकते हैं। प्रकाशज्ञान दो तरहका यानी गुणात्मक–खासिति और पारिमाणिक व तायदादी–होता है। जब रोगी सफेद और काला रंग पहंचान सकता है तब उसको गुणात्मक या खासियती प्रकाशज्ञान है ऐसा मानते हैं। और जब रोगी प्रकाशित या अंधेरी कोठरीका फर्क ज्ञान सकता है तब उसको पारिमाणिक या तायदादी प्रकाश ज्ञान है ऐसा मानते हैं।

दृष्टिके निकटबिन्दुकी या नज़दीककी दृक्शक्तिकी परीक्षाः—इस परीक्षामें दृक्संधान व्यापारका (अकोमोडेशन) यानी नज़दीक से हरूफ पढ़नेके व्यापारका अन्तर्भाव होता है। इस परीक्षाके लिये 'जीगर'के अक्षरोंके तख्तोंका उपयोग करते हैं। बिलकूल नज़दीकसे बारीकसे बारीक हरूफ़ पढ़नेके अन्तरके बिन्दुको **निकट बिन्दु** कहते है।

निकट बिन्दुका नापन 'डान्डर्स' के आपटामिटर नामक यंत्रसे भी कर सकते हैं। इसके रचनामें एक चौकोर सांचा होता है, जिसके मध्यभागमें दो बालतने हुए होते हैं। सांचेको पकड़ने के लिये मूठ होती है और एक लोहेकी कडी होती है जिसमें डीयाप

चित्र नं. ३५

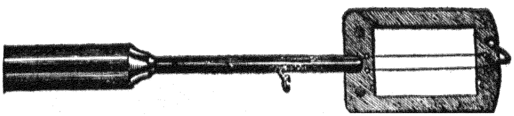

डान्डर्स आपटामिटर

टरका लोहेका फीता लटकाया जाता है। फीतेकी एक बाजूपर डीयापटरकी संख्याके अंक लिखे होते हैं, और दूसरी बाजूको एक मिटरके अपूर्णांक के भाग लिखे हुएहोते हैं।

दृक्संधान की शक्तिके व्यापारकी परीक्षा करनेके लिये रोगीके नेत्रोंके सामने नासिकापर चष्मे की कमान रखकर एक नेत्रके सामने उसको बंद करनेके लिये अपारदर्शक तश्तरी रखनी चाहिये, फिर इस यंत्रको अपने हाथमें इस तरह पकडनेको रोगीसे कहना चाहिये, जिससे फीतेके पीछेकी सफ़ेद जमीन रोगीकी तरफ़को हो। फिर जितने अन्तर परसे साचेमें के बाल उसे साफ़ दिखाई पडेंगे, उस जगहपर यंत्रको स्थिर रखनेको उसे कहना चाहिये।

यंत्रके इस बिन्दुसे बहिरापांग का अन्तर नापिये। फीतेकी दूसरी बाजूको इस अन्तरके अनुरुप डीयापटर की लिखी हुई संख्यापरसे दृक्संधानशक्तिके व्यापारका अनुपात मालूम हो जायगा। मसलन ऐसा समझो कि यंत्रमेंके बाल १२ सें. मि.से साफ दिखाई पड़ते हों तो

उससे दृक्संधान शक्तिका अनुपात $=\frac{१००}{१२}$=८. ५डीयापटर्स होगा। इसी तरहसे दूसरे नेत्रकी दृक्संधान शक्तिका नाप कर सकते हे। [दृक्संधान शक्तिके व्यापार का विस्तार वि (अम्पलीटयूड आफ अकोमोडेशन) का नापन" वि"="नि"–"दू" इस सूत्रसे जाना

चित्र नं. ३६

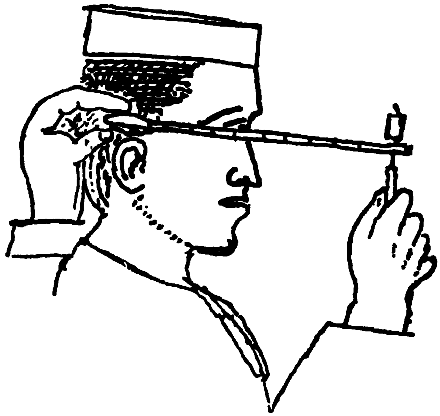

निकट बिंदुका नापन

जा सकता है। जिसमे "नि" (निकट बिदुका अन्तर) और "दू" (दूरबिन्दुका अन्तर) का मूल्य डीयापटरमे लिखा जाता है। अव्यंग नेत्रमे निकट बिदुके सेन्टीमिटररोमे पाये जानेवाले अनुपातमे १०० सख्याको भागनेसे आनेवाला भागफल डीयापटर तौरका "नि"का मूल्य होता है। दूर बिन्दुके हरूफ साफ दिखाई पड़ने के वास्ते जिस उन्नतोदर शीशेकी जरूरत मालूम होती है, उसकी डीयापटर तौरकी संख्या "दू"का मूल्य होता है। उसको निकट बिन्दुकी डीयापटरकी संख्यामे मिलानेमे दीर्घ दृष्टि वालोंकी दृक्सधानकी शक्तिके व्यापार का मूल्य पाया जाता है ("वि="नि"+"दु")। और उसको बाद करनेमे ऱ्हस्व दृष्टिवालेकी दृक्संधान शक्तिके व्यापारका मूल्य पाया जाता है।

साधारणतया मनुष्यके चालीस उम्रके पश्चात उसका निकटबिन्दु दूर हट जाता है और उस मनुष्यको वार्धक्य दृष्टिवाला कहते है, हमारा तजरबा यह है कि हिन्दोस्थान जैसे उष्णप्रदेशके लोगोमे यह अवस्था लगभग सैंतीस उम्रके समयमें आती है और इसके-बाद हर पांच सालके बाद नज़दीकका पढनेके लिये + १ डी बल का शीशा वक्रीभवन दोषके शीशेमे मिलाना जरूर होता है। इस बातको ख्यालमें रखिये कि पढनेके शीशेसे हरूफ स्पष्ट दिखे लेकिन बडे न दिखना चाहिये।

नेत्रोंकी एककेन्द्राभिमुखता:—नज़दीक का पदार्थ देखनेके लिये जब दोनो नेत्र उसपर स्थिर हो उस समय उन दोनो नेत्रोंकी जो अवस्था दिखाई पडती है, उस अवस्थाको नेत्रोकी एक केन्द्राभिमुखता कहते है। यह कार्य साधारणतया दोनो नेत्रोकी सरलान्तरचलिनी स्नायुओके आकुंचन द्वारा होता है।

एक केन्द्राभिमुखता और दृक्संधान शक्तिका व्यापार इन दोनोंमे पारस्परिक निकट संबंध होता है । दृकसंधान शक्तिके जैसे ही एक केन्द्राभिमुखताके भी **दूरबिन्दु** और **निकट बिन्दु** होते है । जब कोई मनुष्य छः मिटर यानी २० फीट अन्तरपरके या उससे अधिक दूरीके पदार्थोंका देखता है, तब उस मनुष्यकी एक केन्द्राभिमुखताका प्रमाण बिलकुल कम होता है । यही एक केन्द्राभिमुखताका **दूरबिन्दु** है । इसमे दोनो नेत्रोके दृगाक्ष समानान्तर नही, बल्कि सामनेकी ओर अपसृत (डायव्हरजन्ट) होते है । उनकी इन रेखाओको पीछेकी ओरको बढानेसे वे परस्परसे मिलती है । इस अवस्थाको ऋण (–) चिन्हांकित एक केन्द्राभिमुखता कहते है । दोनों नेत्र ज्यादहसे ज्यादह भीतरकी ओरणो घूमकर कममेकम अन्तरके बिन्दुको देख सकते है, तब उसे एक केन्द्राभिमुखताका **निकट बिन्दु** कहा जाता है । इस अवस्थामे दोनो दृगाक्ष सामनेके निकट बिन्दूपर मिल जाते है जिसमे एक केन्द्राभिमुखताका चिन्ह (+)धन होता है ।

एक केन्द्राभिमुखताका नापन करनेके लिये एक **मिटरवाले कोण**का उपयोग करते है। जब नेत्र मध्य रेषामें सामनेके एकमिटर अन्तरपरके पदार्थकी तरफ घूम जाते है, तब उस कोणको **मिटरकोण** कहते है ।

यदि दृष्टि मिटरके $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{4}$, या $\frac{1}{8}$ फासलेपर लगाई जाय तो एक केन्द्राभिमुखता का प्रमाण दो, चार, या आठ मिटर कोणके प्रमाण इतना होगा। इसके विपरीत दो, या चार मिटर फासले परके पदार्थपर दृष्टी लगाई जाय तो केन्द्राभिमुखता $\frac{1}{2}$ या $\frac{1}{4}$ मिटर कोणके बराबर हुई ऐसा समझना चाहिये । जब दृक्संधानशक्तिका उपयोग निकट बिन्दुपर किया जाता है, तब एक केन्द्राभीमुखता धन चिन्हाकित होती है ऐसा समजा जाता है, इसको जांचनेके लिये रोगीको आपटामिटरको उसके नासिकाके सामने और २५ सेन्टी मिटरके फासलेपर हाथमें पकडनेको कहिये । फिर आपटामिटरके धागेमेके सोनेके मणिके तरफ दोनों नेत्रोंसे देखनेको कहिये । फिर इस यत्रको रोगीने अपने ओरको इतना हटाना कि धागेमे का मणि दोहरा दिखाई दे। फिर इस बिन्दुका अन्तर लोहेके डीयापटेरिक फीतेसे नापना और एककेन्द्राभिमुखताके मिटर कोण की सख्याभी देखना । साधारणतया अव्यग नेत्रके दृक्सधान शक्तिके डीयापटरके परिणाम एककेन्द्राभिमुखताके मिटर कोण के बराबर होते है । जब नेत्र $\frac{1}{4}$ मिटर फासलेके बिन्दुको देखते है तब उन नेत्रोको ४ डी इतने बलकी दृक्संधानशक्तिकी और ४ मिटर कोणके बराबर की एककेन्द्राभिमुखताकी जरूरत होती है । यह प्रमाण अनैसर्गिक नेत्रोंमे बदल जाता है । दीर्घ दृष्टित्वमे एककेन्द्राभिमुखताका उपयोग करनेके पहले उसको दृक्संधान शक्तिका उपयोग करना आवश्यक होता है । ऱ्हस्व दृष्टिमे इसके विपरीत व्यापार होता है ।

एककेन्द्राभिमुखताकी शक्ति कायमस्थिर रहती है या नही यह बात आपटामिटरके धागेमेके सोनेके मणिकी तरफ देखनेसे मालूम की जा सकती है । रोगीको आपटामिटर यंत्र अपने हाथमे पकडनेके अन्तरपर पकडनेको कहना; और दोनों नेत्रोसे मणिको देखते रहना । जब परीक्षक ढक्कन फलकसे एक नेत्रको ढांककर ढक्कन फलकको जल्द निकाल लेगा तब नेत्रोंमें फर्क होता है या नही यह बात परिक्षक को मालूम हो जायेगी । दोनो नेत्रोमें कुछ भी फर्क नहीं हुआ हो तो एककेन्द्राभिमुखताकी शक्ति स्थिर स्वरूपकी है

दृक्क्षेत्रकी जांच करना; परिसीमा जांचना

कसौटीके हूरूफोंसे प्रत्यक्ष दृष्टिकी, यानी दृष्टिपटलके दृष्टिस्थानकी, परीक्षा करनेके बाद दृष्टिकी अप्रत्यक्ष परीक्षा यानी दृष्टि पटलके परिधि भागके कार्यकी परीक्षा करना क्रमसे प्राप्त होता है । दृष्टिस्थानके बाहरी भागसे 'परिधिके ओरके भागकी दृक्शक्ति

चित्र नं. ३७

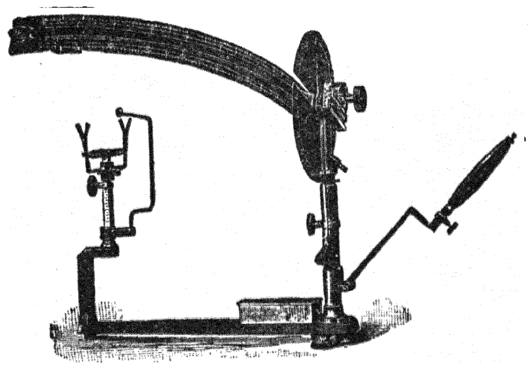

पेरिमिटर दृक्क्षेत्र नापन यंत्र

कमती होती जाती है । **कुनिगशोफर**के मतानुसार दृष्टिस्थानके बाहर १° अंश पर दृक्शक्ति १/३ होती है; २°, ३° अंशपर १/१० होती है । दृष्टिस्थानके बाहरी भागकी जांच करनेमें दृक्शक्तिकी तीव्रताके बदले उसके आकार ज्ञान पर ध्यान दिया जाता है । इसी जांच को दृक्क्षेत्रकी जांच करना कहते हैं । यद्यपि यह बात सत्य है कि सिर्फ हाथका कसौटी जेसा इस्तेमाल करनेसे दृक्क्षेत्रकी मर्यादाका अन्दाजा कर सकते हैं, और **जेफ़िस**के मतानुसार काले तख्ते पर उसका नक्शा, खींचनेसे या **डी वेकरके** क्यापिमिटरसे जांचनेसे, उसका रास्त अन्दाज करना संभाव्य होता है, तोभी क्षेत्रनापन यंत्रसे परीक्षा करनेका तरीका ज्यादह काबिल माना गया है।

म्याक हार्डिका दृक्क्षेत्रनापन यंत्र (चित्र देखिये), और **प्रिस्टले स्मिथ** और अन्य लोगोंके यंत्र, और हालमेंही जिसका प्रचार हुआ है वह **लिस्टर**का क्षेत्रनापन यंत्र और स्कोटामिटर यानी अंध तिलक नापनेका यंत्र ये सब काबिल यंत्र, हैं । रोगी यदि बिछौनेके बाहर नहीं आ सकता हो तो **डाना** के यंत्र जैसे उठाने योग्य यंत्र भी प्रचारमें हैं ।

दृक्क्षेत्र नापन यंत्र (पेरिमिटर):—इस यंत्रमें एक धातूकी अर्धवर्तुलाकार या उसकी रेखांश की कमान होती है, जिसपर अंश की परिणाम संख्या लिखी हुई होती है । इस कमानका मध्य एक खूंटीपर चारों ओरको घूम सकता है । और इसके ऊपर कसौटी रखनेके लिये, चाहे उधर घूमनेवाली छोटीसी पट्टी रहती है । भिन्न भिन्न रेषांशोंमें दिखाई देनेवाले कसौटी पदार्थोंका स्थान दर्ज करनेके लिये एक लेखापत्र या नक्शा होता है ।

कमानकी सामनेकी ओरको उसके केन्द्रास्थानमें ठोढीके लिये आधार स्तंभ होता है। रोगीको कमानके सामने बिठाकर उसकी ठोढीको आधारस्तंभपर स्थिर करना। एक नेत्रको ढाकके दूसरे नेत्रसे कमान के मध्यकी तरफ नज़र स्थिर करके देखनेको उसे कहना। फिर सफेद रगकी और नियमित आकारकी कसौटी कमानपरकी हिलती पट्टीमे बिठाकर उसको कमानके सिरेसे मध्यभागकी तरफ सरकाते जाना। रोगीको कमानके जिस स्थानपर वह कसौटी दिखाई पडेगी उस बिन्दूका निशान नक्शेपर करना। इस तरहसे ऊपर, नीचे, भीतर और बाहरकी ओर जिस बिन्दुपर कसौटी दिखाई पडेगी उस स्थानपर निशानी करना चाहिये। कसौटी १,२,५,१०,१५, मि. मि. के चौकोनके आकारकी होती है। मामूली कसौटीका आकार बडा होता है जिनसे बना हुआ दृक्‌कोण २°, ४° अश का होता है। इस कोणमे दृष्टिपटलके हजारो मौलिक घटकोका समावेश हो जाता है। नक्शेपर के इन बिन्दुओंको रेषाओसे जोडनेपर उस नेत्रके दृक्‌क्षेत्रकी आकृति तैयार होगी। अव्यग नेत्रके दृक्‌क्षेत्रकी आकृति अण्डाकृति होती है, और वह कनपटीकी ओरको ज्यादह फैली हुई होती है।

बीजेरमने दृक्‌क्षेत्र नापन करनेका एक तरहका प्रचार किया है। इसमें सुफेद पदार्थोंका, इस्तेमाल किया जाता है। इन पदार्थोंसे बना हुआ चाक्षुष कोण बहुतही छोटा होता है। यह परीक्षा दो मिटर फासले परसे दो मिटर चौडाईके काले परदेपर कीई जाती है। पहले पहल परीक्षा १० मि. मि. के सुफेद चौकोणसे मामूली अन्तर पर (यानी ३० से मि) की जाती है, फिर २ मिटर फासले परसे ३ मि. मि चौकोणसे की जाती है। पहलेके मिसालमे चाक्षुष कोण $\frac{१}{३००}$ या २° और दूसरे मिसाल मे यह कोण $\frac{३}{२०००}$ या ५″ का होता है। पहले मिसालमे नापे हुए नैसर्गिक दृक्‌क्षेत्रकी मर्यादाएँ निम्न लिखित जैसी होती है:—

ओर	सुफेद	नीला	लाल	हरा
कनपटीकी ओर मर्यादा	९०°	८०°	६५°	५०°
नासिकाकी ,, ,,	६०°	५५°	५०°	४०°
उपरकी ,, ,,	४५°	४०°	३५°	३०°
नीचेकी ,, ,,	७०°	६०°	४५°	३५°

बेरीके मतसे दूसरे मिसालमे कनपटीके ओरकी मर्यादा ३५°, नासिकाकी ओरकी मर्यादा ३०°, नीचेकी मर्यादा २८° ओर ऊपरकी मर्यादा ३५° पायी जाती है। **बीजेरम** की तरहमे दृक्‌क्षेत्रकी मर्यादा छोटी पायी जाती है, लेकिन निदान करनेके लिये काबिल विषय मिलते है।

रोगी यदि दृष्टि दुर्बलताका हो, या उसको मोतीबिन्दू हुआ हो तो पहले उसके सामने दृक्‌क्षेत्र नापन करनेके यंत्र की कमानके मध्यमे एक मोमबत्ति की ज्योति रखना, और दूसरी ज्योतिको कमानपर सरकाके परीक्षा करना चाहिये। दृक्‌क्षेत्र नापन यंत्र से नेत्रके तिरछेपनके चलनके कोणका नापन अच्छी तरहसे हो सकता है यह पहलेही बतलाया है।

दृक्क्षेत्रका स्थूल नापन हाथसे भी कर सकते हैं । रोगीको खिडकी की तरफ पीठ करके खडा रख कर परीक्षकने उसके सामने दो फीट अन्तर पर खडा रहना चाहिये। फिर रोगीने अपने दाहिने नेत्रको मूद कर परीक्षक के बाये नेत्र की तरफ अपने बाये नेत्रसे देखना । परीक्षकने अपने दाहिने नेत्रको बद करके अपने हाथको एक फूट अन्तरपर पकडकर बाये परिधि भागसे मध्यभागकी तरफ लाना चाहिये। जिस स्थानपर परीक्षकको अपनी उगली दिखाई पडेगी, उसी स्थानपर रोगीको, उसका दृक्क्षेत्र नैसर्गिक हो तो, वह उंगली दिखाई पडनी चाहिये । इसी तरहसे रोगीके क्षेत्रकी चारो ओरकी मर्यादा-ओकी परीक्षा कर सकते हैं। बादमे इसी तरहसे रोगीके दाहिने नेत्रकी परीक्षा कर सकते हैं ।

इस तरहसे रोगीका दृक्क्षेत्र परीक्षकके दृक्क्षेत्रके प्रमाणानुसार नापा जाता है। उसमे कुछ व्यंग हो, तो परीक्षक को फौरन मालूम हो जाता है ।

दृक्क्षेत्रके नापन पर असर करनेवाली बाते निम्न लिखित जैसी होती है.— (१) परीक्षा जिस कोठरीमे की जायगी उसकी प्रकाश की स्थिति, (२) रोगीकी शारीरिक परिस्थिति, यानी अशक्तता ग्लानि आदि; (३) रोगीकी बौद्धिक अवस्था; (४) चेहरेके खास लक्षण जैसेकि, उन्नत भ्रू या नासिका, ऊपरी नेत्रछदकी अवनत अवस्था या नेत्रच्छद पात, कानीनिका का आकार आदिः ।

दृक्क्षेत्रके व्यंगः—ये दो तरहके होते है (१) **प्राकृतिक अंधतिलक** जिसको फिजिआलाजिकल ब्लाइन्ड स्पाट पाश्चत्य लोग कहते है, और (२) **विकृतिजन्य व्यंग । प्राकृतिक अंधतिलक** दृष्टिपटलके दृष्टिस्थान की बाहरकी ओर १५° और नीचेकी ओरको ३° तक दिखाई पडता है । **विकृतिजन्य अंध भाग**के आकार अनेक तरहके होते है, जैसे कि—**समकेन्द्रिक संकुचित क्षेत्र** (कानसेन्ट्रिक कान्ट्राक्टेड फिल्ड); द्वे त्रिज्य **वृत्तखंड के आकार का अंध क्षेत्र; बीचके अर्ध क्षेत्रके भागका अंधत्व** नेत्रके अर्ध भागके अंधत्वका पूरा बयान इस अध्याय मे करना संभाव्य नही। नेत्रके अर्ध भागके अधत्व का स्थूल प्रमाण हाथकी परीक्षाकी तरहसे कर सकते हैं । लेकिन अन्य अवस्था-ओके लिये क्षेत्रनापन यत्रकी जरूरत होती हैं। नैसर्गिक क्षेत्र और अधक्षेत्र की सीमा खडी या आडी होती है। खडा अधक्षेत्र **समदर्शी—दोनो कनपटीयोके** या **दोनों नासिकाके ओर का** हो सकता है । समदर्शी अधक्षेत्रमे दोनो दाहिने या दोनो बाये ओरके क्षेत्र नष्ट हो जाते है । दोनो नेत्रोके दाहिने क्षेत्रोमे अंधत्व दिखाई देता हो तो समझिये, कि दोनो दृष्टिपटल के बाये भाग विकृत हुए है। इस अवस्थाको **दाहिनी समदर्शी अर्धक्षेत्रका अंधत्व** कहते है (राईट होमानिमस हेमीअनापसिया) । इसी तौरसे **बायें समदर्शी अर्धक्षेत्र के अंधत्व** में समझिये कि दोनो दृष्टिपटल के दाहिने। भागकी विकृति है। दोनो कनपटियोकें अर्धक्षेत्र के अंधत्वमे (बाय टेम्पोरल हेमिअनापलिया) दोनो कनपटियों की ओरको कुछ दिखाई नही पडता। इस संबंध का ज्यादह विवेचन दृष्टिरज्जुके भाग मे पाया जायेगा। समकेन्द्रिक या वृत्तखंड संकुचित क्षेत्र की परीक्षा दृक्क्षेत्र नापन यत्रसे ठीक हो सकति है । दृक्क्षेत्रमें दिखाई देनेवाले पूर्ण या अपूर्ण-पूरे या कुछ अध भागको **अंध-तिलक** (स्कोटोमा) कहते हैं । अंधतिलक व्यक्त या अव्यक्त (पाजिटिव या निगेटिव)

सत्य या भ्रामक, केन्द्रस्थ, वलयाकार, परिकेन्द्रस्थ या परिधिभागस्थित इतने प्रकारके होते है ।

व्यक्त अंधतिलक दृष्टिपटल की विकृतिसे पैदा होता है, और इससे दृक्क्षेत्र की किसी खास दिशामे, अभ्रच्छादित की जैसी, दृष्टिको रुकावट होती है । **अव्यक्त अंधतिलक** की अवस्थामे अव्यंग नेत्रवाले मनुष्यको किसी किसी दिशामे पदार्थ नैसर्गिक जैसे नही मालूम होते । **प्राकृतिक अंधतिलक** अव्यक्त अधतिलक जैसा होता है । **सत्य अंधतिलक** मस्तिष्क, चाक्षुप पथ, दृष्टिरज्जु और दृष्टिपटल की विकृतिमे दिखाई पड़ता है लेकिन **भ्रामक अंधतिलक,** रक्त की गुठली, वक्रीभवन मार्गमे की अपारदर्शकता, या स्फटिकद्रव पिडमेके तैरते हुये कणोसे दृष्टिमे प्रतिबध होनेसे पैदा होता है; इसका खास लक्षण यह होता है, कि नेत्रगोलक के हिलनेसे इसका स्थान बदल जाता है । **केन्द्रस्थ अंधतिलक** दृष्टिपटल या कृष्णपटल की विकृति, अति मद्यपान और धूम्रपान या ऐसे अन्य पदार्थ जिनके जहरी अमलसे दृष्टि दुर्बलता पैदा होती है, नेत्रगोलक के पिछले भागके दृष्टिरज्जुका दाह इन अवस्थाओमे दिखाई पड़ता है। इन अध तिलकोका नापन बराबर नही हो सकता; क्यों कि इनमे नेत्र स्थिर नही रह सकते ।

अंधतिलक की परीक्षा करनेमे एक बात ध्यानमे लेना चाहिये, कि दृक्क्षेत्र की मर्यादा को निश्चित करनेके बाद दृकक्षेत्रनापन यंत्र की कमान के केन्द्र भागमे परिधी भागकी ओर छोटी कसौटीको सरकाना चाहिये, न की परिधिमे केन्द्र की ओर ।

प्रकाश संज्ञा की परीक्षा (टेस्टिग आफ लाईट सेन्स)

प्रकाश सज्ञा की परीक्षामे प्रकाशकी भिन्न भिन्न तीव्रताका प्रमाण जानने सबधी नेत्रोका धर्मका अन्तर भाव होता है। दो मनुष्योमे दृक्शक्तिकी तीव्रता यानी पदार्थके आकार जाननेकी शक्ती समसमान दिखाई पडती है, लेकिन मंद प्रकाशमे एक को स्नेलनकी कसौटीके हरूफ साफ मालूम होते है तो दूसरेको वे ही हरूफ अस्पष्ट से मालूम होते है । इसका कारण यह है कि दोनो का प्रकाश ज्ञान भिन्न भिन्न होता है । दोनोमे पाई जानेवाली प्रकाशकी तीव्रताकी भिन्नताकी तुलना करके उनका प्रमाण कायम करनेके लिये प्रकाश नापन यत्रका (फोटामिटर) उपयोग करते है। प्रकाश नापन के मामुली प्रयोगमे प्रकाश नापन यंत्रकी सहायतासे प्रकाश सज्ञामे प्रकाशोत्तेजक के परिमाणको नापते है, उनके अन्तरभेद (कानट्रास्ट) को नही नापते । यानी अधेरेमें कमसे कम प्रकाशके परिणाम जाननेकी शक्तीको नाप सकते है । दिनका प्रकाश अनिश्चित होनेसे इस फोटामिटर यंत्र मे निश्चित प्रमाण की . मोमबत्ती के प्रकाशका इस्तेमालसे प्रकाशोतेजक संज्ञाका परिणाम की शक्ती की जाच की जाती है । **फार्स्टर** और **हेनरी** के यंत्रोका जादह इस्तेमाल किया जाता है। परिक्षा करनेके पहले रोगीको कमसे कम दस मिनीट तक नेत्रोपर पट्टीबांधके अंधियारी कोठरीमे बैठाना जरूरी होता है । जिससे उसका दृष्टिपटल अंधियारीसे मिलता जुलता हो जाये ।

फार्स्टर्स का प्रकाश नापन यंत्र (फोटामिटर) यह १२ इंच लम्बी, ९ इंच चौडी और ६ इंच मोटी जैसी एक समचतुष्कोण चतुर्भुज आकारकी छोटीसी संदूक होती है, जसकी भीतरी बाजू बिलकुल काले रंगकी होती है। सन्दूककी चौडाईकी एक

चित्र नं. ३८

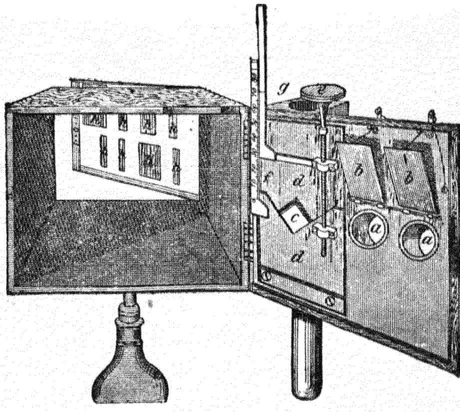

फार्स्टर्स फोटामिटर सन्दूक का द्वार खुला है।

बाजूकी दीवालमें दोनो नेत्रोंसे अन्दर देखनेके लिये दो छिद्र होते हैं। इसके सामनेकी बाजूकी दीवालमें एक सफेद कागज लटका रहता है, जिस पर काले बूंद या चित्र चित्रित होते है। जिस दीवालमें नेत्रोंके लिये छिद्र होते हैं उसी दीवालमें मोमबत्तीका प्रकाश सन्दूकके अन्दर जानेके लिये एक छेद होता है। इस प्रकाश छिद्रको बिलकूल बंद करनेके लिये, या उसके आकारमें कम या ज्यादह फर्क करनेके लिये एक यांत्रिक रचना रहती है। मोमबत्तीका प्रकाश छिद्रमेंसे समान तीव्रताका जावे इस लिये छिद्रपर तेलमें भिगोया हुआ पतला कागज लगा रहता है।

हर एक नेत्रकी परीक्षा स्वतंत्र तरहसे करनी चाहिये। पहले प्रकाश अन्दर जानेके छिद्र को बंद करके रखना चाहिये। फिर एक नेत्रकी पट्टी खोलकर धीरे धीरे प्रकाश छिद्रको खुला करना चाहिये। जिस आकारके छिद्रमेंसे कागज परके बून्द साफ दिखाई पडेंगे उसको दर्ज करना चाहिये। इसी तौरसे दूसरे नेत्रकी प्रकाश संवेदना जांचनी चाहिये। इन छिद्रोंके आकारसे हर नेत्रकी प्रकाश संवेदना शक्तिका प्रमाण निश्चित कर सकते हैं। उदाहरण के लिये एक नेत्रको १ मि. मि आकारके छिद्रसे कागज परके बूंद साफ दिखाई पडते हैं, और दूसरे नेत्रको ४ मि. मि. आकारके छीद्रसे। तो इससे यह अनुमान हो सकता है, कि पहले नेत्रकी प्रकाश संवेदना शक्ति दूसरे नेत्रसे चौगुनी है।

जिन विकृतियोसे रक्त की बनावटमे फरक हो जाता है, उससे प्रकाशकी संवेदना शक्ति क्षीण हो जाती है । कभी कभी कृष्णपटल, दृष्टिपटल तथा दृष्टिरज्जु की विकृतियोंमे प्रकाश-संवेदना-शक्ति क्षीण हो जाती है ।

रंगज्ञान की परीक्षा

नैसर्गिक रीतिसे दृष्टिपटलके सब भागोमे रंगग्राहक शक्ति एक जैसी दिखाई नही पडती । दृष्टिपटल के मध्यभाग और परिधि भागकी दृक्शक्ति की तीव्रता के जैसी ही फर्क रंग ग्राहक शक्तिमे भी दिखाई पड़ता है । ध्यानमे रखिये, कि रोगी के रंगज्ञान की परीक्षा करने मे उसको दिखलाये हुए रंग का नाम पूछना निकम्मा होता है। और इसी वजहसे रंग संज्ञाका नापन भिन्न रगोकी तुलनासे किया जाता है। कमतर रगज्ञान जांचने के तीन मार्ग होते है, जैसे कि : (१) रगीन पदार्थोंकी या द्रव्योकी प्रत्यक्ष तुलना; (२) विच्छिन्न किरणो के या वर्णपटके रंगोकी प्रत्यक्ष तुलना; (३) रंगोके अनु पूरक रंगोकी पश्चात् प्रतिमाओ की तुलना । व्याव हारिकदृष्टिसे पहला मार्ग ज्यादह महत्त्व का है । दूसरे मार्ग मे यह दोष है, कि उसकी यंत्रसामुग्री खर्चीली होती है, और वह यत्र-ज्यादह जलदी बिगड जानेका सभव होता है। सिवाय इसके दृश्य विच्छिन्न किरणे–वर्णपट हमेशाह मामुली तौरसे नही दिखाई पड़ती । इस मार्ग के उपयोग मे रोगी और परिक्षक इन दोनो की बुद्धिमत्ता तीव्र होनी चाहिये ।

रंगीन द्रव्यो की प्रत्यक्ष तुलना की कसौटीका प्रचार सबसे पहले **होमग्रेन**ने किया । यह कसौटी अनेक नेत्ररोग विज्ञान शास्त्रो के किताबोमे दी जाती है । लेकिन रोगीके रंगज्ञान की मात्रा नैसर्गिक मात्रासे कम हो, तो इस कसौटी से रग पहँचाननेमे सिर्फ भूल होती है इतना ही जाना जा सकता है । ध्यानमें रखना चाहिये, कि जिन अवस्थाओंमे रंगज्ञान की जरूरत पडती है उन अवस्थाओका इस कसौटीमे विचार नही किया है । रैलवे, जहाज या विमान पर काम करनेवाले लोगों की वर्णान्धता–रंगज्ञान की दुर्बलता–रंग की ना–शिनासि जांचनेका सबसे उमदा मार्ग यह है, कि उन लोंगोको जिस अवस्थामें कार्य करना जरूरी होता है उसी तरहकी अवस्थामे उनकी परीक्षा करनी चाहिये ऐसी **आलिव्हर** की सुचना है ।

जिन लोगो का रंगज्ञान नैसर्गिक से कमतर होता है उनके दो वर्ग करना आवश्यक है । एक वे जिनमें रूग्णविपयक परीक्षा केरनेकी आवश्यकता है; और दूसरे रैलवे आदि कर्मचारियोका ।

रुग्णविषयकी परीक्षाके लिये सशास्त्र तरह पर रची हुई ऊन की लडीया सबसे अच्छी, सस्ती और मामुली इस्तेमालमे जल्द पायी जाती है । **आलिव्हर** की इस कसौटीमें अन्य इसी तरहकी कसौटीकी अपेक्षा यह एक फायदा होता है कि उमेदवार इन लडियोंको उठानेसे या चुननेसे स्वयमेव अपनी रंगज्ञान कमतरता स्पष्ट करता है ।

रुग्णविषयक परीक्षामे दृष्टिपटल के परिधि भागकी रंग ग्राहकता जांचनेके लिये दृक्क्षेत्र नापन यंत्र का उपयोग होता है । इस लिये दृक्क्षेत्र नापन यंत्रकी कमानके परिधि-भागसे केन्द्रकी ओरको एक या दो मि मि. आकारका रंगीन चिन्ह सरकाके वह किस जगह

पर दिखाई पड़ता है यह देखते हैं। इससे यह मालूम हो जायगा की दृष्टिपटलके परिधि भागकी शक्ति कितनी कम हो गई है। क्योंकि दृक्क्षेत्रके मध्यभागके नजदीक ही उस चिन्ह का रंगज्ञान संभाव्य होता है। चिन्हका आकार बड़ा हो, उसकी चमक ज्यादह हो और उसके रंगोंकी गहराई या रगोकी संतृप्ति ज्यादह हो, तो वह चिन्ह केन्द्रसे ज्यादह दूरतक दिखाई पड़ता है। **सब रंगोंकी दृक्क्षेत्रकी मर्यादा समान नहीं होती यह बात ध्यानमें रखना चाहिये। हरे रंग की दृक्क्षेत्रकी मर्यादा** सबसे कम होती है; लाल, पीले और नीले रंगोकी दृक्क्षेत्रकी मर्यादा अनुक्रमसे बढ़ती जाती है।

दृष्टिरज्जुकी विकृति की प्रागतिक अवस्थामे रगग्राहकता की शक्तिका प्रमाण कम होता जाता है। खास रगकी ग्राहक शक्ति कम होनेसे रोगके स्थानका निर्णय करना सभाव्य होता है। नीले रंगकी ग्राहकता कम होनेसे ऐसा समझना चाहिये, कि विकृत स्थान दृष्टिपटलकी बाहरी तहों यानी **राड** और **कौन तहोंमें** है। यह विकृत अवस्था कृष्णपटल तथा दृष्टिपटलके बाहोमे और रतौधमे पायी जाती है। लाल या हरे रगकी ग्राहकता कम हुई हो, तो ध्यानमे रखना चाहिये, कि विकृत स्थान सवेदना मार्गमे यानी दृष्टिरज्जुमे है।

रैलवे, जहाज आदि के कर्मचारियोकी रगग्राहकता जाचनेकी अनेक कसौटीया हैं, जैसे कि **होमग्रेन** की रंगीन ऊन की लडीया; **आलिव्हर** की रंगीन ऊन की सन्दुक; **जेनिग्ज** की स्वयं निर्णयात्मक कसौटी; **एडरीज ग्रीन** और **विलियम्स** के लालटेन; **स्टिलिंग** की रंगीन समवर्णभासात्मक कांचकी तश्तरीया और **नागेल** का अन्नामालास्कोप।

इन कर्मचारियो की रंगग्राहकता जांचनेके लिये, उनको जिस हालतमे काम करना जरूरी होता है, वैसीही हालतमें, जहातक मुमकिन हो, उनकी परीक्षा करनी चाहिये ऐसी आलिव्हर की राय है, और इसी वजहसे उनका कहना है, कि रंगज्ञान की कसौटी बहुत दूरीसे करना जरूर है, कि जोरसे जानेवाली ट्रेन, बस, मोटार या जहाज को फौरन रोक सके।

लालटेन की कसौटी:—ध्यानमें रखिये, कि बहुतसे वर्णान्ध लोग **होमग्रेन** की ऊनकी लडियाको एक मिटर फासले पर तीव्र प्रकाशमे पहचान सकते है और इन लोगोकी रैलवे, जहाज या विमान के जबाबदार खातेमे भरती हो, तो उनसे धोका होना संभाव्य है। इसी वजहसे इन लोगोको जिस हालतमे काम करना जरूरी होता है ऐसी हालतमे उनकी वर्णान्धता स्पष्ट हो जावे ऐसी कसौटीया निकाली गयी है। माना गया है, कि लालटेन की कसौटीसे उनका यह व्यग जांच सकते हैं। उमेदवार की रंगज्ञान की परीक्षा लालटेन को पाच मिटर फासले पर रखकर की जाती है। जिनमे खास रगकी काच बिठाकर उसके ऊपर धुधली कांच बिठानेसे रेलवेनिशान की नकल हो सकती है, ऐसी इन लालटेनोमें छेदवाली तश्तरीयां, होती है।

विलियम्स का लालटेन:—इसका इस्तेमाल अंधियारी कोठरीमें २० फूट फासलेपर किया जाता है। लालटेन के सामने की बाजूमे एक तश्तरी होती है जिसमे १७ रंगीन और एक सादी कांच बिठाई हुई होती है। इनमें लालरंग की भिन्न भिन्न सात छटा, हरे रंगकी पांच छटा, नीले रंगकी दो छटादार काच एक परपल यानी अरगावनी-बेगनी,

एक पीली और एक धुंआँ की काच होती है। एक, दो या तीन रंग एक साथ दिखा सकते हैं; और इनको मिलानेसे ५४ भिन्न रंग बतलाना संभाव्य होता है। प्रकाशित भाग तीन आकारमें दिखाया जाता है; प्रकाशकी तीव्रताका नियंत्रण होता है; प्रकाशित संख्यासे, जो उमेदवारको नहीं दिखाई पड़ती, परीक्षक उमेदवारने रंगको जो नाम दिया होगा उसको और उसकी संख्या को रुजू कर सकता है।

अ. **चित्र नं. ३९.** **ब.**

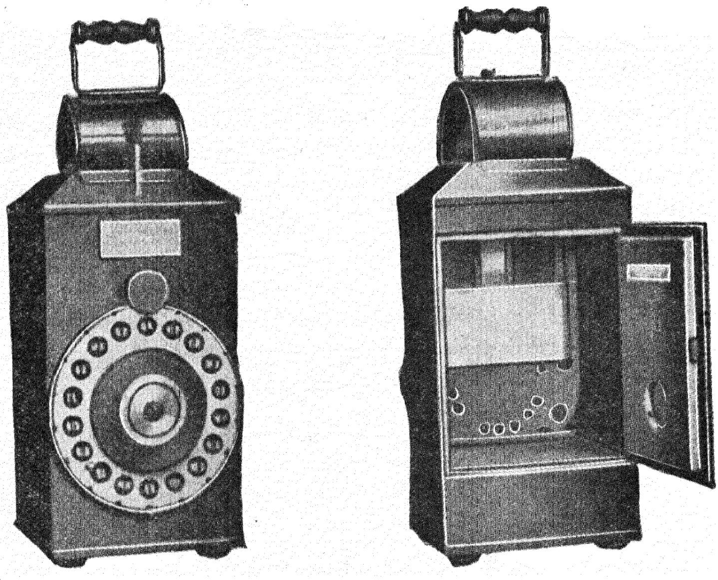

रंगज्ञानको जांचनेका विलियम्स का लालटेन

अ. लालटेनका बाहरी दृश्य। **ब.** अन्दरूनी दृश्य।

लालटेनके सामनेके भागमेंकी तश्तरीमें अठारह कांच बिठाये होते हैं, जिनमेंसे कई निशानके कांचके टुकडे होते हैं। इस तश्तरीके केन्द्रमें के खूंटी–नाब–से छेदके आकार और संख्याको नियंत्रित कर सकते हैं। (इस कसौटीका वर्णन **जेनिन्जने** अमेरिकन जरनल आफ फिजिआलाजिकल आपटिक्सके **१९२०** के दुसरे भागमें दिया है)

कसौटीके इस्तेमाल की तरह:—इस कसौटीका इस्तेमाल अंधियारी कोठरीमे किया जाता है। उमेदवारको इस कोठरीमें बिठाकर उसके सामने २० फूट दूरी पर और उसके सिरके समतलपर लालटेनको इस तरहसे रखिये, कि उसकी तश्तरीवाली बाजू उमेदवारकी ओरको हो जावें। घूमते दरवाजेको–शटर–जिसका, सामनेकी तश्तरीमेंके खूंटीसे नियंत्रण कर सकते हैं, इस तरहसे रखना चाहिये कि, बडे छेदोंमेंसे दो प्रकाश एक सहा दिखाई पडें। इसके लिये और उमेदवारको रंग क्रमसे दिखाई पडे इस लिये, दरवाजेको

इस तरहसे रखा जाता है, कि एकही समय बडे छेदमेसे पहले तीन रंग दिखाई पडे। और फिर खूटीसे बीचमेके छेदको बद करे। फिर उमेदवार को कहा जाता है, कि देखे हुए रगोंका नाम और वे किस जगहपर है, यह कहो जैसे कि बायी ओरका लाल या दाहिनी ओरका लाल। फिर तश्तरी को धीरे धीरे घुमाकर उसको सब रग बतलाना। उमेदवार जब रंगोका नाम बतलाता जाता है तब उसके उत्तरोको खास तख्ते पर दर्ज करना। उमेदवारने रंगका नाम और संख्या बराबर दियी हो तो उनको बराबर है ऐसा स (सहि) चिन्हसे दर्ज करना। यदि उसने भूल की हो, तो तख्तेपर परीक्षकने इसके रगकी सख्याके नीचे उसने कहे हुए रंगका नाम लिखना चाहिये। तख्तेपर हरएक जगहमे ला, ह, पी, नी, बै. सु यानी लाल, हरा, पीला, नीला, बैगंनी और सुफेद इनके आद्य अक्षर लिखे हुए होते हैं।

तख्तेपर उमेदवारने बतलाये हुए सब रगोके नाम लिखनेसे, यह फायदा होता है, कि उसने कौन कौनसे नाम गलत बतलाये है इसका भी दर्ज हो जाता है। इस तरहसे बडे छेदो मै से सब रंग बतलाने के बाद दरवाजे को घुमाना चाहिये, जिसमे छेदका आकार मध्यम हो जायेगा और उमेदवार को एक समय एक ही रग दिखाई पडेगा। और उसने कहे हुए रंग के नाम भी फिरसे दर्ज करना चाहिये। लालटेन के ऊपरी भागमे एक फिसलनेवाला डंडा होता है। इससे, दो मध्यम और कुछ काले, रग छटावाले काचोके स्थानका नियंत्रण हो सकता है। इनको मध्य भागमे के छेद मे सरकाने से बतलाये हुए रगोकी तीव्रतामें फर्क कर सकते हैं। इस कसौटीका इस्तेमाल करने के पहले दरवाजे को घुमानेसे, बीचके छेदको पूर्ण तया खोलकर बाजू के दो छेदों को बद रखना सभाव्य होता है। फिर छेदमे पहले कुल रंगोका बदलना, फिर रगोके सामने को रगछटावाले काचों को अनुक्रमसे सरकाकर एक ही रंग तीन प्रमाण की तीव्रतामे बतलाना सभाव्य होता है। उमेदवार, जो वर्णान्ध होता है, रगों की तीव्रतासे उनको पहचान सकता है, लाल प्रकाश को हरा कहेगा या हरे रंग को लाल कहेगा। ध्यानमे रखना चाहिये, कि रंग छटामे फर्क करनेवाली कांचो का इस्तेमाल करने के समय बीचके छेदका आकार ज्यादहसे ज्यादह बडा रखना चाहिये।

यदि कोई उमेदवार (१) लाल रंगको हरा या सुफेद कहे, (२) हरे रंग को लाल सुफेद कहे, या (३) सुफेद रंग को लाल या हरा कहे तो उसकी रंगग्राहक शक्तिमे व्यग है ऐसा समझना लाजिमी होता है। यदि वह पीले रंग को लाल या हरा, या लाल या हरे रंग को पीला समझे तो उसकी परीक्षा फिरसे करनी चाहिये।

यदि रग बतल.ने का छेव बिलकुल बारिक हो तो उससे प्रकाशन इतना कम हो जाता है कि उमेदवार को बाल्ट ब्ल्यू (नं. १७) और लाल (नं. १५ परपल रंग) पहचान नही सकता।

मामुली परीक्षामें सबसे बडे या मध्यम आकार के छेदका इस्तेमाल करना काफी होता है। मध्यम आकारके छेद से जिसका व्यास $\frac{1}{4}$ इच हो, रोगीसे २० फूट अन्तर पर के रंगीन पदार्थ की दृष्टिपटल की प्रतिमा, दृष्टिस्थानको जानना संभाव्य हो इतनी छोटी होती है और अव्यंग नेत्र से पहचानना सभाव्य हो इतनी बडी होती है।

वर्णान्धता जाननेकी कसौटियां:—अन्य बहुतसी कसौटियां वर्णान्धता जाननेके लिये प्रचारमें हैं. सिर्फ दो कसौटीका यहां वर्णन करेंगे।

(१) **स्टिलिंग की रंगीन सवर्णाभासात्मक कांचकी तश्तरियोंकी कसौटी** (सूडो-आयसो क्रोम्याटिक डिस्क्स)। इसका असली उद्देश यह होता है कि वर्णान्ध उमीदवार को रंगोंकी तुलना करना संभाव्य न हो। **स्टिलिंगने** इस कसौटीको तयार करने में जिसको लाल हरा-रंगकी वर्णान्धता थी ऐसे शक्स की मदत लीई थी। इस कसौटीमें जमीन कांचकी छोटी तश्तरियोंकी हरे रंगकी होती है और उनपर उस रंगके पूरक, लाल रंग, के अंक अक्षर या चित्र लिखे हुए होते हैं। हमने इसी तरह पर कुछ तश्तरियां बनाई है जिसका एक चित्र दिया है। इन तश्तरियोंको अच्छे प्रकाशमें पकडकर उमेदवारको तश्तरियों परके अक्षरोंको पढनेको कहते हैं। ऐसा समझिये, कि हरी तश्तरीपर लाल रंगके अक्षर या चित्र लिखे हैं। यदि उमेदवार हमजातसे–जननसे–वर्णान्ध हो, तो उसको तश्तरियोंपरके अक्षर या चित्र जानना संभव नहीं होता। इसके कारण यह होते हैं, कि (१) तश्तरियां मुख्य खास रंग की वर्ण छटाकी बनी हुई होती हैं; (२) सब लोगोंमें वर्णान्धता एकसी नहीं होती।

चित्र नं. ४०

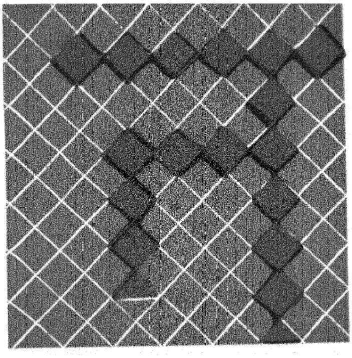

रंगीन सवर्णाभासात्मक कांचकी तश्तरी (ग्रंथकार)

नागेलका अनामालोस्कोप:—यह एक दुर्बीन जैसा यंत्र होता है। इसकी नली स्टान्डपर स्थिर होती है। इस नलीमेंसे प्रकाशकी तरफ देखनेसे वृत्ताकार–गोल–रंगीन दृक्क्षेत्र दिखाई पड़ता है, जिसके उपरके और नीचेके भाग भिन्न भिन्न रंगके होते हैं। इस क्षेत्रका नीचेका भाग सोडियम धातुकी पीली ज्योतिसे रंगा हुआ, और ऊपरका भाग **लीथियम** धातुकी लाल ज्योति और **थालियम** धातूकी हरी ज्योतिके मिश्रणसे प्रकाशित किया होता है। नीचेको पीले प्रकाशकी तीव्रताको बढ़ाने या कम करनेके लिये स्क्रूकी तख्ती होती है और दूसरा एक स्क्रू होता है, जिससे ऊपरके आधे लाल–हरे रंगके मिश्रण को पहले शुद्ध लाल, फिर पीला, फिर आखिरमें शुद्ध हरे रंग का इसतरह तबदील किया जा सकता है।

नीचेके शुद्ध पीले रंगके साथ तुलना करके ऊपरके लाल–हरे मिश्रणके फर्क नैसर्गिक रंग ज्ञानी मनुष्य पहचान सकता है। रंगज्ञान दुर्बलताके मनुष्यकी समझमें ये फर्फ नहीं आ सकते।

चित्र नं. ४१

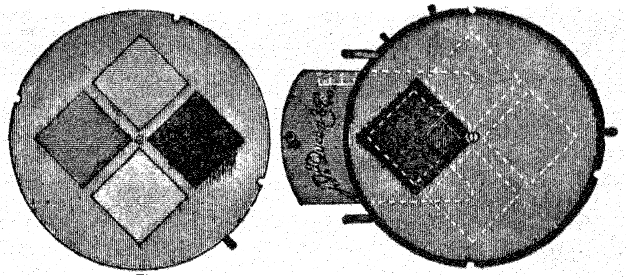

दृक्‌शक्ती के रंगज्ञान का नापन यंत्र (आलिव्हर)

दृक्‌शक्ति के रंग ज्ञान का नापन:—रंग ज्ञान का जियादति याने परिमाणिक अंदाजा करने के लिये **डान्डस, डी. वेकर मासेलान ट्रूक व्हालूड और आलिव्हर** आदि संशोधकोने यंत्र निकाले हैं। इस परिक्षामें रोगी या उम्मेदवारको ५ मिटर फासले पर बिठाकर उसको एक खास आकार के छेदमें से रंग बतलाया जाता है। शक्सने रंगका नाम कहना जरूरी है। यदि प्रमाण छेद मे से इनको–रंग पहँचानना संभाव्य न हो तो उसको रंग पहचानना संभाव्य हो इतना छेदका आकार बडा करना चाहिये। आम परीक्षाके लिये आलिव्हर के यंत्र का इस्तेमाल काफी हो सकता है। जिसका रंगज्ञान नैसर्गिक तौरका है ऐसे शक्सको ५ मिटर फासले परसे २$\frac{३}{३}$ मि. मि. के आकारका लालरंग ८$\frac{३}{४}$ मि. मि. आकारका नीलारंग, १०$\frac{३}{४}$ मि. मि. आकारका हरा रंग और २२$\frac{३}{४}$ मि. मि. आकारका कामिनिया नील लोहित रंग पहचानना संभाव्य होता है।

नेत्रकी अन्दरूनी परीक्षा

नेत्रगोलककी बाहरीकी परीक्षा पूरी करनेके बाद नेत्रगोलककी अन्दरूनी परीक्षा करना मुनासिब है। यह परीक्षा अंधियारी कोठरीमें की जाती है। यह कोठरी बिलकुल अंधियारी होनी चाहिये: लेकिन कोई कोई मानते है, कि इसकी इतनी कुछ आवश्यकता नही। विद्युत प्रकाशित नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र से परीक्षा किसी भी कोठरीमें की जाती है तो भी कोठरीकी भीतरी दिवाल काले रंगकी हो तो अच्छा है।

प्रकाश—नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षाके नतीजेमें, जिस तरहके प्रकाशका इस्तेमाल किया जाता है उसके अनुसार फर्क दिखाई पड़ते हैं। पहले मोमबत्तीके, तेलके बत्तीके प्रकाशका इस्तेमाल किया जाता था; उसके बाद ग्यास, विद्युत, आदि प्रकाशका इस्तेमाल

होने लगा । सौर प्रकाश और लाल रंग विरहित प्रकाशका भी इस्तेमाल करते है। प्रकाश किसी भी तरहका हो, ध्यानमें रखना चाहिये, कि यह साफ और स्थिर होना चाहिये ।

जिगर, ज्याकसन, फाक्स आदि सशोधकोके मतानुसार सौर प्रकाशसे यह फायदा दिखाई पडता है कि उसमे परीक्षा करनेमे नेत्रतलके रंगके सूक्ष्म तफसिल जैसे के वैसेही दिखाई पड़ते हैं; उसमे कुछ फर्क नही होते ।

फाक्सने एक पीलिया की मिसाल का वर्णन दिया है। जिसमे वे लिखते है कि सौरप्रकाशसे नेत्रतलको प्रकाशित करनेसे नेत्रबिम्ब पीला दिखाई पडा। विद्युत प्रकाशसे नेत्रबिम्ब कुछ लाल पीले रंग का दिखाई पडा और ग्यास की बत्तीसे नेत्रतल नैसर्गिक जैसा दिखाई पडता है ।

नेत्रतलके तफ़सील, जो सादे प्रकाशसे देखना संभाव्य नही होता वे पीले–हरे प्रकाशसे अच्छी तरहसे दिखाई पड़ते है ऐसा **फिडेनवाल**का मत है । इस प्रकाशसे दृष्टिपटलकी केशिनिया भी साफ देख सकते है ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे नेत्रकी परिक्षा करनेके लिये लाल रंग विना प्रकाशका इस्तेमाल

इस पद्धतिकी शुरुआत पहलेपहल **स्टिफन मेयो**ने सन १९०३ मे कीई। इस पद्धतिमे पारद–दीपका इस्तेमाल किया जाता है। इसमे पारदकी बाष्प होकर विद्युत प्रवाह पैदा होकर प्रकाश पाया जाता है। यद्यपि यह प्रकाश ज्यादह चमकदार होता है, उससे पैदा होनेवाली पश्चाद प्रतिमा बिलकुल थोडे समय तक रहती है। इस प्रकाशकी वर्णपटदर्शक यंत्रसे जाच करनेसे मालूम हुआ है, कि इसमे नीले और नीललोहित यानी कासनी रगका प्रमाण ज्यादह होता है, और वर्णपटके लाल सिरेकी किरणोका इसमे अभाव होता है। इस प्रकाशसे देखे हुए नेत्रतलमे दिखाई देनेवाली खास बाते ये होती है :—

(१) नेत्रतलके रंगमे पूर्णतया बदल हो जाता है · (२) दृष्टिपटलकी प्रतिक्रिया कुल नेत्रतलमें दिखाई पडती है . (३) नेत्रतलकी रोहिणियां अच्छीतरहसे स्पष्ट होती है और उनकी छोटीमे छोटी शाखाओको पहचानना संभाव्य होता है (४) नेत्रतलके दृष्टिपटल कृष्णपटल और शुक्लपटलकी गहराईका वस्तुस्थितिदर्शन दिखाई पडता है।

होगेटने इस परिक्षामे पीले–नीले प्रकाशका इस्तेमाल करना शुरु किया। प्रकाशको एक तरहके छन्ना–निस्वन्दक (फिल्टर)मेसे पार भेजनेसे प्रकाशमेके लालरगको रुकावट होती है जिससे इस किस्मका प्रकाश पाया जाता है। इस प्रकाशसे प्रत्यक्ष परीक्षा की जाती है लेकिन, ध्यानमें रखिये, कि प्रकाशनका असर बिलकुल थोडे समयतक रखना चाहिये।

इस तरहके प्रकाशसे नेत्रतल कुछ पीले–नीले रंगका दिखाई पड़ता है। और उसमे दृष्टिपटलकी अनेक प्रतिक्रिया पायी जाती है। नेत्रबिम्ब सुफेद मालूम होता है, और उसकी रक्तवाहिनियां कालीसी, और उनकी सूक्ष्मशाखा उपशाखाएँ भी अच्छी तरहसे दिखाई पड़ती है। कृष्णपटल नही दिखाई पडता। दृष्टिस्थान हरे परदे पर पीले रंगके क्षेत्र जैसा मालूम होता है। दृष्टिस्थानकी प्रतिक्रिया, कुछ विकृत अवस्था उसमे न हो तो, हमेशाह पायी जाती है।

दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियोंकी दृष्टिस्थानकेन्द्रकी तक (फोव्हिओला) खोज कर सकते हैं। दृष्टिपटल भी नज़रमे आता है, और उसके तंन्तुओकी खोज़ नेत्रबिम्ब तक करना संभाव्य होता है। लाल रंग विना प्रकाशसे परीक्षा करनेसे दृष्टिपटलके तन्तु दिखाई पडना यह खास बात मालूम होती है। क्योंकि उनका पूर्ण या अपूर्ण अभाव, निदान करनेमें महत्वकी बात मानी गयी है। ये तन्तु नेत्रबिम्बसे पहियाके आरा जैसे चारों ओरको फैल जाते हैं। नेत्र-बिम्बसे दृष्टिस्थानके केन्द्रकी ओरको जानेवाले तन्तु कुछ समानान्तर जैसे होते हैं फिर वे इसके ऊपर और नीचे कुछ झुककर दृष्टिस्थानके बाहरकी ओरको मिलते है जहां उनकी गुफा जैसी बनती है।

दृष्टिरज्जुकी विकृतिमें लालरगविना प्रकाशसे परीक्षा करना ज्यादह जरूरी होता है, क्योकि नेत्रबिम्व या उसकी किनार पर के बारीक द्रवोत्सर्ग–निस्त्राव–चुवन साधे प्रकाशसे नही दिखाई पड़ते, वह इस प्रकाशसे आसानीसे देखना संभाव्य होता है। और इस प्रकाशसे दृष्टिरज्जुका प्राथमिक और गौण तरहके क्षयका निदान करना संभाव्य होता है। कीरीजन्य दृष्टिरज्जुके क्षयमे उसके कुछ तन्तु अस्पष्ट होकर गायब हो जानेसे नेत्रबिम्बका आकार बडा हो जाता है। ये फर्क सादे प्रकाशसे परीक्षा करनेकी पद्धतिमे बहुत दिनके बाद पहचाने जा सकते है। नेत्रगोलकके पीछेके दृष्टिरज्जुके भागके क्षयमे दृष्टिस्थानवाले मज्जातन्तु ही सिर्फ नही दिखाई पडते।

नेत्रगोलककी अन्दरूनी परीक्षामें नेत्रान्तरग दर्शक यंत्रसे नेत्रतलकी परीक्षा, नेत्रतल प्रतिछाया गति नीरीक्षण, अज्ञातरश्मि चित्रण, नेत्रगोलककी दीवालपर प्रकाश डालकर उसके अन्तरंग को रोशन करना ये बाते शामिल होती हैं।

नेत्रगोलकके कुछ रोग इस तरहके होते है, कि कनीनिकाको पूर्ण विस्तृत किये विना उनकी पूरी तौरसे परीक्षा करना सभाव्य नही होता। ऐसी हालतमे कनीनिका विस्तृत करनेवाली दवाओका इस्तेमाल करना जरूरी होता है। इन दवाओका असर तारकापर या दृक्सधानशक्तिपर, या दोनोपर होता है। जिन दवाओका असर तारकापर होनेसे वह प्रत्याकर्षित होती है, और फिर कनीनिका विस्तृत होती है, ऐसी दवाओंको कनीनिका विस्तृत करनेवाली दवाएँ (मायाड्रियाटिक्स) कहते है। विस्तृत कनीनिकाके साथ जब तारकातींतपिंड की स्नायुका यानी दृक्संधानशक्तिका भी स्तंभ हो जाता है तब उन दवा-ओंको सायक्लोप्लेजिक्स कहते हैं। ध्यानमें रखना चाहिये, कि सायक्लोप्लेजिक्स दवाओसे कनीनिका विस्तृत होती है, लेकिन कनीनिका विस्तृत करनेवाली सब दवाओंका कार्य सायक्लोप्लेजिक्स जैसा नही होता। सायक्लोप्लेजिक्सकी क्रिया दो तरहकी होती है:– (१) कनीनिकाकी सकोचन करनेवाली स्नायु को तीसरे मस्तिष्क रज्जुसे जानेवाले मज्जा-तन्तुओंको स्तंभित करना; (२) तारकाके आरासदृश्य स्नायु सूत्रोंको जानेवाले अनुकंपित मज्जातंतूओको उद्दीपन करना।

कनीनिका विस्तृत करनेवाली (प्रसरण करनेवाली) दवाओंका इस्तेमाल निम्न लिखित चार अवस्थाओके लिये करना जरूरी होता है:–(१) नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे नेत्रतल की परीक्षा सुभीतेसे हो, (२) तारकातीत पिंडकी स्नायुको बेकाम करनेसे यानी दृक्संधान

शक्तिको स्तंभित करनेसे नेत्रगोलकके वक्रीभवनदोषका (आवर्तन दोषका) नापन बराबर हो, (३) नेत्रके तनावका (आयस्ट्रेन) निदान करना, (४) कृष्णमंडलके दाहमें औषधीय इलाज के तरीकेसे।

कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवाओंका इस्तेमाल करनेकी तरहः— ये दवाएँ शुक्लास्तर कोपमें चूर्णके रूपमें, या तेल या पानीमे बनाए हुए बूदके रूपमे डाली जाती है। कभीकभी जिलेटिनमें बनाई हुई टिकियोका भी इस्तेमाल किया जाता है। नेत्रमे दवा छोडनेके वख्त रोगीको नीचेकी ओरको देखनेको कहे, और फिर तारकापिधानकी ऊपरकी बाजूको दवा डाले जब वह तारकापिधानके कुल पृष्ठभागपर फैल जायेगी। इस तरकीब से दवाका असर सिर्फ शुक्लास्तर कोषमे दवा छोडने की अपेक्षा ज्यादह जोरदार और जल्द पाया जाता है। दाहिने नेत्रमे दवा छोडनेके समय रोगीको अपना सिर दाहिनी और नीचेकी ओरको, और बाये नेत्रके समय सिर बायी और नीचेकी ओरको झुकानेको कहना चाहिये जिससे ज्यादह गिरी हुई दवा अश्रुकोपमें नही बल्कि बाहर की ओरको बह जायेगी।

नेत्राभ्यन्तरका दबाव पहले जांचे विना कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवाओका नेत्रमें इस्तेमाल न करें; और नेत्राभ्यन्तरका दबाव बढा हुआ हो तो इन दवाओका इस्तेमाल करना मुनासिब नही ऐसा आम नियम है।

कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवाओका इस्तेमाल करनेके पहले नेत्रान्तरंगदर्शकयंत्र से परीक्षा करना चाहिये। यह ध्यानमे रखना जरूरी है कि बिलकुल कमजोर दवाओसे भी काचबिन्दूका उद्गम होना सभाव्य है और इसी वजहसे अनुभवी दृष्टिविशारदने ही इन दवाओका इस्तेमाल करना मुनासिव होगा। ध्यानमें रखिये, कि बिलकुल नवजवानोंमे, बीमार लोग और बूढे लोगोमे कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवाओसे खतरा पैदा होता हैं। इसलिये हमेशाह इनका इस्तेमाल हुशियारीसे करना चाहिये।

कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवाएँः— जिनका इस्तेमाल किया जाता है वेः— अट्रोपीन सल्फ, स्कोपाल अमिन, होम्याट्रापिन, ड्यूबोसिन, हायोसिन तथा हायोसिनामिन, मायड्रिन, धतुरिन, यूफथालमिन होती हैं।

अट्रोपीनः— कनीनिकाका प्रसरण करनेवाली दवाओमे ज्यादह प्रमुख दवा है। यह अट्रोपा बेलाडोना का खास कार्यकारी प्रभावशील सत्व है। शुद्ध अट्रोपीन घुलनशील कम होनेसे अट्रोपीन सलफेट का ही ज्यादह तौरसे इस्तेमाल किया जाता हैं। वक्रीभवन दोष जांचनेके लिये, नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा करना आदि कार्योमे अट्रोपीन घोल का, जो एक औन्समें २ से ४ ग्रेन इस प्रमाण का होता है, इस्तेमाल किया जाता है। इस घोलके कुछ बूंद शुक्लास्तरमे डालकर आधे घंटेके बाद नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा की जा सकती हैं। वक्रीभवन दोषकी जांच करनेके लिये हर दिन तीन दफा ऐसे तीन दिन तक रोगीने दवा का इस्तेमाल करना ज्यादह मुनासिब होता है। अट्रोपीन का असर चार दिनके बाद कमती होना शुरू होता है और इसका पूरा असर नष्ट हो जानेको करीब दो हफ्ते लगते हैं। यद्यपि बालकोंमें और नवजवानेमे अट्रोपीनसे तथा होम्याट्रापिनसे कनीनिका का प्रसरण जलद

होता है। शिशुवर्गमें इसके स्थानिक उपयोगसे कुछ असर नहीं पाया जाता। ध्यानमे रखिये, कि इसके इस्तेमालसे मुखकी आरक्तता, गला सूखा होना, और हृदयकी क्रिया जल्द होना ये ऐन्द्रिय स्वरूप के लक्षण दिखाई पडते हैं, तो भी कनीनिका का प्रसरण होगा या नही होगा।

स्कोपालामिन : बेलाडानाकी जडोमें, स्ट्रामोनियमके बी में और कभी कभी ड्युबोयसिया मायोपोराइडस में मिलता है। यह दवा अट्रोपीनसे ज्यादह जोरदार होती है; इसके १%घोलकी मात्रा ०·१ से ०·२ होती है। बालकोंमे और निरबल लोंगोमें इसी मात्रासे हृदयकी क्रिया जल्द और अनियमित होती है, गला सूखा हो जाता है, चलन असमतुलित होता है और धुधी चढती है। इसका असर बारह घंटेमें कमति होना शुरू होता है और पांच या छः दिनमे साफ नष्ट हो जाता है।

होम्याट्रापिन : अट्रोपीनकी ही व्युत्पन्न दवा है। हायड्रोब्रोमेट ऑफ होम्याट्रापिन इस स्वरूपमे इसका उपयोग किया जाता है। ऊपरी निर्दिष्ट दवाओसे यह बहुत कम जोर होती है और इसकी सायक्लोप्लेजिक क्रिया भी बे भरोसे की समझी जाती है। तोभी यह उपयुक्त दवा है, इसके २ से २·५ प्रति सेंकडा घोलकी मात्राका इस्तेमाल करते हैं। वक्रीभवन दोष को जाचनेके वक्त एक घंटे तक हर पांच पांच मिनीटके बाद यह दवा डालना जरूरी है।

इसकी कमजोर मात्रासे भी शुक्लास्तरका प्रदाह होता है, और मात्रा जोरदार हो तो कृष्णमंडल और दृष्टिपटलकी तकलीफे पैदा होती है। इसके साथ साथ कोकेनका इस्तेमाल करनेसे इन खतरोंके विना इच्छित असर पाया जाता है। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा करनेके लिये छोटी मात्राका इस्तेमाल करते हैं। इस दवाका असली फायदा यह होता है कि इसका असर चोवीस से छत्तीस घन्टोंमें नष्ट होजाता है। लेकिन इससे तारकातीत पिंडकी स्नायुका पूरा स्तंभ नही होता, यदि छोटी मात्रामें इसका उपयोग किया जाय! और यही इसका गैरफायदा है। तारका और तारका–कृष्णपटलके दाहमे इसका दवाकी तौरसे इस्तेमाल करनेसे कुछ फायदा नही पाया जाता। इसके जहरी लक्षण असमतुलित गति, कुछ अर्ध पतनावस्था, भ्रान्ति और कई मिसालोमें कनीनिका प्रसरण ये दिखाई पड़ते हैं।

कोकेन : इसके इस्तेमालसे कनीनिकाका प्रसरण होता है; और यदि इसका असर नापैदार होता है, तो भी नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे नेत्रतल देखनेके लिये काफी होता है। इससे तारकातीत पिंडके स्नायुका थोडा स्तंभ होता है।

ड्युबोसिन : इस दवाके सलफेटका (एक औन्समें दो ग्रेन) इस्तेमाल किया जाता है। इसका कनीनिकाको प्रसरण करनेका असर ४८ घंटोमें कम होजाता है और एक हफ्तेमें साफ निकल जाता है। सायक्लोप्लेजिक तौरसे इसका असर अट्रोपीनसे ज्यादह जोरदार होता है लेकिन यह असर जल्द साफ होजाता है।

हायोसिन व हायोसिनामिन : ये दोनों दवाओसे कनीनिका प्रसरण जोरदार होता है। और ऐसा माना जाता है, कि इनमे जहरीले धर्म होते हैं। **रिसले**का कहना है, कि इन दवाओके स्फटिकोंका ही इस्तेमाल करना मुनासिब होता है। यदि गैरवाजवी मात्रामें इसका इस्तेमाल किया जाय तो कनीनिकाके बहुत प्रसरण के साथ तारकातीत पिंडकी स्नायु

ऐंठ जाती है जिससे वेदना पैदा होती है। इस हालतमें अट्रोपीनका इस्तेमाल करनेसे वेदना साफ नष्ट हो जायेगी और सायक्लोफ्लेजिक असर रह जायेगा।

धतुरिनः इसकी ऐन्द्रिय क्रिया अट्रोपीन जैसीही दिखाई देती है और इसी वजहसे कोई कोई लोक इसका अट्रोपीन के बदले उपयोग करते हैं। स्तनग्रंथी रस पर इसका कुछ असर न होनेसे कोई कोई लोग इसका माताको देनेमे कुछ हरज नही ऐसा मानते हैं।

मायड्रिन : इस दवाके इस्तेमालसे कनीनिकाका प्रसरण जल्द पाया जाता है और तारकातीत पिंडकी स्नायुपर कुछ असर नही होता । यह घुलनशील चूर्ण सुफेद होता है यह चूर्ण एफिड्रिन हायड्रोक्लोराइड (एक हिस्सा) और होम्याट्रापिन हायड्रोक्लोराईड ($\frac{१}{१००}$ हिस्सा) के मिश्रण से तैयार किया जाता है । इसके १०% घोलसे कनीनिका फौरन प्रसृत होती है । लेकिन दृक्संधान शक्तिपर इसका कुछ असर नही दिखाई पड़ता। इससे कनीनिकाका आधे घंटे में पूरा प्रसरण होता है और चारसे छः घंटेमें इसका असर साफ निकल जाता है। नवजवानोंमे दृक्संधान शक्तिपर असर नही होता, लेकिन कभीकभी बूढोमे तारकातीत पिंडकी स्नायुका मृदु पक्षाघात दिखाई पड़ता है । इस दवाके और दो फायदे ये होते है, कि इससे समय बच जाता है और दवाका जोर कमती नही होता ।

यूफथालमिन : नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षामें इस दवाके २–४–या १० प्रति-सेंकडा घोलका इस्तेमाल किया जाता है। इससे आधेघंटेमे कनीनिकाका प्रसरण होता है, और दस या बारह घटेमे असर निकल जाता है। इससे दृष्टिको बहुत तकलीफ नही होती ।

कनीनिका का संकोचन करनेवाली दवाओंका इस्तेमालः—कनिनिका का संकोचन करनेवाली दवाऐं **एसरीन, पायलोकारपिन, फायझोस्टिगमिन** और **अरकोलिन** ये होती हैं। साधारणतथा हमेशाहके लिये अरकोलिन दवा अच्छी होती है । एसरीनके इस्तेमालसे नशा, स्नायुओका ऐठन, भ्राति और अकसरकरके बुढोमे और नि:शक्त लोगोंमे, सन्निपात ये लक्षण दिखाई पडते हैं ।

नेत्रान्तरंग का प्रकाशन

नेत्रगोलक की अन्दरूनी परीक्षा नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे की जाती है और इस पद्धतीको पाश्चात्योंमें आफथालमास्कोपी कहते है। स. १८५१ मे **फान हेल्महोल्टझने** आगेसेही कहा था कि नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके इस्तेमालसे स्फटिकद्रव पिडमेके और दृष्टिपटलमेके सब फर्क जो हालमें मुरदे परसे जानना संभाव्य था, वे अब जिन्दी हालतमे भी अच्छी तरहसे पहचानना संभाव्य होगा । और नेत्रगोलकके विकृत शारीरमें ही बहुत प्रगति हो जायेगी । इस परीक्षामें नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दर्पणसे या अन्य दर्पणसे नेत्रपर प्रकाश डालकर उसका अन्तरंग प्रकाशित किया जाता है।

ध्यानमें रखना, कि जब किसी प्राणिके नेत्रगोलकके भीतर प्रकाश किरणें घुस जाती हैं, तब उनका कुछ हिस्सा अन्दर सोखा जाता है, और कुछ हिस्सा परिर्वातित होकर बाहरको

पलट पड़ता है। लेकिन परावृत्त होनेवाली किरणें बहुत ही कम होती हैं और अपने बाहरी उगम स्थानको लौटनेसे इर्दगिर्दके प्रेक्षकोके नेत्रोंमे वे नही जातीं। और इसी वजहसे प्रेक्षकोको उस प्राणिकी कनीनिका काली सी दिखाई देती है। मसलन यदि कोई कोठरी एक ही छोटी बारीसे प्रकाशित की जाती हो, तो बाहरीके शक्सको कोठरीके भीतरीका कुछ भी भाग, शक्सने अपने सिर को यानी नेत्रोंको कोठरीमेसे बाहर जानेवाली किरणोके रास्तेमें लाये विना, नही दिखाई पड़ता। इस हालतमे निम्नलिखित तीन तरहकी तदबीरोसे फर्क होसकता है या किया जा सकता है, जिससे कि कनीनिका प्रकाशित होकर दिखाई देती है।

(१) यदि कनीनिकामें घुसनेवाली प्रकाशकी किरणें समानान्तर न हो तो कनीनिका-मेंसे लौटनेवाली किरणें समानान्तर नही होगी, बल्कि अपसृत या फैली हुई होंगी। और प्रेक्षकके नेत्रमे वे किरणे घुस जायेंगी तब उसे उस प्राणिकी कनीनिका कुछ चमकदार दिखाई देगी। **मसलन**—धवलमनुष्यके—एक शक्स कि जो खिलाफ-इ-तबियत सुफेद हो—नेत्रोमेंसे प्रकाश ज्यादह तादादमें बाहरको फैल जानेसे नज़दीकके प्रेक्षकको उस शक्सकी कनीनिका प्रकाशित मालूम होती है। इसकी वजह यह होती है, कि इन लोगोके नेत्रोके कृष्णमंडलमें रंजित द्रव्योका प्रमाण कम होनेसे उनके नेत्रोमें चारों ओरसे, यानी सिर्फ कनीनिकामेसे नही, बल्कि उनकी तारकामेसे और शुक्लपटलमेसे भी प्रकाश ज्यादह अनियमित प्रमाणमें घुस जाता है। और उसी तरह बाहर आकर नज़दीकके प्रेक्षकोके नेत्रोमे घुस जाता है। और इसी वजहसे प्रेक्षकोको उस शक्सकी कनीनिका प्रकाशित या चमकदार मालूम होती है।

(२) यदि नेत्रोमेंसे बाहर लौटनेवाली किरणोका प्रमाण ज्यादह हो और प्रेक्षक प्रकाशके प्रत्यक्ष उगमस्थानके मार्गमे हो, तो उस प्राणिकी कनीनिका चमकदार मालूम होती है। **मसलन:**—कई प्राणियोके नेत्रमें **टापिटम** नामका एक परदा होता है, जिसका कार्य दर्पणके जैसा होनेसे इसपर गिरी हुई किरणे पूर्ण तया प्रवृत्त होती हैं। और यदि प्रेक्षक इन किरणोके मार्गमे हो, तो उसको इस प्राणिकी कनीनिका चमकदार जैसी मालूम होती है। रातके समय मोटरमें प्रवास करनेवाले लोगोका तजरबा होगा, कि सामनेसे एकाद बैलगाडी आती हो, तो बैलोके नेत्रोपर मोटरकी बत्तियोंका प्रकाश गिरनेसे उनके नेत्र चमकदार दिखाई पड़ते हैं। कई सदियोतक लोग मानते थे कि नेत्रगोलकके भीतर प्रकाशकी किरणे पैदा होकर वे बाहर गिरनेसे वह दृश्य दिखाई पड़ता है। लेकिन सबसे पहले **प्रेव्हास्ट**ने (१८१०) आविश्कार किया था कि ये नेत्र अंधेरेमें प्रकाशित नही दिखाई देते बल्कि उनपर आघात किरणे गिरकर जब उनका परिवर्तन होता है तब। इसी सालमें म्युनिकके बाशिन्दे **श्रुईट थुईसेन**ने पहले पहल बतलाया कि इस दृश्यका कारण इन प्राणियोके नेत्रमेंका टापिटम परदाही होता है।

मनुष्यके नेत्रमें भी इसी तरहका दृश्य दिखाई देता है, जबकी नेत्रका दृष्टिपटल अर्बूद की वजहसे सामनेकी ओरको ढकेला जाता है। इस अवस्थाको **बिडालाक्षमणि** (क्याटस आय) इस नामसे पहचाना जाता था।

(३) तीसरी अवस्थामें प्रेक्षकका नेत्र और प्रकाशका उगम स्थान एकही जगहमें हो, तो सामने के मनुष्यकी कनीनिका प्रेक्षकको चमकदार मालूम होती है। यह तीसरी अवस्था अति महत्वकी बात है, क्यों कि इसका मनुष्यके नेत्रकी परिक्षामें इस्तेमाल कर सकते है। यदि परीक्षक अपने नेत्रको प्रकाशके उगमस्थानकी रेपामे रखे तो उसको सामनेके शक्सकी कनीनिका चमकदार दिखाई देती है। यह शोध सबसे पहले **कुमिंग**ने १८४६ सालमें किया। प्रेक्षकका नेत्र और प्रकाशका उगमस्थान एक रेषामे लानेके लिये सन १८४७ मे **चार्लेस बाबेज**ने एक तरकीब निकाली। उन्होने अपने नेत्रके सामने ऐसा एक दर्पण रखा, कि जिसके केन्द्रमें छोटासा छेद बनाया था। इस छेदके पीछे नेत्रको आसानीसे रखनेकी इस-तरहकी तजबीज की गई थी, कि दर्पण परसे प्रकाशकी किरणें परावृत्त होकर सामनेके शक्सके नेत्रमें जावे, और वहांसे वापिस आनेवाली किरणे दर्पण पर आकर मिल जावे। इस तरह जब वापिस आयी हुई किरणोंमेंसे कुछ किरणे दर्पणके छेदमेसे पीछेके परीक्षकके नेत्रमे जाती है तब सामनेके शक्सकी कनीनिका उसको प्रकाशित मालूम होती है।

यदि नेत्र नैसर्गिक हो, तो नेत्रके भीतरकी प्रकाशकी किरणोंको बाहर आतेही राहमें रोक कर इस तरह पकडनेसे, उस नेत्रकी कनीनिका लाल दिखाई देती है। इसीको **नेत्रतलकी प्रतिक्रिया** कहते है। नेत्रमे जानेवाली और उसमेंसे वापिस आनेवाली किरणोका रास्ता मुकर्रर करके और शीशेका इस्तेमाल करके उनमें इस तरहका फर्क करना संभाव्य होता है, कि जिसकी वजहसे देखे हुएँ दृष्टिपटलकी प्रतिमा परीक्षकके दृष्टिपटल पर साफ गिरे। इस प्रणालीका आविष्कारका प्रचार **बाब्रेज** के बाद सबसे पहले, **फान हेल्महोल्टझ**ने किया और नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके शोधका प्रथमश्रेय इन्हीको है। ऐसा माना जा सकता है, कि इसी यंत्रके शोधसे नेत्रविज्ञानशास्त्रकी बहुत कुछ प्रगति हुई।

चित्र नं. ४२

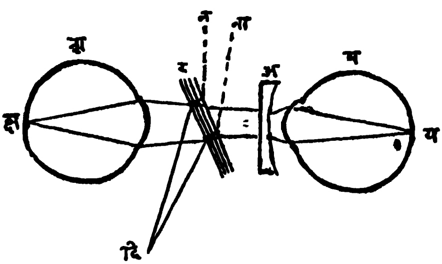

फान हेल्महोल्टझके उक्त सिद्धान्तका स्पष्टीकरण चित्र नं. ४२ से ध्यानमें आ जायेगा। एकपर एक और ५७° अंशपर रची हुई कांचकी रकाबी"**र**"पर "दि" दियेसे प्रकाशकी किरणोंका आघात होता है। इनमेसे बहुतसी किरणे काचकी रकाबीमेसे पार होकर "**न**" "**ना**" दिशामें निकल जाती है। तो भी ज्यादह तादादमे वे परावृत्त होकर "श" शख्सके नेत्रमें घुसकर उसके दृष्टिपटल पर "क्ष" स्थानमे केन्द्रित हो जायेगी। वहांसे वे परावृत्त होकर शख्सके नेत्रमेसे बाहर वापिस आकर फिरसे कांचकी रकाबीमेसे जाकर प्रकाशके उगम स्थानको यानी "दि" दियेको जाकर वहा वे गायब हो जायेंगी। लेकिन इसमेसे ज्यादह तर किरणें परीक्षककी कनीनिकामेंसे नेत्रमें जायेगी; शक्सके नेत्रमेसे परावृत्त होनेवाली किरणें उस नेत्रके वक्रीभवन मार्गके अनुसार केन्द्रगामी—मायल—या मरकज़ होती है। लेकिन परीक्षकके सामने काफी फासलेपर परावृत्त किरणोंके बीचमें नतोदर. "अ" शिशेको पकड रखनेसे उन

किरणोंका मुनासिब रीतिसे फैलाव हो कर वे परीक्षक के नेत्रमें जायेंगी। और यदि परीक्षक अपनी दृक्संधानशक्तिका इस्तेमाल करे तो वे उसके दृष्टिपटल के "य" स्थानपर केन्द्रीभूत होंगी। यानी "क्ष" की प्रतिमा "य" स्थानपर बन जायेगी। **नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षा करनेका यही मूल तत्व** है।

सन १८५२ मे **हेल्महोल्टझ** की इस तरकीबमे गाटिनजेनवासी **रुयटने** कुछ सुधार किया। उन्होने काच की रकाबीयोके बदले **बाब्रेज** की अन्तर्वृत्त दर्पणकी तरकीब का, कि जिसके केन्द्रमे एक छेद होता है, इस्तेमाल किया; और उन्नतोदर शीशेका इस्तेमाल करके दृष्टिपटलसे वापिस आनेवाली किरणोंकी उलटी प्रतिमा प्रेक्षकके नेत्र और दर्पणके दरमियानमें केन्द्रिभूत करनेकी कोशिश की। इस उलटी प्रतिमापर परीक्षक को दर्पण के छेदके पीछेके अपने नेत्रसे ठीक नज़र जमाना यानी वस्तुको प्रत्यक्ष नही बल्कि अप्रत्यक्ष रीतिसे देखना संभाव्य होता है। **नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे अप्रत्यक्ष परीक्षा करनेकी कल्पनाका यही मूल है।**

इसके पश्चाद इसमे कई सुधार हुए। इनमे महत्व के सुधार दो हैः—**(१) प्रदीपन पद्धति (२) अवलोकन पद्धति**। इन दोनोंको अलग अलग करनेकी ऐसी तरकीबे निकाली गयी, कि नेत्रतल को प्रकाशित करनेके लिये तारकापिधान और स्फटिकमणिमे से अन्दर जानेवाली किरणे कनीनिकाके एक भागमेसे जावे और दूसरे भागमेंसे वापिस आनेवाली किरणोको रास्ता मिल जाये। इससे परावृत्त किरणोसे पैदा होनेवाला खतरा निकल गया। अब नेत्रतलके प्रदीपनमे दिखाई देनेवाले दृक्शास्त्रीय ततोका विचार करेंगे।

(१) प्रदीपन पद्धति

प्रकाशित क्षेत्रः—

देखे हुए नेत्रतलके प्रकाशित क्षेत्रमे नीचेकी बातोसे फर्क हो सकता हैः (१) इस्तेमाल किये हुए दर्पण की किस्म, (२) प्रकाशके उगम की तीव्रता, (३) प्रकाशके उगमका दर्पणसे अन्तर, (४) नेत्रगोलककी वक्रीभवन की अवस्था।

(१) इस्तेमाल किये हुए दर्पण की किस्मः

(अ) सादे दर्पणका इस्तेमाल—इससे नेत्रगोलककी चाक्षुप अवस्थाका ज्ञान नीचेके चित्रसे ध्यानमे आ जायेगाः "दि" प्रकाशका उगम स्थान है। जब "दि"से यानी असली उगम स्थानसे निकली हुई किरणे सादे दर्पणसे परावृत्त होती है तब वे इस तरहसे फैल जायेंगी, कि वे "दी" स्थानसे यानी इन किरणोकी प्रतिमामे निकलती हैं एसा मालूम होगाः और वैसी ही नेत्रमे घुस जायेंगी। यदि "दि" का स्थान आनन्त्य यानी अपरिमित स्थान पर हो, तो प्रकाशकिरणें समानान्तर जेसी निकलेगी और

चित्र नं. ४३

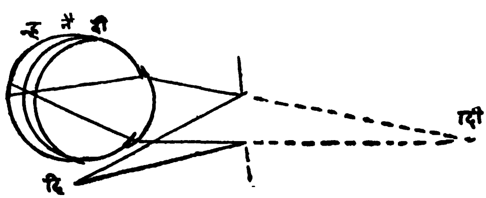

प्रत्यक्ष परीक्षा में सादे दर्पणसे प्रकाशित होनेवाला नेत्रतलका क्षेत्र

नैर्सगिक नेत्रगोलकके दृष्टिपटल पर एक बिंदू पर केन्द्रित होंगी। यदि "दि" "दी" का स्थान नज़दीक हो, तो उसकी किरणें फैलनेवाली होनेसे वे ऱ्हस्व दृष्टिवाले नेत्रगोलकके दृष्टिपटल-पर अ स्थान पर केन्द्रित हो सकति है। इससे कल्पना कर सकते है कि सादे दर्पणसे दृष्टि-पटलका प्रकाशित क्षेत्र ऱ्हस्व–निकट दृष्टिके नेत्रगोलकमें सबसे छोटा, दीर्घ दृष्टिके–दूरदृष्टिके –नेत्रगोलकमे सबसे बड़ा और नैर्सगिक नेत्रगोलकमे दरमियानका होता है। इसके अलावा दियेको नेत्रसे दूर हटाया जाय तो किरणे कमति अपसृत होकर समानान्तर जैसी होने लगति है, जिससे दीर्घ दृष्टिके नेत्रगोलकमे प्रकाशित क्षेत्र कमती हो जाता है, ऱ्हस्व दृष्टिमे बढ़ता जाता है और नैर्सगिक नेत्रमें प्राय बिन्दूके आकारका होता है। इस आखिरकी अवस्थामें प्रकाशित क्षेत्रका आकार प्रकाश जिस छिद्रमेसे अन्दर घूमता है उसके यानी कनीनिकाके आकारपर अवलम्बित नहीं, बल्कि स्वतंत्र रहता है। लेकिन जब प्रकाशका क्षेत्र फैलनेवाली किरणोके क्षेत्रसे बनता है, तब उसका आकार कनीनिकाके आकार पर अवलम्बित रहता है।

(ब) जब अन्तर्वृत्त दर्पणका इस्तेमाल किया जाता है, तब प्रकाशित क्षेत्रका विस्तार प्रकाशके उगम स्थानसे दर्पणके अन्तरके प्रमाणसे बदलता जाता है। जब दिया दर्पणके असली केन्द्रकी लम्बाई पर होता है, तब परावृत्त किरणें समानान्तर जैसी होकर नैर्सगिक नेत्र-गोलकके दृष्टिपटलपर ठीक बिन्दूमें केन्द्रित होंगी। यानी मूल प्रकाश बिन्दूके आकारका हो तो प्रकाशित क्षेत्र नैर्सगिक नेत्रमें बिन्दूके आकारका ऱ्हस्व और दीर्घ दृष्टिमे विस्तृत मंडलके आकारका होगा। यदि दिया दर्पणके नाभ्यन्तरसे नज़दीक हो, तो परावृत्त किरणे फैलनेवाली होंगी, और इसका परिणाम सादे दर्पणके ही जैसा यानी प्रकाशित क्षेत्र ऱ्हस्वदृष्टिवाले नेत्रगोलकमें सबसे छोटा, दीर्घ दृष्टिवाले नेत्रगोलकमें सबसे बड़ा होगा। यदि दिया दर्पणके नाभ्यन्तरसे ज्यादह दूरिपर हो, तो परावृत्त किरणें केन्द्रगामी होनेसे नेत्रके वक्रीभवन मार्गकी वजहसे स्फटिक द्रवपिंडमें केन्द्रीभूत होजायेगी, और दृष्टिपटलपर उनकी विस्तृत मंडले बन जायेगी (चि.नं. ४४ देखिये)। इस हालतमें प्रकाशित क्षेत्र ऱ्हस्व दृष्टिमें सबसे बड़ा, और दीर्घ दृष्टिमे सबसे छोटा होगा। यदि दियाको दर्पणसे इतना दूर रखा जाय कि परावृत्त किरणे नेत्रगोलक और दर्पणके बीच केन्द्रीभूत हो जायें, और इस केन्द्रसे नेत्रमें घुस जानेवाली किरणें फैलनेवाली–केन्द्र-त्यागी हो जायेगी तब उनका परिणाय सादे दर्पण जैसा ही होगा। इस चित्रमें किरणोंका जो मार्ग बतलाया है, वह नेत्राम्तरंग दर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतीमें पाया जाता है।

चित्र नं. ४४

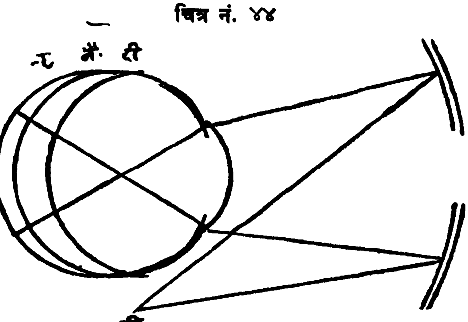

प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें अन्तर्वृत्त दर्पणसे प्रकाशित होनेवाला क्षेत्र

अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतीमें नेत्रगोलक और दर्पणके बीचमें युगलोन्नतोदर शीशेका इस्तेमाल किया जाता है, जिसकी वजहसे नेत्रमें घूसनेवाली किरणे केन्द्रगामी होनेसे नेत्रतलका प्रकाशित हुआ क्षेत्र दीर्घ दृष्टिमें सबसे छोटा, न्हस्व दृष्टिमे सयसे बड़ा और नैसर्गिक नेत्रगोलकमें दरमियानका होता है।

प्रकाशकी तीव्रता

दृष्टिपटल जब प्रकाशित होता है तब उस प्रकाशका प्रमाण पहले दियेके प्रकाशकी तीव्रता और जिस किस्मके दर्पणका इस्तेमाल किया जाता है उसपर, और दूसरी तौरसे कनीनिकाके आकारपर, या कनीनिकाके जितने भागमेंसे प्रकाशकिरणें अन्दर घुस जाती हैं उसपर अवलम्बित रहता है। जबतक ये बातें कायम स्वरूप की होती हैं तब तक नेत्रतलपर गिरनेवाले प्रकाशकी तीव्रता उन्ही बातोंपर अवलम्बित होती है

चित्र नं. ४५

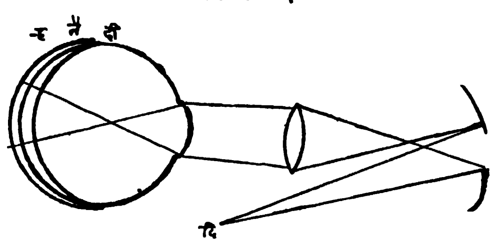

अप्रत्यक्षकी परीक्षाकी पद्धतिमे दिखाई देनेवाला प्रकाशित क्षेत्र

जिनपर प्रकाशित क्षेत्रका आकार अवलम्बित होता है। क्योंकि नेत्रमें घूसनेवाले प्रकाशके काटे हुए किसी भी भागके नेत्रच्छदके प्रकाशका प्रमाण हमेशाह कायम होता है। जिससे यह ख्यालमें आ जायेगा कि काटका आकार जितना बडा होगा उसी प्रमाणमें उस जगह पर प्रकाशकी सख्ती कम होती जायेगी। जब समानान्तर किरणें नैसर्गिक नेत्रमे घूसती हैं तब वे दृष्टिपटल पर ठीक तरहसे बारीक बिन्दूमे केन्द्रित होती है और कुल प्रकाश इस जगह पर जम जाता है। प्रकाशके आकारसे दृष्टिपटल पर उसका केन्द्रीभूत आकार छोटा होता है। यानी सब मिसालोंमे कोई आदमी प्रकाशके उगम स्थानपर अपनी दृक्सधान शक्तिका इस्तेमाल कर सकता है और उस प्रकाशकी प्रतिमा दृष्टिपटल पर स्पष्ट गिरती है तब किसी भी किस्म के दर्पणका इस्तेमाल—सादा, अन्तर्वृत्त या बहिर्वृत्त—किया जाय प्रकाशकी तीव्रता कायम सरीखी होती है।

जब दृष्टिपटल पर प्रकाशकी विस्तृत मंडले बनती है तब प्रकाशकी तीव्रतामें फर्क होता है। समानान्तर किरणे जब न्हस्वदृष्टि या दीर्घदृष्टिनेत्रमें जाती हैं तब, ध्यानमें रखना चाहिये, कि ठीक केन्द्रीभूत प्रकाशका प्रमाण उसके विस्तृत क्षेत्रमे समान होते हुए ही उस प्रकाशकी तीव्रता नैसर्गिक नेत्रमेकी तीव्रतासे कमति होती है। नेत्रतलकी **प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें** जब **सादे दर्पण**का इस्तेमाल किया जाता है और जब नेत्रमे घूसनेवाली किरणें कुछ फैलनेवाली होतेही कनीनिकामेंसे अन्दर जानेवाला कुल प्रकाश दृष्टिपटल पर केन्द्रीभूत होता है, तब प्रकाशकी तीव्रता न्हस्वदृष्टिके नेत्रगोलकमे दीर्घदृष्टिके नेत्रगोलककी अपेक्षा ज्यादह होती है (चित्र नं. ४३ देखिये)। जब **अन्तर्वृत्त दर्पणका** इस्तेमाल किया जाता है तब दृष्टिपटल पर फैलनेवाली किरणें गिरती हैं और यदि उस प्रकाशित क्षेत्रका आकार बड़ा होता है तो भी

दीर्घदृष्टि नेत्रगोलककी अपेक्षा ऱ्हस्व दृष्टिके नेत्रगोलकमें उसकी तीव्रता कम होती है। यह बात **अप्रत्यक्ष परीक्षाके पद्धतिमें** ज्यादह तौरसे मालूम होती है। (चित्र नं. ४४ देखिये)

प्रकाशके उगमको हिलानेसे प्रकाशित क्षेत्रमें दिखाई देनेवाला चलन

यदि कोई शक्सके नेत्रके सामने एकाद प्रकाशका बारिक बिन्दु रखा जाय तो उसकी किरणे उसकी कनीनिकामेसे अन्दर जाकर इस तरहसे वक्रीभूत हो जायेगी कि वे दृष्टिपटल पर पूरे या कम तौरसे केन्द्रीभूत होंगी और उस नेत्रतलका

चित्र नं. ४६

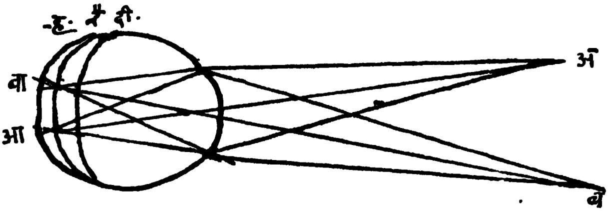

वृत्ताकार प्रकाशित क्षेत्र होगा (चित्र नं. ४६ देखिये) । ऐसा समझिये कि बाहरी प्रकाशके **अ** बिन्दूसे दृष्टिपटलका **आ** भाग, नेत्रकी वक्रीभवनकी अवस्था किसी भी तरह की हो प्रकाशित होगा । यदि **अ** बिन्दूको नीचेकी **ब** जगहको सरकाया जाय तो समझियेकि: प्रकाशित हुए क्षेत्रका केन्द्र, **प्रकाशके बाह्य उगमस्थानसे नेत्र-गोलकके पात बिन्दुमेंसे दृष्टिपटलको जानेवाली रेषापर रहेगा।** और इसी वजहसे **ब** स्थानकी प्रतिमा दृष्टिपटलपर उपरके **बा** स्थानपर गिरेगी । इससे यह स्पष्ट होगा, कि **प्रकाशके उगमस्थानको एक दिशामें सरकानेसे दृष्टिपटलका उससे प्रकाशित हुआ भाग उलटी दिशामें सरक जाता है, नेत्रगोलककी वक्रीभवनकी** अवस्था किसी भी तरहकी हो ।

प्रकाशके उगमस्थानके चलनका स्पष्टीकरण दर्पणके चलनेसे अच्छीतरहसे करना संभाव्य होता है । यदि अन्तर्वृत दर्पण **अ ब** का इस्तेमाल करे तो उसके सामनेके **प्र** प्रकाशकी प्रतिमा **प्रा** दर्नणके सामनेको बनती है । यह (चित्र नं. ४७) से ध्यानमे आजायेगा । यदि दर्पणको **अ ब** स्थानसे **आ बा** दिशाको घुमाया जाय तो **प्र** की प्रतिमा उसी दिशामें यानी **प्रा** से **प्री** को घुम जाती है ।

यदि सादे दर्पण **अ ब** (चित्र नं. ४८) का इस्तेमाल करे तो **प्र** की प्रतिमा दर्पणकी पीछेकी ओरको **प्रा** स्थानपर बनती है ऐसा भासमान होगा । यदि इस दर्पणको **अ. ब.** से **आ.बा.** की दिशामे घुमाया जाय तो प्रतिमा **प्री** स्थानको सरक गयी है यानी दर्पणकी घुमनेको दिशाकी उलटी दिशामें सरक गयी है ऐसा मालूम होगा। इससे यह बात स्पष्ट होती है, कि अन्तरवृत्त दर्पणका ईस्तेमाल करनेसे उससे **दृष्टिपटलका प्रकाशित हुआ भाग, दर्पण जिस दिशामें घुमाया जायेगा उसी दिशामें घुम जायेगा** और सादे दर्पणका ईस्तेमाल करनेसे

दृष्टिपटलका प्रकाशित हुआ भाग दर्पणकी घूमनेकी दिशाकी विरुद्ध दिशामें घुम जायेगा। चित्र नं. ४६ से ध्यानमें आजायेगा, कि चलनके गतिका प्रमाण ऱ्हस्व दृष्टिके नेत्रगोलकमे सबसे ज्यादह और दीर्घदष्टिके नेत्रगोलकमे कमसे कम होता है।

चित्र नं ४७

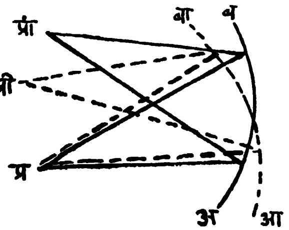

चित्र नं. ४८

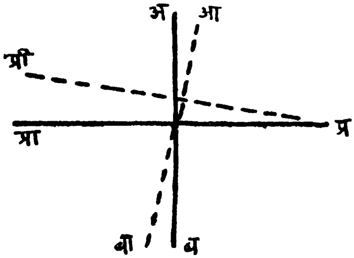

अवलोकनपद्धति–ध्यानकी तद्‌बीर–आबझरवेशन सिस्टम

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रकाशित क्षेत्र :

जब परीक्षक किसी शक्सका नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे प्रकाशित किया हुआ नेत्रतलका क्षेत्र देखता है तब उसको प्रकाशित क्षेत्रकी कुल मर्यादा नहीं दिखाई पड़ति। जितनी किरणे नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दृश्यछिद्रमेसे या परीक्षक की कनीनिकामेसे परीक्षकके नेत्रमें घुस जा सकती है उतनाही रोगीके नेत्रतल का भाग उसको दिखाई पड़ता है। **नेत्रतलके इसी भागको नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रकाशित दृष्टि क्षेत्र कहते हैं।** और इसका निर्णय रोगीके दृष्टिपटलपर परीक्षक की कनीनिका की प्रतिमाके प्रेक्षणसे हो सकता है। इससे यह अनुमान कर सकते हैं, कि जब प्रकाशकिरणे पूरी तौरसे दृष्टिपटलपर केन्द्रीभूत नही होती, तब प्रकाशित नेत्रतल के क्षेत्रकी मर्यादा रोगीकी कनीनिकाके आकार पर अवलाम्बित रहती है। लेकिन नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रकाशित हुए क्षेत्रकी मर्यादा रोगीके कनिनिकाके आकार पर नही बल्कि परीक्षक की कनीनिकाके आकार या नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दृश्यछिद्र, दोनोंमेसे जो छोटा हो उसके आकारपर अवलाम्बित होती है।

प्रकाशित क्षेत्र का विस्तार :

नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षा करनेकी पद्धतिमें जब नेत्रपर गिरनेवाली किरणें फैलनेवाली होती हैं, और जब परीक्षक और रोगीके दरमियानका फासला यदि ज्यादह रखा हो, तो नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके प्रकाशित दृष्टिक्षेत्रका विस्तार कमति होता है। ऐसा समझिये, कि चित्र नं. ४९ में **श** रोगीका नेत्र है, और **प** परीक्षकका नेत्र है जब समानान्तर किरणें **श** में घुसजाती है तब नैसर्गिक नेत्रगोलक **नै** के दृष्टिपटलपर ठीक तरहसे वे केन्द्रीभूत हो जायेंगी और फैलवे वाली किरणें जब नेत्रमें घुस जाती है तब वे इस स्थानके पीछेके बिंदूमें केन्द्रीभूत होंगी। इसी सबबसे परीक्षक की कनीनिका **क ड** की प्रतिमा **का डा** स्थानपर दिखाई पडेगी, और बिलकूल बाहरीकी किरणोसे नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रकाशित दृष्टिक्षेत्रके भागका विस्तार **क्ष य** ऐसा होगा। **क ड** को पदार्थ

और **का डा** उसकी प्रतिमा मान सकते हैं। वक्रीभवनके नियमानुसार, यह बात स्पष्ट है, कि जब परीक्षक और रोगीके नेत्रोंके पुरोकेन्द्र पारस्परीकसे मिल जाते हैं, यानी जब **क ड, श** के पुरोकेन्द्रसे दुगने फासलेपर होता है तब पदार्थ **क ड** और प्रतिमा **का डा** का आकार परस्परीकसे बराबर होगा। यदि परीक्षक का नेत्र इस फासलेसे

चित्र नं. ४९

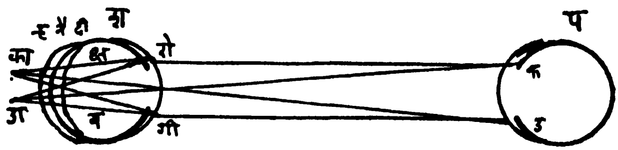

ज्यादह दूरीपर हो, तो **का डा** का आकार कमतर होता जाता है। इससे स्पष्ट होगा, कि **नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके प्रकाशित दृष्टिपटलके क्षेत्रका विस्तार, परीक्षक और रोगीके नेत्रोंमेंका अन्तर** जिस प्रमाणमें बढता जायेगा, उसी प्रमाणमें कमतर होता जायेगा। च्युकि न्हस्व दृष्टिके नेत्रगोलकका दृष्टिपटल दीर्घ दृष्टिके दृष्टिपटलकी अपेक्षा **काडा**से ज्यादह नजदीक होनेसे, **न्हस्व दृष्टिके इस प्रकाशित क्षेत्रका विस्तार सबसे छोटा, दीर्घ दृष्टिका क्षेत्र सबसे बडा और नैसर्गिक दृष्टिके क्षेत्रका विस्तार दरम्यानका होता है।** दोनोंमेंसे कोइभी एककी कनीनिका विस्तृत हो तो इस क्षेत्रका विस्तार बढ जाता है। लेकिन सब अवस्थाओमें **नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रकाशित दृष्टिक्षेत्र दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रसे छोटा होता है।** इसकी बजह यह होती है, कि नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका क्षेत्र परीक्षक की कनीनिकाके आकार पर अवलम्बि रहता है और दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रका विस्तार प्रत्यक्ष प्रकाश देनेवाले पदार्थके आकार पर, जो मामुली तोरसे हमेशाह् बडा होता है, रहता है।

अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें (चित्र नं. ५०) जहां नेत्र पर गिरनेवाली किरणें केन्द्रगामी होती है, और जहां युगलोन्नतोदर शिशेको **शीशा** उसके असली केन्द्रकी लम्बाई पर, रोगीके नेत्रके सामने पकडा जाता है तब इस शीशेकी बजहसे परीक्षककी कनीनिका **कड** की प्रतिमा **काडा** रोगीके कनीनिकाके **इ. फ.** समतल पर प्रक्षेपित हो जायेगी। और रोगीके दृष्टिपटल पर इस प्रतिमाका प्रक्षेपण होनेसे उससे नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके क्षेत्रका विस्तार **क्ष. य.** मर्यादित हो जायेगा। यदि **क. ड.**का शीशेसे अन्तर **का डा** से ज्यादह हो तो **का डा** का आकार **क. ड.** से यानी परीक्षककी कनीनिकासे छोटा होगा। इससे यह बात स्पष्ट होती है, कि **नेत्रान्तरंग यंत्रके इस क्षेत्र पर रोगीके कनीनिका के आकारका कुछ असर नहीं होता** जब रोगीके कनानिकासे शीशेको उसके असली केन्द्रकी लम्बाई नाभ्यन्तर पर पकडा जाता है तब इस क्षेत्रका विस्तार सबसे बडा होता है। यह विस्तार शीशेके आकारके तोरसे और उसके असली नाभ्यन्तरके विपरीत–उलटे प्रमाणमें बढता जाता है। नेत्रकी वक्रीभवनकी अवस्थाका विचार करे तो यह क्षेत्र–**न्हस्व दृष्टिके नेत्रगोलकमें सबसे बडा, दीर्घ दृष्टित्वमें सबसे छोटा** और **नैसर्गिक नेत्रगोलकमें दरमियानका**

होता है। सादे दर्पणका इस्तेमाल करनेसे प्रकाशित क्षेत्रका विस्तार तो **बढ** जाता हैं लेकिन प्रकाशन कमति होता है। इस अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमे परीक्षककी कनीनिकाकी प्रतिमाका

चित्र नं. ५०

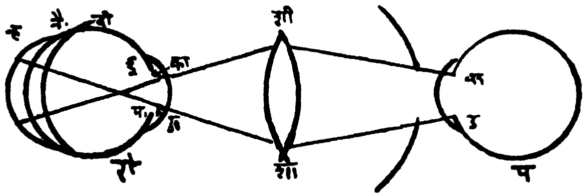

स्थान रोगोकी कनीनिकाके समतल और प्रत्यक्ष दियाकी प्रतिमा स्फटिक द्रवपिंडमे होती हैं (चित्र नं. ४५ देखिये) । च्युकि दृष्टिपटलके समतल पर फैलनेवाले किरणोका विस्तार ऱ्हस्व दृष्टिम दीर्घ दृष्टिकी अपेक्षा ज्यादह होनेसे यह स्पष्ट होता है कि **नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रकाशितक्षेत्र प्रकाशनक्षेत्रकी अपेक्षा बडा होता है।**

प्रकाशित क्षेत्र की चमक

प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमे नैसर्गिक नेत्रगोलकका दृष्टिपटल जब प्रकाशित होता हैं, तब उसके **क्ष** बिदू परसे निकलनेवाले किरणोमे **का. डा** प्रतिमाके सवबिन्दूओके किरणोका समावेश होगा और उन्होसे परीक्षककी कनीनिका **क. ड.** पूरी तौरसे भर जायेगी (चित्र नं. ४९ देखिये) । इसी तौरसे दीर्घदृष्टि नेत्रगोलकमे **क्ष. य.** मे के सब बिदुओंके किरणोंसे परीक्षककी कनीनिका **क ड** भरी हुई मालूम होगी। लेकिन ऱ्हस्व दृष्टि नेत्रगोलकमे उसके दृष्टिपटलके **क्षा या** से परीक्षक की कनीनिका **क. ड.** भर जायेगी ऐसी किरणें नही निकलती। इस से यह स्पष्ट होगा, कि दीर्घदृष्टिमे दृष्टिपटलका प्रकाशित भाग यानी प्रतिमा सबसे ज्यादह चमकदार, नैसर्गिक दृष्टिमे उससे कम चमकदार और ऱ्हस्वदृष्टिमे सबसे कम चमकदार मालूम होगी। और ध्यानमे रखिये, कि यह चमकी दोनोकी कनीनिकाके आकारपर और उन दोनोके पारस्परिकके अन्तरपर अवलम्बित रहति हैं ।

इसके अलावा अप्रत्यक्षपरीक्षाकी पद्धतिमे **क्षा. या.** मेके हरएक बिंदूसे निकलनेवाले किरणोसे भर जायेगी, लेकिन **क्ष. या.** और **क्षा. य.** भागोंके कोईभी बिन्दूओसे नही भर जायेगी । नेत्रान्तरंगदर्शक यत्रके प्रकाशित क्षेत्रकी चमक असम जैसी दिखाई पडेगी, क्योकी इसका परिधिका भाग मध्य भागकी अपेक्षा कम चमकदार होता है, लेकिन इस मध्य भागके क्षेत्रमें ज्यादहसे ज्यादह चमकी होती हैं।

प्रकाशित क्षेत्रके चलनके साथ नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रके क्षेत्र का चलन चलन की दिशाः—

चलन की दिशाः—नेत्रान्तरंगदर्शक यत्रके क्षेत्रके चलनकी दिशामे रोगीके नेत्रकी वक्रीभवनकी अवस्था और रोगीसे परीक्षकके स्थानके अनुसार फर्क होता जाता है ।

(अ) ऐसा समझिये कि **नैसर्गिक नेत्रगोलक** के दृष्टिपटलके क्ष बिन्दूसे किरणें समानान्तर जैसी निकलती हैं, तब परीक्षक उनको दूरबिन्दूसे निकलती हैं ऐसा मानेगा यानी **अ** दिशासे वे आती हैं ऐसा मानेगा। यदि **क्ष** को **क्षा** की दिशाको हटाया जाय तो परीक्षक वे किरणे **आ** की दिशासे आती है ऐसा मानेगा चित्र नं. ५१। यानी

चित्र नं. ५१

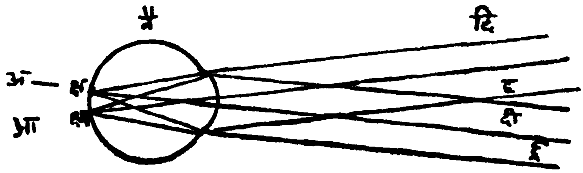

नैसर्गिक नेत्रगोलकके दृष्टिपटलका प्रकाशित क्षेत्रका जाहिर चलन प्रकाशके प्रत्यक्ष चलनके दिशामें ही दिखाई देगा।

(ब) दीर्घदृष्टिवाले नेत्रगोलकमें भी **नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रकाशित क्षेत्र दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रकी** दिशामे चलेगा। ऐसा समझिये कि इस दृष्टिपटलके **क्ष**

चित्र नं. ५२

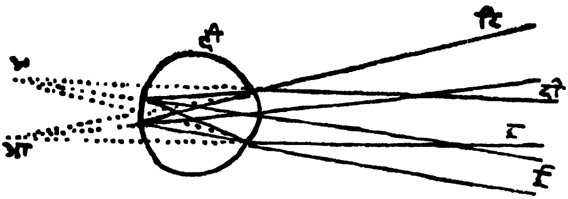

बिन्दूसे **दी ई** किरणे फैलनेवाली जैसी बाहर आती हैं चित्र नं ५२। इनको परीक्षक इस नेत्रगोलकके दूर बिन्दुसे यानी **अ** से आती हैं ऐसा मानेगा। अब **क्ष** बिन्दूको **क्षा** की जगह सरकाया जाय तो उसकी किरणे उसके दूरबिन्दूसें यानी **आ** दिशासे आती हैं ऐसा मानेगा। **नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके प्रकाशित क्षेत्रका चलन प्रत्यक्ष प्रकाशित** क्षेत्रके चलनकेही दिशामे होता है, यह बात ध्यानमें आ जायगी।

(क) ऱ्हस्व दृष्टिवाले नेत्रगोलके दृष्टिपटलके **क्ष** बिन्दूसे निकलनेवाली किरणें केन्द्र-गामी होती है; और वे उस नेत्रके दूरबिन्दूपर, जो उसके सामने होता है और जो नेत्र और आनन्त्य बिन्दू इन दोनोंके दरमियान होता है, ठीक केन्द्रीभूत होंगी। ध्यानमें रखिये, कि **प्रकाशित क्षेत्र यानी प्रतिमा का जाहिर चलन इस दूरबिन्दूसे परीक्षकके संबंध स्थानके सापेक्ष के अनुसार होगा।** महाबली ऱ्हस्व-दृष्टिमें उसका दूरबिन्दू इस नेत्र और परीक्षक, जो **ओ** स्थानपर है ऐसा माने, इनके दरमियान रहेगा। परीक्षकको इस नेत्रके दृष्टिपटलके **क्ष** बिन्दूकी प्रतिमा

अ स्थानपर, और क्षा की प्रतिमा आ स्थानपर दिखाई पडेगी। इससे स्पष्ट होगा कि। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके क्षेत्रका चलन प्रकाशित क्षेत्रके चलनकी विरुद्ध दिशामे दिखाई पडेगा। यदि ऱ्हस्व दृष्टि कम बलकी हो तो उसके दूरबिन्दुका स्थान परीक्षक, जो अ ब औ स्थानपर है

चित्र नं. ५३

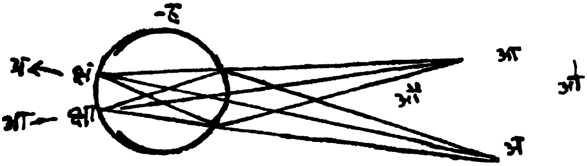

ऐसा माने तो, उसके पीछेकी ओर को होगा। और उसका प्रक्षेपण अ. आ. दिशामे यानी दिस दिशामें नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्र के क्षेत्र का चलन होगा। उसी दिशामे होगा इससे कल्पना कर सकते है, कि जब परीक्षक का स्थान दूरबिन्दूके स्थान पर ही होता है तब प्रकाशित क्षेत्रमें कुछ चलन नही मालूम होता। इसके एक ओरको भ्रामक और अप्रतीम प्रतिमा (व्हरच्युअल या इरेक्ट इमेज) मालूम होती हे जिसका चलन दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रके चलन की दिशामे होता है; और दूसरी ओरको साची और प्रतीय प्रतिमा (रीयल इनव्हर्टेडइमेज) दिखाई देती है, जिसका चलन विरुद्ध दिशामे होता है। लेकिन इस स्थानपर, जिसको विपर्यास स्थान –उलटाना का स्थान–(रिव्हरसल पॉईन्ट) कहते है, कनीनिका पूर्णतया काली या अप्रकाशित प्रशितत जैसी दिखाई देती है

चलन का अन्दाज:—च्यूकि हर मिसालों मे प्रकाशित क्षेत्रके चलनको नेत्रके दूर बिन्दूसे रुजुकरके जान सकते है इस समतल के संबंधमे उसका जाहिर अलग होने पर उसके असल मजमून का तर्क कर सकते हे। इससे कल्पना कर सकते है, कि ऱ्हस्व दृष्टि या दीर्घ दृष्टि का बल ज्यादह बढ़कर हो, तो, दूरबिन्दू जितना जितना नजदीक होगा उसी प्रमाणमे असल मजमून कम होगा और चलन की गतिका प्रमाण धीरे धीरे होता है ऐसा मालूम होगा।

नेत्रतल प्रतिछाया गतिका निरीक्षण–अक्षिपरीक्षा–रेटिनास्कोपी–स्काया‍ॅस्कोपी

तवारिखी खबर—दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रका स्पष्ट चलन नेत्र गोलककी वक्रीभवनकी अवस्थापर अवलम्बित होता हे इस ज्ञानका इस्तेमाल, वक्रीभवनकी इन्द्रियगम्य कसौटीका मूल माना गया है। इस तरीका या पद्धतिका इस्तेमाल सबसे पहले **बोमनने** (ई. १८५९) कोणाकृति तारकापिधानकी निर्बिन्दुता (अस्टगभ्याटिझम) जाचनेके लिये किया था। इसका इस्तेमाल **कुइगने** ज्यादह तायदादमे किया, और यह दृश्य तारकापिधानकी वजहसे दिखाई देता है इस कल्पनाका प्रसार किया; और इस तरीकेको **किराटोस्कोपी** ऐसा नाम दिया (१८७३)। लेकिन **लॅन्डोने** (१८७८: पहले पहल बताया कि, तारकापिधानका इसमें कुछ तालुक है, यह कल्पना गलतकी बात है औरे ईस दृक्प्रत्यक्षकी वजह साची चाक्षुप तते होती हैं। और इसी वजहसे ईस तरीकेको **रेटिनास्कोपी** कहने लगें। च्यूकि नेत्रतलके प्रकाशित क्षेत्रकी अलावा छायाकी साफ

किनारकी तरफ ध्यान जाना ज्यादह संभाव्य होता है इसी वजहसे इस तरीकेको **स्काया-स्कोपी** भी कहते हैं। लेकिन यह दृक्प्रत्यक्ष न तारकापिधान या न दृष्टिपटलपर अवलम्बित होता है, और न सिर्फ छायासे इसका कुछ ताल्लुक है। किन्तु कुल प्रकाशित क्षेत्रसे संबंध होनेसे ये सब अलफाज गलत होते हैं। इस दृश्यका संबंध कनीनिकाके पृष्टके बराबर जुडा होता है। **लँडोनें** इस तरीकेको कोरेस्कोपी कहा है वह शायद ठीक होगा। यह तरीका पहले पहल जैसा शुरू किया उसमें कुछ फर्क नहीं हुए। इसी तरीकेमें नेत्रगोलकमें सादे या अन्तर्वृत्त दर्पणसे प्रकाश डाला जाता है। और दर्पणके केन्द्रभागमेंके छेदमेंसे नेत्रतलको देखा जाता है। इसके बाद ध्यानमें रखने लायक जो कुछ नया सुधार इसमें हुआ वह **गुलस्ट्रान्ड**ने किये। इन्होंने वस्तुगत नीरिक्षण आबजेकटिव् अस्टिगम्याटास्कोपी के तरीकेमें पारदर्शक दर्पणका इस्तेमाल किया। **वेरवस्ट**के नेत्रान्तरगरंर्शक यंत्रकी चिराखमें के चीरके बदले वहां एक छेदका इस्तेमाल किया। और प्रकाशकिरणोंको परावृत्त करनेके लिये लम्ब रेषासे ४५° डीग्रीपर कव्हरग्लास बिठाया। यही परावृत्त प्रकाश प्रदीपनका उगमस्थान होता है। और परीक्षक अपने सिरको भिन्न भिन्न दिशामें घुमाकर इस कव्हर

चित्र नं. ५४

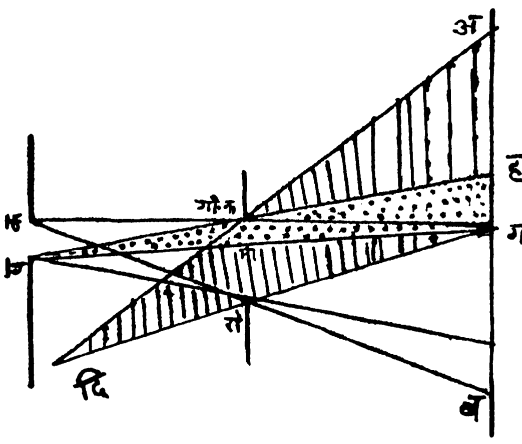

चित्र नं. ५५

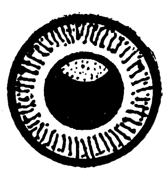

दीर्घ दृष्टिमेंकी नेत्रतल प्रतिछाया

ग्लासमेंसे देखता है। दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रके चलनपरसे वक्रीभवनकी हालतको जांचना संभाव्य होता है। फिर शाही शीशोंको नेत्रके सामने, प्रकाशितक्षेत्रके चलनकी दिशा पलट जानेतक रखते जाते हैं। इस हालतमें रोगीका और परीक्षकका दूरबिन्दू पारस्परीकसे मिलते होते हैं। यदी रोगी और परीक्षकमेका फासला एक मिटरका हो तो रोगीकी वक्रीभवनकी अवस्था–१.० डी बराबर होगी। जांचे हुए शीशोंमें–१.० डी मिलनेसे रोगीके शाही शीशेंका बल मालूम होगा। इसी वजहसे रोगीके वक्रीभवन दोषका बल जांचनेके लिये रोगीके नेत्रके सामने उस बलका शीशा रखा जाता है जिससे उसमें–१.० डी बलकी न्हस्व दृष्टि

पैदा होगी; और इस जांचे हुए शीशेमें–१.० डी मिलानेसे रोगीके खास वक्रीभवन दोषका बल जान सकते हैं।

इस पद्धतिके मामुली प्रयोगका वर्णन अन्य जगह दिया जायेगा। यहां प्रत्यक्ष प्रकाशके उगम स्थानसे दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रका और नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे जांचे हुए दृक्क्षेत्रका चलन इन बातोंपर असर करनेवाली दृक्शास्त्रीय ततोंका सारांश देना मुनासिब होगा। रोगीका दूर बिन्दूका स्थान रोगीके पीछे (दीर्घ दृष्टि), रोगी और परीक्षक इन दोनोंके नेत्रके दरमियान (महाबली ऱ्हस्व दृष्टि), या परीक्षकके पीछे यानी नैसर्गिक या कमबली (ऱ्हस्व दृष्टि) होगा। इससे ध्यानमें आ जायेगा, कि इन तीन बातों पर तीन तरहकी दृक्शास्त्रीय ततोंकी बनावटें हो सकतीं हैं। (चित्र नं. ५४, ५६ और ५८)

दीर्घ दृष्टि :—

चित्र नं. ५४ में **दि** प्रकाशका उगम स्थान है, **प क** परीक्षककी कनीनिका, **रो क** रोगकी कनीनिका और **अब** रोगीके दूरबिन्दूपर निकाला हुआ समतल है। ऐसा समझिये, कि **गी म** रोगीकी कनीनिकामेंसे दियाके प्रकाश क्षेत्रकी इस समतल परकी मर्यादा है। और परीक्षकको दिखाई देनेवाले इस क्षेत्रकी मर्यादा **ह ग** है। च्यूं कि **दि** के प्रकाशकी प्रतिमाका सिर्फ **ह ग** इतनाही हिस्सा, जो चित्रमें बिंद्वांकित बतलाया है, दिखाई पड़ता है, और बानतीजा

चित्र नं. ५६

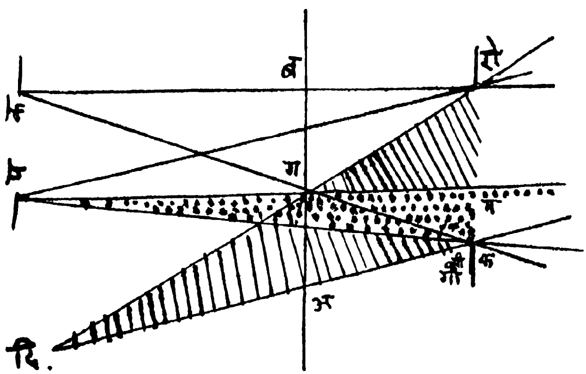

चित्र नं. ५७

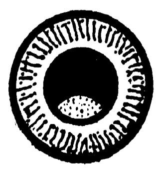

महाबली ऱ्हस्वदृष्टि नेत्रतल प्रति छाया गति निरीक्षण

रोगीकी कनीनिका का **गी म** बिंद्वांकित भाग प्रकाशित होता है, जब चित्र नं. ५५ का दृश्य दिखाई पडेगा। **यदि दि** को उपर उठाया जाय, तो **ग** नीचेकी ओरको सरक जायेगा यानी दृष्टिपटलका प्रकाशित भाग जिस ओरको जाता है उसी ओरको जायेगा और **दि**की चलनकी दिशाके विरुद्ध दिशामें जायेगा। यदि दीर्घ दृष्टिका प्रमाण बढाया जाय, तो **अब** समतल रोगीके कनीनिकाके नजदीक जायेगा, **ह ग** यानी प्रकाशित क्षेत्रका आकार बड़ा होगा जिससे **गी म** यानी रोगीकी कनीनिकामें के प्रकाशित क्षेत्रका आकार भी बडा

हो जायेगा। इस हालतमें प्रकाशके उगम स्थानको हिलानेसे इस प्रकाशित क्षेत्रका चलन कम होगा और उसकी गतिका निर्ख भी कम होगा ।

महाबली ऱ्हस्व दृष्टि

महाबली ऱ्हस्व दृष्टिमे (चित्र न ५६) उसके दूरबिन्दूका स्थान परीक्षक और रोगीके दरमियान **अ ब** समतल पर होगा । इसका सिर्फ **अ ग** हिस्सा **दि** से प्रकाशित होगा। इसमेका सिर्फ बिद्वाकित भाग **गी म** परीक्षकको **प क** मे से दिखाई पडेगा, क्योकि शेष भाग दृक्क्षेत्रकी बाहरकी ओरको होता है । इस परसे स्पष्ट होगा, कि प्रकाशित क्षेत्रका प्रक्षेपन कनीनिकाके **फ म** समतलमे होकर चित्र न ५७ मेका दृश्य दिखाई पडेगा **दि** को उपर उठानेमे प्रकाशित क्षेत्रका चलन उसी दिशामें दिखाई पडेगा ।

नैसर्गिक दृष्टि और कमबलकी ऱ्हस्व दृष्टिः

नैसर्गिक दृष्टि और कमबलकी ऱ्हस्व दृष्टिमें (चित्र न ५८) दूर बिन्दूका स्थान **अ. ब.** समतलपर परीक्षकके पीछे होता है। **दि** दियासे **दिक** और **दिरो** किरणे रोगीके

चित्र न ५८

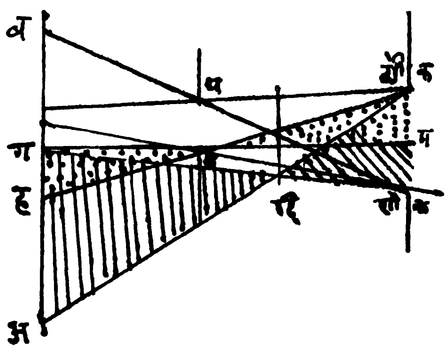

नैसर्गिक और कमबल की ऱ्हस्वदृष्टि का नेत्रतल प्रति छाया गति निरीक्षण

चित्र नं. ५९

नेत्रमे जाती है। उनको पीछेकी ओरको **दिअ, दिग** दिशामे बढानेसे **अब** समतलका **अग** भाग प्रकाशित होगा। च्यू कि **ब ह** रोगीकी कनीनिकाका चाक्षुष क्षेत्र है तो भी उसका **ग ह** बिन्द्वाकित भाग दिखाई पडेगा जो कनीनिकामे **कम** भागसे स्पष्ट होता है और जो चित्र न ५९ मे दिखाई पडेगा। इसकी बनावट दीर्घ दृष्टिके चित्र जैसा होगी यानी प्रकाशित क्षेत्रका दीर्घ दृष्टिके जैसा ही कार्य होगा। इस चित्रसे ध्यानमे आजायेगा, कि यदि परीक्षककी कनीनिकाका समतल रोगीके दूरबिन्दूके समतलसे मिलता हो, तो कनीनिकाका कोई भी भाग प्रकाशित नही होगा और **ब अ, प ड** पारस्परिकसे मिल जायेंगे। यदि **दि** को ऐसी जगह पर रखा जाय, कि **ग, प ड** की बाहरकी ओरको हो जाये, तो उसके कोई भी बिन्दुका प्रक्षेपन चाक्षुष क्षेत्रमे नही होगा और कनीनिका बिलकूल कालीसी दिखाई पडेगी,

और यदि प्रकाशको ऊपर की ओरको थोडा भी सरकाया जाय तो कनीनिका कुल प्रकाशित दिखेगी।

पहलेही कहा गया है कि अन्तर्वृत्त दर्पणका इस्तेमाल करनेसे दर्पणको किसी भी दिशामे घुमाया जाय तो प्रकाशका उगम स्थान दर्पणकी दिशामेही घूम जाता है। इससे यह ध्यानमें आजायेगा, कि **अन्तर्वृत्त दर्पणसे प्रकाशित कनीनिकाका चलन दीर्घदृष्टि, नैसर्गिक दृष्टि और कमबली ऱ्हस्व दृष्टिमें दर्पणके चलनकी विरुद्ध दिशामें होता है** और **महाबली ऱ्हस्व दृष्टिमें दर्पणके चलनकी दिशामें होता है।** इसके विपरीत **सादे दर्पणके** इस्तेमालमे प्रकाशका मान्य उगमस्थान दर्पणके चलनकी विरुद्ध दिशामे होता है। इससे यह बात स्पष्ट होती है, कि **सादे दर्पणसे प्रकाशित कनीनिकाका चलन दीर्घदृष्टि, नैसर्गिक दृष्टि और कमबली ऱ्हस्व दृष्टिमें दर्पणके चलनकी दिशामेंही होता है** और **महाबली ऱ्हस्व दृष्टिमें उसके विरुद्ध दिशामे होता हैं।** वक्रीभवनका दोष ज्यादह तादादका हो, तो प्रकाशित क्षेत्रकी चमक कमती होती है और उसकी गति आहिस्तेसे होती है। निर्बिन्दुतामे प्रकाशित क्षेत्रका कार्य उसके असली अक्षमेके वक्रीभवन दोषके अनुसार होता है।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे नेत्रतलकी प्रत्यक्ष परीक्षा करनेका तरीका-पद्धति की दृक्शास्त्रीय तर्तें।

जब प्रत्यक्ष परीक्षाके तरीकेमे रोगीके नेत्रपर दर्पणसे प्रकाशको एक मिटर फासले परसे डाला जाता है, और परीक्षकका नेत्र प्रकाशके उद्गम स्थानकी रेषामे हो, तो उसको देखे हुए दृष्टिपटलके एक बिन्दुकी ही प्रतिमा दिखाई पडेगी। च्यूकि रोगीकी कनीनिका इस बिन्दुके प्रकाशके कोनसे भरी जानेसे नेत्रतलके अन्य किसी भी भागकी प्रतिमा नही दिखाई देगी, सिर्फ रोगीकी कनीनिका बराबरीसे प्रकाशित मालूम होगी। यह बात चित्र न ६० से ध्यानमे आजायेगी। यदि नेत्रतलके **क्ष** और **य** दो बिन्दुओसे प्रकाशके दो कोन बाहर आते है ऐसा समझें (चित्र न ६१) तो दोनो प्रकाशके कोन फैले हुए ऐसे बाहर आयेंगे और परीक्षक का नेत्र **ओ** स्थानमे हो तो प्रकाशके ये दोनो कोनको एक ही समय परीक्षकके नेत्रमे घुसना सभाव्य नही होगा और उसको साफ प्रतिमा नही दिखाई पडेगी क्योकि उसके नेत्रमे **य** या **क्ष** बिन्दुका ही प्रकाशका कोन जा सकता है। यदि परीक्षक का नेत्र रोगीके नजदीक इतना लाया जाय कि वह दोनों प्रकाश कोनके आम जगह आवे तो फिर उसके नेत्रमे दोनो प्रकाश कोन घुस जाना संभाव्य होगा। और जितने नजदीक ये दोनो नेत्र आ जावे उतने प्रमाणमे बिन्दुओकी प्रतिमाएँ ज्यादह बडी दिखाई पडेगी,।

चित्र नं. ६०

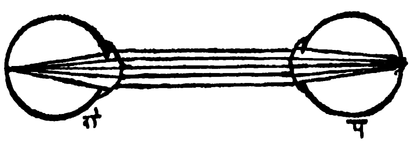

लेकिन वक्रीभवनके दोषका प्रमाण ज्यादह हो तो बात अलग होगी। दीर्घदृष्टि नेत्र-गोलकमे **क्ष, य** बिन्दूओके प्रकाशके कोन **क्षा या** से निकलते हे ऐसा मालूम होगा।

और वे फैले हुए ऐसे बाहर जानेसे उसमेसे कुछ किरणे परीक्षकके नेत्रमे एक साथ घुस जायेगी और परीक्षकको उस नेत्रतलकी सीदी, सरळ भ्रामक प्रतिमा दिखाई पडेगी (चित्र न. ६२)। यदि परीक्षक अपने सिर को दाहिने ओरको सरकाये तो उसके नेत्रमें रोगीके

चित्र नं. ६१

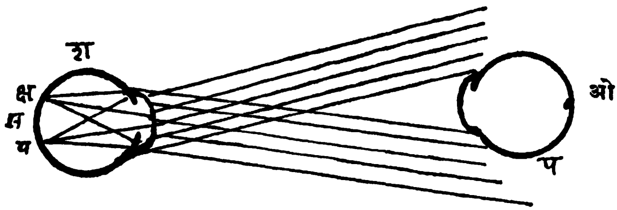

नेत्रतलके दाहिने ओरकी किरणे ज्यादह और बाये ओरकी कमती घुसेगी। लेकिन परीक्षक नेत्रतलके प्रकाशित क्षेत्रके इस चलनको स्थिर कनीनिकाके समतलमे रुजू करता है। और इसी वजहसे वह अपनी मानसिक क्रियासे इस नेत्रतलकी प्रतिमाका चलन अपने चलनकी दिशामें हुआ ऐसा मानता है।

इसी तौरसे न्हस्व दृष्टि नेत्रगोलक मे मे केन्द्रगामी किरणे बाहर आकर उनकी उस नेत्रके सामने साची उलटी प्रतिमा बनती है (चित्र न ६३)। लेकिन फिरसे यहासे वे किरणे फैली हुई ऐसी आगे जाती है। और जब उनमेकी कुछ एक समय परीक्षक के नेत्रमे घुस

चित्र नं. ६२

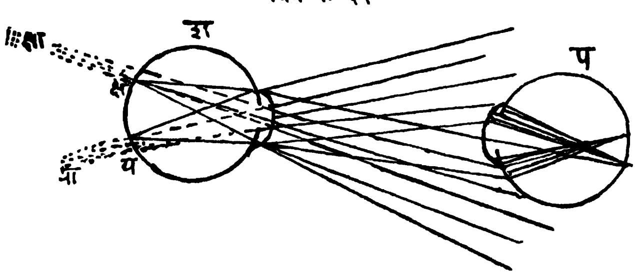

जाती है, तब परीक्षक को नेत्रतलकी छोटी उलटी प्रतिभा दिखाई पडती है। च्यूकि प्रतिमा उलटी होनेसे, परीक्षक यदि अपनी दाहिनी ओरको सरक जाय तो उसको प्रकाशित हुई बायी ओर ज्यादह और दाहिनी ओर कम दिखाई पडेगी। यानी प्रतिमा परीक्षककी विरुद्ध दिशामे सरकगयी है ऐसा भास होगा। लेकिन परीक्षक रोगीके नेत्रके बिलकूल नजदीक अपने नेत्रको लाये, और न्हस्वदृष्टिका बल ज्यादह हो, तो रोगीका दूरबिन्दु, परीक्षकके नेत्रके सामने इतना नजदीक आ जायेगा, कि परीक्षकको उसको अपनी दृक्सधान शक्तिके इस्तेमालसे देखना संभाव्य नही होगा। ऐसी हालतमे प्रतिमा अस्पष्ट दिखेगी।

इससे यह माना जा सकता है कि प्रत्यक्ष परीक्षाके तरीकेमें जब सिर्फ दर्पणकाही इस्तेमाल किया जाता है, और परीक्षकका नेत्र रोगीके नेत्रसे कुछ अन्तर पर हो, और

चित्र नं. ६३

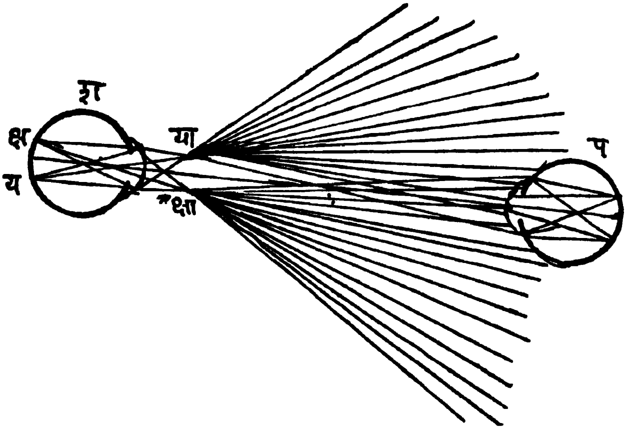

वक्रीभवनका दोष महाबल का न हो, तो सिर्फ नेत्रतलका प्रकाशित क्षेत्र दिखाई पडता है। उसकी स्पष्ट प्रतिमा नही दिखाई देती। इसी तत्वका अवलम्ब, नेत्रतलकी प्रतिछायाकी गतिके नीरीक्षणसे वक्रीभवनका दोप जांचनेमे किया जाता है। वक्रीभवनका दोष महाबलका हो तो दीर्घदृष्टित्वके दोषमें प्रतिमा सीधी और भ्रामक, और न्हस्व दृष्टिके दोषमे प्रतिमा उलटी और सच्ची दिखाई देती है।

यदि परीक्षक अपने नेत्रको रोगीके नेत्रके बिलकुल नज़दीक लाये तो नेत्रतलकी प्रतिमा, महाबली-न्हस्वदृष्टित्वके सिवा अन्य अवस्थाओमे, दिखाई पड़ती है। इसी ततका अवलम्ब नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमे किया जाता है।

प्रतिमाका बनना

(अ) रोगीका नेत्र नैसर्गिक हो, तो उसमेंसे बाहर आनेवाली किरणे समानान्तर होती है; और इस नेत्रतलके किसी भी स्थानकी प्रतिमा आनन्त्य--बेहद--स्थानपर बनेगी। इसकी वजह यह होती है, कि नेत्रतलपरसे दृगाक्षको समानान्तर जैसी किरणे नेत्रके सामनेके असली केन्द्रमेंसे जाती है, और नेत्रके पातबिन्दुमेसे (नोडल पॉइन्ट) जानेवाली किरणे जिनका वक्रीभवन नही होता, सीधी जाकर पहलेकी किरणोको आनन्त्य स्थानपर मिलती है जहाँ नेत्रतलकी सीधी, बडी और भ्रामक जैसी प्रतिमा तैयार होती है। और यही प्रतिमा परीक्षकको दिखाई पडेगी। यदि परीक्षक रोगीके सामने ऐसे फासले पर होवे कि रोगीके और परीक्षकके नेत्रोके सामनेके असली केन्द्र और दोनोके दृगाक्ष पारस्परीकसे मिलते हो और परीक्षक का नेत्र नैसर्गिक हो तो उसके दृष्टिपटलपर रोगीके नेत्रतलकी प्रतिमा जो बनेगी वह उसको सीदी और रोगीके नेत्रतलके स्थानके आकारके बराबर दिखाई पडेगी।

(ब) यदि रोगीका नेत्र दीर्घदृष्टिवाला हो, तो उसके नेत्रतलके किसी भी स्थानसे बाहर जानेवाली किरणे फैलनेवाली होती है। और वे परिमित स्थानपर यानी रोगीकी पिछली ओरको मिलती हैं ऐसा भासमान होगा (चित्र नं ६१ देखिये)। परीक्षकको उस स्थानपर नेत्रतलकी प्रतिमा दिखाई पडेगी। ये किरणे समानान्तर के बदले फैलनेवाली होनेसे उनकी प्रतिमा, परीक्षक यदि नैर्सागक दृष्टिवाला हो तो, उसके दृष्टिपटल के पीछे तयार होगी। इस प्रतिमाका आकार रोगीके नेत्रतलके स्थानके आकारके बराबर होगा। परीक्षकको यह प्रतिमा साफ न दिखाई पडती हो तो उसको अपनी दृक्सधान शक्तिका इस्तेमाल करना जरूरी होगा या रोगीके नेत्रके सामने युगलोन्नतोदर शीशेका इस्तेमाल करना जरूरी होगा जिससे ये फैलनेवाली किरणे समानान्तर होकर परीक्षकके दृष्टिपटलपर केन्द्रीभूत होकर उसको वह प्रतिमा साफ दिखाई पडेगी। इस शीशेको उसके असली केन्द्रपर रखा हो तो परीक्षक को यह प्रतिमा नेत्रतलके स्थानके आकारकी और सीधी दिखाई पडेगी।

(क) रोगीका नेत्र साधारण कम बलके ऱ्हस्व दृष्टित्वका हो तो, उसमेसे बाहर आनेवाली किरणें केन्द्रगामी होनेमे वे परीक्षक के पिछली ओरको केन्द्रीभून होगी यानी वहा उनकी प्रतिमा बन जायेगी। लेकिन उनमेसे कुछ परीक्षकके नेत्रमे जानेसे उसके दृष्टिपटलपर, उनकी प्रतिमा रोगीके नेत्रतलके स्थानके आकारकी, और उलटी सी बन जायेगी। परीक्षक के नेत्रके सामने इतने बलका नतोदर शीशा रखा जाय, कि जिसकी वजहसे रोगीके नेत्रमेसे निकलनेवाली केन्द्रगामी किरणे समानान्तर होवे, तो वह प्रतिमा देखना परीक्षकको सभाव्य होगा। यदि शीशे को ऐसी जगहपर रखा जाय, कि उसका मध्यबिन्दु और दोनो नेत्रोंके सामनेके असली केन्द्र पारस्परिकसे मिल जावे, और उसका बल इतना हो कि उसका नाभ्यन्तर प्रतिमाके स्थानकी लम्बाईके बराबर का हो, तो इस शीशेमेसे पार जानेवाली किरणे समानान्तर जैसी होंगी और वह प्रतिमा परीक्षकके दृष्टिपटलपर बनेगी। इस प्रतिमाका आकार रोगीके नेत्रतलके खास स्थानके आकारके बराबरका होगा। यदि ऱ्हस्व दृष्टि इतनी महाबली हो कि उसका दूरबिन्दु परीक्षक और रोगीके दरमियान हो तो किसीभी शीशेसे प्रतिमा बनना सभाव्य नही होगा।

निर्विन्दुतामे रोगीको नेत्रके सामनेके दो असली केन्द्र होते है, और यह स्पष्ट बात है कि दोप दुरुस्त करनेवाले शीशेमे दोनो केन्द्र एकही वक्तमे समा नही जाते। इससे यह ध्यानमे आ जायेगा कि निर्विन्दुतामे कुछ क्षेत्र की प्रतिमा स्पष्ट नही दिखाई पडेगी, लेकिन नेत्रगोलककी जिस अक्षररेपाको दुरुस्त किया जायेगा उसको लम्ब जैसी रेपाएँही सिर्फ स्पष्ट दिखाई पडेगी।

इससे यह स्पष्ट होगा कि, इन सब मिसालोंमे रोगीके नेत्रकी उलटी प्रतिमा परीक्षकके दृष्टिपटलपर बनेगी, च्यूकि प्रतिमा उलटी होनेसे भी मानसिक क्रियासे वह आम तौरसे सीदी दिखाई पड़ती है। यदि रोगीका नेत्र अव्यग यानी नैर्सागक हो, तो नेत्रतलके स्थानके सम आकारकी प्रतिमा नैर्सागक नेत्रवाले परीक्षकके नेत्रतल पर बनेगी जब उसकी दृक्संधान शक्ति काममे नही लाई जाती; लेकिन जब रोगीके नेत्रमे वक्रीभवन दोष हो तो (दोष महाबली ऱ्हस्व दृष्टिके सिवा) इस तरहकी प्रतिमा दोष दुरुस्त करनेवाले शीशेको, नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके पीछे, और नेत्रके सामनेके असली केन्द्रकी स्थानपर रखनेसे दिखाई पडेगी।

इस पद्धतिसे वक्रीभवन दोष मुकर्रर करना सभाव्य होता है। लेकिन नेत्रके सामनेके असली केन्द्रके स्थानपर शीशा रखना मुश्किल होनेसे दुरुस्त करनेवाले शीशेका बल दीर्घ दृष्टिके प्रमाणमे कमतर होता है और ऱ्हस्वदृष्टिके प्रमाणमे ज्यादा होता है।

प्रतिमाका अभिवर्धन—

प्रत्यक्ष परीक्षाके पद्धतिमे जब अव्यग-नैसर्गिक-नेत्रका नेत्रतल देखा जाता है, तब उस प्रकाशित क्षेत्रकी किरणे परीक्षकके नेत्रमे समानान्तर जैसी घुस जाती है। और यह पहले ही कहा है कि, परीक्षकके नेत्रतल पर इनकी जो प्रतिमा बनती है वह रोगीके नेत्रतलके इसी भागके आकारकी होती है। लेकिन परीक्षक रोगीके पीछे, जहा वह स्पष्ट दिखाई पडेगी उस फासले पर इस प्रतिमाका प्रक्षेपण करता है। और इसी वजहसे परीक्षकको उसी जगह पर प्रतिमा दिखाई पडती है। यह फासला जरूरतन बाकायदा होता है जिसमे जाहीर बुलुन्दी अभिवर्धन भी बाकायदा होगा। ऐसा समझिये इस प्रतिमाका फासला २२० मि. मि. है, और पदार्थ नेत्रके पातबिन्दूसे १५ मि मि है। तो प्रतिमाका आकार $\frac{२२०}{१५}$ के बराबर यानी १४६ होगा। यानी अव्यग नेत्रमे रोगीका नेत्रतल १४६ गुना बढा है ऐसा मालूम होगा। नैसर्गिक नेत्रकी अपेक्षा दीर्घ दृष्टिमे अभिवर्धन-(बुलुन्दी) कमतर और ऱ्हस्व दृष्टिमे ज्यादह होगा।

अक्षिक वक्रीभवन दोषमे शीशेको दोनो नेत्रोके सामनेके असली केन्द्रोके स्थानमे रखा जाय तो, किरणोके दिशापर उसका कुछ असर नही दिखाई पडेगा, यानी सब मिसालोमे अभिवर्धन एक सरीखा होगा। लेकिन यदि दुरुस्त करनेवाले शीशेको रोगीके सामनेके असली केन्द्रके पार रखा जाय तो दीर्घ दृष्टिमे किरणे फैलनेवाली कम होती है और ऱ्हस्वदृष्टिमे ज्यादह होती है, इसी सबबसे अव्यग नेत्रकी अपेक्षा दीर्घ दृष्टिमे अभिवर्धन कमतर और ऱ्हस्वदृष्टिमे ज्यादह होगा। निर्बिन्दुतामे ऱ्हस्वदृष्टित्वके अक्षमे अभिवर्धन ज्यादह होगा और दीर्घदृष्टित्वके अक्षमे कमतर होगा, और इसी सबबसे अभिवर्धन असम होगा, ज्यादह वक्रीभवन दोषके अक्षमे अभिवर्धन सबमे ज्यादह होगा। इससे यह स्पष्ट होगा कि प्रतिमा विपर्यस्त दिखाई पडेगी, मसलन नेत्रबिम्ब अण्डाकार दिखाई पडेगा लम्बा अक्ष वक्रीभवन दोषके बडे अक्षमें होगा।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धति-दृक् शास्त्रीय तत्व।

प्रतिमाका बनना

पहले ही बताया गया है कि, महाबली -ह्स्व दृष्टिमे प्रकाशित किये हुए नेत्रतलको ऐसे फासलेपरसे देखा जाय, कि उस नेत्रका दूरबिन्दू परीक्षक और रोगीके दरमियान गिरे, और यदि परीक्षक अपनी दृक्संधान शक्तिके इस्तेमालसे उस दूर बिन्दूको देख सके, तो उसको इस दूर बिन्दूपर प्रकाशित नेत्रतलकी प्रतिमा दिखाई पडेगी (चित्र न.६३)। अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें इसी तत्वका अवलम्ब किया जाता है। इस पद्धतिमे रोगीके सामने उन्नतोदर शीशको पकडते है, जिससे वह नेत्र महाबली ऱ्हस्वदृष्टि जैसा होता है। उस नेत्रमेसे बाहर आनेवाली प्रकाश किरणे इस शीशेमेसे पार होकर सामनेकी ओरको केन्द्रीभूत होती है, और उस जगहपर प्रकाशित नेत्रतलकी साची उलटी प्रतिमा बनती है। इसका स्पष्टीकरण

६४–६६ चित्रोपरसे ध्यानमे आ जायगा। नैसर्गिक नेत्रगोलकमे (चित्र न. ६४) अ ब स्थानकी किरणें समानान्तर जैसी बाहर आकर जब इस शीशेमेंसे पार जायेंगी तब

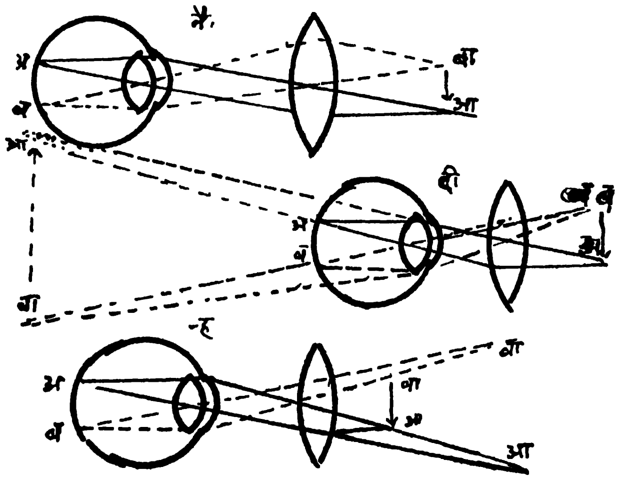

चित्र नं. ६४

चित्र नं ६५

चित्र नं. ६६

अप्रत्यक्ष परीक्षामे प्रतिमाका बनना

वे शीशेके नाभ्यन्तर पर, आ बा स्थानपर केन्द्रीभूत हो जायेगी। और वह अ ब की उलटी प्रतिमा बन जायेगी। यह आ बा स्थान परीक्षक और शीशेके दरमियानमें होता है। दीर्घ दृष्टि नेत्रगोलकमेसे बाहर आनेवाली किरणे फैलनेवाली होनेसे वे नेत्रगोलकके सामनेके शीशेमेंसे पार जाकर केन्द्रीभूत हो जायेगी। लेकिन वे नेत्रके पीछेसे आती है ऐसा भासमान होगा; और वहा प्रतिमा बडी खडी और भ्रामक जैसी मालूम होगी (चित्र न. ६५) इस भ्रामक प्रतिमाकी साची उलटी प्रतिमा शीशेके सामने उसके असली नाभ्यन्तरपर बनेगी। ऱ्हस्वदृष्टिके नेत्रगोलकमे इसके अलावा नेत्रमेंसे बाहर आनेवाली किरणे, केन्द्रगामी होनेसे नेत्रतलके–ब अ भागकी प्रतिमा नेत्रके सामने उलटी आ बा जैसी बनेगी (चित्र नं. ६६) इस शीशेसे उसकी दूसरी छोटी प्रतिमा शीशेके सामने उसके नाभ्यन्तरके अन्दर आ बा बिन्दुपर बनेगी। इन प्रतिमाओंका सापेक्ष स्थान चित्र नं. ६७ से ध्यानमें आ जायेगा।

चित्र नं. ६७

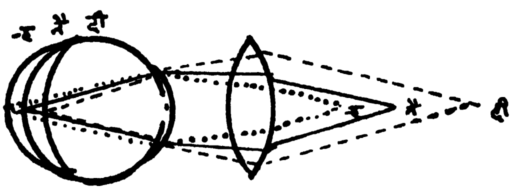

अप्रत्यक्ष परीणामे प्रतिमाका स्थान.

प्रतिमाका अभिवर्धन

प्रतिमाके आकारका अभिवर्धन यानी उसका आकार बुलद होना—बढ जाना—यह बात अव्वलमें इस्तेमाल किये हुए शीशके डीयाप्टरके बलपर और शीशे को नेत्रके सामने जिस स्थान पर पकड़ा होगा उसपर, अवलम्बित होती है। नैसर्गिक नेत्रको (चित्र नं.६८ देखिये) सोचो, च्यूकि अ. ब. पा. और बा आ ओ. त्रिकोण समरूप है, और पदार्थ और प्रतिमाओके आकारका अन्दाजा उन्नतोदर शीशेसे उनके फासलेके प्रमाणपर अवलम्बित होता है इस नियमके अनुसार अभिवर्धन =प्र/प=आ.बा / अ.ब=आ औ / अ पा (प्र, प्रतिमा, प, पदार्थ; पा, पातबिन्दु औ शीशेका मध्य)। समझिये कि अ पा का मूल्य १५ मि. मि. है तो इससे यह बात स्पष्ट होगी, कि शीशेके नाभ्यन्तर को १५ से भाग देनेसे जो फल, पाया जायेगा उसके बराबर अभिवर्धन का मूल्य होगा। आमतौरसे इस्तेमाल किये जानेवाले शीशेका बल +१३ डी होता है, जब अभिवर्धन ७५/१५=५ होगा। यदि इससे ज्यादह बलके शीशेका इस्तेमाल करें तो प्रतिमा ज्यादह छोटी और ज्यादह चमकदार होगीः यदि कमतर बलके शीशेका इस्तेमाल किया जाय तो प्रतिमा ज्यादह बडी होगी और चमक कमतर होगी।

चित्र नं. ६८

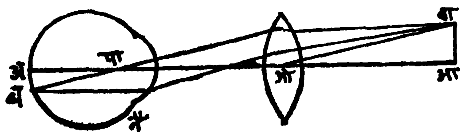

चित्र नं. ६९

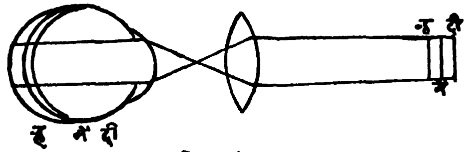

चित्र नं. ७०

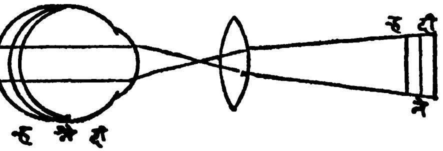

चित्र नं. ७१

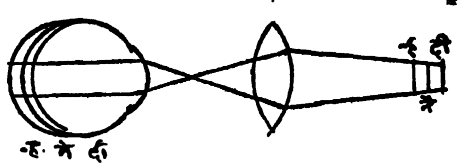

अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतीमेंका अभिवर्धन

नैसर्गिक नेत्रगोलकमेसे बाहरकी ओरको जानेवाली किरणे समानान्तर होनेमे शीशा कही भी रखा जाय तो, प्रतिमा हमेशाह उसके नाभ्यन्तर पर बनती है। इससे अनुमान किया जा सकता है, कि चित्र नं. ६८ मे **आ ओ बा** कोणका प्रमाण हमेशाह स्थायी रहता है यानी **आ बा** और **अ ब** का प्रमाण कायम रहता है। बनतीजा नैर्मागिक नेत्रमे प्रनिमाका आकार कायम रहता है। शीशा किसी भी स्थानमे हो।

लेकिन अनैसर्गिक नेत्रमें यह प्रमाण बदल जाता है। जब शीशेका नाभ्यन्तर नेत्रके सामनेके नाभ्यन्तरसे मिलता हो और उस स्थानपर शीशेको रखा जाय, तो दृगाक्षको

समानान्तर किरणें शीशेमेंसे पार जाकर समानान्तर ही रहेंगी (चित्र नं. ६९) और प्रतिमाका आकार दीर्घदृष्टि और न्हस्व दृष्टिमें नैसर्गिक जैसा होगा । यदि शीशेका नाभ्यन्तर नेत्र-गोलकके नज़दीक लाया जाय तो, नेत्रमेंसे बाहर आनेवाली किरणे शीशेके पार होकर फैलने-वाली होंगी । इस अवस्थामे (चित्र न. ७०) न्हस्व दृष्टिके नेत्रतलकी प्रतिमा शीशके नज़दीक और दीर्घदृष्टिकी प्रतिमा शीशेसे दूर होनेसे न्हस्वदृष्टिकी प्रतिमा सबसे छोटी और दीर्घ दृष्टिकी प्रतिमा सबसे बडी नैसर्गिक नेत्रकी प्रतिमा दरमियानकी होगी । इसके विपरीत शीशेका नाभ्यन्तर नेत्रसे ज्यादह दूरीपर हो तो नेत्रमेंकी किरणे शीशेके पार होकर केन्द्रगामी होती हैं और फिर प्रतिमाके आकार पहलेसे उलटे यानी न्हस्व दृष्टिमे सबसे बडा और दीर्घ-दृष्टिमें सबसे छोटा होगा (चित्र नं. ७१) ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र

हेल्महोल्टझके पहलेके नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रमे बहुत कुछ सुधार हुए। वे कई है जैसेकि वक्रीभवनदोष जाचनेका यंत्र, द्विनेत्रीय (दोनो आंखोका) यत्र, स्वयंका यंत्र, और सप्रदर्शन यंत्र।

गाटिनजेनवासी **रुएट**ने अपना नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र सन १८५२ मे बनाया जिसमें नेत्रतलकी उलटी प्रतिमा हवामे दिखाई पडेगी ऐसी तरकीब की गई थी। और इसी वजहसे उनको नेत्रान्तरगदर्शक यत्रसे **अप्रत्यक्ष परीक्षा** करनेके जनक मानते हैं। नेत्रान्तरगदर्शक यंत्रमें चारो ओरको घूमनेवाले अन्तर्वृत्त दर्पणका इस्तेमाल पहलेपहल इन्होंने किया। इस तरकीबसे नेत्रतलका प्रदीपन अच्छी तरहसे होने लगा। और दर्पणके मध्यमे छेद करनेकी कल्पना इन्हीकी है। पहलेपहल **रेकास** नामके एक मामूली मनुष्यने इस यत्र पर एक घूमती तश्तरी (जिसमे अनेक शीशे रह सके) की यान्त्रिक योजना की।

सम्प्रदर्शन नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र (डिमानस्ट्रेशन आफथालमास्कोप) सन १८६२मे **फॉलिन** और **गोलझोवस्की**ने स्थिर या अचल नेत्रान्तरंगदर्शक यत्र निकाला, जिससे छात्रवर्गोको नेत्रतलका सम्प्रदर्शन करना आसान हो गया। **श्वेइगर**ने सन १८७१ में अपना सम्प्रदर्शन यत्र निकाला जिसमें ऐसी एक रचना रखी, कि रोगीके नेत्रतलसे वापिस लौट आनेवाली किरणोमेंसे कुछ दर्पणके छिद्रमेंसे परीक्षकके नेत्रमे घुस जायें और कुछ त्रिपार्श्व परसे निक्षेप होकर यानी राह-इ-रास्तेसे–अलग होकर छात्रके नेत्रमें घुस जाये। सन १८९९ में **थारनर**ने इस स्थिर यंत्रमे इस तरहका सुधार किया, कि जिसकी वजहसे नेत्रतलका बडा क्षेत्र दिखाई पडने लगा, नेत्रतलका प्रदीपन अच्छा होने लगा और प्रकाश परिवर्तनकी तकलीफे निकल गयी। **गुलस्ट्राड**ने इसमे और एक सुधार किया जिससे एकनेत्रीय नेत्रान्तरंग-दर्शक यंत्रमे नेत्रतलकी प्रतिमाका अभिवर्धन, ५ से ४० गुना और द्विनेत्रीय यंत्रमें ३० गुना बडा दिखाई देने लगा।

वक्रीभवन दोष जांचनेका नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र–(रिफ्रॅक्शन आफथालमास्कोप) **फान हेल्महोल्टझके** यंत्रमें **रेकास**की दो घूमनेवाली तश्तरीयोंकी योजना की गई थी।

(इस रचनामें) एक तश्तरीमें चार नतोदर शीशे और दूसरीमें चार उन्नतोदर शीशे रहा करते थे। इसी यंत्रमें **ई. जी. लोरिंग**ने और सुधार किये जिससे नतीजे अच्छी तरहसे मिलने लगे। सन १८७५ में **वर्डसवर्थने** दर्पणको २०° कोन पर रखनेकी, और वह चारों ओरको घूम सके ऐसी तरकीब निकाली।

स्वयंका नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र (आटोआफथालमास्कोप)–में अपनेको अपना नेत्रतल दिखाई पडेगा ऐसी रचना **काकसियसने** निकाली। द्विनेत्रीय नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके शोधका मान उन्हींको है।

मारटन का नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्र

चित्र नं. ७२

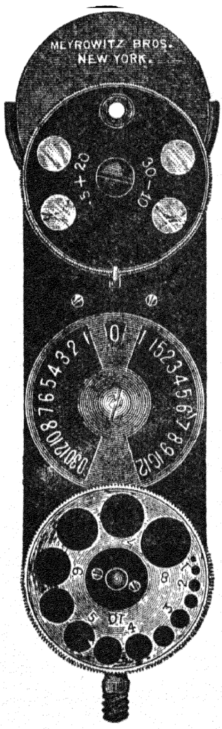

विद्युत् नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्र

चित्र नं. ७३

मारटन

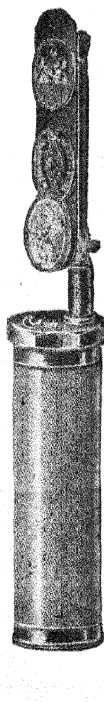

चित्र नं. ७४

मारपन

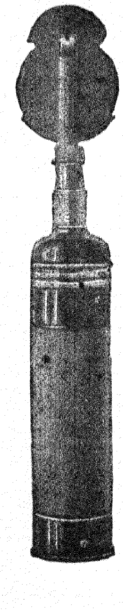

सौर नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रः—न्यूयार्क वासी **म्याकडोनाल्डने** दियेके प्रकाशके बदले सौर प्रकाशका इस्तेमाल किया। सादे या अन्तर्वृत्त दर्पणसे होनेवाला प्रकाश परिवर्तन तीव्रतर होनेसे उन्होंने बहिर्वृत्त दर्पणका इस्तेमाल किया। रोगीकी परीक्षा सूर्यकी तरफ उसकी पीठ करके बिठाकर की जाती है। **ज्याकसन** के मतानुसार नेत्रगोलकके **वक्रीभवन मार्ग**

जब धुंधले होते है तब इस सौर प्रकाशका इस्तेमाल करनेसे नेत्रान्तरंगके अर्बुदका या तैरते हुए दृष्टिपटलका निदान दिलपसंद होना संभाव्य है।

वैद्युत नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रः—इस यंत्र का शोध सबसे पहले न्यूयार्क वासी **डेवेट** ने सन १८८४ मे लगाया। ग्लास्गोवासी **थामस रीड** और लंदन निवासी **ज्यूलरने** अपने वैद्युत नेत्रान्तरग दर्शक यंत्रोंका प्रचार किया

जल नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र (हायड्राफथालमास)—नेत्रोंकी जलमें परीक्षा करनेके यंत्र सन १८५१ मे प्रचारमे आये लेकिन उनका आमतौरसे प्रसार नही हुआ। **बाटेन** ने जलनेत्रान्तरगदर्शक यत्रका आविष्कार किया है। तारकापिधान, तारका, वक्रीभवन मार्ग या नेत्रतलकी विकृत अवस्थासे सादे नेत्रान्तरगदर्शक मंत्रसे खोज करना मुष्किल होता है ऐसी हालतमे जलनेत्रान्तरगदर्शक यत्र काबिल यत्र मानते है। काचबिन्दु, महाबली न्हस्वदृष्टि, कोणाकार तारकापिधान और नेत्रान्तरंगके अर्बुद इन अवस्थाओमे जलनेत्रान्तरंग-दर्शक यंत्र मौली यंत्र मानते है

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र का वर्णनः—मामुली तौरसे नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रमे डन्डेपर बिठाया हुआ एक छेदवाला दर्पण होता है यह गोलाकार छेद दर्पणके मध्यमें होता है। और दर्पण "स्विवेल" नामक चक्र पर लगा रहता है जिसकी वजहसे उसको चारो ओरको घुमाना संभाव्य होता है। प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें दर्पण बड़ा होनेकी कुछ आवश्यकता नही क्योंकि छेदके इर्दगिर्दके भागका ही जांचनेमें इस्तेमाल हो सकता है। छेदके व्यासकी लम्बाई तीन मिलिमिटर होनी चाहिये। छोटे छेदसे नेत्रतल की परीक्षा काफी तौरसे की जा सकती है; वक्रीवभन दोष की जांच के लिये छेद बडा होना मुनासिब माना गया है। रोगी और परीक्षक दोनोका वक्रीभवन नैसर्गिक तौरका हो तो इस सादे दर्पणसे नेत्रतलकी जाच दिल पसंदीसे हो सकती है। लेकिन बहुतसे मिसालोमे रोगीके वक्रीभवन दोष की ठीक जांच करनेके लिये दर्पणके पीछे शीशेका इस्तेमाल करना जरूरी होता है। दृष्टीविशारद का वक्रीभवन नैसर्गिक न हो तो परीक्षा करनेके समय उन्होनें अपने चष्मेका इस्तेमाल करना आवश्यक है। छोटीसी जगहमे ०.२५ **डी** से २०.० **डी** बलके अनेक शीशोको रखकर उनका इस्तेमाल करना सभाव्य होवे इसलिये उनको कई घूमती तश्तरियोमें बिठाया होता है। और शीशेका बल बढानेके या कमतर करनेके लिये इन तश्तरीयोंको घुमानेकी यंत्र रचना की होती है। इस तरकीबसे रोगीकी न्हस्व या दीर्घ दृष्टिका बल जलद जाच सकते है। इसी यंत्रको वक्रीभवन दोष जाचनेका नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र कहते है। इस यंत्रके साथ युगलोन्नतोदर शीशा, जिसका बल करीब + १३ डीसे + २० डी होता है, मिलता है। इस शीशेका अप्रत्यक्ष परीक्षा की पद्धतीमे और तिर्यक प्रकाशसे परीक्षा करनेमें इस्तेमाल किया जाता है। इस शीशेके व्यासकी लम्बाई २½ इंच होनी चाहिये और उसको पकडनेके लिये डंडा होना जरूरी है। **लोरिंग** और **मारटन** के नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्र का इस्तेमाल ज्यादह प्रमाणमें किया जाता है। इनके सिवाय और अन्य लोगोके यंत्रोका भी इस्तेमाल होता है, जिनका वर्णन हथियारियोंकी फेअरिश्तोमें मिलेगा।

रोगीकी बिछौनेपर प्रत्यक्ष परीक्षा करनेके लिये वैद्युत नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र काबिल यंत्र है। और जब कनीनिका संकुचित रहती है, रोगी निश्चल नही रहता, रोगी बालक

होता है, रोगी बेसुध है या उसको बिछौनेपर ही सोना आवश्यक होता है, ऐसी हालतोमे इस यत्रका उपयोग करना मुनासिब है ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा का खयाल

ध्यानमे रखिये, कि नेत्रकी कनीनिकामेसे अन्दर घुस जानेवाला कुल प्रकाश कृष्ण-पटलके रजित द्रव्योसे सोखा नही जाता; उसमेसे चद तादादमे वह वापिस लौट आता है । परीक्षकका नेत्र यदि प्रकाशके उगम स्थानमे या उसके बिलकुल पीछे रखा जाय, तो उसको रोगीके नेत्रका अन्तरग दिखाई पडेगा। नेत्रान्तरगदर्शक यत्रसे परीक्षा करनेकी पद्धति या तरीकेमे इसी ततका अमल किया जाता है । नेत्रान्तरगदर्शक यत्रके दर्पणपर, जिसके मध्यमे एक छोटासा गोल छेद होता है, सामनेकी बत्तीकी किरणे इकट्ठा होनेमे, वह प्रकाश का नायब उगमस्थान बनता है, और वे प्रकाश किरणे विस्तृत कनीनिकामे अन्दर जाती है । परीक्षकका नेत्र इस दर्पणके छेदके पीछे होनेसे, रोगीके नेत्रमेसे लौट आनेवाली किरणे उसके नेत्रमे घुस जा सकती है ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा करनेकी पद्धति—यह परीक्षा करनेकी अनेक तरह होती है, जिनमेसे दो ज्यादह प्रचलित है । एक **प्रत्यक्ष परीक्षा करनेकी पद्धति** और दूसरी **अप्रत्यक्ष परीक्षाक रनेकी पद्धति** । पहलेकी पद्धतिमे नेत्रतल सिर्फ नेत्रान्तरगदर्शक यत्रसे, विना युगलोन्नतोदर शीशेके इस्तेमालसे जाचा जाता है, दूसरी पद्धतिमे नेत्रगोलक और नेत्रान्तरंगदर्शक यत्रके दरमियान मे युगलोन्नतोदर स्फटिकमणि, ताल या शीशेका इस्तेमाल किया जाता है, जिसकी वजहसे रोगीके नेत्रतल परसे बाहर परिवर्तित होनेवाली किरणे इस उन्नतोदर शीशेमेसे पार होकर उसके पीछे हवामे केन्द्रित होती है यानी यहा नेत्रतलकी उलटी प्रतिमा बनती है । और इसीको परीक्षक गौर करता है और इसी वजहसे इस पद्धतिको अप्रत्यक्ष परीक्षा की पद्धति कहते है । दोनो परीक्षा अंधियारी कोठरीमे की जाती है।

प्रत्यक्ष परीक्षा की सीदी खडी प्रतिमा देखनेकी पद्धति–इस पद्धतिमे रोगीके नेत्रकी परीक्षा दूरीसे या नजदीकसे की जाती है। पहली तरहमे दर्पणको रोगीके सामने एक मिटर पर, या नजदीक पढनेके फासलेपर पकडते है । इस तरहको अक्षीय प्रदीपन कहते है ।

(१) **दूरीसे बडे अन्तर्वृत्त दर्पणसे परीक्षा**:—चिरागको रोगीके सिरके पीछे और कुछ बाजूको और ऊचा इस तरहसे रखना चाहिये, कि रोगीके मुह पर प्रकाश न गिरे। परीक्षकने रोगीके सामने एक मिटर या कुछ नजदीक बैठकर अन्तर्वृत्त दर्पणसे रोगीके नेत्रपर प्रकाश डालना । यदि रोगीके नेत्रका वक्रीभवन मार्ग पूर्णतया पारदर्शक हो तो परीक्षकको रोगीकी कनीनिका एकसा सिर्फ लाल और चमकदार दिखाई पडेगी, नेत्रतलका कुछ तफसील नही दिखाई पडेगा। यदि इन वक्रीभवन मार्गोमे कुछ बारीक अपारदर्शकता हो, तो वह लाल परदे पर काले धब्बे या छीटे जैसी मालूम होगी। यदि अपारदर्शक भाग बडे आकारका हो तो उसपरसे प्रकाशका परिवर्तन होनेसे वे भूरे या कुछ नीले भूरे, या लाल परदे पर सुफेद रंगके जैसे दिखाई पडेगे। यदि नेत्रतल एकसा लाल रगका दिखाई पडा तो वह नेत्र नैसर्गिक है ऐसा समझना : यदि नेत्रतलकी रोहिणीयां या नेत्रबिम्बका कुछ भाग दिखाई पडा तो नेत्र नैसर्गिक है ऐसा समझना चाहिये।

दृष्टिपटलकी रोहिणीयां यदि दिखाई पडीं तो परीक्षकने अपना सिर एक बाजूसे दूसरी बाजूको हलाकर रोहिणीयोंमें किस दिशामें चलन होता है इस पर ध्यान देना। यदि वे परीक्षकके सिरकी दिशामें सरक जायं तो उस नेत्रमें दीर्घ दृष्टि और विरुद्ध दिशामें सरक जायं तो न्हस्व दृष्टि है ऐसा मान सकते हैं। यदि एक रेषामें चलन होता हो तो उस नेत्रमें निर्बिन्दुता है ऐसा मान सकते हैं।

चित्र नं. ७५

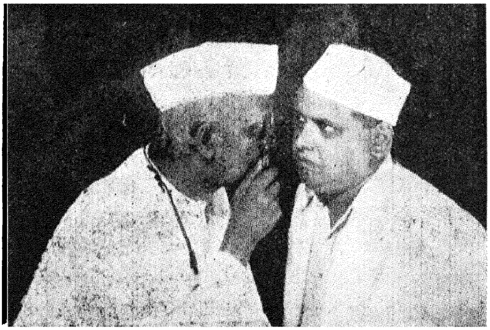

प्रत्यक्ष परीक्षामें रोगी और परीक्षक का सापेक्षस्थान

रोगीके नेत्रपर प्रकाश डालनेसे उसकी कनीनिका लाल चमकदार नहीं दिखाई पडी, तो मान सकते हैं कि स्फटिक द्रवपिंडमें रक्तस्राव है, या नेत्रान्तरंगका अर्बुद, या काला मोतीबिन्दू है। इस तरीकेका इस्तेमाल स्फटिक द्रवपिंडकी या अन्य भागकी अपारदर्शकता देखनेके लिये, नेत्रतलके भागोंकी असमता है या नहीं यह देखनेके लिये और नेत्रके वक्रीभवनका नापन करनेके लिये किया जाता है।

(२) रोगीके नेत्रकी बिलकुल नजदीकसे प्रत्यक्षपरीक्षा करनेका तरीका (खडी प्रतिमा देखनेका तरीका)—परीक्षकने नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रको रोगीके नेत्रके जितना नज़दीक लाना संभाव्य हो उतना लाना चाहिये। परीक्षक अपने बायें नेत्रका रोगीके बायें नेत्रको और अपने दाहिने नेत्रका रोगीके दाहिने नेत्रको तपासनेके लिये इस्तेमाल करे। अपने सिरको थोडा झुकाके परीक्षक रोगीके सिरको स्पर्श किये बिना रोगीके नेत्रके नजदीक पहुँच सकता है। जिस नेत्रकी परीक्षा करनी हो उसी ओरको चिरागको रोगीके नेत्रके पीछे और समतलमें रखे; और चिरागको बाजूको इतना सरकाना, कि उससे ४५ अंशका कोन बने। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रको खडी लंब रेषामें पकड़कर दर्पणको इतना घुमाये कि उसका समतल चिराग कि सामनेकी ओरको हो जावें। रोगीको दोनों नेत्रोंसे सामनेकी दीवालपर नेत्र बिलकूल स्थिर रखकर देखनेको कहें।

परीक्षकने यंत्रको रोगीके नेत्रसे साधारणतया एक इंच फासलेपर इस तरहसे पकड़ना चाहिये, कि दर्पणमेंका छेद रोगीकी कनीनिकाके सामने आजावे। फिर यंत्रको रोगीके

नेत्रके बिलकुल नजदीक लाना । रोगी, परीक्षक और नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र इन तीनोके स्थानकी कल्पना ऊपरके चित्रसे (चित्र नं. ७५) कर सकते है ।

रोगीके मुँह पर गोलाकार छाया गिरी है ऐसा मालूम होगा । यह गोलाकार छाया दर्पणके छेदसे बनती है: क्यों कि इस छेद परसे कोईभी किरणे परावृत्त नही होती, यह छाया रोगीकी कानीनिका पर ठीक तरहसे गिरे ऐसी कोशिश करना । इसी छायाके क्षेत्रमेंसे नेत्रके भीतरका भाग देखा जाता है । ध्यानमे रखिये, कि दर्पण के छेद का व्यास २ ५ मिलि-मिटरसे बडा नही होना चाहिये । यदि यह छेद कनिनकासे बडा हो तो नेत्रके अन्दर प्रकाश किरणे नही जायेगी और फिर नेत्रतल प्रकाशित नही होगा । ध्यानमे रखना चाहिये कि इस दर्पणके छेदके इर्दगिर्दका छोटासा भाग ही नेत्रका अतरग प्रकाशित करनेमे काबिल होता है; दर्पणके अन्य भागसे तारका और स्फटिक माणि पर प्रकाशित परिवर्तन होता है ।

परीक्षकने नेत्रतलकी लाल प्रतिछाया देखना जरूरी है । और नेत्रके वक्रीभवन मार्ग पारदर्शक हो तो प्रकाश किरणोको ठीक तौरसे केंद्रीभूत करनेसे परीक्षकको रोहिणियां, नीला, दृष्टिस्थान और नेत्रबिम्ब को देखना सभव होता है । पहले परीक्षकने अपने नेत्रातरंग दर्शक यंत्रके दर्पणके छेदके पीछे + १४ डी बलके युगलोन्नतोदर शीशेको रखना मुनासिब होता है । जब उसको रोगीकी कनीनिकामे लाल चमक दिखाई पडेगी । यदि यह प्रकाशित क्षेत्र एक सा दिखाई देता हो, उसमे कुछ काले धब्बे या लकीरे न दिखाती हो और उसका परिधिका क्षेत्र टेढामेढा न दिखाई देता हो तो परीक्षक मान सकता है कि प्रकाशित हुए तारकापिधान, चाक्षुपजल, या स्फटिकमणिके भागोमे कुछ मोटा फ़साद नही है । दर्पणके पीछे कमतर बलके उन्नतोदर शीशे रखते जानेसे स्फटिकमणिका पिछला भाग तथा स्फटिकद्रवपिडके गहरे भागोकी परीक्षा की जा सकती है । नेत्रतलका समतल नजरमे आते ही नेत्रबिम्बको देखनेकी कोशिश करनी चाहिये । इसका तलाश करनेके वख्त रोगीको सिर झुकाये बिना, अपनी नासिकाकी ओरको देखनेको कहना । यदि नेत्रबिम्ब जल्द नही मिला तो एकाद रक्तवाहिनीको देखकर उसके अनुरोधसे नेत्रबिम्बका तलाश करना ।

चित्र नं. ७६

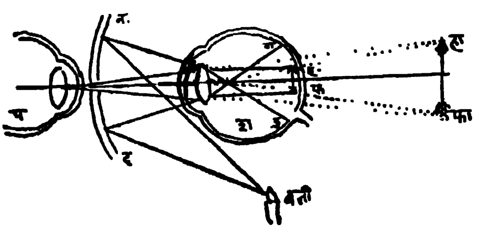

परीक्षकके नेत्रमे यदि वक्रीभवन दोष हो, तो उन्होने अपने रास्त चश्मेको पहनना मुनासिब है । रोगीके वक्रीभवन दोषको, दर्पणके छेदके पीछे शीशे रखकर दुरुस्त कर सकते है । परीक्षक और रोगी दोनोने अपने दोनो नेत्र खुले रखना चाहिये । रोगीने दर्पणकी ओर नही देखना चाहिये क्योंकि इससे कनीनिका पहले प्रसरण करनेवाली दवासे विस्तृत नही की गयी हो, तो वह संकुचित होजायेगी । परीक्षकने ही अपनी दृक्सधान शक्तिको ढीली करनेकी आदत करनी चाहिये । और यह तालीमसे पायी जाती है । हुशियार परीक्षक नेत्रतल दूरीपर है ऐसा समझकर उसको देखेगा, लेकीन नॉवाफिफ परीक्षक नेत्रनल बिलकूल नजदीक है ऐसा समझकर

देखेगा। प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें, सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे या उन्नतोदर शीशेमेसे कोई पदार्थ देखते हे उसी तौरसे, परीक्षक नेत्रतलको देखेगा। नेत्रतलकी प्रतिमा खडी, बडी और नेत्रके पीछे हे ऐसा भास होता है। चित्र न. ७६ बत्तीसे केन्द्रत्यागी किरणे निकलकर **न द** दर्पणपर मिलती हे. वहांसे वे परावृत्त होकर नेत्रमें घुस जाकर नेत्रतलके **ग ड** भागको प्रकाशित करती है। इस भागके **ह फ** बिन्दुकी किरणें दर्पणके छेदमेसे परीक्षकके नेत्रमें घुस जाकर उसके दृष्टिपटलपर **ह फ** की प्रतिमा बनती है। उस प्रतिमासे भास होता है कि, दूरका पदार्थ देख रहे हे। इन किरणोको पीछेकी ओरको बढानेसे **ह फ** की सीधी बडी प्रतिमा नेत्रके पीछे **हा फा** जैसी मालूम होती है।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें पायी जानेवाली दिक्कतें: ध्यानमे रखना, कि नेत्रान्तरगदर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षा करना इतनी आसानीकी बात नही है। हुशियार नवजवानोंमे और मदरसामें जानेवाले बालकोमे हिकमती परीक्षक जल्द कामयाब हो सकता है तो भी बालकोमे दो या तीन मरतबा परीक्षा करनेकी जरूरत होती है। बिलकुल छोटे बालकोमें और रोगी जो अपने बिछौनेके बाहर नही आ सकते इन लोगोमें दो या तीन घंटे पहले कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवा नेत्रोमे डालकर विछुत नेत्रान्तरंगदर्शक यत्रसे परीक्षा करना आसान होसकता है।

छोटे बालकोंकी परीक्षाः—इन रोगियोको अधियारी कोठरीमे मेज पर उनका मूंह छतकी तरफ हो इस तरहसे सुलाना चाहिये। इन छोटे रोगियोकी घबराहट दूर होनेतक ठैरना मुनासिब होता है। फिर स्वय प्रकाशित नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे रोगीके दृष्टीपटल पर प्रकाश डालकर नेत्रबिम्ब और अन्य भाग दिखाई पडे तब तक नेत्रको देखते रहना फिर मानसिक क्रियासे देखे हुए भागका एक संगीन चित्र बनाना संभाव्य होगा।

ध्यानमे रखना चाहिये, कि नव बालकोके और नवजवानोके नेत्रोकी वक्रीभवन अवस्थामे फर्क होता है। नव बालकोके नेत्र दीर्घ दृष्टिवाले और १ से ४ डी बल तक के होते है। कोई कोई सशोधकोके मतानुसार मनुष्य प्राणिके नेत्र जनमसे दीर्घदृष्टिवाले होते है। रैन्डल और अन्य सशोधकोके मतानुसार १५% सिर्फ नैसर्गिक दृष्टिवाले, २.५ से ५.०% न्हस्व दृष्टिवाले और शेष दीर्घ दृष्टिवाले होते है।

बिछौनेमें पडे रहे रोगीकी परीक्षाः—रोगीको बिछौनेमे बैठना सभाव्य हो तो परीक्षकके मदतगारने उसको हिफाजतसे पकडके बिठाना और फिर परीक्षकने उसकी परीक्षा करना मुनासिब होगा। रोगी यदि बिलकुल कमजोर या बेहोश हो तो उसको बिछौनेमे सुलाकर ही उसके नेत्रकी परीक्षा करनी चाहिये। मददगारने रोगीके नेत्रछदोको अलग करके पकडना और परीक्षकने रोगीके बाजूको बैठकर नेत्रोका तपासना जरूरी होगा। यदि रोगी पागल हो तो उसकी कनीनिका प्रसृत करके उसको बेहोश करना जरूरी होगा।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे अप्रत्यक्ष परीक्षा की पद्धति या तरीका (प्रतीप प्रतिमाकी परीक्षा; इनडायरेक्ट आफथालमास्कोपी)

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतीमे या तरीकेमें नेत्रतल प्रत्यक्ष नही देखा जाता बल्कि उसकी उलटी प्रतिमा जो सामने हवामे बनती है। जब इस प्रतिमाका

स्थान परीक्षकका नेत्र और इस्तेमाल किया हुआ युगलोन्नतोदर शीशा इन दोनोंके दरमियान और शीशेके नाभ्यंतर पर होता है (चित्र नं.७८ देखिये) परीक्षकने इसी बिन्दुपर अपने नेत्रको केन्द्रीभूत करना चाहिये; और यह बिन्दु पढनेके फासले पर हो और परीक्षक अपनी दृक्संधान शक्तिका इस बिन्दु के लिये इस्तेमाल करे तो उसको यह कार्य आसानीसे करना संभाव्य होता है। इसको अप्रत्यक्ष परीक्षा कहनेका यही मतलब होता है।

नेत्रकी तिर्यक् प्रकाशसे जांच करनेके बाद परीक्षकने नेत्रतल अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिसे देखनेकी कोशिश करना।

परीक्षा अंधियारी कोठरीमें करना। परीक्षकने रोगीके नजदीक और सामने ५० से. मि. पर बैठना। जिस नेत्रकी परीक्षा करनी हो उस ओरको या रोगीके सिरके ऊपरकी ओरको चिरागको रखना।

अप्रत्यक्ष परीक्षामें रोगी और परीक्षकका सापेक्षस्थान

चित्र नं. ७७

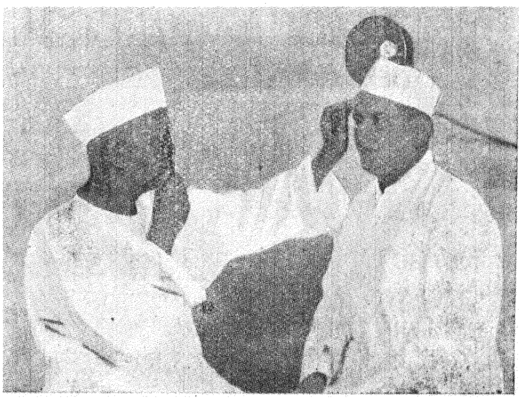

रोगीके दाहिने नेत्रको तपासनेके वक्त परीक्षकने अपने दाहिने नेत्रका इस्तेमाल करना और नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रको अपने दाहिने हाथमें पकडकर उसको अपने दाहिने नेत्रगुहाकी ऊपरकी किनारको दबाके लगाना। बायें हाथकी छिंगली और छल्लेकी उंगलीको रोगीके दाहिने भौंहपर रखकर तर्जनी और अंगुठेमें उन्नतोदर शीशेको पकडकर रोगीके तारका-पिधानके सामने १ से २ इंच रखना। फिर नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके छेदके पीछे यंत्रमेंके शीशेको इतना सरकाना कि परीक्षकको १४ इं. पर पढना आसान होवे। फिर परीक्षकने अपने दाहिने हाथकी छिंगलीकी टोंक की तरफ या अपने कानकी टोंककी तरफ रोगीको देखनेको कहना जिससे रोगीका नेत्र कुछ भीतरकी ओरको घुम जायेगा और उसका नेत्रबिम्ब परीक्षककी दृक्रेषामें आजायेगा।

फिर उन्नतोदर शीशेको रोगीके नेत्रसे दूर या नज़दीक इतना सरकाना कि हवामेंकी नेत्रबिम्बकी प्रतिमा स्पष्ट दिखाई पडे ।

दृष्टिस्थान देखनेके लिये रोगीको यंत्रके तरफ देखनेको कहना । दृष्टिपटल के परिधि भाग की परीक्षा करनेके लिये रोगीको नेत्र बाजूकी ओरको घुमानेको कहना । नेत्रतल साफ न दिखाई देता हो तो वह महाबली उन्नतोदर शीशेका इस्तेमाल करनेसे दिखाई पडेगा । बाजे वख्त तारकापिधान और स्फटिकमणिसे परावृत्त होनेवाले प्रतिप्रकाशसे तकलीफ पैदा होती है, तब दर्पणको जरा झुकानेसे, उन्नतोदर शीशेके स्थानमे कुछ फर्क करनेसे या चिरागके स्थानमे बदल करनेसे ये खतरे निकल जाते है।

लेकिन नावाकिफ़ परीक्षकसे इस तरहकी गलती होती है, कि वह हमेशा प्रतिमाको रोगीके नेत्रमें देखता है और अपनी दृक्संधान शक्तिका ठीक इस्तेमाल नही करता जिसकी वजहसे

चित्र नं. ७८

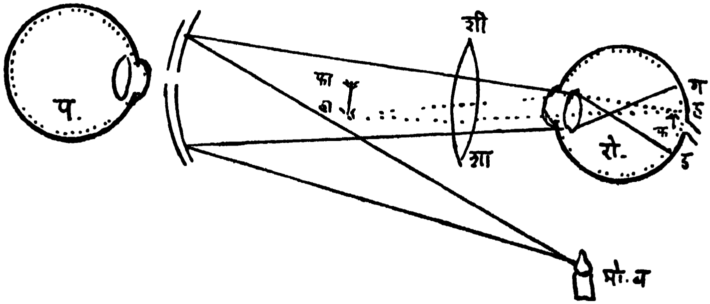

उसको नेत्रतल अस्पष्ट सा मालूम होता है । नावाकिफ़ परीक्षकके नेत्र नैसर्गिक हों तो उसने नेत्रान्तरंगदर्शक यन्त्रके दर्पणके छेदके पीछे उन्नतोदर शीशेको (२ से ४ डी बलके) रखनेसे उसको नेत्रतल स्पष्ट दिखाई पडेगा । ऱ्हस्व दृष्टिवाले परीक्षकको अपने चश्मेका बल कम करनेसे स्पष्ट दिखाई पडेगा, यदि उसके चश्मेका बल १ से ४ डी इतना हो तो उसको बिना चश्मेसे स्पष्ट दिखाई पडेगा । परीक्षक यदि दीर्घ दृष्टिवाला हो तो उसको अपने चश्मेका बल बढानेसे स्पष्ट दिखाई देगा ।

चित्र नं ७८ से अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिका का कार्य ध्यानमें आ जायेगा । चिरागके प्रकाशकी किरणे नतोदर दर्पणपर इकठ्ठे होकर वहांसे परावृत्त होकर उन्नतोदर शीशेमेंसे पार होकर नैसर्गिक नेत्रमे घुस जाकर उसके नेत्रतलका **ग ङ** भागको प्रकाशित करती है । **ग ङ** भागके **ह** बिदु की किरणें नेत्रमेंसे समानान्तर जैसी वापिस आकार शीशेमेंसे पार होकर हवामें **हा** स्थानपर केन्द्रीभूत हो जाती है । और **फ** बिदूकी किरणें इसी तौरसे **फा** स्थानपर केन्द्रीभूत होती है । उन्नतोदर शीशे की वजहसे **ह फ** की प्रतीप और अभिवर्धित बडी प्रतिमा **हा फा** स्थानपर बनती है । यह प्रतिमा हवामें शीशेके नाभ्यन्तर पर बनती है, जिसको परीक्षकका नेत्र **प** देख सकता है ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे देखी हुई प्रतिमाका आकार जिन बातोंपर अवलम्बित होता है वे ये होती हैं:–(१) परीक्षा करनेमे जिस पद्धतिका इस्तेमाल किया जाता है यानी प्रत्यक्ष परीक्षाकी या अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धति (२) जिस हालतमे परीक्षाकी पद्धतियोंका इस्तेमाल किया जाता है, (३) परीक्षक और रोगी इन दोनोके नेत्रोंकी वक्रीभवन अवस्था। दोनों तरहकी पद्धतीयोंमे, नेत्रतलके निशान (जैसे कि नेत्रबिब, रोहणियां, नीला या दृष्टिस्थान) अपने खास आकारसे अभिवर्धित–बडे–मालूम होते हैं। इसकी वजह यह होती है, कि ये सब निशान उन्नतोदर तारकापिधानमेंसे और नेत्रके युगलोन्नतोदर स्फटिकमणिमेसे देखे जाते हैं तो भी यह अभिवर्धन प्रत्यक्ष परीक्षामे अप्रत्यक्ष परीक्षाकी अपेक्षा ज्यादह होता है

प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतीमें प्रतिमाके आकार का अभिवर्धनः—नैसर्गिक नेत्रकी प्रत्यक्ष परीक्षामें उसके तफ़सीलोंका अभिवर्धन नैसर्गिक आकारसे सतरह गुना ज्यादह होता है। दीर्घ दृष्टिमें इससे कमतर और ऱ्हस्व दृष्टिमें ज्यादहतर मालूम होता है। नतोदर दर्पणके बदले सादे दर्पणके इस्तेमालसे प्रतिमा ज्यादह बडी लेकिन कमतर प्रकाशन की होती है।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका इस्तेमाल करनेसे समझिये, कि नैसर्गिक नेत्रगोलकके दृष्टि-रज्जुके शीर्ष या नेत्रबिम्ब का व्यास २३ मिलिमिटर आकार का मालूम होता है, वह २२५ मि. मि. के फासले पर दिखाई पडता है। (यह फासला जरूरतन बाकायदा होता है जिससे ज़ाहिर अभिवर्धन भी बाकायदा होगा)। इस नेत्रबिम्बका स्फटिकमणिके पातबिन्दुसे अन्तर १५ मि· मि. होता है। नेत्रबिम्बका खास असली आकार इस खास मिसालमे $\frac{१५}{१२५} \times \frac{२३}{१}$ यानी १·५ मि. मि. जैसा होगा है। इससे यह नियम बांध सकते हैं कि पात-बिन्दुका अन्तर और प्रतिमाका माना हुआ अन्तर का अनुपात प्रतिमाका असली आकार और उसका माने हुए आकारके अनुपातसे समानुपात होता है।

१५ : २२५ :: १·५ : २३ = १५·५ मिलिमिटरर्स

यद्यपि परीक्षकने दृष्टिपटलकी देखी हुई प्रतिमाका रास्त आकार रोगीके नेत्रके दृष्टिपटलके जिस भागसे वह बनती है उसके जैसा ही होता है तो भी उसकी मानसिक तसबीरका साफ जाहीर आकार परीक्षक जिस अन्तरपर उसको प्रक्षेपन कर सकता है उस अन्तरपर अवलम्बित होता है ऐसा **फ्रास्ट** का मत है। इसी वजहसे नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे देखी हुई प्रतिमाका साफ आकार भिन्न भिन्न परीक्षकोंको भिन्न भिन्न मालूम होगा। ये फर्क होनेकी वजहसे देखे हुए नेत्रके नापन पद्धतिमें कुछ अन्दाजा मुकर्रर करना जरूरी होता है जिससे नेत्रतलकी क्षतिका स्थान और आकार दर्ज करना संभाव्य होसके। इसी लिये नापनका एकं नेत्रबिम्बका व्यास माना गया है। मसलन ऐसा कह सकते हैं, कि कृष्णपटलका सुखडा हुआ धब्बा २ बिम्ब × ३ बिम्ब व्यास (नेत्रबिम्बका व्यास बि. व्या.) इतने क्षेत्रका है और वह दृष्टिस्थानके नीचे १ बिम्ब इतना है।

अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमेंकी प्रतिमाके आकार का अभिवर्धनः—इस हाल-तमें प्रतिमाका आकार देखे हुए नेत्रकी वक्रीभवनकी अवस्थापर और उस नेत्रके सामने जिस

अन्तरपर युगलोन्नतोदर शीशा पकडा होगा उस पर अवलंबित रहता है। लेकिन नैसर्गिक नेत्रमें, शीशा किसी भी अन्तरपर पकडा हो प्रतिमाका आकार कायम रहता है (चि. नं. ६८ देखिये)। प्रतिमाका यह आकार रचनाके घटकोके आकारसे चार या पांच गुना बढ़कर होता है। यदि शीशेको रोगीके नेत्रके नज़दीक लाया जायेगा तो प्रतिमा ऱ्हस्वदृष्टिमे छोटी होती जायेगी और दीर्घ दृष्टिमें बढ़ती जायेगी। (चि. नं. ७० देखिये)। यदि युगलोन्नतोदर शीशेको उसके नाभ्यन्तरसे रोगीके नेत्रसे ज्यादह दूरीपर हटाया जाय तो प्रतिमा ऱ्हस्व दृष्टिमें बढ़ती जायेगी, दीर्घ दृष्टिमे छोटी होती जायेगी और नैसर्गिक दृष्टिमें उसके आकारमें कुछ फर्क नही होगा (चि. नं. ७१ देखिये)।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परीक्षा की तुलना.

प्रत्यक्ष परीक्षा की पद्धतिमें परीक्षक अपने नेत्रको रोगीके नेत्रके नजदीक रखकर उसके नेत्रतलकी तफ़सीलो को, जो सीदे और बडे हुए से मालूम होते हैं, इनको देखता है। प्रत्यक्ष परीक्षामें तफसीलों का अभिवर्धन ज्यादह प्रमाणमें होता है लेकिन नेत्रतल का क्षेत्र कमतर दिखाई पडता है। इससे सूक्ष्म फर्कों की जाच अच्छी होती है और यह वक्रीभवन का अन्दाजा करने को लायक होती है।

अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमे परीक्षक रोगीके नेत्रको एक हाथ लम्बाई के फासले परसे देखता है। अप्रत्यक्ष परीक्षामें नेत्रतल की प्रतिमा प्रत्यक्ष परीक्षामे जो प्रतिमा दिखाई पड़ती है उससे छोटी होती है, लेकिन नेत्रतलका क्षेत्र बडा दिखाई पड़ता है। कहें तो कह सकते हैं, कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परीक्षा की तुलना सूक्ष्मदर्शक यंत्रके कमशक्तिवाले और अतिवृद्धि समर्थ शीशेके साथ कर सकते हैं। अप्रत्यक्ष पद्धतिमें तफ़सील ज्यादह तादादमें दिखाई पड़ते है और इसी वजहसे वह ज्यादह पसंद मानी जाती है। लेकिन दोनो पद्धतिका इस्तेमाल करना ज्यादह मुनासिब है। क्योकि अतिमहाबलि ऱ्हस्वदृष्टित्व या जब नेत्रगोलकके वक्रीभवन मार्ग धुंधलेसे मालूम होते है ऐसी अवस्थाओमे अप्रत्यक्ष परीक्षा की पद्धतिका खातिरदारीसे इस्तेमाल करना संभाव्य होता है।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षाका इस्तेमाल निम्नलिखित बातोंके लिये किया जाता है:—(१) नेत्रके वक्रीभवन मार्गोंमेकी अपारदर्शकता देखना: (२) नेत्रतलका गौर करना: (३) वक्रीभवन दोपकी खोज करना: (४) नेत्रतलके भिन्न भिन्न भागोके समतलके फर्क जानना।

नेत्रके वक्रीभवन मार्गोंमेंकी अपारदर्शकताः—यह देखनेके लिये नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके अन्तर्वृत्त दर्पणका ३० सेन्टीमिटर फासले परसे इस्तेमाल करते हैं। अपारदर्शकता लाल परदेपर काले धब्बे जैसी या बादल जैसी दिखाई पड़ती है। इस पद्धतिमे जो अपारदर्शकता काली मालूम होती है वह प्रकाशको तिरछे तरहसे नेत्रपर केन्द्रीभूत करनेसे सुफेद या भूरे रंगकी मालूम होती है। इसकी वजह यह होती है, कि नेत्रतलसे निकलनेवाली किरणें उसके पिछले पृष्ठ पर आघात करके वापीस जाती हैं जिससे वे परीक्षककी नज़रमें नहीं आती। तिरछे प्रकाशनमें प्रकाशकी किरणें अपारदर्शकता पर सामनेसे आघात करनेसे नेत्रतलको नही जा पहुंचती बल्कि परिवर्तित होनेसे परीक्षकके नेत्रमे घुस जा सकती है।

पहले पहल यह देखना चाहिये, कि अपारदर्शकता स्थिर है या तैरनेवाली है : रोगीको नेत्रको चारों ओरको ऊपर, नीचे बाजूको और फिर सामनेको जल्द घुमानेको कहना और फिर इस चलनका अपारदर्शकता पर क्या असर होता है यह देखना। अपारदर्शकता तैरनेवाली हो तो वह नेत्र स्थिर होनेपर भी फिरती रहेगी। वह चाक्षुषजलमें या स्फटिकद्रवमें होगी। यदि वह चाक्षुषजलमें हो तो उसपर प्रकाश केन्द्रीभूत करके देख सकते है या उसको युगलोन्नतोदर शीशेमेंसे देखना संभाव्य होता है। अपारदर्शकता स्फटिक द्रवपिंडमें तैरती हो तो समझना चाहिये कि स्फटिकद्रवपिंड ज्यादह द्रवमय हुआ है। यद्यपि स्फटिकद्रवपिंडमेंकी अपारदर्शकता आम तौरसे तैरनेवाली होती है तो भी चंद अवस्थामे स्थिर जैसी दिखाई पड़ती है। यह अपारदर्शकता और तारकापिधान और स्फटिकमणिमेंकी अपारदर्शकता अचल होती है।

अपारदर्शकताका स्थान निर्णय करना यह निश्चित करनेकी दूसरी बात है। तारकापिधानमेंकी अपारदर्शकता और स्फटिकमणिके सामनेके या पिछले भागमेंकी या स्फटिकद्रव-

चित्र नं. ७९

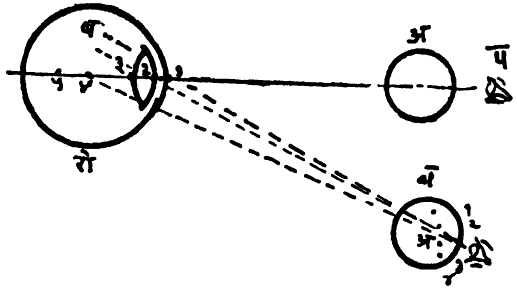

नेत्रगोलकमे के अपारदर्शक डागके स्थान बतलानेका चित्र (स्वान्झी)

पिंडमेंकी अचल अपारदर्शकता इनका सापेक्ष स्थान निर्णय करनेके लिये उनका कनीनिकाकी किनारसे वस्तुस्थल भेदाभास किसतरहका दिखाई पड़ता है यह देखना चाहिये।

चित्र न. ७९ मे ऐसा समझिये कि दृगाक्षकी रेषामें चार अपारदर्शक डाग भिन्न भिन्न गहराईमें है : १. तारकापिधानमें, २ स्फटिकमणिके सामनेके आवरणमें, ३. स्फटिकमणिके पिछले ध्रुव पर; ४. स्फटिकद्रवपिडमे स्थिर है।

यदि परीक्षक रोगीके नेत्रके दृगाक्षकी दिशामे देखें तो उसको एक ही अपारदर्शक डाग कनीनिकाके केन्द्रस्थानमें दिखाई पडेगा। यदि रोगी ऊपरकी ओरको देखे या परीक्षक नीचे सरकजाय तो उसको चारों अपारदर्शक डाग दिखाई पडेगे चित्र ब.। २. जो स्फटिकमणिके सामनेके आवरणमें होता है वह कनीनिकाके समतलमें उसी जगहमें दिखाई पडेगा; १ जो अ ब की दिशामें दिखाई पडता था वह उपरकी ओरको सरक गया है ऐसा मालूम होगा, ३ और ४ नीचेकी ओरको सरक गये है ऐसा भासमान होगा।

नेत्रको नीचे घुमानेसे अपारदर्शकता का जाहीरचलन उपरकी ओरको होता है ऐसा मालूम हो तो यह बात स्पष्ट है कि अपारदर्शकता का स्थान तारकाके समतलके पीछे है, नेत्रको जिस दिशामें घुमाया हो और उसी दिशामें अपारदर्शकताका जाहिर चलन होता हो तो अपारदर्शकताका स्थान कनीनिकाके समतलके सामने है ऐसा मान सकते हैं। रोगीका नेत्र स्थिर रखकर परीक्षक सरक जाय तो कनीनिकाके सामनेके स्थानकी अपारदर्शकताका जाहीर चलन विरुद्ध दिशामें और जो कनीनिकाके पीछेके स्थानमें हो उनका चलन उसी दिशामें भासमान होगा। आखरीमें अपारदर्शकता दिखाई पडी तो उसको नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके छेदके पीछे २०·० डी बलके युगलोन्नतोदर शीशेको रखकर नज़दीकसे उसकी जांच करना। इस तरकीबसे तारकाका फटा हुआ भाग या स्फटिकमणि अपने स्थानसे थोडा सरक गया हो तो उसको भी देख सकते हैं। इस तरकीबसे बिलकुल बारीक अपारदर्शक डाग को देखना संभाव्य होता है। लेकिन इस समय सादे दर्पणका इस्तेमाल करना मुनासिब माना गया है क्यों कि उसके कमतर प्रदीपनसे बारिक अपारदर्शकताको अच्छी तरहसे पहचान सकते हैं।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे नैसर्गिक नेत्रतलका दिखाई पड़नेवाला दृश्य

नेत्रगोलकके भीतरी और पिछले भागको नेत्रतल (फन्डस) कहते है। सबसे पहले ध्यानमें आनेवाली बात **नेत्रतल का रंग** यह होती है। आम तौरसे हिन्दवासी लोगोंमें जिनके बाल काले होते है, उनके नेत्रतल का रंग एक सहा चमकदार कुछ नारिंगी लाल रंगका होता है। भूरे बालवाले यूरोपियन लोगोंमें नेत्रतलका रंग नारिंगी और सिन्दूरके मिश्रणसे बने हुए रंग जैसा मालूम होता है। और नीग्रो लोगोंमें यह रंग कपील चाकलेट जैसा भासमान होता है। नेत्रतलके रंगमें फर्क होनेके कारण आमतौरसे कृष्णपटल की रचना और फस्का पेशिया ये होते हैं; कुछ प्रमाणमें चक्षुष नीललोहित पिंग (व्हिज्युअल परपल), और कृष्णपटल तथा दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनीयोंका भी हिस्सा होता है।

नेत्रतलमें दूसरी ममूद करनेवाली बात **नेत्रबिम्ब** यानी **दृष्टिरज्ज्यूका शीर्ष** (आपटिक डिस्क) यह होती है। यह वृत्ताकार या अन्डाकृति होता है, जिसका लम्बा व्यास खड़ा होता है। इसका पड़ा नाप १.१२५ से १.७५ मि. मि. इतना माना गया है। नेत्रबिम्ब का मध्यभाग कुछ सुफेद लाल रंगका, कुछ अन्दर खसा हुआ होता है। कुछ मिसालोंमें शुक्लपटलके गलनी सदृश परदेके (लामिना क्रिब्रोसा) भूरे रंगके निशान दिखाई पड़ते है। बाजे वख्त यह भाग दृष्टिपटलकी रोहिणियोंसे ढका रहता है। मध्यभागका बाहरी यानी दूसरा भाग नेत्रबिम्ब की किनारतक का होता है। ये दोनों भाग एक सहा दिखाई पडनेसे उनमें फर्क करना संभाव्य नही होता। तीसरा यानी बिलकुल बाहरी भाग– कभीकभी यह बारिक सुफेद शुक्लपटलके वलय (स्क्लेरल रिंग) से बन जाता है; बाजे वख्त यह वलय सिर्फ एकही ओरको नज़रमें आता है, ऊपरकी और नीचेकी ओरको नहीं दिखाई पड़ता। साधारणतया नेत्रबिम्ब का भीतरी भाग लाल गुलाबके रंगका और बाहरी यानी दृष्टिस्थान की ओरका भाग सुफेद जैसा दिखाई पडता है।

दृष्टिस्थान और दृष्टिस्थान केंद्र (म्याकुला ल्युटिया और फोव्हिया)

'यह नेत्रतलमें देखनेकी तीसरी महत्त्वकी बात होती हैं। जब दृक्शक्ति की तीव्रतामें

फर्क होता है तब इसकी जांच करना जरूरी होती है। प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें यह नेत्रबिम्बकी बाहरी और उसकी नीचेकी किनारकी आडी रेखामें, और नेत्रबिम्बके आडे व्यासके दो से अढाईके लम्बाईके फासलेपर होता है। यदि कनीनिका संकुचित हो या दृष्टिस्थानकी प्रतिक्रियासे तकलीफ पैदा होती हो, तो रोगीको अपनी कनपुटी की यानी बाहरकी ओरको देखनेको कहनेसे वह जल्द दिखाई पडेगा। अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें यह नेत्रबिब की ऊपरकी किनारपर दिखाई पडेगा।

नवजवानोंके अव्यंग नेत्रगोलकमें दृष्टिस्थातका रंग आमतौरसे नेत्रतलके जैसाही होता है, सिर्फ उसकी भीतरी किनारका रंग ज्यादह लाल दिखाई पड़ता है। ध्यानमें रखिये, कि (१) नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दर्पणमेंके छिद्रके किनारकी वलयाकार काली छाया नेत्रतल-पर गिरती है जिसको भूलसे रंजित डाग मानना संभव है। लेकिन दर्पणको हिलानेसे इस

चित्र नं. ८०

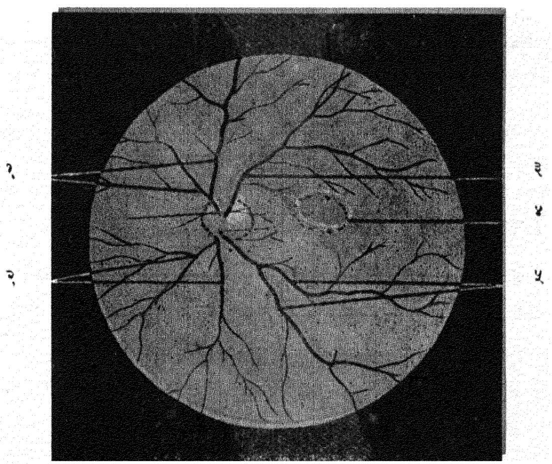

चित्र नं ८०—अप्रत्यक्ष परीक्षामें नैसर्गिक नेत्रतलका दृश्य (**जीगर**)

१ अधोनासिकानीलाकी शाखाएँ : २ ऊर्ध्व नासिका नीलाकी शाखाएँ :
३ अर्धाशंख नीला : ४ दृष्टिस्थान :
५ ऊर्ध्वशंख नीलाकी शाखाएँ

डागमें चलन दिखाई पड़ता है जिससे इसका सच्चा स्वरूप फौरन ध्यानमें आजायेगा। (२) दृष्टिस्थान केन्द्रके इर्दगिर्द बारीक डाग, जो चरबीके या कोलेस्ट्रिनके स्फटिकके बने हुए होते है, और कभी कभी नैसर्गिक दृक्शक्तिवाले लोगोंमें भी दिखाई पड़ते हैं दृष्टिस्थानका रंग इस्तेमाल किये हुए प्रकाशपर अवलम्बित होता है।

ध्यानमें रखिये कि, अंधियारी कोठरीके चिराग पर वर्णपटके–दृश्यविच्छिन्न किरणोके नीले रंगकी कांचकी तश्तरीको पकड़नेसे लाल रंगरहित प्रकाश पाया जायगा, जिससे नेत्रतलकी तफ़सीले दोनों प्रकाशसे देखना संभाव्य होगा।

दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणीमें रक्त जम जानेसे रुकावट हुई हो तो दृष्टिस्थान सुफ़ेद नेत्रतलमें चेरी लाल रंगका धब्बा जैसा दिखाई पड़ता है। दृष्टिरज्जुके क्षयमें बिलकुल सुफ़ेद नेत्रबिम्बके साथ दृष्टिस्थान और नेत्रतल लाल रंगके दिखाई पड़ते हैं।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका वक्रीभवनांक मापन यंत्र जैसा इस्तेमाल दो कारणोके लिये कर सकते हैं—(१) वक्रीभवनकी किस्म जानना; (२) इसका बल मुकर्रर करना। पहलेके लिये दर्पणको रोगीके नेत्रके सामने ३० से ५० सेन्टीमीटर फासले पर पकड़कर परीक्षा की जाती है। परीक्षक रोगीके नेत्रको प्रकाशित करके दर्पणके छेदमेंसे दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियोको देखनेकी कोशिश करता है। यदि एकाद रक्तवाहिनी दिखाई पडी तो नेत्र अव्यग–नैसर्गिक है ऐसा समझना। वक्रीभवनकी किस्म जाननेके लिये परीक्षकने अपने सिरको एक ओरसे दूसरी ओरको हिलाकर रक्तवाहिनियोमें कुछ चलन दिखाई पड़ता है या नहीं यह देखना। यदि उनका जाहिर चलन परीक्षकके सिरके चलनकी दिशामे हो तो व्यंग दीर्घ दृष्टिका और विरुद्ध दिशामें हो तो व्यग ऱ्हस्वदृष्टिका है ऐसा मान सकते हैं।

परीक्षक वाकिफ हो, तो नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे वक्रीभवन दोष मुकर्रर कर सकता है। इसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिका इस्तेमाल करते हैं तो भी पहली सादगी होनेसे ज्यादह पसंद मानी गयी है। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे वक्रीभवन दोष मुकर्रर करनेके समय ध्यानमें रखनेकी बातें

(१) रोगी और परीक्षक इन दोनोंकी दृक्संधान शक्ति ढीली करनी चाहिये;
(२) नेत्रतलके कोई एक खास भागके वक्रीभवन दोष जाननेके लिये चुनना चाहिये।
(३) परीक्षकके नेत्रमें वक्रीभवन दोष हो तो पहले उसको चश्मेसे सुधारना जरूरी है।
(४) जिस नेत्रका वक्रीभवन दोष जांचना हो तो उसके नज़दीक जितना जाना संभाव्य हो उतने नज़दीक परीक्षकने जाना जरूरी है।
(५) नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे की हुई खोजको अन्य कसौटीसे जांचकर फिर चश्मा मुकर्रर करना चाहिये।

नेत्रतलकी प्रतिक्रियाकी कसौटी

रोगीके नेत्रान्तरंगको दर्पणसे प्रकाशित करें, और दर्पणके **नेत्रतल प्रतिछाया गतिनिरीक्षण** (रेटिनास्कोपी) छेदमेंसे नेत्रको देखनेके समय परीक्षक दर्पणको टेढा करें, तो उसको कनीनिकाके क्षेत्रमेंसे कुछ छाया पार जाती है ऐसा मालूम होगा। यह पहले ही कहा है कि (१४४ पन्ना देखिये) छायाकी दिशा और उसके चलनकी तेजीसे वक्री-भवन दोषकी किस्मका और उसके प्रमाणका बोध हो सकता है। चलन तेजीका हो, तो वक्रीभवन दोषका प्रमाण कमतर, और चलन धीरे धीरे होता हो तो दोषका प्रमाण

ज्यादह बढ़ा है ऐसा मान सकते हैं । छायाकी गतिकी दिशासे, वाकिफ परीक्षक दोषकी किस्मको जान सकता है। ध्यानमें रखिये, कि छायाकी गतिकी दिशा इस्तेमाल किये हुए दर्पणकी किस्मपर–नतोदर या सादा–अवलम्बित रहती है । नेत्रमें दर्पणसे डाले हुए, प्रकाशकी गतिसे जो छाया मालूम होती है उसके निरीक्षणसे वक्रीभवन दोषको जाननेके इल्मको **नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण** (रेटिनास्कोपी) कहते हैं। इस बातको अच्छी तरहसे समझिये, कि नेत्रतलका प्रकाशित क्षेत्र जहां खतम होता है और अंधियारा क्षेत्र शुरू होता है उसीको छाया कहा जाता है, नेत्रतलपर किसी पदार्थकी छाया नही गिरती।

नेत्रतल प्रतिछाया गतिनिरीक्षण का असली तत—नेत्रतलके छायाके उलटानेवाले बिन्दुकी–दूरबिन्दुकी (रिव्हरसल पॉइन्ट) खोज करना यही होता है । जब ऱ्हस्वदृष्टिके नेत्रतलकी परीक्षा नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिसे की जाती है, तब उसकी सीदी प्रतिमा दिखाई पड़ती है । इस नेत्रसे कुछ फासलेपर हवामें उसकी उलटी प्रतिमा उसके दूरबिन्दुपर यानी सहचरित या अनुबद्ध केन्द्र पर बनती है । और इसी स्थानमें सीदी प्रतिमाका उलटी प्रतिमामें बदल होजाता है । नैसर्गिक और दीर्घदृष्टि नेत्रोको उनके सामने उन्नतोदर शीशा रखकर उनको हुनरीसे बना हुआ कृत्रिम दूरबिन्दु दिया जाता है, जिसका स्थान परीक्षकके तारकापिधानपर या उसकेपार होता है ऐसा समझना ।

नेत्रतल प्रतिछाया गतिकी कसौटी से ज्यादह बढ़कर दूसरी अन्य कसौटी नही है। यह कसौटी, वस्तुविषयक स्वरूपकी होनेसे, नवबालकोमें, गूगे और बहरे, निरक्षर, बहाना करनेवाले लोग, और जो लोग नुकसान का बदला चाहते हैं, वे और सब किस्मके वक्रीभवनके दोषवालोंमें अच्छी काबिल होती है । इसके इस्तेमालसे सिर्फ ऱ्हस्वदृष्टि या दीर्घदृष्टि की ठीक ठीक खोज कर सकते हैं इतनाही नही, बल्कि इससे निर्बिन्दुताका ठीक ठीक नापन कर सकते है और उसके अक्षकी दिशाको भी जान सकते हैं ।

इस कसौटी का इस्तेमाल करनेके समय परीक्षकने, यदि उसके नेत्रोंमें व्यंग हो तो, अपने रास्त चष्मेका इस्तेमाल करना मुनासिब है। परीक्षक अपने दोनों नेत्रोंको खुले रखकर छायाके चलन को देखे, तो उसको अपनी दृक्संधान शक्तिकी तरफ ध्यान देनेकी कुछ जरूरत नहीं पडेगी। लेकिन रोगीकी दृक्संधान शक्तिको, उसके नेत्रोंमें सायक्लोप्लेजिक दवा डालकर निकम्मा करना जरूरी है। इस नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण की कसौटीमें जिसका व्यास २ सेन्टीमिटर होता है, और जिसका नाभ्यन्तर २५ सेन्टीमिटर है और जिसके केन्द्रस्थानमें २ मि. मि. आकारका गोलाकार छेद होता है ऐसे अन्तर्वृत्त दर्पण का इस्तेमाल किया जाता है । इस परीक्षामे चष्मेकी कमान और शीशोंकी सन्दूककी जरूरी होती है । परीक्षा पूर्णतया अन्धियारी कोठरीमें की जाती है ।

चिरागको रोगीके सिरके ऊपर और पीछेकी ओरको रखकर परीक्षकने रोगीके बिलकुल सामने एक मिटर फासलेपर बैठना चाहिये। जिस नेत्रकी परीक्षा करनी हो उस नेत्रपर दर्पणसे प्रकाश डाले । फिर परीक्षकने दर्पणमेके छेदमेंसे देखनेके समय दर्पणको पहले खडी लम्ब रेषामें फिर आडी रेषामें किंचित झुकाकर छायाके चलन की तरफ ध्यान देना । ध्यानमें रखिये की अन्तर्वृत्त दर्पणके इस्तेमालमें, ऱ्हस्वदृष्टिका प्रमाण १ डी. से

बढकर हो तो, छाया का चलन दर्पणकी चलनकी दिशाके साथ होगा, और अव्यंग नेत्रमे, दीर्घदृष्टि और कमबलकी ऱ्हस्व दृष्टिमें दर्पण की चलन की दिशाके विरुद्ध दिशामे होगा। ऐसा समझिये, कि छाया का चलन, दर्पणके चलन की दिशाके विरुद्ध दिशामें धीरेधीरे होता है। तो इससे अनुमान कर सकते हे कि, रोगी दीर्घदृष्टिका है और उसकी दीर्घ-दृष्टिका बल ज्यादह है। फिर रोगीके नेत्रोंपर चष्मेकी कमान रखना और पहले जिस नेत्रकी परीक्षा न करनी हो उसके सामने काली अपारदर्शक तश्तरी चष्मेकी कमानमें रखकर ढांकना। रोगीको परीक्षकने अपने माथे की ओरको देखनेको कहना। दूसरे नेत्रके सामने समझिये कि उन्नतोदर शीशे (+४.०डी) को चष्मेकी कमानमे रखनेसे छायाका चलन जल्द, लेकिन दर्पणकी दिशाके विरुद्ध दिशामें होता है ऐसा मालूम हुआ, तो अनुमान कर सकते है कि दीर्वदृष्टिका बल कुछ कमतर हो गया है। यदि उन्नतोदर शीशेका बल अब बढाया जाय (+५ ०डी) तो छायाका चलन दर्पणके चलनकी दिशाके विरुद्ध दिशामे नही बल्कि उसके साथ होता है ऐसा दिखाई पडेगा। इससे यह स्पष्ट होगा कि दीर्घ-दृष्टिका नापका बल इस शीशेका बल, उसमें बीज गणित की संख्या–१.०डी, मिलानेसे पाया जानेवाले योग फलके बराबर है। परीक्षक रोगीके सामने एक मिटर फासलेपर होनेसे शीशेके बलमे–१.०डी यह संख्या मिलाना जरूरी है। यानी इस मिसालमे दीर्घदृष्टिका बल (+५ ०डी·–१.०डी=+४.०डी) +४·०डी इतना होगा। परीक्षक यदि दो मिटर फासलेपर हो तो शीशेक बल मे बीज गणितकी–५·०डी इस संख्याको मिलाना होगा, जिससे छायाका चलन विरुद्ध दिशामें हो जायेगा। इस छाया की कसौटीसे नेत्रके वक्रीभवनकी खडी अक्षरेषामेंका दोष जांचनेके लिये अन्तर्वृत्तदर्पणको उसके आडे अक्षपर और उसके आडे अक्षका दोष जांचनेके लिये दर्पणको उसके खडे अक्षपर घुमाना चाहिये।

अब ऐसा समझिये, कि छायाका चलन दर्पणके चलनके साथ धीरे धीरे होता है ऐसा दिखाई पडे, तो अनुमान कर सकते हे कि उस नेत्रमे ऱ्हस्वदृष्टिका दोष है। इसका नाप करनेके लिये परीक्षकको रोगीके नेत्रके सामने चप्मेकी कमानमें नतोदर शीशोको छायाका चलन पहलेकी दिशाके कुछ विरुद्ध दिशामें हो जानेतक, बढते प्रमाणमे रखना होगा। छायाका चलन जिस शीशेसे विरुद्ध होगा उस शीशेके बलमे बीजगणितकी संख्या–१·०डी मिलानेसे पाया जानेवाला कुल योग--फल इस ऱ्हस्वदृष्टिका नाप होगा।

निर्बिन्दुतामें–या वैष्यम्य दृष्टिमें–कनीनिकाके क्षेत्रमे एक प्रकाशका पट्टा दिखाई पडेगा, जो आमतौरमे खडा या आडा जैसा मालूम होता है; लेकिन कभी कभी तिरछा जैसा भी दिखाई पडता है। इस पट्टेकी दिशा कोई भी हो, ध्यानमे रखिये कि, इससे नेत्रके वक्रीभवन दोषकी असली रेखांशकी दिशा ठीक बतलाई जाती है। प्रकाशका पट्टा, दोष पूर्णतया दुरुस्त करनेवाला गोलाकार शीशा नेत्रके सामने रखनेके पहलेही दिखाई पड़ता है; लेकिन कमतर बलकी ऱ्हस्वदृष्टि या दीर्घदृष्टि हो तो यह दोष दुरुस्त करनेवाला गोला-कार शीशा नेत्रके सामने रखनेके बाद यह प्रकाशका पट्टा दिखाई देता है। इस नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण पद्धतिसे निर्बिन्दुताकी खोज करनेमे इस दोषका ज्यादहसे ज्यादह बडे और छोटेसे छोटे रेखांशका अलग अलग गोलाकार शीशोसे नापन करना यही असली

सवाल होता है। इन दोनो नापनमेका फरक निर्बिन्दुका नाप होगा। मगर ध्यानमें रखना, कि प्रकाशित पट्टेकी किनारिया जांचे हुए रेखांशसे समकोण करती है।

चित्र नं. ८१

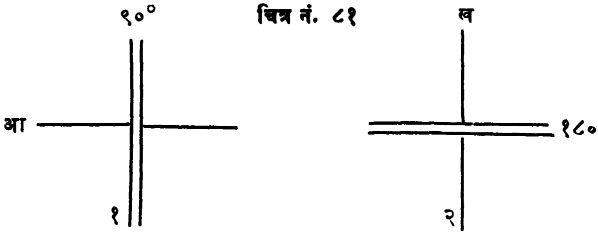

चित्र न. ८१ से जाची हुई निर्बिन्दुताकी दुरुस्ती ध्यानमे आ जायेगी बायी ओरके रेखाचित्रसे (१) जो निर्बिन्दुता दिखाई देती है उसके (आ) आडे रेखाशको दुरुस्त करनेमें बेलनाकार शीशेका अक्ष (सिलिन्ड्रिकल लेन्स) आडे लंब रेखाशसे समकोण करे इसलिये ९०° पर रखना चाहिये; और दाहिनी ओरको रेखाचित्रसे (२) ध्यानमे आ जायेगा कि निर्बिन्दुताके खडे रेखांशको (ख) बेलनाकार शीशेका अक्ष समकोण होवे इसलिये १८०° पर रखना चाहिये। ऐसा समझिये कि चित्र न. ८१ उस नेत्रका है जिसकी निर्बिन्दुताके खडे रेखांशका दोष + ४·०डी से दुरुस्त होता है। और आडे रेखांशका दोप–४.०डी से। यह निर्बिन्दुता मिश्र स्वरूप की है; और इस वक्रीभवन दोषका लेखन इन शीशेके बलमे बीज गणितकी संख्या १·० डी जिससे छायाके चलनकी दिशा उलटी हो जाती है, मिलाकर इस तरहसे कर सकते हैं।

चित्र नं. ८२

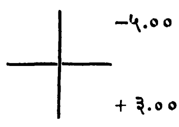

इस मिसालमे दुरुस्ती तीन तरहमे बतला सकते है

१. – ५·०० बेलनाकार शीशा (रेखांश १८०°) ⊂ + २·०० (रेखाश ९०°)

२. – ५·०० गोलाकार शीशा ⊂ + ८·०० बेलनाकार शीशा (रेखाश ९०°)

३. + ३·०० गोलाकार शीशा ⊂ – ८०० बेलनाकार शीशा (रे० १८०°)

आमतौरसे तीसरी तरह चष्मेवालोंको ज्यादह पसंद होती है। क्यो कि घन चिन्हांकित शीशोंपर ऋण चिन्हांकित शीशोको बनाना उनको आसान होता है।

अनुलोम जातीय निर्बिन्दुता (अस्टिकम्याटिझम ॲकार्डिंग टू रूल):–दीर्घ दृष्टिमें ज्यादह प्रमाणमें निर्बिन्दुता–वृषस्यदृष्टि–दिखाई पड़ती है, जिनमें ज्यादह वक्रीभवन दोष खडी अक्षरेषामें होता है और इसी वजहसे उन्नतोदर बेलनाकार शीशे को खडी अक्ष-रेषामें रखनेसे यह दोष दुरुस्त कर सकते है। इस अवस्थाको **अनुलोम जातीय निर्बि-**

न्दुता कहते हैं। यदि यह दोप उन्नतोदर बेलनाकार शीशको आडी अक्षरेषामे रखनेसे दुरुस्त हो तो उस अवस्था को प्रतिलोभ जातीय निर्बिन्दुता (अस्टिकम्याटिझम अगेन्स्ट धी रूल) कहते है।

न्हस्वदृष्टिमे आमतौरसे प्रतिलोभ जातीय निर्बिन्दुता दिखाई पडती है जब नतोदर बेलनाकार शीशेको आडी अक्षरेषामे रखनेसे दोष दुरुस्त होता है।

इस नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण पद्धतिसे निर्बिन्दुता की बराबर अक्षरेषा मुकर्रर करना आसानीसे हो सकता है। इसमे अक्षरेषा दर्शक तरकीब का इस्तेमाल करते हैं। इस तरकीब को ऍक्सनामिटर कहते हैं। यह एक गोल तश्तरी होती है जिसके मध्य-भागमे एक छेद होता है, और इस छेदके केन्द्रसे दोनों बाजूको जानेवाली एक सुफेद लकीर निकाली होती है। इस गोल तश्तरीके परिधि भागपर अंशकी संख्याके अंक लिखे हुए होते हैं। इस कसौटीका इस्तेमाल करनेके समय इस तश्तरीको चष्मे के कमानमे रखकर उसको इतना घुमाया जाय कि उस परकी सुफेद लकीरे प्रकाशित कनीनिकामे दिखाई देनेवाले पट्टेकी लम्बी रेखासे मिलती हो जावें। चष्मेके कमान परके जिस अंशके अंकको तश्तरीकी सुफेद रेषा बतलायेगी उसी अक्षमें बेलनाकार शीशेको रखना चाहिये।

इस कसौटीमें दोषकी दुरुस्तीका प्रमाण ज्यादह होनेका कारण रोगी और दृष्टि-विशारद इन दोनोमेंका फासला होता है। जब यह फासला १ मिटर होता है तब ज्यादह दुरुस्तीका प्रमाण १ डी बलके शीशेके नाभ्यन्तर इतना होता है; फासला २ मिटर का हो तो प्रमाण ०.५० डी बलके शीशेके नाभ्यन्तर इतना; और फासला ४ मिटर हो तो प्रमाण ०.२५ डी इतना होगा। ज्यादह तर बहुतसे दृष्टिविशारद इस कसौटीका इस्तेमाल १ मिटर फासले परसे करते हैं; लेकिन कोई कोई दृष्टिविशारद मानते है, कि निर्बिन्दुताका दोष कमतर हो तो परीक्षा २ मिटर फासले परसे करना ज्यादह मुनासिब होता है। यह सख्या, छाया निरीक्षणकी पद्धतिसे जाची हुई संख्यासे बाद करना चाहिये।

कैंची सदृश चलन

उपर वर्णन किये हुए छायेका चलन समझना आसान होता है। लेकिन ऐसी प्राकृतिक घटना इस छायाके चलनमें दिखाई पडती है कि जिसको कैंची सदृश छायाका चलन कहा जाता है। यह अनभ्यस्त या नवसिखिया छात्रको जानना मुष्किल होता है। इस दृश्यमे दो आडे प्रकाशित पट्टे दिखाई पडते हे जिनके बीचमे एक काला पट्टा होता है। दर्पणको धीरे धीरे घुमानेसे दोनो प्रकाशित पट्टे नजदीक जाकर काले पट्टेको ढाक देते हैं; और इसी वजहसे इस दृश्यको कैंची सदृश चलन ऐसा नाम दिया है। यह विषम या अनियमित निर्बिन्दुताका लक्षण समझना चाहिये। इनका ज्यादह बयान 'वक्रीभवनके दोष' इस अध्यायमे पाया जायेगा।

सादे दर्पणसे नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण—सादे दर्पणका इस्तेमाल करनेमें प्रकाशका उगमस्थान दर्पणके नजदीक होना चाहिये। इस दर्पणसे छायाका चलन जो दिखाई पड़ता है वह अन्तर्वृत्त दर्पणसे दिखाई देनेवाले चलनके विरुद्ध दिशामे होता है, यानी सादे दर्पणसे अव्यग नेत्र, दीर्घदृष्टि, कमबलकी न्हस्वदृष्टिवाले नेत्रमे छायाका चलन दर्पणके चलनके साथ होता है।

नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण की प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें गलती होनेके कारण—परीक्षकको नेत्रतल प्रतिछाया गतिके निरीक्षणसे वक्रीभवन दोषकी जाचमे और कसौटी हरूफोंकी चष्मेके इस्तेमालसे की हुई जाचमें फरक दिखाई पड़नेके कारण निम्न लिखित जैसे होगे—

(१) नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दुरुस्ति करनेवाले शीशेको दोनों नेत्रोके सामनेके प्रतिबद्ध केन्द्रोके दरमियान न पकडे।

(२) परीक्षक रोगीके नेत्रतलके दृष्टिस्थानके बदले दूसरे स्थानका दोष जाचे तो फरक दिखाई पडेगा। ध्यानमे रखिये कि, कभीकभी नेत्रबिम्बका समतल और दृष्टिस्थान का समतल इन दोनो में दो या तीन डीयापटरका फरक दिखाई पडता है।

(३) रोगीने अपनी दृक्सधान शक्तिको ढीली न की हो, या उसमे अप्रकट (छुपी) दीर्घदृष्टि पैदा हुई होगी या उसके तारकातीत पिंड की स्नायु ऐंठी होगी

(४) दोष सुधारनेके लिये परीक्षकने ज्यादहतर बलके नतोदर शीशेका या कमतर बलके उन्नतोदर शीशेका इस्तेमाल किया होगा; या अपने खास दृक्सधानशक्तिका इस्तेमाल किया होगा।

(५) दृष्टिपटल की रोहिणिया, जिनपर परीक्षक अपनी दृष्टि रखता है वे, दृष्टि-पटलके रचना घटकों मे ज्यादह गहराईके या ज्यादा उपरी समतलमें होगी।

(६) रोगीके दृगाक्षमें से उसका नेत्रतल देखनेके बदले उसके तारकापिधानके बाहरी भागमेंसे परीक्षक देखता होगा। ध्यानमे रखिये कि, जांचमे गलती होनेकी यह एक मामुली बात होती है।

(७) रोगी के अकली होनेमे हरूफोकी कसौटीके वक्त रोगीने फसाया होगा।

नेत्रतलके भिन्न भिन्न भागोंके समतलके फरक मुकर्रर करना यह बात महत्वकी होती है। दृष्टिरज्जुके शीर्षकी सूजन, जो दृष्टिरज्जूके दाहमें पायी जाती है, या उसका खोखला होना जो काच बिन्दुमे दिखाई पड़ता है इन अवस्थाओकी खोज करनेमे इसका इस्तेमाल किया जाता है। यह जाननेकी दो तरह होती है—एक वस्तुस्थल भेदाभासके दृश्यकी–च्युतिकी, या नेत्रतलके भिन्न भिन्न ऊँचाईके भागोंपरके बिन्दुओके वक्रीभवन दोषके नापनेकी। वस्तुस्थलभेदाभासका दृश्य अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमेके युगलोन्नतोदर शीशेको हिलानेसे दिखाई पड़ता है। इस शीशेको हिलानेसे ध्यानमें आजायेगा कि नेत्रतलकी प्रतिमाके दो भाग के चलनका प्रमाण भिन्न भिन्नसा होता है। यदि वे एक समतलमे न हों तो। काचबिन्दुके खोखलेकी किनारपर की रक्त वाहिनियोंके चलन की अपेक्षा खोखले तलपरकी रक्तवाहियोंका चलन जल्द होगा। दृष्टिरज्युके शीर्षके सूजनमे ही इसी तरहका दृश्य दिखाई पडेगा।

नेत्रतलके ऊँचे या खोखले भागोकी नेत्रान्तरंगदर्शक यत्रसे खोज करनेमें वक्रीभवन दोष नापन करनेकी पद्धतिका अवलम्ब किया जाता है। पहले कौनसे शीशेसे खोखले भागका तल स्पष्ट दिखाई पड़ता है यह देखना; फिर नैसर्गिक समतलके भागोंकी प्रतिमा कौनसे शीशेसें स्पष्ट होती है यह देखना। ध्यानमें रखना कि, दोनो शीशोंमेंके फरक के डीयापटर मूल्यको

०.३ से गुणा करनेसे जो गुण संख्या होगी, वह खोखलेकी गहराईके बराबर होगी । ऐसा समझो, कि कांचबिन्दुके खोखलेका तल–४.०डी से स्पष्ट दिखाई पडता है, और खोखलेकी किनार और इर्दगिर्द का दृष्टि पटल +१.० डी से स्पष्ट दिखाई पडता है यानी दोनोंमेंका फरक ५ डी होगा । इस संख्याको ०.३ से गुणा करनेसे गुण फल १.५ होगा । यानी खोखलेकी गहराई १.५ मिलिमीटर्स होगी । इसी तौरसे दृष्टिरज्जुके शीर्षकी सूजन का नापन कर सकते हैं ।

नेत्रमें घुसे हुए शल्यका स्थान मुकर्रर करना

नेत्रमें घुसे हुए शल्यकी जगह वक्त बे वक्त नेत्रपर प्रकाशको तिरछा केन्द्रित करनेसे, या नेत्रान्तरंगका परिप्रकाशन करनेसे या नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा करनेसे मुकर्रर करना संभाव्य होता है । लेकिन बहुतसे मिसालोंमें नेत्रके अन्दर रक्तस्राव होनेसे, या उसके घटक विपर्यस्त यानी ऐंठे हो जानेसे या उसमें दाहज फर्क होनेसे वह देखना संभाव्य नहीं होता । पहले जमानेमें जब शल्य यदि लोहा था फौलादका होता था तब उसको चुम्बक सूची लगाके उसकी जगह मुकर्रर करना संभाव्य होता था। चुम्बक सूची नेत्रको लगानेसे इस प्रकारका शल्य सूचीके तरफ सरकजानेसे नेत्रमें वेदना पैदा होती थी जिसके स्थानसे शल्यकी जगह मुकर्रर करते थे । हालमें क्ष किरणोंके इस्तेमालसे सब तरहके शल्यकी, सिर्फ लोहा या फौलाद का नहीं, जगह प्रत्यक्ष देखकर मुकर्रर करना संभाव्य हुआ है । यह जगह मुकर्रर करनेमें **लिओनार्ड, स्वीट** और **डेव्हिडसन** की पद्धति कामकी होती हैं ।

नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रमें सबसे पहले **लिओनार्ड**ने ही **क्ष** किरणोंका इस्तेमाल किया था । नेत्रमें घुसे हुए शल्यकी जगह मुकर्रर करनेकी उनकी तरकीबमें त्रिकोणमापनकी (ट्रायांगुलेशन)

चित्र नं. ८३

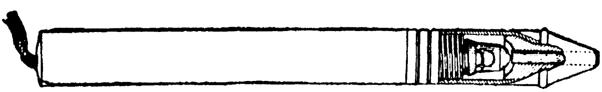

बुरदेमनका नेत्रान्तरंग परिप्रदीपन यंत्र

भूमिरेषा खोपडीकी छायाके सामने रखी जाती है । कैमराकी प्लेट पर प्रतिबिम्ब निर्दिष्ट अंतरपरसे और खास स्थानसे डाला जाता है जिससे अनेक बाजू और कोणका चित्र होता है । और इसपरसे दृष्टिविशारदको शल्यकी जगह मुकर्रर करना संभाव्य होता है ।

नेत्रान्तरंगका परिप्रदीपन (यानी ट्रान्सइल्युमिनेशन आफ दी आय)—इसमें नेत्रगोलकके बाहरी पटलपर, कृष्णपटलके अर्बुदके स्थानके सामने प्रकाशको केन्द्रीभूत करके उसका अन्तरंग प्रकाशित करते थे । सन १८८८ में **फान रेडस**ने वैद्युत यंत्रसे नेत्रान्तरंग प्रकाशित किया था । उनके पश्चात **लेबर, साक्स, रोको-दुव्हिनो** और **बुरदेमन** आदि लोगोंने इस यंत्रमें सुधार किये हैं । इन सब यंत्रोंमें बुरदेमनका यंत्र सबसे अच्छा माना गया है ।

इस यंत्रके इस्तेमालकी तरहः—यह परीक्षा अंधियारी कोठरीमें की जाती है । नेत्रको कोकेनसे सुन्न करके कनीनिकाको प्रसृत करना चाहिये । परीक्षकने रोगीके सामने खडे

रहकर नेत्रच्छदोंको पूरी तौरसे खोलना। यंत्रको रास्तकोणमें पकडकर उसकी नोकको शुक्लपटलके भिन्न भिन्न भागोंपर लगाकर नेत्रान्तरंग प्रकाशित करके कुछ फर्क दिखाई पड़ते हैं या नहीं यह देखना, नैसर्गिक नेत्रोंमें या मोतीबिन्दु हुआ हो तो भी कनीनिका लाल दिखाई पडेगी। यदि नेत्रगोलकके भीतर अर्बुद हुआ हो तो यंत्रकी नोक अर्बुदके सामनेकी ओरको हो जानेसे कनीनिका लाल नहीं बल्कि काली ही रहेगी। नेत्रके भीतर लहु जम गया हो, द्रवोत्सर्ग हुआ हो, अर्बुद या शल्य हो तो प्रकाशकी गतिको रुकावट होती है और नेत्रान्तरंगक प्रदीपन अच्छी तरहसे नहीं होगा। इस पद्धतिका असली फायदा नेत्राभ्यंतरके अर्बुद और दृष्टिपटलकी स्थानभ्रष्टता इन दोनों अवस्थाओंका निदान करनेमें दिखाई पड़ता है।

सायडरोफोन—नेत्रमेंके लोहे या फौलादके टुकडोंकी खोज करनेके लिये **जानसनने** एक यंत्र निकाला है। इस यंत्रमें वैद्युत चुंबक होता है जिसको टेलिफोन यंत्र जुडा हुआ होता है। इस यंत्रको लोहेके टुकडेके नजदीक लातेही विद्युत प्रवाहमें फरक होकर टेलिफोनका आवाज होता है जो आसानीसे सुनना संभाव्य होता है।

आफथालमोडायाफोनास्कोप—यह एक परिप्रकाशन यंत्र होता है, जिससे मुंहके कोटरसे सामनेकी ओरको तीव्र प्रकाश डालकर परीक्षकको नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके सिव नेत्रान्तरंग देखना संभाव्य होता है। इस यंत्रमें असलमें ८० बत्ती दीप्तिका एक वैद्युत चिराग, एक परावर्त्तक और एक जलशीतलकार उपकरण (वाटर कूलर) होता है। परीक्षा अंधियारी कोठरीमें की जाती है। रोगीका मूंह काले बुरकेसे--जिसमें नेत्रोंके लिये दो छिद्र होते हैं—पूर्णतया ढाका जाता है। रोगीने इस यंत्रको अपने मूंहके भीतर बिलकूल पीछेकी ओरको पकड़ना, फिर परीक्षक दोनों नेत्रगूहापर क्या असर होता है इसको देखता है। **हर्टझिलके** मतानुसार नेत्रगूहा, इर्दगिर्दके कोटर और नेत्रान्तरंगकी नामशहूर अवस्थाओंका निदान करनेमें यह पद्धति क़ाबिल होती है। इस परिप्रदीपनसे पहले कनीनिका संकुचित होकर फिर विस्तृत हो जाती है, जिससे नेत्रबिम्ब, दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियां और विकृत अवस्थाएं देखना संभाव्य होता है।

खंड द्वितीय

अध्याय ५

नेत्ररोगविज्ञानशास्त्र संबंधीकी कुछ कानूनी बातें

(थामस हाल शास्तिदके लेखका मतलब)

दृष्टिविशारदके पेशेमें कुछ महत्वकी जिन कानूनी बातोंसे उसका संबंध होता उनका यहां जिक्र करना मुनासिब होगा। ये बातें (१) चाक्षुष वाकिफगारकी गवा (२) चाक्षुष हानीकर चिकित्सा (आफथालमिक माल प्राकसिस) और (३) चाक्ष स्वास्थ्यसंबंधीके कानून इन स्वरूपकी होती हैं। इस जगह सिर्फ पहले दो बातोंका विचार करेंगे।

(१) चाक्षुष वाकिफगारकी गवाही

चाक्षुष वाकिफगार की गवाहीका (अ) वैद्यकीय और (ब) कानूनी परिणाम दोनोंका अलग अलग विचार करना मुनासिब होगा।

(अ) चाक्षुष वाकिफगारकी गवाहीका वैद्यकीय परिणाम

दृष्टिविशारदके पेशेमें विचार करना जरूरी होता है ऐसे आमतौरके जरर-

नेत्रगोलकके जररके संबंधीका खास तौरका बयान अन्य भागमें पाया जायगा। लेवि रुग्णालयमें इनका जो महत्व पाया जाता है उससे अदालतमें इन कुछ बातोंको और दूसरे तौरका महत्व होता है। इसलिये उन संबंधीका बयान यहां करना जरूरी समझ हैं। पहले पहल यह करना जरूर है कि भोटे शस्त्रसे भौंहको कीयी हुई जख्म और उ जगह तीक्ष्ण चक्कू जैसे शस्त्रसे कीयी हुई जख्म इन दोनोंमें फर्क करना अदालतमें ज्या महत्वकी बात है। इस तरहका फरक करना सब मिसालोंमें पहले आसान मालूम होग लेकिन तजरबा यह होता है कि यह बात इतनी आसान नहीं, क्योंकि जब कोमल घटको नीचे हड्डीका नोकदार भाग होता है तब उन घटकोंकी भोटे शस्त्रसे कीयी हुई जर चक्कू जैसे तीक्ष्ण शस्त्रसे कीयी हुई जख्म जैसी मालूम होती है।

भौंहकी भोटे शस्त्रसे कीयी हुई जख्म, जो चक्कूसे कीयी हुई जख्म जैसी भासम होती है, और खास चक्कूसे कीयी हुई जख्म इन दोनोंमेंका फर्क चार बातोंसे जान संभाव्य होता है। (१) भोटे शस्त्रसे की यी हुई जख्मके इर्दगिर्द त्वक्रक्त विसरण मंडल (एकीमोसिस) दिखाई पड़ता है। (२) अभिवर्धक शीशसे भोटे शस्त्रकी जख्म देखनेसे उसकी किनार नाहमवार होती है। (३) चक्कूसे कीयी हुई जख्ममें नीचेके स घटक जख्म की गहराई तक साफ कट गये हैं ऐसा मालूम होगा; लेकिन भोटे शस्त्र

गये है ऐसा दिखाई पड़ता है। (४) असली भोटे शस्त्रकी ज़ख्म **जो चक्कूसे कीयी हुई ज़ख्म जैसी भासमान होती है, उसके तलमें वही पृष्टभागकी अपेक्षा ज्यादह लम्बी होती है; इसके विपरीत चक्कूसे कीयी हुई ज़ख्म पृष्टभाग पर उसकी गहराई की अपेक्षा ज्यादह लम्बी होती है**। इसकी असली वजह यह होती है कि चक्कू ऊपरसे नीचेकी ओरको काटता जाता है, और भोटे शस्त्रकी ज़ख्म जो नीचेकी तीक्ष्ण हड्डीसे होती है वह नीचेसे बाहरकी ओरको काट करती जाती है।

यह फरक़ कई दफा महत्वका माना जाता है; क्योंकि कई बार पहलेकी अदालतमेंकी जाचमें वाकिफ़गारकी यह फरक़ करनेकी लियाक़त पर मुलज़िमने खून करनेके मतलबसे हमला किया था, या सादा हमला किया था इस बातको मुकर्रर करना संभाव्य होता है। बादमे यह फरक़, और वाकिफ़गारकी यह फ़रक़ करनेकी लियाकत पर मुलज़िमका कैदखाना या आज़ादी अवलम्बित रहती है ।

तारका की कुछ नैसर्गिक अनियमित घटना, जो भूलसे ज़ररसे पायी होगी ऐसा मानना सभव है, निम्नलिखित जैसी होती हैः—

विषमरंगी नेत्र (हीटराफथालमास) यानी दोनो नेत्रोकी तारका भिन्न भिन्न रंगकी दिखाई पडना । इसका निदान 'भूलसे ज़ररसे पैदा हुई तारका' ऐसा किया गया है यह हमने देखा है ।

बहिर्च्युत कनीनिका (एक्टोपिया प्युपिली), कनीनिका का अनियमित स्थान (मालपोझिशन आफ प्युपिल) ।

अनेक कनीनिका (पॉलीकोरिया) यानी एक नेत्रमे अनेक कनीनिका दिखाई पडना।

कनीनिकामेंका स्थायी परदा या झिल्ली या कलल अवस्थाका शेष, यह बाजे वख्त भूरे रंगकी कनिनिकामें दिखाई पड़ता है। यह शेषभाग तन्तूर स्वरूपका· होता है, और ये तन्तु कनीनिकासे स्फटिकमणिको जा पहुँचते है, या कनीनिकामे के खंड पर फैल जाते है। इन तंतुओको भूलसे पार्श्वबंध (पोस्टेरियर सायनेकी) माना जाना संभव है। इन दोनो अवस्थाओका फरक जानना जरूरी है। पार्श्वबंधमेके तन्तु कनीनिकाकी किनारसे या उसके पिछले पृष्टसे ही शुरु होकर स्फटिकमणिको जाते हैं; लेकिन इस स्थायी परदे या झिल्लीके तन्तु कनीनिकाके किनार 'से नही शुरु होते **बल्कि** उसके सामनेके पृष्ठभागसे अक़सरकरके तारकाके लघु रोहिणीवलय (सरक्युलस आरटेरिओसस आयरिडिस मायनर) के पास से। ध्यानमे रखिये कि ये तन्तु स्थिति-स्थापक होनेसे अट्रोपीनके असरमे ही कनीनिका गोल जैसी फैल जाती है और इनमेका फरक करनेकी यह दूसरी बात होती है।

अन्य खास महत्वकी बाते जिनको अदालतमे ज्यादह महत्व पाया जाता है उनका जिक्र **ज़ररसे पैदा हुई अवस्थाओंकी झूठी माहियत** इस भागमें कर सकते हैं।

बहानेकी तरह-और अन्य झूठे ढंगकी तरह-का बहानाः—कुछ ज़रर या रोग न होते ही वह है, ऐसा कहना इसको **बहाना करना** (सिम्युलेशन) कहते हैं; **झूठी माहियत**

प्रत्यक्ष रोगको झूठा कारण देना (फाल्स अट्रीब्यूशन) इसको झूठी माहियत कहते है; **असलसे ज्यादह बयान** यानी प्रत्यक्ष रोग या ज़रर की अवस्था ज्यादह तीव्र स्वरूपकी है ऐसा बतलाना (एक्झाजरेशन); इनसे विपरीत एक तरह होती है जिसको **रियाकारि** (डिस सिम्युलेशन) कहते हे जिसमें शक्स बीमार होतेभी तन्दुरुस्तीका बहाना करता है।

बहाना जांचनेकी कसौटियां

(अ) दृक्क्षेत्रके सम केन्द्रिक संकोचनका या नेत्रके अंधतिलकका बहाना जांचनेकी कसौटी: अलग अलग दिनको दृक्क्षेत्र नापन यत्रसे दृक्क्षेत्रकी ठीक खोज करनेसे बहाना करनेवाले शक्स का ढोंग मालूम होगा, क्योकि पहले उसने जो जवाब दिया होगा उसी किसम का जबाब हरदिन देना उसको संभाव्य नही होगा। ध्यानमे रखिये, कि गर्भाशयोन्माद (हिस्टेरिया–गुल्मवायु) की अवस्थामे यह व्यंग दिन ब दिन ही नही बल्कि हर पलको बदलता जाता है ।

(ब) कोपियोपिया का बहाना—पढ़नेकी लाचारी–ध्यानमे रखिये कि यह अवस्था कभी कभी वक्रीभवन दोष या अन्य वस्तुगत कारण न होते भी दिखाई पड़ती है ।

(क) दोनों नेत्रोंकी दृष्टि दुर्बलता और दृष्टिहीनता (ॲम्बिलियोपिया और अमारोसिस) का बहाना जांचनेकी कसौटियां—यदि दोनो नेत्रोमें दृष्टिहीनताका या दृष्टिदुर्बलताके बहानेकी हुज्जत की गयी हो तो परीक्षकको अकसर करके कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिक्रिया है या नही, इस बात पर अवलम्बित रहना जरूरी होता है । यदि यह कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिकिया दिखाई देती हो तो दृष्टिहीनता या दृष्टिदुर्बलताका अभाव है ऐसा मान सकते है। लेकिन ध्यानमे रखना चाहिये, कि दृष्टिहीनतामे भी यदि क्षति का यानी ईज़ाका स्थान चाक्षुष पथके ऊपरी भागमे हो, तो यह कनीनिकाकी प्रकाशप्रतिक्रिया कायम रहती है । और इसके अलावा कनीनिकाकी अचलता पार्श्वबदमेही दिखाई पड़ती है । इस हालतमें अट्रोपीनके इस्तेमालसे कनीनिकाकी अचलता पार्श्वबंदकी वजहसे हुई है या नही इस बातका निर्णय कर सकते है । बहाना करनेवाले लोग नेत्रमें अट्रोपीन या कोकेन के इस्सेमालसे कनीनिकाका हुन्नरसे प्रसरण करते है क्योकि दृष्टिहीनतामे कनीनिका अचल और विस्तृत होती है यह उनको ज्ञात हो जाता है। लेकिन हुन्नरसे किया हुआ कनीनिकाका प्रसरण दृष्टिहीनताके प्रसरणकी अपेक्षा ज्यादह प्रमाणका होता है ।

श्मिड्ट् रिंपलर की दोनो नेत्रोंकी दृष्टिहीनताका बहाना जांचनेको कसौटी ज्यादह सादी और क़ाबिल होती है । इसमें रोगीको सिर्फ अपने हाथकी ओरको देखनेको कहा जाता है। रोगीका अंधत्व सच हो तो वह फौरन अपने हाथकी तरफ देखेगा, लेकिन बहाना करनेवाला शक्स हाथके सिवा अन्य स्थानकी तरफ देखेगा । अंधत्वका बहाना करनेवालेकी तरफ़ बेख़बरीसे "मूह बनानेसे" वह लापरवाह रहनेसे उसके मूहपरकी प्रतिक्रियासे उसने मूह बनाना देखा है ऐसा निश्चित मान सकते है। भूलना नही कि दृष्टिहीन शक्सकी नजर टकटकी स्थिर और बेकियाती होती है, और चलनमे उसका कदम छोटा और जोरसे जमीनपर लाया जाता है । वह कुछ सुनता है ऐसा उसके मूंह परसे भासमान होता है और उसका सिर ऊपरकी ओर को घुमा हुआ होता है; ये बातें बहाना

करनेवाले शक्स में नही दिखाई पडतीं. शायद कभी हो तो ज्यादह समय तक नही रहतीं। जिनकी दृष्टि पोयकी जैसी विकृतिसे नष्ट हो जाती है वे सिरको नीचे घुमाते हैं क्योंकि उनको प्रकाशसे तकलीफ़ होती है ।

दोनों नेत्रोंकी दृष्टिदुर्बलता जाहिर करना संभाव्य होता है यदि बहाना करनेवाले शक्सको कसौटी हरूफके कारटोंको भिन्न भिन्न समय पढनेको कहा जाय। इन कारटों पर की आखरी लकीरोमें भिन्न आकारके हरूफ लिखे हुए होते हैं। बहाना करनेवाले शक्सको भिन्न भिन्न समयमें ये कारट पढनेको दिये जाते हे और पहलेके पढनेमें और हालके पढनेमें लकीरे पढनेमें क्या क्या गलती वह करता है यह देखते हे इससे वह पकडा जाता है ।

(ब) एक नेत्रकी दृष्टिहीनता और दृष्टिदुर्बलता का बहाना जांचनेकी कसौटियां अनेक होती हे, जैसे कि—कुइनेकी रोकनेकी कसौटी; त्रिपार्श्व या शीशेकी कसौटियां; दर्पणकी कसौटी; घनचित्रदर्शककी कसौटी; रंगीन हरूफोंकी कसौटी, और हेरिंग की गिरनेवाले पदार्थोकी कसोटी ।

(१) कुइनेकी रोकनेकी कसौटी—रोगीको उसका सिर स्थिर रखकर और किताबको भी स्थिर पकडकर किताबको पढनेको कहना । और फिर किताब और नेत्रोके दरमियान एक पट्टी या पेनसिल खडी तौरसे पकड़ना । यदि उसको दोनों नेत्रोसे दिखाई पड़ता हो, तो वह बेरोक सीधा पढ़ता जायेगा । यदि एक नेत्रमे अंधत्व हो तो, पट्टीसे ढके हुए हरूफ उसको नही दिखाई पडेंगे और वह बीचमे अटक जायेगा ऐसा मालूम होगा । लेकिन ध्यानमें रखिये, कि बहाना करनेवाले लोग किसी खास उस्तादसे तैयार किये हों तो, यह कसौटी बिलकूल नाजायज होती है, ये बहाना करनेवाले लोग, अंधत्वका बहाना किये हुए नेत्रके सामनेकी पट्टीसे ढके हुए हरूफ या शब्दोंको पढ़नेका इनकार करेंगे । कसौटीका इस्तेमाल करनेके समय परीक्षकने इस बातपर ख्याल रखना अलबत्ता जरूर है कि, बहाना करनेवाले शक्सका सिर और पढनेकी किताब बिलकुल स्थिर रहे ।

(२) त्रिपार्श्व की और शीशोंकी कसौटियां कई होती हे, जिनमेंसे नीचेकी कसौटिओंका इस्तेमाल कर सकते हैं।

(अ) अलफ्रेड फान ग्राफकी कसौटीकी पद्धतिः—अंधत्वका बहाना करनेवालेके अंधे नेत्रको पहले ढाकना, फिर अच्छे नेत्रके सामने त्रिपार्श्वको इस तरहसे रखना कि उसकी नीब कनीनिकाके केन्द्रके सामने हो जावे । इस तरकीबसे उसको इस अच्छे नेत्रसे सामनेका पदार्थ दोहरा दिखाई पड़ता है ऐसा वह कबूल करेगा, क्योंकि उसका अंधा नेत्र ढका हुआ है। फिर उस शक्सको ढाके हुए अंधे नेत्रपर का ढक्कन निकाल लेनेको कहना ओर उसी वक्त परीक्षकने अच्छे नेत्रके सामनेके त्रिपार्श्वको इतना ढकेलदेना कि उसको दोहरा न दिखाई पडे। ऐसी हालतमें रोगीको दोहरा दिखाई पड़ता हो तो उसको अंधे नेत्रसे दिखाई पड़ता है ऐसा मानना मुनासिब होगा । इस्तेमाल किये हुए त्रिपार्श्वका बल कमसे कम १०° का होना चाहिये जिससे जरूरतन दोहरा दिखाई पडेगा ।

इस कसौटीका और भी एक फायदा यह होता है कि इससे दोनों नेत्रोंकी दृक्शक्तिकी तीव्रता ठीक ठीक मुकर्रर करना संभाव्य होता है। इसके लिये ढोंगी शक्सको पहले एक और फिर दूसरी प्रतिमाको जोरसे पढनेको कहना।

(ब) इस शक्सको दोनों नेत्रोको खुले रखकर उसको छ. मिटर फासलेपरकी मोमबत्तीकी ज्योतिके नरफ देखते रहने को कहना। फिर उसके अच्छे नेत्रके सामने ९०° या १०° अंश बलका त्रिपार्श्व इस तरहसे रखाना कि उसकी नीव ऊपर या नीचे की ओरको होवे। यदि उसको दो ज्योतियां दिखाई देती हों तो वह दोनो नेत्रोंसे देखता है ऐसा समझना। ध्यानमे रखिये कि ढोगी शक्स जानता है कि उसके अंधे नेत्रकी जांच हो रही है और वह इसी सबबसे ज्योती दो नही दिखाई पडती ऐसा बहाना करेगा।

(क) हर नेत्रके सामने ७° अंश बलका त्रिपार्श्व इस तरहसे रखना कि उनकी नीव बाहरकी ओरको होवे; फिर उसको छः मिटर फासले परकी मोमबत्ति की ज्योति की तरफ देखनेको कहना। यदि दोनों नेत्रोंमे दृष्टि हो तो नेत्र अन्दरकी ओरका घुम जायेगे। दोनो नेत्रों में दृष्टि न हो तो नेत्र अन्दर की ओर को नहीं घूमेगा।

(ख) अंधे नेत्रके सामने १२° बलका त्रिपार्श्व इस तरहसे पकडना कि उसकी नीव बाहरकी ओरको होवे। यदि उस नेत्रसे कुछ दिखाई पडता हो तो द्विधादर्शन की तकलीफ मिटानेके लिये वह नेत्र अन्दरकी ओरको घुम जायेगा। इसी को **भिन्नस्थिती द्विधादर्शन** की कसोटी कहते हैं।

(ग) हर नेत्रके सामने एक एक त्रिपार्श्व उसकी नीव ऊपरकी ओर हो इस तरहसे रखना और फिर शक्स को सीढी परसे नीचे उतरने को कहना। यदि एक नेत्रको बद करके वह सीढी परसे उतरने लगा तो वह बहाना करता है ऐसा समझना।

(च) एक नेत्रके सामने आइसलॅन्ड स्पारको यानी खडियाके खनिजको रखना, यदि इस शक्स को तीन प्रतिमाएँ दिखाई पडती हों तो उसको **द्विनेत्रीय दर्शन** (बायनाक्युलर व्हिजन) है ऐसा समझना चाहिये।

(छ) शक्सके एक नेत्रके सामने **म्याडाक्सकी द्वित्रिपार्श्वकी कसौटी**को रखकर दूसरे नेत्रको खुला रखना। यदि शक्सको तीन प्रतिमाएँ दिखाई पडती हो तो उसको द्विनेत्रीय दर्शन है ऐसा समझना।

(ज) अच्छे नेत्रके सामने +१४·० डी बलके उन्नतोदर शीशेको रखकर दूसरे नेत्रके सामने –·२५ डी बलका नतोदर शीशा रखना और फिर रोगीको छः मिटर फासले परके कसौटी हरूफ पढनेको कहना। यदि उसने हरूफ पढे तो समझना कि, अंधत्वका बहाना किये हुए नेत्रसे वह पढता है (ध्यानमें रखिये कि अच्छे नेत्रमेंका स्फटिकमणि निकाला हो तो वह अच्छे नेत्रसे अब पढ सकता है)

(ट) अच्छे नेत्रके सामने **म्याडाक्स** की **शलाका** रखना; यदि शक्सको प्रकाशकी ज्योति और लकीर दोनों भी दिखाई पडती हों तो वह अन्धत्वका बहाना करता है ऐसा समझना।

(ठ) ज्याकसन की कसौटी की तरह जिस नेत्रमें अंधत्व है ऐसा बहाना किया जाता है उसके सामने +४·० डी बलका शीशा, और अच्छे नेत्रके सामने +२·० डी बलका शीशा रखना। पहले नेत्रका दूरबिन्दू अब २५ से. मि.पर होगा, और दूसरे नेत्रका दूर-बिंदू ५० से.मि. पर होगा। बहाना करनेवाले शक्स को, जिसपर बारीक हरूफ लिखे हैं ऐसा कारट उसके हाथमें देकर उसको पढनेको कहना। यदि वह इस कारट को पढनेके लिये ५० से.मि. के बदले २५ से· मि. पर पकडे तो वह बहाना करता है ऐसा समझना।

(३) फ्रिडेनबर्ग की दर्पण यंत्रकी कसौटी—यह कसौटी बहुत कामकी होती है। इस यंत्रमें एक दर्पण और दो कसौटी हरूफोंके कारट होते हैं। (चित्र नं. ८४ देखिये) दर्पण को एक आडे डन्डे पर इस तरह से बिठाया होता है, कि उसको कारटसे जितना चाहे उतने अन्तर पर दूर या नजदीक रख सकते हैं, और एक तरकीब होती है, जिससे धुरीको १८० अंशमें से घुमाकार दर्पण को पहले एक नेत्रके सामने बादमें दूसरे नेत्रके सामने रख सकते हैं। और उसको खडी अक्ष-रेषापर तिरछा घुमा सकते हैं, जिसका प्रमाण आडी अक्षरेषा परके निर्देशकसे जानना संभाव्य होता है। जब निर्देषक ९५ अंशपर होता है तब दर्पण का समतल उसी ओरके नेत्रकी दृक्रेषासे काटकोन करने वाला होगा और इस नेत्रको दर्पणमें उसका प्रतिबिम्ब दिखाई पडेगा। लेकिन इस ओरका कसौटी कारट दर्पण को अभिलम्ब रेषामें (नारमल) न होनेसे उसका प्रतिबिम्ब दूसरी ओरके नेत्रको दिखाई पड़ता है, न कि पहले नेत्रको।

चित्र नं. ८४

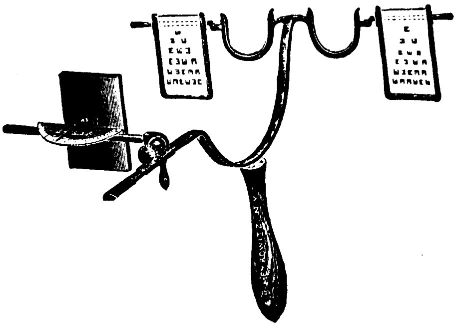

फ्रिडेनबर्गका दर्पण यंत्र

यदि दर्पणको रोगीकी कनपटी की ओरको थोड़ा घुमाया जाय, ऐसा समझो कि निर्देशक ९५° से १००° अंश को हो जावें, तो चाक्षुष अवस्था उलटी होगी और उसी ओरका कारट उस नेत्रको दिखाई पडेगा। दर्पणको डन्डे की दूसरी ओरको घुमानेसे पहले की जैसी ही, दो किसम की कसौटियां लगाना संभाव्य होता है। इस रीतिसे कसौटीमें जल्द आठ तरहके फरक कर सकते हैं।

दर्पण दाहिने नेत्रके सामने रखा है	दर्पण बायें नेत्रके सामने रखा है
९५° पर **दा. नेत्र** दाहिना कारट देखता है	९५° पर. **बा.नेत्र** बायें ओरका कारट देखता है
९०° ,, **बा. नेत्र** दाहिना कारट देखता है	९०° ,, **दा. नेत्र** बायें ओरका कारट देखता है
७०° ,, **दा.नेत्र** बायें ओरका कारट देखता है	७०° ,, **बा.नेत्र** दाहिने ओरका कारट देखता है
६०° ,, **बा.नेत्र** बायें ओरका कारट देखता है	६०° ,, **दा. नेत्र** दाहिने ओरका कारट देखता है

(४) **स्नेलन की लाल और हरे हरूफोंकी कसौटी**—इस कसौटीके लिये काले कारट पर लाल और हरे रंगके पर्याय क्रमसे लिखे हुए कसोटी हरूफ, और जिसमें एक कांच लाल रंगकी और दूसरी हरे रंगकी होती है ऐसा एक चष्मा इनकी जरूरी होती है। ध्यानमें रखिये कि, लाल कांचमेंसे सिर्फ लाल रंगके हरूफ दिखाई देते हे, और इसी तौरसे हरे कांचमेंसे हरे रंगके हरूफ दिखाई देते हैं। हरे कांचमेसे लाल हरुफ के सब किरणोको, और लाल कांचसे हरे हरूफोके सब किरणोको रुकावट होती है। इसकी वजहसे कुछ हरूफ एक नेत्रसे और कुछ हरूफ दूसरे नेत्रसे पढे जाते हे। यदि शक्स इस चष्मेसे सब हरूफोको पढता जाय तो मान लेना की वह दोनो नेत्रोसे पढता है।

(५) **घनतादर्शन की कसौटी (स्टिरियास्कोपिक टेस्ट)** कई किस्म की होती है। इनमेंसे सादी कसौटी अंग्रेजी L और F हरूफ की या देवनागरी र और व हरूफोकी कसौटी होती है। द्विनेत्रीय एक दर्शनवाले शक्सको ये E या ख दिखाई पडेगा।

(६) **हेरिंग के गिरनेवाले पदार्थोंके प्रयोग** की कसौटी का बहाना जांचनेके लिये इस्तेमाल कर सकते हे। इस प्रयोगमें शक्सको एक नेत्रसे एक लम्बी नलिकामें से उसके पार सामनेके खडी रेषामें तने हुए धागेकी ओर देखनेको कहना; फिर उस धागेके सामनेसे या पीछे से कांचके मनका डाले जाते हैं। शक्सने मनका धागेके किस ओरसे डाले जाते है यह बात ठीक ठीक बताई तो उसको द्विनेत्रीय दर्शन है ऐसा मान सकते हे। यदि एक नेत्रमे अंधत्व हो तो वह कई गलतियां करेगा।

झूठी निसबत-माहियत-की कसौटी

खास तरहकी ज़रर दिये हुए कारणसे पैदा होना संभाव्य है या नही यह मुकर्रर करनेमें इस ज़ररका सिर्फ एक ही नही बल्कि सब मुद्दोका विचार करना महत्वकी बात है। और इनका इस कारणसे कुछ तालुक है या नही इसका भी विचार करना मुनासिब होगा। नेत्रकी ज़ररके भिन्न भिन्न तरहके मुमकीन कारणोपर दृष्टिविशारदकी कचहरीमें जो जोर दिया जाता है उससे अदालतमे औरसे और ही (भिन्न) तरहका जोर दिया जाता है इस बातको ध्यानमे रखना चाहिये।

भौंहकी ज़खम जो असलमें कुचली हुई होती है लेकिन जो चक्कूसे कीयी हुई जैसी भासमान होती है, और उसी स्थानकी खास तीक्ष्ण चक्कूसे कीयी हुई ज़खम इनका मुफस्सल बयान पहलेही किया गया है। इनमेंका फरक़ जरूर ध्यानमें रखना। भूलना नही कि, भोंहकी काटसे कीयी हुई जखम वक्त बेवक्त फटी हुई ज़खम जैसी होजाती है। क्योंकि चक्कू काटनेके पहले चमडीको तानता है और फिर घटकोंको काटता है। चमडी ऐंठ जानेके बाद ज़खम अंग्रेजी व्ही या जेड (V. Z.) के आकारकी होती है।

कई शक्स हमला या हादसासे ज़रर होकर उसकी वजहसे दृष्टिदुर्बलता या दृष्टिहीनता पैदा हुई ऐसा दावा करनेके मतलबसे अपनी भोंहको समज बूझके ज़रर करते हे। ध्यानमें रखिये कि इस तरहकी ज़खम उथली होती है; और उसका क्षतचिन्ह बडा दिखाई दे,

इसलिये उसके अच्छी होनेके वक्त उसको खुली रखनेकी कोशिश की जाती है। इन सब मिसालोंमे पहले दी हुई कसौटिओंका इस्तेमाल करना।

त्वकरक्तनिसरण, नेत्रके ज़रर‌के कानूनी संबंधमे एक अहम मुद्दआ होता है। नेत्रच्छदमेंका त्वक्‌रक्तनिसरण, पहलेपहल गहरे नीले, कुछ काले नीले या कुछ पीले लाल रंगका होता है। एक या दो दिनके बाद उसमें पहले हरा, फिर पीला, फिर निम्बूके रंग जैसा पीले और आखिरमें सुफेद पीला और नैसर्गिक ऐसा फरक होता जाता है। साधारणतया शरीरमे त्वक्‌रक्तनिसरणका कालासा काला भाग जहां मार ज्यादह जोरसे लगा होता है उस भागमे दिखाई पड़ता है। ऊपरके नेत्रच्छदमें बदरंगका ज्यादहसे ज्यादह काला भाग चंद घंटोके बाद नेत्रच्छदकी किनारके पास दिखाई पड़ता है। इसकी वजह यह होती है कि, नेत्रच्छदकी जालवत्--झिल्ली--घटकोके बीचके अवकाशोंमेंसे लहुका उत्सर्ग (एकस्ट्राव्हसेशन आफ ब्लड) नेत्रच्छदकी किनारके पास जमजाता है। ऊपरके नेत्रच्छदमेंके त्वक्‌रक्तनिसरणमे (एकीमोसिस) देखा जायेगा कि रंगके फर्क बदरग हुए भागके ऊपरकी किनारमे शुरू होता है। त्वक्‌रक्तनिसरणके सिर्फ रंगसे उसकी कालमर्यादा मुकर्रर करना मुष्किल बात होती है। लेकिन बहुतसी मिसालोमें उस भागके रगसे झूठे दावेकी लाजबाब शहादत पायी जाती है।

गरम पदार्थोंसे जलन और **दाहक रासायनिक पदार्थोंसे (एसकराटिकसे) जलन** इन दोनोमेका फर्क जानना जरूरी और मौली बात होती है। इनका फर्क जाननेमे निम्नलिखित मुद्दाएँ क़ाबिल होते हैं।

(अ) यदि ज़रर ताजी हो, तो रासायनिक कसौटीका इस्तेमाल कर सकते हैं और उनसे हरिताम्ल (हायड्रोक्लोरिक अॅसिड) नत्राम्ल (नायट्रिक अॅसिड), गधकाम्ल (सलफ्युरिक अॅसिड) या अन्य रासायनिक जलानेवाले द्रव पदार्थोंका चमडीपर अस्तित्व मुकर्रर कर सकते हैं। यदि ये जलानेवाले द्रव पदार्थ कपडेपर या इर्दगिर्दके पदार्थोंपर गिरे हो, तो रासायनिक कसौटी ज्यादह कामकी होती है।

(ब) जलनके इर्दगिर्दके बाल जल गये हो तो जरूर मान सकते हैं कि, जलन गरम पदार्थोंसे पायी गयी है; क्योकि रासायनिक पदार्थोंका इर्दगिर्दके बालोंपर कुछ असर नही होता।

(क) गरम पदार्थोंसे जलन होनेके बाद अकसर करके फफोले पैदा होते है जो रासायनिक पदार्थोंसे जलनेमें कभी नही पाये जाते।

(ड) रासायनिक दाहक पदार्थोंसे ज़ररके इर्दगिर्दकी चमडीमें **रक्तवह केशवाहिनियों का रक्तसंचय** (एरीथीमा) कभी नही पाया जाता। लेकिन यह दृश्य गरम पदार्थोंसे जलनमें हरदम पाया जाता है यदि जलन पहले या दूसरे प्रमाणसे बढ़कर हो। जलनके बाद मृत्यु फौरन हुआ हो तो यह लक्षण नही दिखाई पड़ता, क्योंकि इस प्रतिक्रियाको पूरा समय नही मिलता।

(ग) गरम ठोस पदार्थोंसे पाये हुए जलनको, गरम द्रव पदार्थोंसे या दाहक रासायनिक पदार्थोंसे पाये हुए जलनसे जान सकते हैं। क्योंकि दाहक रासायनिक पदार्थ या गरम

द्रव पदार्थसे जलनका क्षत चिन्ह मृदु, गीला और कुछ पीले रंगका होता है, लेकिन गरम ठोस पदार्थसे जलनका क्षत चिन्ह सरक्त, सूका और काले रगका होता है।

असलसे ज्यादह बयानकी कसौटी

पहले पहल क्षत या अन्य अनियमितताका स्थान और उनके स्वरूपकी नोंद खूब हुशियारीसे करना। ऊपर दिये हुए बहाने जाननेकी कसौटीसे इसकी ठीक जाच करना संभाव्य होता है। इनमे **फान ग्राफ** की कसौटी ज्यादह मौली होती है, क्योकि इससे शक्सकी दृक्‌शक्तिकी तीव्रता, उसके जाने बिना ठीक जान सकते हे।

नैसर्गिक दृष्टिके बहानेकी कसौटी

ऐसी हालतमे अनियमित घटनाके मुमकिन कारणोकी हुशियारीसे जांच करना मुनासिब है। इस शक्सकी सिर्फ दृष्टिस्थानकी दृक्‌शक्तिकी जांच करना काफी नही होता। क्योकि ऐसा हो सकता है, कि उसके दृष्टिस्थान की दृक्‌शक्तिकी तीव्रता नैसर्गिकसे ज्यादह ६/५ होते हुए भी उसकी परिधीकी दृक्‌शक्ति कमतर होती है। कभी कभी इस मध्यदृष्टिके साथ स्फटिक द्रवमें शल्य, स्फटिकमणिके परिधि भागमे अपारदर्शकता, कृष्णपटल-दृष्टिपटलका दाह या तारकापिधानके केन्द्रकी बाहर क्षत दिखाई पड़ता है। दृक्‌संधान शक्तिके स्तंभ सिवा कनीनिकाका प्रसरण या **आरगाईल राबर्टसन** कनीनिकाकी अवस्था होना संभव है।

(९)

चाक्षुष हानीकर चिकित्सा (आफथालमिक मालप्राक्टिस)

अफसोस की बात है कि, दृष्टिविशारदको अदालतमे वाकिफगार की तौरसे नही बल्कि हानीकर चिकित्साके सबंधमे प्रतिवादी तौरसे हाजर रहना जरूरी होता है। चाक्षुष हानीकर चिकित्सामे पैदा होनेवाली वैद्यकीय बातोका पहले विचार करेगे, फिर कुल कानुनी बातोंका विचार करना मुनासिब होगा।

चाक्षुष हानीकर चिकित्साकी वैद्यकीय और शस्त्रक्रियाकी कुछ बातें।

(१) तिरछे नेत्रकी शस्त्रक्रिया यह बात दृष्टि विशारदके पेशेमे चाक्षुष हानीकर चिकित्साके सदरमे आना ज्यादह संभाव्य है। इसकी वजह यह होती है कि, तिरछे नेत्रकी दृक्‌शक्ति आम तौरसे हमेशाह कमतर होती है। और ध्यानमे रखिये, कि दृष्टि विशारदने शस्त्रक्रिया करनेके पहले उसकी पूरी तौरसे जांच न कीयी हो, और रोगीको उस बारेमे पहले ही न कहा हो तो, शस्त्रक्रियाके बाद उससे दृक्‌शक्तिका बिगाड हो गया ऐसा रोगीको दावा करना संभाव्य होता है।

(२) बेशकल की अवस्था—नेत्रकी शस्त्रक्रियाके बाद अश्रुकासारमेंके लाल मांसपिंडका स्थान भ्रष्ट होनेसे पायी जानेवाली बेशकल की अवस्था।

(३) नेत्रगोलकमें के शल्य—ये शल्य तारकापिधानमें, चाक्षुषजल, तारका, तारकातीत पिड, स्फटिकमणि, स्फटिकद्रवपिडमें, तथा नेत्रगोलककी पिछली दीवालमें या आखिरमे नेत्रगुहामें या नेत्रगुहाके चरबीदार घटकोमे रह जाना सभाव्य है। तारकापिधानमें के या अन्य घटकोंमें के शल्यसे, ध्यानमें रखना कि, बाजे वक्त तारकापिधानमें पीबदार अवस्था पैदा होकर उसमें क्षत होता है, और फिर उसकी दुखःदायक अवस्था पायी जाती

है। ऐसी हालतमें शल्य बिलकुल सूक्ष्म होनेसे रोगी एकाएक मत प्रदर्शित करना संभाव्य है कि वैद्यने काबिल इलाज न करनेसे यह अवस्था पैदा हो गयी। और इसी वजहसे नुकसान भरपायीका दावा करना संभाव्य होगा।

(४) **नवजात बालकोंके पूयप्रमेहज अभिष्यद** की चिकित्सा करनेवाले दृष्टि विशारद पर नुकसान भरपायीका दावा करनेकाभी संभव होता है।

(५) **मोतीबिन्दुकी शस्त्रक्रिया**के बाद पूरी दृष्टि पैदा नही हुई इस वास्ते भी दावा किया गया था इस की नोद हुई है।

(६) **वक्रीभवन दोष दुरुस्त करनेमें** भी हानिकर चिकित्साका दावा किया गया है। चष्मेवालेने काबिल चष्मा न देनेसे रोगीके नेत्रगोलकका दृष्टिपटल स्थान भ्रष्ट हुआ ऐसा दावा किया था।

(२)

(ब) दृष्टिविशारदकी वाकिफ गवाह संबंधी कुछ कानुनी बातें :
दृष्टिविशारदकी वाकिफ गवाहीका स्वरूप—अदालतमे दो तरहके गवाह–सादा और वाकिफगार—होते हैं। पहला गवाह वाकया या तथ्य का विवेचन करता है; दूसरा असली वाकयापर, जो सत्य घटनाके स्वरूपकी या माने हुए स्वरूप की होंगी, रचे हुए मतोका–सिद्धान्तोका बयान करता है। पंचके सामने सादे गवाहन जो कुछ वाकया द्वारा रखे जायेंगे, उनपरसे सिद्धान्त बनाना यह पंचका असली काम होता है। जब जाचका (तहकीकातका) विषय आम तौरके विषयसे बाहरके विषयका होता है, तब पंचको इन विषयोके वाफिकगार की सलाह लेना जरूरी होता है। वाफिकगार गवाह हर पेशेके होते हैं जिनमे वैद्य भी एक होता है। पेशेवाला गवाह प्रसगके अनुसार सादा या वाकिफगार भी हो सकता है। वैद्य या डाक्तर आम तोरकी बीमारियोका इलाज करनेवाला होगा, या नेत्ररोग जैसी खास शाखाओका इलाज करता होगा। जब दृष्टिविशारद देखे हुए ज़रके वाकयाका बयान करता है, तब वह सादा गवाह होता है, लेकिन जब वादीकी दृष्टिपर ज़रके असरसे वह पूरी नाकाबलियत हुई है या नही इस बातपर मत प्रदर्शित करता है तब वह वाक़िफ गवाह समझा जायेगा।

वाकिफ वैद्यको गवाह देनेकी बातें—अदालतमे वैद्यको जिन बातोका जिक्र करना जरूरी होता है वे इस तरहकी होती हैं—कोई शक्स पागल है या नही, मृत्युका खास कारण, कोई एक बीमारी शस्त्रक्रियाके सिवा साध्य होनेवाली है या नही; खास जखमकी वजह किस तरहकी होगी; वैद्यकीय या शस्त्रक्रिया संबंधी खर्चका अन्दाजा; कोई खास बीमारीसे दु:ख पैदा होगा या नही. शक्समें बेशकल पैदा हुई है या नही; कुछ खास ज़रसे शक्सकी कमाईमे कितनी घटत हुई होगी और यह घटत कायम स्वरूपकी है या नही।

चाक्षुष हानिकर चिकित्साके संबंधमें कानूनी मत किस तरहका होता है इसका भी विचार करना जरूरी है। सबसे पहले इस बारेमें ध्यानमें रखिये कि, किसी भी वैद्यको रोगीनें पहलेही बुलाया हो तो उसको देखनाही चाहिये ऐसा कुछ कानून नही है, यदि (१) वह सरकारी नोकर न हो और उसपर सरकारी फर्ज या अहसान न हो तो; और (२) वैद्यका रोगीसे पहले कुछ भी संबंध न हुआ हो।

जब वैद्य किसी भी रोगीको देखकर औषधीय इलाज शुरू करता है तब इलाजके साथ साथ उसपर कुछ जिम्मेदारी जरूर आती है। लेकिन वैद्यने रोगीको पहले पहल बतलाया हो कि, इस रोगकी चिकित्सा करनेमें दूसरा सलाह लेना जरूरी है; रोगीने उसको चिकित्सा शुरू करनेकी इजाजत दीई हो; और वैद्यने अपनी पूरी कोशिश की हो तो, फिर रोगी इसके बाद कुछ भी शिकायत कर नही सकता।

जब कोई वैद्य रोगीको देखकर इलाज शुरू करता है तब उसपर आनेवाली जिम्मेदारी या कर्तव्यकर्म की बाते:—

(१) वैद्यको रोगीका इलाज योग्य तरहसे जारी रखना चाहिये–यानी किसी भी हालतमें रोगीका इलाज बंद करना मुनासिब नही होगा जबतक (अ) रोगी उसको छोडता नही; (ब) रोगी उसका इलाज बंद करनेको सम्मति नही देता; (क) वैद्यने रोगीको इलाज बंद करनेकी खबर इतनी वक्तसर दी हो कि रोगीको दूसरे वैद्यसे इलाज करनेको आसान होवे (ड) रोगीको इलाज करनेकी जरूरत न हो।

(२) वैद्यको-काबिल ज्ञानकी और कुशलताकी आवश्यकता होनी चाहिये. उदाहरणके लिये चाक्षुष वाकिफगारकी लायकातका प्रमाण कितना होना चाहिये। इसके संबंधमें ऐसा नियम कर सकते हे कि जो वैद्य अपनेको वाकिफ समझता है उसको उस स्थानकी उस खास वैद्यकीय शाखाके वाकिफगारके जितना चिकित्साका ज्ञान और कुशलता जरूर बतलाना चाहिये। ध्यानमे रखिये कि, हानिकर चिकित्साके संबंधके कानूनके खिलाफ न जानेके लिये वाकिफ दृष्टिविशारदको ऐसा ज्ञान और कुशलता बतलाना चाहिये।

(३) वैद्यकी तीसरी जिम्मेदारी यह होती है कि वैद्य किसी भी बडे शहरमे या छोटे गांवमे पेशा करता हो, उसको कानुनी तौरसे जरूर जितना उस विषयका ज्ञान और कुशलता होनी चाहिये, इतनाही नही बल्कि उसको अपने ज्ञान और कुशलता का इस्तेमाल जरूरतन करना चाहिये। वह कितना भी कुशल हो उसमे लापरवाही नही होना चाहिये, बल्कि उसे अपनी कुशलताका इस्तेमाल करना जरूरी है, नही तो वह हानिकर चिकित्साका अपराधी समझा जायगा।

इसी जगह एक बातका यानी प्रयोग करनेके संबंधीका विचार करना जरूरी है। इस बारेमे आम नियम ऐसा माना गया है कि,—किसीको भी मनुष्य जातीपर, जिन नयी दवाओंका या नयी तरहकी शस्त्रक्रियाका पहले कभी भी इस्तेमाल न किया गया हो, उनका इस्तेमाल नही करना चाहिये। इस नियमको शब्दशः माना जाय तो नतीजा ऐसा होगा कि, जगत् की प्रगति होनेके बदले उसकी व्युत्क्रम गति जरूर होगी। इस बारेमे ऐसा कह सकते है कि वैद्यको, अपना नया इलाज प्रचलित ज्ञानके अनुसार है और कुछ टेढेमेढे बातोंपर रचा नही गया है, और उसकी क्रिया निश्चित और सचेतन सिद्धान्त पर रची गयी है, और जिसपर यह प्रयोग किया जायेगा उसको जरूर फायदा होगा ऐसा सिद्ध करना जरूरी होगा जब उसको प्रयोगकी इजाजत मिलना संभव है।

कानूनके अनुसार हर वैद्यको उसके पेशेमें काफी ज्ञान और कुशलता बतलाना जरूरी है। इसके सिवा उसकी अन्य लापरवाहियोंकी बातोंमें निम्नलिखित बातें शामिल होती है।

यदि वैद्य नालायक हुकुम दे, या लायक हुकुम देनेमे गलती करे, या योग्य समय अन्य वाकिफगारकी सलाह न ले तो वह जिम्मेदार होता है। पाक और लायक दवाओंका तथा निर्जन्तुदार हथियारोंका वैद्यने इस्तेमाल करना चाहिये। वैद्यका साथीदार हानिकारक चिकित्साका इस्तेमाल करे तो भी वह जिम्मेदार माना जाता है। यदि सेविका वैद्यके हुकुमकी तामिली करती हो तो वह जिम्मेदारी इस वैद्यपर आती है। लेकिन जाहिर सस्थाओंकी सेविका जिनपर वैद्यका कुछ तालुक नही होता उनके कामकी जिम्मेदारी वैद्यपर नही ऐसा माना गया है।

बाजे वक्त रोगी खुद लापरवाह होता है तब यह बात हानीकर चिकित्सासंबंधी दावेके खिलाफ मानी जाती है। लेकिन रोगीकी कृतिसे जख्म पैदा नही हुई होगी बल्कि उसका जोर बढ गया हो तो नुकसान भरपाईका बदला कम हो सकता है। महत्वका मत यह होता है कि, रोगीकी लापरवाहीसे पायी हुई जख्मको वैद्यकी लापरवाहीसे पायी हुई जख्मको अलग करना संभाव्य न हो तो रोगीको नुकसान भरपाईकी रकम नही मिलती।

(४) वैद्यका चौथा कर्तव्यकर्म यह होता है कि उसको यदि संदेह पैदा होता हो तो उसे अपनी अकलका इस्तेमाल करना चाहिये।

कुछ मुताफर्रिक बातें—जिनको वैद्यक पेशेका अनुमति पत्र या लैसेन्स नही मिला है ऐसे लोगोंकी वैद्यकीय या शालाकिन की हानीकर चिकित्साके संबंधमें विचार करने लायक सवाल पैदा होता है। मसलन कोई चष्मेवाला "**नेत्रवैद्य**" ऐसा किताब लेता है और रोगीको कहता है कि वह उसकी बीमारी चष्मेके इस्तेमालसे हटा सकता है। रोगीको दृष्टिपटल और दृष्टिरज्जुके उपदंश की विकृति हुई है और इस "नेत्रवैद्य"से लायक चिकित्सा न पानेसे उसकी दृष्टि नष्ट हो जाती है। तो सवाल यह होता है कि वह "नेत्रवैद्य" जिम्मेदार है या नही। इस तरहकी सब मिसालोमे सच्चे वैद्यके जितनी ही इस प्रतिवादीकी जिम्मेदारी होती है। लेकिन जब दवा बचेनेवाला सिर्फ रोगीके पडोसी या मित्रकी हैसियतसे, न कि वैद्यकी चिकित्सासंबंधी सलाह देता है तब वह जिम्मेदार नही होता। और एक विचार करनेलायक मुताफर्रिक बात यह होती है कि जब कोई वादी हानिकारक चिकित्साके संबंधमे दावा करता है तब ध्यानमे रखिये कि हालकी कानूनी अवस्थामे प्रतिवादी वादीकी शारीरिक जांच होनी चाहिये ऐसा सवाल नही कर सकता।

हानिकर चिकित्साके कानूनी संबंधमे सवाल यह होता है कि वैद्यकी चिकित्साकी तरह बराबर है या नही; इस संबंधमे वैद्यके खिलाफ उचित निर्णय देना संभाव्य है या नही। इसका जबाब है ऐसा पहलेकी अदालतमें दे सकते है जहां वाकया का न कि कानूनका, सवाल होता है। मसलन रोगीके साधारण सरके दर्दके लिये कोई वैद्य उसके नेत्रको निकाल डाले तो उसने हानीकर चिकित्साका इस्तेमाल किया इस बातके निर्णयके लिये कोई वाकिफ गवाह की जरूरत नही होती।

(३)

दृष्टि संबंधी आर्थिक बातें:—

वाकिफ दृष्टिविशारद को, पंचको सुसंगत वाकया और तत बतलानेकी जरूरत होती है जिनकी वजहसे उनको खास नुकसान भरपायीकी रकम का अन्दाजा करना संभाव्य हो।

नुकसान भरपायीकी रक्कम मुकर्रर करनेके वक्त पंचको विचार करनेकी बातें निम्नलिखित जैसी होती हैं–(१) अस्पतालका खर्च–सेविका और वैद्यका हिसाब (२) समयका नुकसान. (३) दर्द और तकलीफ; (४) बदशकल; (५) कमाईमें घटत होना। यह आखरी बात ज्यादह महत्वकी समझना चाहिये और इसी विषयको दृष्टिसंबंधी आर्थिक बातें यह नाम दिया है। इसका संक्षेपमें बयान करना मुनासिब है।

ध्यानमें रखिये कि (१) दृक्शक्ति नष्ट होनेसे कमाईकी घटत होती है ऐसा नहीं। ज्यादह तौरसे यह बात पेशेपर अवलम्बित होती है। ऐसा मानते हैं कि किसीभी कामको काबिल दृक्शक्ति ६/१२ होनी चाहिये और कमसे कम ६/२४ होनी जरूरी है।

(२) दोनों नेत्रोंमें कमसे कम और ज्यादहसे ज्यादह दृक्शक्तिके बलकी जरूरत नहीं। यदि एक नेत्रमें कमसे कम दृक्शक्ति हो और दूसरे नेत्रमें उससे कम यानी शून्य जैसी हो तो भी नेत्रेन्द्रियमें कमसे कम शक्ति है ऐसा मान सकते हैं।

(३) एक नेत्रमेंकी दृक्शक्ति बिलकुल नष्ट हो गई हो तो उससे कमाई करनेकी ताकद कम हो जायेगी या नहीं होगी। क्योंकि यह बात कामके स्वरूपपर अवलम्बित रहती है। ध्यानमें रखना चाहिये कि, एकनेत्रकी दृक्शक्ति नष्ट हो जानेके बाद, पदार्थोंका फासला मुकर्रर करना और उनका आकार जाननेकी नाकाबिलियत कुछ चंद रोजतक रहती है; जवानोंमे छः से आंठ माससे ज्यादह नहीं रहती, और बालकोंमे दो से तीन हप्ताह से ज्यादह नहीं रहती।

(४) चाक्षुष–दृक्क्षेत्रमेंके बिगाड (क्षेत्रका समकेन्द्रिक संकुचन या हर किस्मके अंधतिलक) यदि एकही नेत्रमें हो तो उससे कमाईकी शक्तिमें घटत नहीं होती। **मॅगनस** और **वरडेमान** के मतके अनुसार द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्रके तीन मंडल, हरएक ३०° के हो सकते हैं। पहले मंडलका फैलाव परिधिसे ६०° अंश तक, दूसरे मंडल का फैलाव ६०° से ३०° अंश तक और तीसरे मंडल का फैलाव दृष्टिस्थानतक होता है। इन तीनों मंडलोंकी शक्तिका मूल्य एकसा (बराबरीका) मानते हैं यद्यापि तीसरे मंडलमें दृक्शक्तिका कार्य कमती होता है लेकिन उसकी मर्यादा विसृत होती है। इस कल्पनाके अनुसार द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्रके (अलबत्ता केन्द्रस्थ दृष्टिको बाद करके) बराबरीके मूल्य के तीन भाग होते हैं। एक नेत्र नष्ट हो जानेसे **गायब** द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्रका १/६ भाग **नष्ट** हो जाता है (क्योंकि द्विनेत्रीय क्षेत्रमें एक दूसरेपर चढ जाता है) और समस्थित नेत्रार्ध भागका अंधत्व (होमानिमस हेमिअनापसिया, में ३/६ यानी आधा भाग गायब हो जाता है।

(५) कोई शक्सके नेत्रकी एक या अनेक स्नायूओंके कार्यमें बिगाड होनेसे उसकी आर्थिक कमाईमें कितना नुकसान होता है? यह सवाल उलझनभरा होता है। इससे नेत्रकी भीतरी और बाहरी स्नायुका अलग अलग विचार करना मुनासिब होगा।

पहले भीतरी स्नायुका विचार करेंगे। तारकातीत पिडंकी स्नायुकी जररसे कमाईमें बिगाड हुआ यह बात बहुतही कम प्रमाणमें दिखाई पडती है; उन्नतोदर शीशेके इस्तेमालसे यह बिगाड सुधरना संभाव्य होता है।

नेत्रकी बाहरी एक या अनेक स्नायुके कार्यमे बिगाड हुआ ऐसा समझो। जिस शक्स को द्विनेत्रीय एक दर्शन (बायनाक्युअर सिंगल व्हिजन) होता है, उसके एक नेत्रकी स्नायुके कार्यमें बिगाड होनेसे उसकी कमाईकी शक्तीमें बहुत घटत हो जाती है; क्यों कि इस जररसे उसको द्विधा दर्शन की तकलीफ होती है और उसको दृष्टि काबिल होनेके लिये उस नेत्रको बंद रखना जरूरी होता है। इसवास्ते उस शक्स का आर्थिक नुकसान एक नेत्र नष्ट होजावे इतना होगा। यदि जरर होनेके पहले शक्स को एक नेत्रसे ही दिखाई पडता होगा तो, उस नेत्रकी स्नायुको इजा होनेसे कमाईका प्रमाण कमती होगा यह मानना चाहिये; हकीकतमें इस मिसालमे आर्थिक नुकसान करीब ½ माना गया है। लेकिन बाहरकी छः स्नायुका मूल्य असल हालतमें एक सरीखा नही माना जाता है। इस तरहसे खदानमें काम करनेवालेको और छापाके हरूफ जमाने वालेको नेत्रोर्ध्व सरल चालनी स्नायू मौली होती है; दर्जीको नेत्रबहिर सरलचालनी स्नायु, मुहर्रिरको, जवाहिर, दृष्टिविशारद आदि लोगोको नेत्रान्तर सरल चालनी स्नायू मौली होती है। आम लोगोको नेत्रान्तर सरल चालनी स्नायु ज्यादहसे ज्यादह मौली होती है।

(६) नेत्रको इजा होनेपर कमाईकी नाकाबिलियतका मूल्यका हिसाब करनेमे दृष्टिविशारदने इस बातको ध्यानमें रखना जरूरी है कि बहुतसे जररसे शक्सकी कमाई पर अप्रत्यक्ष परिणाम होता है; जैसेकि मुकाबलातमें उसकी लायकी कम हो जाती है। एक नेत्रवाला शक्स जो, पहले जितना काम कर सकता था, उतनाही काम नेत्र नष्ट होनेके बाद कर सकता हो तो भी, अब नया काम पैदा करनेमे और उसको कायम रखनेमें उस शक्सको मुष्किलि पैदा होती है। इस जखमी शक्सको काम करनेकी नाकाबिलियतसे होनेवाले नुकसान का दावा करनेका हक्क है, और उसको अपनी लायकीका इस्तेमाल करनेमें जो मुष्किली पैदा होती है उस वास्ते भी दावा करनेका हक्क है।

(४)

नेत्रगोलकके इजाके वास्ते नुकसानकी भरपाई या बदला

किसी मनुष्यके नेत्रको इजा होनेसे उसकी दृक्शक्ति कायमकी नष्ट हो गयी हो तो उस मनुष्यकी द्रव्योत्पादन की शक्ति कम हो जाती है। इस रीतिसे अधे हुए मनुष्यको कितना बदला-भरपाई देना जरूरी होगी इस संबंधमे दृष्टिविशारदका सलाह लेते है। इस संबधमें सलाह देनेके पहले दृष्टिविशारदको दो बातोंका विचार करना आवश्यक है :—

(१) रोगी कहता है वैसी अनुपयुक्तता वास्तवमे है या नही और यह अनुपयुक्तता खास इजाके वजहसे हुई होगी या नही इस बातका निर्णय पहले करना चाहिये। (२) इस अपघातसे उस मनुष्यकी द्रव्योत्पादनकी शक्ति कितने प्रमाणमे कमती हुई है इसका निर्णय करना चाहिये।

(१) अनुपयुक्तताका प्रमाण मुकर्रर करनाः—

अनुपयुक्तता प्रमाण मुकर्रर करनेके लिये—पहले जखमी नेत्रगोलक को खबरदारीसे जांचकर फिर उसीके इन्द्रियगम्य फरक देखना फिर नेत्रकी नैसर्गिक दृक्शक्ति भिन्न भिन्न कसौटीसे जांचकर देखना। यदि इन्द्रियगम्य फरक प्रत्यक्ष दिखाई देते हो तो विवक्षित इजाके कारणसे कौनसे पैदा हुएँ होगे इसका निर्णय करना आवश्यक है। प्रत्यक्ष

काम करनेके समय अपघात होकर इजा हुई हो तो कानूनके अनुसार इस अपघातजन्य इजाके लिये सिर्फ नुकसान भरपाई मिलती है। किन्तु काम करते रहनेसे शरीरपर धीरे धीरे असर होकर विकृत अवस्था पैदा हुई हो तो उसके लिये नुकसान भरपाई नही मिलती। इन विकृतीको विवक्षित धंदेसे पैदा होनेवाली विकृती कहते हैं। जैसे कि रबरके कारखानेमें व्हलकनाईजिंग के भागमें बहुत दिनतक कामकरनेवाले मजदूरको अंधत्व पैदा होता है क्योंकि व्हलकनाईजिंगके क्रियामे जो कारबान बाय सलफाईडका (ग्यास) धूआ पैदा होता है: वह श्वासोच्छ्वासकी-श्वासपश्वासकी क्रियाके बराबर शरीरमें जानेसे उसका असर नेत्रोंपर होनेसे दृक्शक्ति क्षीण होजाती है। इस मनुष्यकी नुकसान भरपाईके लिये तक्रार बेकायदे-शीर होगी। लेकिन काम करते समय अपघातसे मिश्रण नेत्रमें जानेकी वजहसे दृष्टिनाश हुआ हो तो उसका विचार करना जरूरी है।

नेत्रगोलकको अपघात होते ही यदि रोगीकी परीक्षा कीई जाय तो इजासे कोनसे कोनसे फरक हुए है इसका निर्णय तुरन्त होसकता है। लेकिन अपघात हो जानेके बाद कई मास के बाद रोगीकी परीक्षा पहलेसे ही करनेका समय प्राप्त हुआ हो तो, नेत्रगोलकमें दिखाई देनेवाले फरक अपघात होनेके पूर्वसेही होना सभाव्य है या नही इस बातका मिर्णय करना जरूरी है। नेत्रगोलकके अपघातजन्य लक्षण दूसरे कोनसे अन्य रोगमे दिखाई पड़ते हे इस बातका विचार करना चाहिये और अपघातके पश्चात,-अपघातसे नही बल्कि आकस्मिक रीतिसे, उस मनुष्यको यह रोग होनेसे ये लक्षण होना संभाव्य है, या नही इस बातका निर्णय करना आवश्यक है। रोगीने कही हुई ख़बरपर पूर्णतः अवलम्बित रहना बराबर नही होता, क्योंकि बाजें वक्त उसकी ख़बर बनावटी या काल्पनिक होती हैं। कभी कभी ऐसा भी होना संभाव्य होता है कि उसकी दृष्टि, पहले ही कचरा आदि क्षुल्लक कारणसे कमती हुई थी लेकिन इस अवस्थाका उसको ज्ञान नही था। नेत्रमे फिरसे कचरा जानेसे या कुछ क्षुल्लक अपघात होनेसे जब नेत्रको इजा होती है और नेत्रको खोलनेसे उसको धुधला पन मालूम होता है। और फिर वह मनुष्य दृष्टि कम होनेका सबंध इस नये अपघातसे जोड़ देता है।

रोगीने या उसके रिश्तेदारोंने (संबधी लोगोने) दीई हुई ख़बर पूरी तौरसे काबिल न होगी यह बात ख्यालमें रखकर इन्द्रियगम्य लक्षणसे रोगका निदान करना। निर्णय करने वक्त मुकर्रर करनेकी पहली यह बात होती है कि अपघातकी वजहसे दृश्य लक्षण होंगे या नहीं। और दूसरी ख्यालमें लेनेकी यह बात होती है कि खास अपघातके खास लक्षण हुए है या नही। तारकापिधानका चक्कूके काटसे बना हुआ डाग उसके क्षतके डागसे भिन्न दिखाई देता है। नेत्रगोलकको ठेस लगनेसे तारकापिधानका डाग नही दिखाई देगा किन्तु शुक्लपटल फट जायगा, तारका अपने मूलसे (नीवसे) अलग होजायगी, स्फटिकमणि स्थानभ्रष्ट होजायगा आदि लक्षण दिखाई पडते है।

नेत्रगोलकके दिखाई देनेवाले फरक इजासे हुए होंगे, या आपीआप हुए होंगे तो बाजे वक्त उनकी काल मर्यादा मुकर्रर करना संभाव्य होता है। और इस कालके पूर्वके कालमें पायी हुई इजाका मेल कहांतक जमाना संभाव्य होता है इसका निर्णय कर सकते हैं। जैसे

कि तारकापिधान के पुराने डागमे और नये डागमे फरक दिखाई पडते हैं और जिस नेत्रके दृक्शक्ति का लोप होकर बहुत दिन हो जाते हैं वही नेत्र तिरछा हो जाता है।

जिन रोगीयोमें इन्द्रियगम्य लक्षण नही दिखाई पडते इनके नेत्रोके पुराने फरकोका निदान बराबर करनेके लिये निरिक्षण खबदारीसे करना चाहिये और इसमें ज्यादा अनुभव की भी आवश्यकता होती है। इन रोगीयोके दो वर्ग करना मुनासिक है।

पहला वर्गः—इनके विकृत लक्षण होतेही प्रत्यक्ष नही दिखाई पडते, ये लक्षण इतने सूक्ष्म होते हैं कि हाल जो यंत्र अस्तित्व मे हैं उनके सहायतासे भी पहचानना संभाव्य नही होता। **उदाहरणार्थ** ऐसा समझो कि सूर्यग्रहण, बिना काले कांचसे देखनेमे प्रकाशके किरण दृष्टिस्थानकेंद्रपर (फोव्हिया सेन्ट्रालिस) गिरनेसे एकाएक **दृष्टि** बद हो जाती है। कभीकभी उसमें बारीक रक्त श्राव होता है और वह सोख जाने के पश्चात दृक्शक्ति बंद होजाती है। इन दोनो अवस्थाओमे शारीरिक विकृत अवस्थाके फरक पैदा होते है लेकिन वे पहचानना संभाव्य नही होता। इसी वर्गमे मस्तिष्कतलके भंगका दृष्टिरज्जुपर असर होनेसे जो अंधत्व या दृक्शक्तिकी क्षीणता पैदा होती है ऐसे उदाहरणोका समावेश करना। यह विकृत अवस्था नेत्रगोलकके पिछले ओरको होनेसे दिखाई नही पड़ती।

दूसरा वर्गः—इस वर्गमें जिन लोगोके नैसर्गिक दृक्शक्तिकार्यका बिगाड (फंकशनल डिसआरडर्स) हुआ है ऐसे उदाहरणोका समावेश होता है। इनका निदान करनेमे कुशलताकी जरूरी होती है। इन रोगीओंको जबर धक्का या रेलवाईका अपघात होनेसे मानसिक क्षोभ पैदा होकर दृक्शक्तिके नैसर्गिक कार्यका बिगाड होजाता है और अधत्व पैदा होता है। इस वर्गको **अपघातजन्य मज्जातन्तु क्रिया लोपका वर्ग** (ट्राम्याटिक न्यूरोसिस कहते) हैं। इसके मुख्य लक्षण साधारणतया मज्जातन्तुक्रियालोप यानी अपतत्रक या हिस्टेरियाके सरीखे होते हैं। इसलिये इस अवस्थाको **मज्जातन्तुक्रियालोप जन्य अंधत्व; दृष्टिदौर्बल्य अपतंत्रकजन्य अंधत्व संधानक्षीणताजन्य निर्बल दृष्टि** कहना।

मज्जातन्तुक्रिया लोप जन्य दृष्टि दौर्बल्य; अपघातजन्य दृष्टि दौर्बल्यके लक्षणः—दृक् शक्तिकी तीव्रता कम होना, रंगज्ञान तथा प्रकाशज्ञान कमती भासमान होना और दृक्क्षेत्रकी मर्यादा कम होना ये लक्षण दिखाई पड़ते है। इन रोगीयोके क्षेत्रका विशेष यह होता है कि वह समकेन्द्रिक दिखाई पडता है। और जितने ज्यादा समय तक दृक्क्षेत्रनापन यंत्रसे दृक्क्षेत्रका नापन किया जाता है उसी प्रमाणमे दृक्क्षेत्र ज्यादा संकुचित होता जाता है ऐसा दिखाई पड़ता है; यह ग्लानीकी प्रतिक्रिया है (फटीग रीॲकशन)। वातवाहिनीमंडलकी थकावटमें यह लक्षण दिखाई पडता है। क्षेत्र नालिके आकार का हो जाता है। दृक्क्षेत्रमें स्वैर्यबिन्दु कितनेही दूर हटाया तो वहबढ़ता नही। क्षेत्रमे केन्द्रस्थ या वलयाकार अंधतिलक हरएक रेखांशमे दिखाई पड़ते हैं।

यह विकृत अवस्था दोनों नेत्रोमें कम या ज्यादहप्रमाणमे दिखाई पड़ती है। यूवकोमें मुख्यतः स्त्रीवर्गमें यह विकृत अवस्था ज्यादह दिखाई पडती है। इन रोगियोके नेत्रगोलकोमें कुछभी विकृत शरीर नही दिखाई पड़ता।

इजाहुए कर्मचारको अन्य डॉक्टरने देखने के पहले ही तपासने का मोका मिला तो, और इसमें यह लक्षण दिखाई पडता हो तो उपरीनिर्दिष्ट मज्जातन्तुक्रियालोप जन्य दृष्टि दौर्बल्य का निदान करना संभाव्य होता है। लेकिन जिस मनुष्यको इजाहुई है वह सुशिक्षित हो, और रेलवाई सरीखे या अन्य अपघातोके लिये बडी रकमका दावा करता है, और जिसको दूसरे बहुत–डॉक्टरोने इसी संबंधमें तपासा हो तो उसमे यह निदान करना संभाव्य नही होगा। क्योकि पूर्व की जाच से उसको लक्षणोंका ज्ञान होनेसे वैसेही लक्षण का बहाना करना, उसको संभाव्य होता है। और इन्द्रिय गम्य लक्षणोंका अभाव होनेसे उसके विधानपर अवलम्बित रहना आवश्यक होता है।

(२) द्रव्योत्पादनशक्तिका प्रमाण मुकर्रर करना

इजाके लक्षणोका निर्णयके बाद तज्ञ या वाकिफगार का कार्य यह होता है कि जिस मनुष्यके नेत्रगोलकको इजा हुई है, उस मनुष्य की द्रव्योत्पादन शक्ति कितनी कम हुई है या पूरी नष्ट हुई है इस बातका निर्णय करना। इस लिये दोनो नेत्रोके दृक्शक्तिका कार्य चाक्षुष कसौटीके सहायतासे ख़बरदारीसे तपासना चाहिये। दृक्शक्तिके लोपका प्रमाण इन्द्रिय गम्य फरकोंके प्रमाणके अनुसार कितना मिलता होता है इसका बराबर नाप करना अनुभवसे कठण नही होता।

दोनो नेत्रोको इजा हुई होगी, या एक नेत्रको इजा हुई होगी और दूसरा नेत्र पहलेसेही खराब होगा। दोनो उदाहरणोमें दोनो नेत्रोकी मिली हुई कुल दृक्शक्ति कमती होती है। इससे शेष बची हुई दृक्शक्ति किस कामके काबिल होगी इसका निर्णय कर सकते है। एक नेत्रको इजा होनेसे उसमें अधत्व प्राप्त हुआ हो और दूसरे नेत्रकी दृक्शक्ति नैसर्गिक हो तो भी इस मनुष्यके द्रव्योत्पादन शक्तिका नाप करना कठीण होता है। क्यो कि इस मनुष्यकी दृक्शक्ति अच्छी होती है लेकिन उसको द्विनेत्रीय एकदर्शनके फायदे, यानी द्विनेत्रीय क्षेत्र, और पदार्थ के मोठाईका द्विनेत्रीय ज्ञान नही मिलते।

एक नेत्रीय दृक्क्षेत्र, द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्रकी अपेक्षा छोटा होता है क्योकि अधे नेत्रके तरफ की क्षेत्रकी मर्यादा कम रहती है लेकिन कोई काम करनेमें इस व्यंगकी तकलीफ बहुत कम लोगों को मालूम होती है इसका कारण यह होता है कि जिस नेत्रकी दृक्शक्ति कमती होती है उस ओरको गर्दनको और अच्छे नेत्रको झुकाकर बीचके नासिका वंशसे दृष्टिको होनेवाली अडचन कम करनेको वह मनुष्य सीकता है। लेकिन द्विनेत्रीय दृक्शक्ति नष्ट हो जाना बहुत महत्वपूर्णकी बात है। एकनेत्रकी दृक्शक्ति थोडी कम हुई हो तो उससे द्विनेत्रीय दृष्टिमे कुछ बहुत फरक नही होता। लेकिन एकनेत्रकी दृक्शक्ति बहुत कम हुई हो तो द्विनेत्रीय दृष्टि नष्ट हो जाती है। कोई एक प्रमाण ज्यादा या कोई एक प्रमाण कम इसकी मर्या दा सब लोगोके वास्ते एक सरीखी रखना सभाव्य नही होता। क्योकि हरएक आदमी की दृक्शक्तिका प्रमाण सिर्फ बिघडे हुए नेत्रके दृक्शक्तिके तीव्रतापर अवलम्बित नही रहता बल्कि नेत्रका दृक्क्षेत्र, उसका वक्रीभवन दोष उसके स्नायुके अन्योन्य संबंध आदि अन्य बातोंपर भी अवलम्बित रहता है।

बाजेवक्त एक नेत्रको इजा होनेसे उसमे मोतीबिन्दु पैदा होता है और उसकी दृष्टि नष्ट हो जाती है। लेकिन शस्त्रक्रियासे मोतीबिन्दु को निकाल डालनेसे उस नेत्रकी दृष्टि वापिस आती है, चष्मेके इस्तेमालसे शायद नैसर्गिक जैसी होना सभाव्य होता है। तो भी यह नेत्र **द्विनेत्रीय एकदर्शनके** काबिल नही हो सकता। चष्मेका इस्तेमाल न करनेसे इस नेत्रको बहुत कम दिखाई पड़ता है। इजा न हुए नेत्रकी दृक्शक्ति नैर्सगिक हो और इजा हुए नेत्रको चष्मा लगाकर दोनो नेत्रोसे एकही सयय देखनेका प्रयत्न करनेसे तकलीफ मालूम होती है, चष्मा सहा नही जाता। क्योकि दोनोका वक्रीभवन एक सरीखा नही होता। और हरएक नेत्रकी स्वतत्र दृक्शक्ति की तीव्रता नैसर्गिक होते भी ही द्विनेत्रीय एक दर्शन होना संभाव्य नही होता। और नेत्रस्नायुओकी समतुलित अवस्थाका बिगाड यानी एक नेत्रकी तिरछेपनकी अवस्था अप्रकटित है ऐसे मनुष्यके एक नेत्रको क्षुल्लक इजा होनेसे उसकी दृक्शक्ति तीव्रता कम हो गई हो, तो उसको द्विनेत्रीय एकदर्शन नही हो सकता। क्योकि उसके नेत्रका अप्रकटित तिरछेपनका रूपान्तर दृश्य तिरछेपनमे हो जाता है और फिर द्विनेत्रीय एकदर्शन नही हो सकता।

नेत्रकी इजाका आखिरी परिणाम द्विनेत्रीय एक दर्शनका अभाव होनेमे हुआ है यह बात सशोधनसे मालूम हुई हो तो, इस अवस्थासे उस मनुष्यको काम करनेमे कितनी अडचन पैदा होती है इसकी जाच करना आवश्यक है। द्विनेत्रीय एकदर्शनके कारणसे, मनुष्यको किसीभी पदार्थ की मोटाईका बराबर बोध होता है। बहुतसे पेशे ऐसे होते है, उदाहरणार्थ लेखक, घडिया दुरुस्त करनेवाला आदि, जिनमे द्विनेत्रीय एकदर्शनकी आवश्यका नही होती; लेकिन कोई पेशे ऐसे होते है कि जिनमे लबाई, चौडाई आदि गुणोका ज्ञान जरूरी होता है। सादे लकडी तोडनेवाले मजदूर को भी द्विनेत्रीय एकदर्शनकी आवश्यकता होती है। पदार्थकी गहराई, मोटाईके नापनका अचूक अन्दाज उसको न हो तो, उसकी उगलीयां छिल जाना सभाव्य है।

यह बात सत्य है कि आदतसे एकही नेत्रसे लम्बाई या चौडाई का नाप बराबर होना संभाव्य है और बहुतसे काने लोग यानी जिनका एक नेत्र तिरछा हुआ है ऐसे लोग इस तरहके पेशे कर सकते है और अच्छी तरहसे करते है; दोनो नेत्र जिनके नैसर्गिक या अच्छे होते है ऐसे लोगोके बराबर काम करते है। लेकिन जिस मनुष्य का एक नेत्र काम करने के काबिल है ऐसे कर्मचारीको इस व्यंगकी बजहसे नौकरी मिलना मुष्किल होता है। किन्तु पहले, दोनो नेत्रोसे काम करने वाले मनुष्य का एक नेत्र बेकाम हो जाय तो, वह अच्छी तरहसे काम कर नही सकता या बिलकुल कर नही सकता। इस वजहसे वह मनुष्य काम करने लायक नही रहता। इस लिये एक नेत्र काम के काबिल नही रहा और दूसरे नेत्रकी दृक्शक्ति नैसर्गिक हो तो भी उस मनुष्य के काम करनेकी शक्तिमे बहुत फरक दिखाई पडेगा। इन इजाओंसे भिन्न भिन्न लोगो की द्रव्योत्पादन की शक्ति मे का फर्क भिन्न भिन्न होता है और उसके अनुसार उनको नुकसान भरपायी मिलती है।

एक नेत्र को इजा होनेसे उसकी द्रव्योत्पादन शक्ति किस प्रमाणमे कम हुई है यह मूल द्रव्योत्पादन शक्ति के सेंकडे के अमुक प्रमाण में कम हुई ऐसा कहने की चाल

है। यह प्रमाण भिन्न भिन्न होता है। एक नेत्र की दृक्शक्ति नैसर्गिक हो और दूसरे नेत्र की दृक्शक्ति बिलकूल नष्ट हुई हो तो उस मनुष्यकी द्रव्योत्पादन शक्ति ८० प्रति सैंकडा कम हो जाती है ऐसा इण्डियन वर्कमेन्स कोपेनसेशन के कानून के अनुसार है। लेकिन कई देशोमे (२५%) माना जाता है। लेकिन दूसरे नेत्र की दृक्शक्ति कुछ थोडे प्रमाणमें कम हो गयी हो तो यह द्रव्योत्पादन का प्रमाण और भी कम माना जाता है।

जिन लोगोको बारीक काम करने की जरूरत होती है, उनका एक नेत्र नाकाबिल होनेसे इनकी द्रव्योत्पादन की शक्ति **२५ से ३३ प्र. सै.** मे घटती है यह माना गया है।

दृक्शक्ति कायम हो लेकिन इजा से एक नेत्र तिरछा होनेसे उस मनुष्यको द्विधा-दर्शनसे तकलीफ होती हो, तो उसको भी यही नियम लागू होता है। बहुतसे मजदूरोको जिनमे पहले द्विनेत्रीय एक दर्शनका अभाव था और फिर कई सालके बाद पहले की द्रव्यो-त्पादन की शक्ति आदतसे प्राप्त होती है, तब इनको नुकसान भरपाई देनेका प्रमाण पहले की शक्ति वापिस आनेतक ज्यादा देकर फिर कम करते है।

दोनो नेत्रोकी दृक्शक्ति कम हुई हो तो जिस नेत्र की शक्ति दोनो से ज्यादह होती है, तो काम की तरहसे भरपाई करने का प्रमाण मुकर्रर करना चाहिये।

अल्पमात्र अनुपयुक्तता—कुछ समयकी नाकाबिलियत—थोडे दिनकी होगी या कायम स्वरूपकी होगी। जब कोई मजदूर किसी कारखानेके खास खातेमें अपघातके समय जो कुछ कमाई कर सकता था, वही कमाई अपघातके पश्चात, पैदा हुई नाकाबिलियतसे घट जाती है तब उस अवस्थाको **कुछ समयकी थोडी नाकाबिलियत कहना चाहिये**। और जब मजदूर अपघात होने के पहले किसीभी खातेमें काम करके द्रव्योत्पादन कर सकता था लेकिक अपघातके पश्चात किसीभी खातेमे उसकी काम करके द्रव्योत्पादन की शक्ति कमती होती है तब उस अवस्थाको **कायम स्वरूपकी कुछ थोडी नाकाबिलियत** कहना चाहिये। इस इजाका स्वरूप कायम स्वरूप की कुछ थोडी नाकाबिल करनेवाली इजाके शेड्यूल अ मे लिखा हुआ है।

अपघात होनेके पहले कोईभी काम करके द्रव्योत्पादनकी शक्ति पूर्ण थी किन्तु अपघात होनेके पश्चात कोईभी काम करके द्रव्योत्पादन की शक्ति पूरी तौरसे नष्ट हो जानेकी अवस्था - जब अपघातसे दोनो नेत्रोंकी दृष्टि कायमकी नष्ट हो जाती है, तब **द्रव्योत्पादन की कायमकी नाकाबिलियत पैदा** हुई एसा समझना चाहिये। इस इजा का स्वरूप फर्द 'अ' मे किया है और उसके सामने इजासे पैदा होनेवाली नाकाबिलियतका सैंकडा प्रमाण कितना होता है यह लिखा होता है। दोनो नेत्रोकी दृष्टि नष्ट हुई हो तो द्रव्योत्पादन शक्ति सौ टक्का कमती होगई ऐसा समझना। एक नेत्रकी की शक्ति कम हुई हो तो द्रव्योत्पादन शक्ति का प्रमाण सैंकडा ३० घट जाता है ऐसा मानना।

नुकसान भरपाई की रकम

माहवारी तनखाह		मृत्यु हुआ हो तो	कायम की द्रव्योत्पादन की नष्ट हुई शक्ति का बदला	महावारी का आधा प्रमाण
इससे कम नहीं	इससे ज्यादह नहीं			
०	१०	५००	७७०	महावारी की आधी रकम रुपिया
१०	१५	५५०	७७०	५
१५	१८	६००	३४०	६
१८	२१	६३०	८८२	७
२१	२४	७२०	१००८	८
२४	२७	८१०	११३४	८-८
२७	३०	१०००	१२००	९-०
३०	३५	१०५०	१४७०	९-८
३५	४०	१२००	१६८०	१०
४०	४५	१३५०	१८००	११-४
४५	५०	१५००	२१००	१२-८
५०	६०	१८००	२५२०	१५-०
६०	७०	२१००	२९४०	१७-८
७०	८०	२४००	३१६०	२०-०
८०	१००	३०००	४२००	२५-०
१००	२००	३५००	४५००	३०-०
२००		४०००	५६००	३०-०

खंड तृतीय

अध्याय ६

नेत्रका शरीर

मनुष्यके दो नेत्र होते हैं। नेत्र एक बड़ा काबिल और परमावश्यक इंद्रिय है। विना नेत्र जीवनमें आनन्द प्राप्त नहीं होता।

चक्षु रक्षायाम् सर्वकालं मनुष्यैः यत्नः कर्तव्यो जीविते यावदिच्छा ॥ (चरक)

इस इन्द्रियके द्वारा मनुष्यको प्रकाशका का ज्ञान होता हैः रंग, रूप और आकारका बोध भी इसीकी सहायतासे होता है। इसीके द्वारा सब लोग संसारको देखते हैं।

जितनी आवश्यक यह इन्द्रिय है, उसकी रक्षाका प्रबंध भी उतनाही किया गया है। चेहरेके सामनेकी ओर, भौंहोंके नीचे नासिकाकी दाहिनी और बांई ओरको अनेक अस्थि-

चित्र नं. ८५

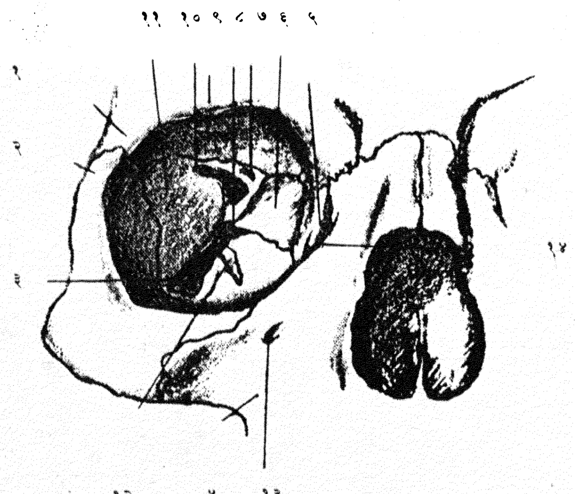

नेत्रगुहाकी अस्थियां

(१) ललाटास्थि, (२) गंडास्थि, (३) अधोनेत्रगौहिक दरार, (४) ऊर्ध्व दन्तास्थि, (५) बाष्पास्थि, (६) झरझरास्थि, (७) चाक्षुष छिद्र, (८) तात्वास्थि, (९) ऊर्ध्वनेत्र-गौहिक छिद्र, (१०) ऊर्ध्वनेत्रगौहिक दरार, (११) जतुकास्थि, (१२) अधोनेत्रगौहिक वाली, (१३) अधोनेत्रगौहिक छिद्र, (१४) बाष्पखात.

योंसे बने हुए दो गड्हे होते हैं । इनको नेत्रगुहा कहते हैं । इन गडहोमे नेत्रगोलक रहते है। नेत्रगुहाका आकार सूची स्तभके समान होता है । यह स्तभ सामनेसे पीछेकी ओर आडा जाता है, यानी सूची स्तंभका अग्र, पीछेकी ओर, और उसका तल सामनेकी ओरको होता है । तल नेत्रगुहाका प्रवेशद्वार होता है । नेत्रगुहाके अग्र, प्रवेशद्वार, चार दीवाले और चार कोण होते है । यह गुहा सात अस्थियोके सयोगसे बनी हुई है, जिनके नाम है---ललाटास्थि, जतुकास्थि, झरझरास्थि, ऊर्ध्वदन्तास्थि, गडास्थि, ताल्वास्थि और बाप्पास्थि (फरान्टल, स्फिनाईड, एथमाईड, सबम्याक्झिलरी, मेलर, पॅलेटल और लाक्रिमल) । पहली तीन अस्थिया शरीरमे एक एकही होनेपर भी दोनो नेत्रगुहाओकी रचनामे समान रूपसे शरीक पायी जाती है, मगर आखिरी चार अस्थिया जोडीदार और हरएक नेत्रमे अलग अलग रहती है ।

नेत्रगुहाका अग्र पिछली ओरको होता है । यह अग्र जतुकास्थिके दोनो पंखोकी दरारके भीतरी भागके दृष्टिरज्जुके छिद्रके पास होता है । इसकी दिशा ऊपर और थोडी अन्दरकी ओरको झुकी हुई रहती है । **नेत्रगुहाका प्रवेशद्वार**--प्रवेशद्वारकी ऊपरकी सीमा ललाटास्थिसे बनती है । प्रवेशद्वारकी इस सीमाका बाहरका भाग आगेकी ओरको ज्यादह झुका होनेसे नेत्रका बाहरकी चोटसे या आघातसे बचाव होता है । प्रवेशद्वारकी बाहरी सीमा तथा नीचेकी सीमाका अर्ध भाग गंडास्थिसे बनता है । नीचेकी सीमाका अन्दरका आधा भाग तथा अन्दरकी सीमा ऊर्ध्व दन्तास्थिसे बनती है । नेत्रगुहाके प्रवेशद्वारकी ऊपरकी सीमा और अन्दरके भागके सिवाय अन्य सीमाएँ स्पष्ट दिखाई पडती है ।

नेत्रगुहाकी चार दीवालोमेसे **ऊपरकी दीवाल या छत** मुख्यतः ललाटास्थिके चाक्षुप फलकसे बनती है, इसके पीछे जतुकास्थिके लघुपखका भाग होता है । यह छत सामनेसे पीछेको तथा अन्दरसे बाहरको कमानदार होती है । छतकी अन्दरकी ओर तथा प्रवेशद्वारके पीछेकी ओरको एक छोटासा गडहा होता है । इसमे नेत्रकी वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुकी फिरकी चिपकी रहती है । छतकी बाहरकी ओर तथा प्रवेशद्वारके पीछे उथला गडहा होता है जिसमे अश्रुग्रथी रहती है । छत अत्यन्त पतली होनेसे उसको आसानीसे वेध सकते है । **अन्दरकी दीवाल** सामनेसे पीछे ऊर्ध्व दन्तास्थिका ऊपर जानेवाला शृग, बाष्पास्थि, झरझरास्थि और जतुकास्थि इस अनुक्रमसे इनके संयोगसे बनती है । इस दीवालका सामनेका भाग सरल और मध्य रेषासे समानान्तर होता है, लेकिन पिछला भाग थोडा तिरछा होता है । यह दीवाल छोटी और पतली होती है । **नीचेकी दीवाल** या नेत्रगुहाका तल ऊर्ध्वदन्तास्थिसे बनता है; पिछले भागमे ताल्वास्थिका चाक्षुष भाग होता है; सामनेकी ओरका बाहरी भाग गडास्थिसे बनता है । इस तलमे अधो नेत्रगौहिक नामकी नाली और नलिका होती है। **बाहरकी दीवाल** गडास्थि तथा जतुकास्थिके बडे पंखसे बनती है; ललाटास्थिका थोडासा भाग इस दीवालमे दिखाई देता है । यह दीवाल सामनेसे पीछेकी ओर अन्दर जाती है । इस दीवालका नीचेका भाग अन्दरकी ओरको झुकता है। इस दीवालके पीछेके भागसे, जतुकास्थिके दोनो पखोमेकी दरारकी नीचेकी और बाहरकी सीमा बनती है। इस दरारके द्वारा नेत्रगुहाका सबंध मस्तकतलके बीचके गडहेसे स्थापित होता है । इस दीवालके

नीचेके कोणमे जतुकास्थि और ऊर्ध्वदन्तास्थि इन दोनोके बीचकी दरार होती है। इस दरारसे नेत्रगुहाका गंडास्थिके ओरके गड्ढसे संबंध प्रस्थापित होता है।

(१) **नेत्रगुहामेंके छिद्र**—हरएक नेत्रगुहामे नौ छिद्र होते. है। **चाक्षुषछिद्र या दृष्ठि रज्जुका छिद्र** (आपटिक फोरामेन) गोल या दीर्घवृत्ताकार होता है। इसका स्थान नेत्र गुहाके अग्रके पास जतुकास्थिके लघु पंखके दो मूलोंमें होता है। साधारणतया यह नेत्रगोलके मध्य समक्षेत्रके ऊपरकी ओर को होता है। इस चाक्षुषछिद्र की लम्बाई ४।९ मि. मि. और मोटाई ४।६ मि. मि. होता है। इसकी दिशा पीछेकी ओर मध्य रेषा की तरफ झुकी हुई होती है और दोनों छिद्रोंकी अक्षरेषाएं पीछे बढानेसे वे पारस्परीकसे सेला टरसिका पर मिलती है। इस छिद्र में से दृष्टि रज्जु और चाक्षुषनीला खोपडीके अन्दर जाते है। और खोपडीके चाक्षुष रोहिणी, और आन्तर ग्रैवेयिक रोहिणी की (इन्टरनल कराटिड अरटरी) चारो ओरके आनुकंपिक (पिंगल सिपथेटिक) मज्जा जालके तन्तु इस छिद्रमेसे नेत्र गुहामे जाते है। चाक्षुष छिद्र की छत के ऊपर घ्राणेन्द्रिय का मज्जातन्तु पथ होता है। इस छिद्रका, भीतरी ओरका जतुकास्थि तथा झरझरास्थिके विवरोंके साथ संबंध होता है। बाहर तथा नीचेकी ओरको ऊर्ध्व नेत्रगौहिक दरार होती है। कभी कभी यह छिद्र दोहरा दिखाई देता है।

(२) **ऊर्ध्व नेत्र गौहिक दरार** (सुपीरियर स्फिनायडल फिशर–फोऱ्यामन लासिरम अन्टायकस)—यह दरार नेत्रगुहाके अग्रके पास होती है। जतुकास्थिके बडे तथा छोटे पंखोमे रही हुई यह दरार ललाटास्थिके सधीसे बंद हो कर उसका छिद्र बनता है। इस छिद्रमेसे तीसरी तथा चौथी मस्तिष्क मज्जारज्जुएँ, पचमी मस्तिष्क मज्जारज्जूकी चाक्षुष शाखा, छठी मस्तिष्क मज्जा रज्जु, चाक्षुष मज्जा कंदका आनुकंपिक मूल और अन्य आनुकंपिक शाखाएँ मस्तकसे होकर नेत्रगुहामें घुसते है। नेत्रगुहासे चाक्षुष नीला और मस्तिष्कावरण (डुरामेटर) को अश्रुग्रंथी की रोहिणी की वापस जानेवाली शाखा है मस्तकमे जाती है।

(३) **गंडास्थिमेंके छिद्र** जिनसे चाक्षुष रोहिणी की शाखा और मज्जातन्तु की शाखाएँ बाहर जाती है।

(४) **झरझरास्थिमेंके छिद्र**–ये पुरोवर्ती और पार्श्ववर्ती झरझरास्थि छिद्र ऐसे दो छिद्र होते है। पुरोवर्ती छिद्रमेंसे उसी नामकी रोहिणी और नासिका मज्जा रज्जु, और पार्श्ववर्ती छिद्रमेंसे उसी नामकी रोहिणी बाहर जाती है।

(५) **ऊर्ध्व नेत्र गौहिक छिद्र** (सुप्राआरबिटल फोरामन) यह छिद्र ललाटास्थिकी ऊर्ध्व नेत्र गौहिक किनारपर भीतरी ओरका उसके दूसरे और तीसरे भाग की सधिपर होता है। इस छिद्रसे उसी नामकी रोहिणी तथा मज्जातन्तु बाहार आती है।

(६) **अधो नेत्र गौहिक छिद्र** (इनफ्रा आरबिटल फोरामन) नेत्र गुहाके तलकी किनारके नीचे ८ मि. मि. दूरीपर होता है। इसमेंसे उसी नामकी रोहिणी तथा मज्जातन्तू गालोंपर आती है।

(७) **जतु-ऊर्ध्वदन्तास्थिकी दरार** (स्फिनो मॅक्झिलरी फिशर)–जतुकास्थि और ऊर्ध्व दन्तास्थि इन दोनोके बीचकी दरार नेत्र गुहाके तलकी बाहरकी ओरको होती है। इस दरारके

चारों ओर जतुकास्थि, ऊर्ध्वदन्तास्थिका चाक्षुष फलक, गंडास्थि और ताल्वास्थि होते हैं। इस दरारमेंसे नेत्रगुहाका संबंध कनपटीकी ओरका गडहा, गंडास्थि और ऊर्ध्वदन्तास्थिके पासका गडहा इनके साथ स्थापित होता है। कनपटीको जोरसे घूसा वगैरा लगनेसे इस दरारसे रक्तस्राव जारी होता है जो नेत्रगुहामे घुसकर शुक्लास्तरके नीचे फैल सकता है।

(८) **नासिका या अश्रुवाही नाली** (नेझल या लाक्रिमल डक्ट) का छिद्र नेत्र-गुहाके प्रवेशद्वारके अन्दरकी ओरको शुरू होकर वह नासागुहाके अध. सुरंगाके (इनफिरीयर मियाटस) अगले भागमें खतम होता है। यह नाली नासिकाकी बाहरी दीवालमे रहती है। इसके इर्दगिर्द बाष्पास्थि, ऊर्ध्व दन्तास्थिका नासिका शृंग और अधो शुक्तास्थि होते हैं। इस नालीकी दिशा नीचेकी ओर कुछ पीछे और कुछ बाहरकी ओर झुकी हुई होती है।

नेत्रगुहाकी चारो दीवाले प्रवेशद्वारके पास बहुत मोटी होनेसे नेत्रगोलकको सामनेसे लगे हुए घूसेसे मुख्यत. ऊपरकी और नीचेकी ओरके भाग पर बहुत जोरसे चोट नही आती, बल्कि उसकी अच्छी तरहसे रक्षा होती है। बाहरकी दीवाल कुछ पीछे होनेसे इस ओरमे चोट लगनेका सभव ज्यादा होता है। अदरकी ओरसे भी नासावशसे रक्षण होता है।

दोनो नेत्रगुहाके अग्र पीछेकी ओरको बढावें तो **सेला टरसिका** पर पारस्परीकसे मिलते है। दोनोसे बना हुआ कोण ४२ से ४४ अशका होता है। नेत्र-गुहाका अक्ष और नेत्रगोलकका दृगाक्ष दोनों भिन्न होते है। नेत्रगुहाका अक्ष गुहाके अग्रसे द्वारको जानेमे थोडा बाहर और थोडा नीचेकी ओरको झुकता है। इससे उसका आडे अक्षमें दृगाक्षके साथ १०।१५ अंशका कोन होता है। दृगाक्ष सामनेसे सीधा पीछेकी ओरको जाता है।

चित्र नं. ८६ नेत्र गुहाकी दीवालोंसे बने हुए कोण

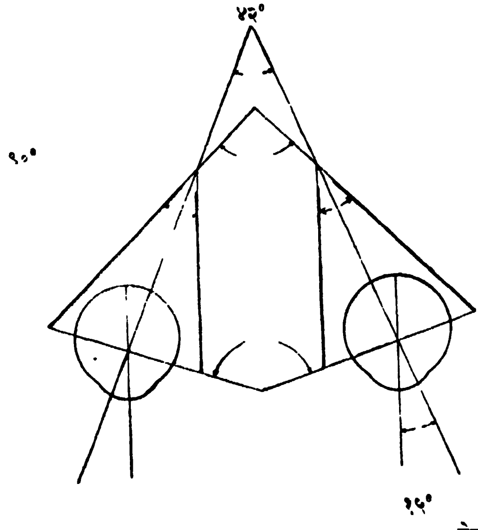

नेत्रगुहाका नाप सब देशके लोगोमे एकसा नही होता। लेकिन आमतौरसे प्रवेशद्वारसे अग्रतक का उसका नाप ४०–४५ मि. मि. होता है। प्रवेश द्वारकी चौडाई ४० मि. मि. और उसकी ऊचाई ३५ मि. मि. मानी गई है। स्त्रियोके नेत्रोमें यह नाप कुछ कम होता है।

दोनो नेत्रगुहाओकी भीतरी दीवाल सामनेकी ओरको शरीरकी खडी मध्य रेखा से और परस्परसे भी समानान्तर होती है। लेकिन दोनो के पिछले भाग बाहरकी ओरको झुके हुए होते है। हरएक नेत्रगुहाकी बाहरकी दीवाल भीतरी दीवालके साथ ४८ अंश का

कोन बनाती है। दोनो नेत्रगुहाओंकी बाहरकी दीवाले पीछे बढाई जाय तो एक दूसरी से मिलनेपर उनका कोण समकोण से बडा होगा।

दोनों नेत्रगुहाओ के बीचकी जगहमें नासिकास्थि, बाष्पास्थि, ऊर्ध्व दन्तास्थि के ऊपरका नासिका शृंग, ऊर्ध्व नेत्रगौहिक छिद्र का ललाटास्थि का भाग और झरझरास्थि का बीचका लम्बा फलक और उसके बाजुके गोले होते हैं।

नेत्रगुहान्तस्थ घटक—हरएक नेत्रगुहामे नेत्रगोलक और दृष्टिरज्जुके सिवाय आस्थ्याश्रित पटल (पेरिआस्टियम), मेदोमय और तन्तुर घटकोके पटल, नेत्रस्नायु, रक्तवाहिनीयां यानी रोहिणी और नीला, मज्जारज्जुतन्तु तथा चाक्षुष मज्जाकद (सिलियरी और लेन्टीक्युलर ग्यागलियन) अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण आदि घटक होते हैं, जिनसे नेत्रगुहा पूरी तौरसे भरी हुई होती है। सब घटक मयोगी तन्तुर घटकोके आवरणसे लिपटे रहते हैं और परस्परसे बधे हुए होते हैं।

इन सब घटकोका स्थूल शारीरवर्णन पहले करेगे; मूक्ष्म शारीरवर्णन अन्य जगह देंगे

(अ) **संयोगी घटक** ये प्रमुख रूपसे तीन हैं—(१) नेत्रगुहाकी दीवालोको आच्छादन करनेवाला आवरण और ऊपावरण, (२) नेत्र स्नायुओका आवरण; (३) नेत्रगोलकके चारो ओरका मेदोमय–चरबीदार–पटल।

(१) **नेत्रगुहाकी दीवालोंका आवरण**—यह आवरण मस्तिष्कके दूरामेटर नामके बाह्य आवरणका विस्तार है। यह आवरण उर्ध्व नेत्रगौहिक दरार और चाक्षुष छिद्रके साथ पक्का चिपका रहता है। चाक्षुष छिद्रके सामनेकी ओर इस आवरणका बाहरी और भीतरी ऐसे दो भाग होते हैं। (अ) बाह्यभाग नेत्रगुहाकी दीवालोसे दृढबद्ध रहता है और इसीको **अस्थ्याश्रित पटल** कहते हैं। यह पटल पतला लेकिन चिकना और लचीला होता है। नेत्रगुहाके छिद्रोमेसे उसका मस्तकतलके अन्य अस्थिपटलोमे सबध आता है। नेत्रगुहाके प्रवेशद्वारके पास इससे एक परदा बनता है जिसको **नेत्रगौहिक पटल** (सेपटम् आरबिटेल) कहते हैं। नेत्रगौहिक पटल प्रवेशद्वारकी किनारके पास शुरु होकर नेत्रच्छदके च्छदपटकी (टारसल प्लेट) ऊपरकी उन्नतोदर किनारसे जा मिलता है। लेकिन इसके पहले उसका नेत्रच्छदोत्थापिका स्नायु–तथा सरलोर्ध्व नेत्रचालनी स्नायु इन दोनोके आवरणोसे संबंध जुडा हुआ होता है। और च्छदपटके अन्दरकी तथा बाहरकी ओरके बदोसे भी उसका सयोग होता है। जब नेत्र बंद होते हैं तब दोनो नेत्रच्छद एक दूसरेमे मिलते हैं। और तब इस परदेकी वजहसे नेत्रगुहान्तस्थ घटक बाहर नही आ सकते।

(ब) नेत्रगुहाकी दीवालोका आवरणका भीतरी भाग जिसको टेननका आवरण या स्नायुओका आवरण कहते है नेत्रगुहाके घटकोंके बीचमें घुसनेसे नेत्रगुहाके अनेक कोठे बनते है।

(२) नेत्रगोलकके चारो ओरके इस आवरणसे नेत्रस्नायुको और नेत्रगुहाकी किनारियोंको स्वतंत्र आवरण प्राप्त होकर उससे वे सब घटक परस्परसे बंधे रहते हैं। नेत्रगोलकसे स्नायुका जहाँ संयोग होता है, उस जगह स्नायुओंके आवरण मोटे होते हैं और नेत्रगोलकके आवरणसे

मिल जाते हैं। इनके सिवाय आवरणोंसे नये बंद बनकर नेत्रगुहाकी किनारकी तरफको जाते हैं। ये बंद स्नायुओंकी कंडराओंसे शुरुं होकर नेत्रगुहाकी किनारको चिपकते हैं। **स्नायुओंकी** क्रिया जोरदार हो तो इन बंदोंकी क्रिया उसे कुछ हदतक रोक सकती है। इससे **इनको प्रतिबंधक बंद** (चेक लिगामेंट) कहते हैं। इनकी वजहसे नेत्रगोलकका स्थान नेत्रगुहामें स्थिर रहता है। इनमेंसे **एक बंद** नेत्रगुहाकी बाहरकी दीवालकी ऊपरकी ओरको लगा

चित्र नं. ८७ (नेत्रगुहाका खडा काट)

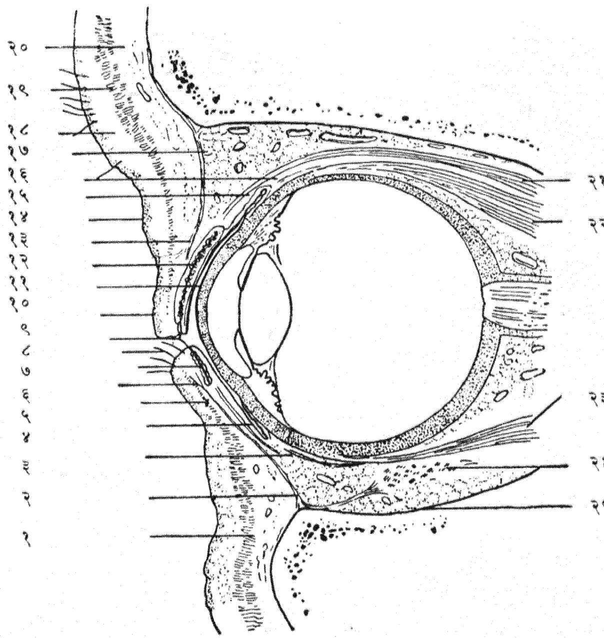

नेत्रगुहान्तस्थ घटक

(१) नेत्रनिमीलिकी स्नायुका नेत्रगुहाके नीचेका किनारका भाग; (२) नेत्र गौहिक पटलका नीचेका भाग; (३) सरलाधो नेत्रचालनी स्नायुकी कंडरा; (४) शुक्लास्तरोर्मि-तोरण; (५) च्छदपटकी स्नायु; (६) नेत्रनिमिलिकी स्नायुका नेत्रच्छदपरका भाग; (७) नीचेका च्छदपट; (८) पक्ष्म; (९) च्छदपटकी ग्रंथीओंकी प्रणाली; (१०) रायोलिन की स्नायु; (११) शुक्लास्तर; (१२) उपरका च्छद पट और मायबोमियन ग्रंथी; (१३) नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुकी कंडरा और नेत्रगौहिक पटलका ऊपरी भाग; (१४) नेत्रच्छदकी चमडी; (१५) नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुके नेत्रगौहिक पटलको और च्छदपटको जानेवाला भाग; (१६) सरलोर्ध्व नेत्रचालनी स्नायुका नेत्र-च्छदोत्थापिका स्नायुके आवरण को जानेवाल भाग; (१७) नेत्रगुहामेंका चरबीदार घटक; (१८) नेत्रनिमीलिकी स्नायुका ललाट परका ; (१९) भौंह की स्नायु; (२०) ललाटीय स्नायु; (२१) नेत्रच्छदोत्थापिका स्नायु; (२२) सरलोर्ध्व नेत्रचालनी स्नायु; (२३) सरलाधो नेत्रचालनी स्नायु; (२४) वक्राधो नेत्रचालनी स्नायु; (२५) अस्थ्याश्रित पटल।

रहता है। इस बंदका उगम ऊर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु, सरलोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु, तथा सरल बहिर्नेत्र चालनी स्नायुओंके आवरणोंसे होता है। **दूसरा बंद** सरल बहिर्नेत्र चालनी स्नायुसे नेत्रगुहाकी बाहरकी दीवालको जाता है। इस बंदको **बाह्यप्रतिरोधक बंद** (एक्सटरनल चेक लिगामेंट) कहते हैं। **तीसरा बंद** सरलान्तर नेत्रचालिनी स्नायुसे और वक्रोर्ध्वचालनी स्नायुसे नेत्रगुहाकी भीतरी दीवालको जाता है। इसके सरलान्तरनेत्र चालनी स्नायुसे बाष्पास्थि तकके भागको **आन्तरप्रतिरोधक बंद** (इनटरनलचेक लिगामेंट) कहते हैं। **चौथा बंद** सरलाधो नेत्र चालनी स्नायु, सरलान्तर नेत्र चालनी स्नायु और वक्राधो नेत्र चालनी स्नायु इन तीन नेत्रकी स्नायुओंसे शुरू होकर नेत्रगुहाकी भीतरी और नीचेकी दीवालको जाता है।

चित्र नं. ८८

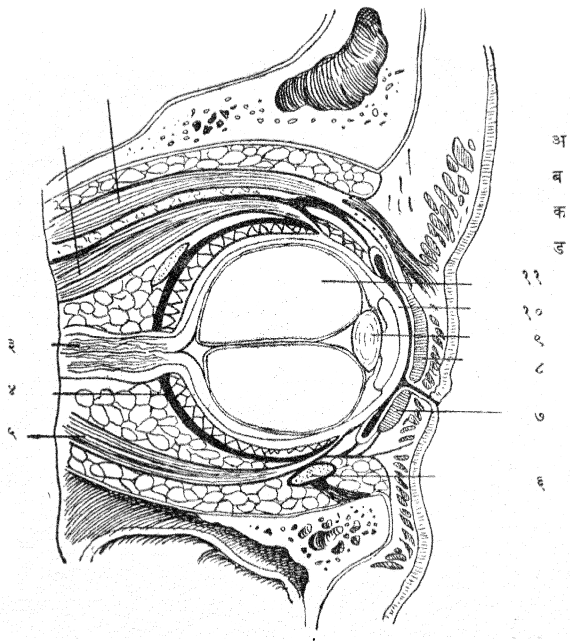

१ ऊर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु; २ सरलोर्ध्व नेत्रचालनी स्नायु; ३ दृष्टिरज्जु; ४ नेत्रगोलकका आवरण; ५ सरलाधो नेत्रचालनी स्नायु; ६ वक्राधो नेत्र चालनी स्नायु; ७ नीचेका च्छदपट; ८ ऊपरका च्छदपट; ९ स्फटिक मणि; १० तारकापिधान; ११ स्फटिक द्रव पिंड। इस चित्रमें नेत्रगोलकका टेननका आवरण नं. ४ दिखाई देता है और ऊर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुके विस्तार। (अ) अस्थावरणको. (ब) नेत्रनिमिलकी स्नायुको. (क) च्छदपटको. (ड) शुक्लास्तरोर्मिको।

(३) नेत्रगुहाके मेदाश्रित पटलमें नेत्रगोलकका प्रत्यक्ष संबंध नहीं आता। इन दोनोंके बीचमें एक संयोगी घटकका आवरण होता है। जिससे बना हुआ यह आवरण नेत्रगोलकको लपेट लेता है। इसी वजहसे नेत्रगोलकका मेदाश्रित पटलसे प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता।

नेत्रगोलकके इस आवरणको **टेननका आवरण** कहते है। नेत्रगोलकका पिछला ३/४ भाग इस आवरणसे आच्छादित होता है। इस आवरणका आरंभ तारकापिधानके पीछे और शुक्लास्तरके नीचे होता है। वहांसे नेत्रगोलकको आच्छादित करके पीछेकी ओरको जाकर दृष्टिरज्जुके पास, जहां तारकातीतपिडकी (सिलियरी बाडी) रोहिणियां और मज्जारज्जु शुक्लपटलमें घुसती है वहा यह खतम होता है। कोई कोई शरीर शास्त्रज्ञ नेत्रस्नायु जहा नेत्रगोलकसे मिलती है उसके अगले भागको **टेननका आवरण** कहते है, और पिछले भागको **बानेटका आवरण** कहते है। नेत्रगोलकके इस आवरणका सामनेका और पिछला मुख खुला रहनेसे ईस आवरणकी थैलीमे नेत्रगोलक अच्छी तरहसे घूम सकता है।

नेत्रगोलक और इस आवरणके बीचमे कुछ अवकाश रहता है। इसीको टेननका लसिकावकाश (टेनन्स लिम्फ स्पेस) कहते है। यह लसिकावकाश पिछली ओरको दृष्टि-रज्जुके आवरणके लसिकावकाशसे मिलता है। कोई कोई इसको लसिकावकाश नही मानते क्योकि इनके मनसे इन दो पटलोके बीचमे कलाकी तह नही होती। (चित्र नं. ८८)

लाकवूड वर्णित नेत्रको लटकानेवाला बंद—यह बद नेत्रगोलकको अपने स्थानपर कायम रखनेमें काम आता है। यह बंद भी स्नायुओके आवरणोसे बनता है। यह बद नेत्रगुहाकी भीतरी दीवालसे शुरू होकर नेत्रगोलकके नीचेसे बाहरकी दीवालको जाता है। नेत्रगोलक इस बंदमे इस तरह लटका रहता है कि जैसे आदमी झूलन खटौलेमे आराम करता है।

ब नेत्रगोलकके स्नायु (पेशिया मसल्स)

नेत्रगोलकको चारो ओरको घूमानेके लिये उसमें छ स्नायूएँ लगी हुई होती है। इन मांसल स्नायुओका प्रारभ चाक्षुष छिद्रकी किनारको लगे हुए **झिन**के बंदसे होता है। फिर वहांसे वे नेत्रगोलककी तरफ जानेमे आगेकी ओर पारस्परीकसे फैल जाती हें; और उनका शंखाकार कोण बनता है, जो दृष्टिरज्जु और नेत्रगोलकके चारो ओरसे लिपटा रहता है। ये स्नायुएँ नेत्रगोलकको पहुँचती है, तब वे उसके बाह्य पटलसे चिपक जाती है। इनमेंसे चार स्नायु सरल चालनी हैं–नेत्रगोलकके एक ऊपर, एक नीचे, एक अन्दर और एक बाहरकी ओर; दो स्नायु वक्र या तीर्छी हे–एक ऊपर और दूसरी नीचे। इन स्नायुके नाम हैः (१) सरलोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायुः (२) सरलबहिर नेत्र चालनी स्नायु, (३) सरलान्तर नेत्र चालनी स्नायु, (४) सरलाधो नेत्र चालनी स्नायु, (५) वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु (६) वक्राधो नेत्र चालनी स्नायु। इनके सिवाय एक है ऊर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु जिससे उपरीका नेत्रच्छद, नेत्रगोलकसे ऊपर उठाया जाता है।

(१) नेत्रगोलकके बाह्य सरल और वक्रचालनी स्नायु

(अ) नेत्रगोलकके सरल चालनी स्नायु

सरलोर्ध्वनेत्र चालनी स्नायु—इस स्नायुका प्रारंभ नेत्रगुहाके अग्रके पासके चाक्षुष छिद्रको लगे हुए **झिनके बंद**के ऊपरके भागसे होता है। वहांसे यह स्नायु नेत्रगोलककी खडी रेषासे २५° अंश का कोन बनाती हुई आगेकी और बाहरकी ओरको जाती है। और शुरूमें यह दष्टिरज्जु की ऊपरकी ओर को लगी रहती है और इसके ऊपर

की ओरको यह स्नायु उर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुको तंतुर सयोगी घटकसे बंधी रहती है। जिस जगह यह स्नायु नेत्रगोलकके शुक्लपटलसे मिलती है, वहां इन दोनोके बीचमें वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायुका अंतिम भाग रहता है। इस स्नायुके चालक मज्जातंतु तीसरी मस्तिष्क मज्जा रज्जुसे प्राप्त होते हैं, जो उसके ऊपरके पृष्ठभागमे घुसते हैं। इसके आकुंचनसे नेत्रगोलक मुख्यतया ऊपरी ओरको घुमता है लेकिन थोड़ा भीतरी ओरको भी जाता है। तारकापिधानका ऊपरी सिरा अन्दर नासिकाकी ओरको झुका हुआ होता है। कनीनिका ऊपरी और अन्दरकी ओर फिरती है। सब सरल स्नायुओमे यह कमबली होती है।

सरल बहिर्नेत्रचालनी स्नायु—इस स्नायुका प्रारभ झिनके बंदके बाहरके भागसे, और जतुकास्थिके बडे पंखसे होता है। ये दो भाग उसके दो मूल या जडे माने गये हैं। इन दोनों मूलों के बीचमेसे, तीसरी, छठी मस्तिष्क मज्जारज्जुएँ, तथा नासिका मज्जारज्जु और चाक्षुष नीला (आफथालमिक व्हेन) जाती हैं। यह स्नायु बाहरकी ओरको नेत्रगोलक और नेत्रगुहाकी बाहरी दीवालके बीचमेंसे होती हुई नेत्रगोलकके शुक्लपटलको मिलती है। इस जगह वक्राधो नेत्र चालनी स्नायुका अन्तिम भाग इसके नीचे रहता है। इस स्नायुके चालक मज्जातंतु छटी मज्जा रज्जुसे प्राप्त होते हैं। इसके आकुंचनसे नेत्रगोलक बाहरकी ओरको घूमता है और कनीनिका भी बाहरकी ओरको झुक जाती है।

सरलान्तर नेत्र चालिनी स्नायु—यह स्नायु सब नेत्रस्नायुओमे बडी और ताकदवान होती है। इसका प्रारंभ झिनके बंदके भीतरी भागसे होता है। यह स्नायु नेत्रगोलक और नेत्र-गुहाकी भीतरी दीवालके बीचमें आगे जाकर नेत्रगोलककी भीतरी ओर शुक्लपटलसे मिलती है। इसके चालक मज्जा तन्तु तीसरी मस्तिष्क मज्जा रज्जुसे प्राप्त होते हैं। इसके आकुंचनसे, नेत्रंगोलक भीतरी ओरको घूम जाता है और कनीनिकाभी भीतरी ओरको झुकती है।

सरलाधोनेत्रचालनी स्नायु—यह नेत्रगोलकके सब स्नायुओमे छोटी स्नायु है। इसका प्रारंभ झिनके बंदके नीचेके भागसे होता है। यह नेत्रगोलक और गुहाके तल इन दोनो के बीचमेंसे आगे होकर नेत्रगोलकके शुक्लपटलमें मिलती है। इसके चालक मज्जातन्तु तीसरी मस्तिष्क मज्जा रज्जुसे प्राप्त होते हैं। इसके आकुंचनसे नेत्रगोलक नीचेकी ओरको घूमता है और थोड़ा भीतरी ओरको झुक जाता है। तारकापिधानका ऊपरी सिरा बाहर कनपटीकी ओरको जाता है। कनीनिका नीचेकी और बाहरकी ओर घूमती है।

(ब) नेत्रगोलकके वक्र चालनी स्नायु

वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु—इस स्नायुका प्रारंभ झिनके बंद के ऊपरी भागसे सरलान्तर नेत्र चालिनी स्नायुके प्रारंभ स्थानके पास होता है। वहांसे यह स्नायु आगे नेत्रगुहाकी छत और भीतरी दीवालके कोण तक जाती है। वहां उसकी कण्डरा बनकर उसीके लिये बनी हुई फिरकी में से पार होती है; और एकएक पीछेकी, बाहरकी और नीचेकी ओरको घूमकर नेत्रगोलकके पिछले भागमें विषुववृत्तके पास मिलती है। उसका यह बद्धस्थान (इनसरशन) सरलोर्ध्व और सरलबहिश्चालनी स्नायुओंके बीचमें होता है। इसके चालक मज्जातन्तु चौथी मस्तिष्क मज्जा रंज्जुसे प्रात्प होते हैं। इसके आकुंचनसे नेत्रगोलकका पिछला भाग ऊपरकी

ओरको उठाया जानेसे सामने का भाग नीचेकी ओरको और थोडा बाहर की ओरको घूमता है। तारकापिधानका ऊपरी सिरा अन्दर नासिका की ओर को झुका हुआ होता है; कनीनिका भीतरी और नीचेकी ओरको घूमती है।

इस स्नायुकी फिरकी हायलाईड कार्टीलेज की (६×४) बनी है। यह फिरकी ललाटास्थिके चाक्षुस फलक के गडहेसे तन्तुर संयोगी घटकोसे चिपकी रहती है।

वक्राधो नेत्र चालनी स्नायु—इसका प्रारंभ नेत्रगुहाके सिरेसे नही बल्कि नेत्रगुहाके तल के भीतरी और अगले भागके नीचेके कोणके पासके गडहेसे होता है। यह वहांसे बाहरी और पीछेकी ओरको, सरलाधो चालनी स्नायुके नीचेसे जाकर नेत्रगोलकके पिछले और बाहरी भागके शुक्लपटल में मिलती है। इसके चालक मज्जातन्तु तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुसे प्रात्प होते है। इसके आकुंचनसे नेत्रगोलकका पिछला भाग नीचे खिच जानेसे सामनेका भाग ऊपर और अन्दर की ओरको जाता है। तारकापिधान का सिरा बाहरकी कनपटीकी ओरको घूमता है; कनीनिका ऊपरकी ओर बाहरकी ओरका घूमती है।

यह वहांसे बाहरी और पीछेकी ओरको सरलाधो चालनी स्नायुके नीचेसे जाकर नेत्रगोलकके पिछले और बाहरी भागके शुक्लपटलमें मिलती है। इसके चालक मज्जातन्तु तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुसे प्राप्त होते हैं। इसके आकुंचनसे नेत्रगोलकका पिछला भाग नीचे खिच जानेसे सामनेका भाग ऊपर और अन्दरकी ओरको जाता है: तारकापिधानका सिरा बाहरकी-कनपटीकी ओरको घूमता है: कनीनिका ऊपरकी और बाहरकी ओरको घूमती है।

नेत्रगुहाके अग्रके इर्दगिर्द नेत्रस्नायुओंका उगम एक मूलसे होनेसे उसका एक वलय बनता है जो चाक्षुष छिद्रको और ऊर्ध्व नेत्रगौह्कि दरारको परिवृत्त करता है। यह वलय उसके संशोधकके नामसे **झिन** का वलय जाना जाता है। ध्यानमें रखिये कि चाक्षुष छिद्रके पास दृष्टिरज्जूके दूरामिटरके आवरणके भीतरी और बाहरी ऐसे दो भाग होते है। बाहरी भागसे नेत्रगुहाका अस्थ्यावरण बनता है, और भीतरी भाग दृष्टिरज्जुका आवरण रहता है। जिस जगह ये दो भाग होते है उस दरारमें वलयका भीतरका आधा भाग घुसा हुआ होता है, और उसका बाहरी आधा भाग जतुकास्थिके बडे पंख परके कंटकको मिलता है जिससे बाह्य सरल नेत्र चालनी स्नायुका एक मूल निकलता है।

नेत्रगोलकके स्नायूओको रक्त संचय चाक्षूष रोहिणीकी शाखाओसे प्राप्त होता है और वह चाक्षुष नीलाके मार्गसे मधुकोषसम नीला विवरमे वापिस बह जाता है।

ध्यानमें रखिये कि शरीरके कुछ ऐच्छिक या अंकित स्नायुओंमे नेत्रगोलकके स्नायुतन्तु बारीकसे बारीक होते हैं और इनके एकसे अनेक तरह होती है। इनमें स्थितिस्थापक तन्तु ही ज्यादह होते है। एक स्नायुके आकुंचनसे उसके विपरीत कार्यवाले स्नायु तन जाते हैं तब इन तन्तुओंके निष्क्रिय ऐंठनसे स्नायू पहले जैसा होजाता है और नेत्रगोलकका चलन नियंत्रित किया जाता है।

और ऊर्ध्व तथा आन्तर सरल चालनी स्नायूओंके उगम मूलका संजोग दृष्टिरज्जूके आवरणसे होनेसे दृष्टिरज्जूकी दाहज अवस्थामें इन स्नायूओंके कार्यकी दिशामें नेत्र घुमानेकी कोशिश करनेमें दरद पैदा होता है।

इन स्नायुओंके अन्तिम भाग कण्डराके रूपके होते हैं और उनके समानान्तर तन्तु शुक्लपटलके तन्तुओंसे मिल जाते हैं। इनके आवरणोंसे कुछ तन्तु प्रतिरोधक बंदमें मिलनेसे स्नायुओंका संबंध नेत्रगुहाकी दीवालोंसे आता है।

इन स्नायुओंकी कण्डराएँ नेत्रगोलकसे उसके विषुववृत्तके सामनेकी ओरको और तारकापिधानकी पीछेकी ओरको मिलती हैं। इनके मिलनेके भाग वक्र होते हैं और तारकापिधानकी किनारको समानान्तर नहीं होते। इनके सबके बिन्दुओंको जोडनेवाली रेषा पेंचदारसी होती है। सरलान्तर्चालनी स्नायूका बद्धस्थान (मीलन स्थान) तारकापिधानसे ज्यादा नजदीक और सरलोर्ध्व चालनी स्नायुका बद्धस्थान तारकापिधानसे अधिक पीछेकी ओरको होता है। तारकापिधानके पीछेकी ओरको इन स्नायुओंका बद्धस्थान–सरलोर्ध्वचालनी स्नायुका ७·५ मि. मि. दूरीपर, सरलान्तरचालनी स्नायुका ५·५ मि. मि पर, सरलाधो चालनी स्नायुका ६·५ पर और सरलबहिश्चालनी स्नायुका ६·९ मि. मि. दूरीपर होता है (फुक्स)।

चित्र नं.८९, ९०, ९१, ९२.

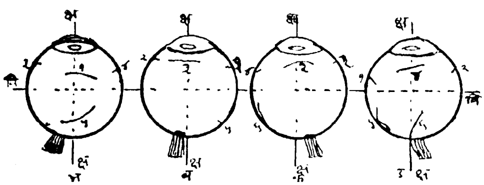

दाहिने नेत्रकी स्नायुओंका बद्धस्थान (फुक्स)

वि. वि. विषुववृत्त; क्ष. क्ष. अक्ष। अ. नेत्रको ऊपरसे देखते हैं। ब. नेत्रको नासिकाकी ओरसे देखते हैं। क. नीचेकी ओरसे ड. कनपुटीकी ओरसे देखते हैं तब—१ सरलोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु; २. सरलाधो नेत्र चालनी स्नायु; ३. सरलान्तर नेत्र चालनी स्नायु; ४. सरल बहिर्नेत्र चालनी स्नायु; ५. वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु; ६. वक्राधो नेत्र चालनी स्नायु।

नेत्रस्नायुओंका विवर्तन केन्द्रः—शुक्लपटलके पिछले पृष्ठके सामनेकी ओर १० मि. मि. या तारकापिधानके पीछे १४ मि. मि. फासलेपर **विवर्तन केन्द्र** होता है। इसके चारों ओर नेत्रस्नायुयोंका चलन होता है। इस विवर्तन केन्द्रमेंसे जानेवाले और परस्परसे लंब होनेवाले तीन अक्षोंकी ओरको नेत्रगोलकका भ्रमण इन छः स्नायुओंसे होता है। सरलान्तरचालनी और सरलबहिश्चालनी स्नायुकी जोडीका अक्ष लम्बरूप होता है। लेकिन अन्य स्नायुओंकी जोडीके (एक ऊर्ध्व और अधो सरलचालनी स्नायुकी जोडी तथा ऊर्ध्व और वक्र चालनी स्नायुकी जोडी) अक्ष क्षितिज पृष्ठमें होते हैं।

संभ्रम निवारण होनेके लिये नेत्रगोलकको काटनेवाले तीन पृष्ठोंका वर्णन करना उचित है। क्षितिज पृष्ठमें काटनेसे नेत्रगोलकके ऊपर और नीचेके दो अर्धभाग होते हैं सामनेसे पीछे लंब रेषामें काटनेसे नेत्रगोलकके बाहरी और भीतरी भाग होते हैं। और विषुववृत्तमें काटनेसे अगला और पिछला ऐसे दो भाग होते हैं।

(२) नेत्रच्छदके स्नायु

उर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुः— इस स्नायुका प्रारभ जतुकास्थिके छोटे पंखसे झिनके बंदके ऊपरकी ओरसे होता है। सरलोर्ध्व नेत्र चालनी और वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायुओके उत्पत्ती स्थानसे इसका संबंध होता है। यह स्नायु नेत्रगुहाकी छत के नीचे और सरलोर्ध्व चालनी स्नायुकी ऊपरकी ओरसे आगे जाती है। इस अन्तिम भागका चौडा स्नायुपत्र बनकर अपान्यूरोस नेत्रच्छदमे मिल जाता है। इस चौडे भागका ज्यादा प्रमाण नेत्रच्छदकी चमडी की ओर च्छदपटके सामने के पृष्ठ के नीचेकी ओरके ⅓ भागसे मिलजाता है। चौडे भागकी बाजूके भाग कंडरा के समान रहते है। ये नेत्रगुहाकी बाहरी और भीतरी दीवलों के किनारोके मध्य भागसे मिलते है। इस चौडे भागका बाहरी भाग ज्यादा मजबूत होता है और वह अश्रुपिंड के बीचमेंसे होकर गंडास्थिके चाक्षूप शृंग को चिपकता है। इसका भीतरी भाग वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुके परिवर्तित भागसे नेत्रच्छद के भीतरी बदमे मिलजाता है; और इस रीतिसे उसका ऊर्ध्व दन्तार्स्थि और बाप्पास्थि से सबध होता है। इस सबध के सिवाय इसका एक अन्य सवंध च्छदपट की उपरी किनारसे **मूलरके** ऊध्व नेत्रच्छद स्नायु के द्वारा होता है; और दूसरा संबंध सरलोर्ध्व चालनी स्नायुके तन्तुर संयोगी घटक द्वारा शुल्कास्तरोंमिसे होता है। (चित्र नं. ८८ देखिये) इसी कारण से ऊर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु और सरलोर्ध्व चालनी स्नायु के कार्यमे शुल्कास्तरोंमि ऊपरकी ओर को उठी हुई होती है।

(३) नेत्रगुहामेंकी निरंकित स्नायु

मूलरकी नेत्रगोहिक स्नायु नेत्रगुहाकी निरंकित स्नायु निरकित स्नायु यह एक तन्तुओंका गुच्छ है। इसका प्रारंभ अधो नेत्रगौहिक दरार के पासके अस्थ्यावरण से होकर फिर, यह नेत्रगुहाके तलपर त्रिकोणाकार पंखेके समान फैलती है। सामनेकी ओरको इसका सबंध वक्रोधश्चालनी स्नायुसे होता है। और पिछली ओरको इसका संबध झिनके वलयाकार बद के नीचेसे मधुकोषके समान नीला विवरसे होता है। आनुकंपिक मज्जातंतु जालसे इसको मज्जातन्तु मिलते हैं।

परिनेत्रगोलक स्नायु :— यह एक निरकित स्नायुके तन्तुका पतलासा आवरण, ३ ७ मि. मि. चौडा, नेत्रगोलकके सामनेके आधे भागमे फैला हुआ होता है। इसका टेननके-आवरण से संबंध होता है। इसको भी आनुकपिक मज्जा तन्तु मिलते है।

क नेत्रगुहामेंके संज्ञावहा और चालक मज्जारज्यु

१ **दृष्टिरज्यु—**दृष्टि कार्यकी मज्जारज्जु

२ **तीसरी, चौथी और छटी—**नेत्रगुहामेकी स्नायुओके चालक मज्जारज्जु

३ **पांचवी मज्जारज्जुकी** दूसरी और तीसरी शाखाओके नेत्रगुहाके घटकोको जानेबाले संज्ञावहा मज्जारज्यु

४ **आनुकंपिक मज्ञातन्तु—**नेत्रगोलक, अश्रुग्रंथी, नेत्रगुहामेके निरकित स्नायु और नेत्रगुहामेंकी रक्तवाहिनियोका संकोचन या प्रसरणकारक तन्तु

५ **सातवीं मज्जारज्जुकी अश्रुग्रंथीकी शाखा** इन मज्जारज्जुओके संबधमें ये आनेवाले दो मज्जाकंद यानी चाक्षुष मज्जाकद और जतुक तालु मज्जाकद

दृष्टिरज्जु—(आपटिक नर्व) जिसे दृष्टि नाडीभी कहते है, यद्यपि खोपडीसे बाहर आनेवाली दूसरी मस्तिष्क रज्जू होती है उसका, असली उगम स्थान मस्तिष्कमें नहीं, बल्कि दृष्टिपटलकी मज्जाकंद पेशियोंमें (ज्ञानमंडल पेशियां–ग्यांगलियन सेल्स) होता है। इन पेशियोंके **सूत्राक्षोंके** तन्तु एकत्रित होनेसे दृष्टिरज्जु बनती है। नेत्रगोलकमें जिस जगह ये तन्तु एकत्रित होते हैं उसभागको दृष्टिरज्जु शीर्श, नेत्रबिम्ब. या चाक्षुषबिम्ब कहते हैं ।

चित्र नं. ९३. नेत्रगुहामेंके मज्जारज्जू (उपरसे दिखाई देनेवाला दृश्य)

१ पांचमी मास्तिष्क रज्जूका संज्ञावाहक मूल
२ ... ... चालक मूल
३ गसेरियन मज्जा कंद
४ पाचवी मास्तिष्क रज्जूकी अधो दन्तास्थिकी शाखा.
५ पाचवी मास्तिष्क रज्जूकी ऊर्ध्व दन्तास्थिकी शाखा.
६ पांचवी मास्तिष्क रज्जूकी चाक्षुष शाखा.
७ अश्रूया मज्जारज्जू
८ अश्रूगा मज्जारज्जूकी नेत्रच्छदकी शाखा
९ ललाटीय मज्जारज्जू
१० नेत्रगौहिक उर्ध्व मज्जारज्जू शाखा
११ गडगडीकी उर्ध्व मज्जारज्जू शाखा.
१२ नेसो सिलियरी मज्जारज्जू.
१३ झरझरास्थिकी पूरा मज्जारज्जू शाखा.
१४ तृतीय मस्तिष्क मज्जारज्जू.
१५ चतुर्थ मास्तिष्क मज्जारज्जू.
१६ दृष्टिरज्जु संधि, सामने दृष्टिरज्जु और पीछे चाक्षुष पथका भाग
१७ चाक्षुष रोहिणी.

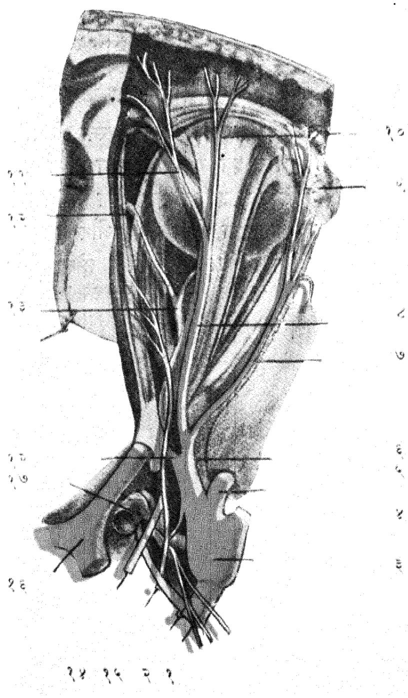

दृष्टिरज्जु उसके शीर्शसे नेत्रगुहा और चाक्षुष छिद्रमें (आपटिक फोरामन) होती हुई मस्तिष्कमें प्रवेश करती है । वहां दोनों ओरकी दृष्टि रज्जुओंका संयोग होता है। इस संयोगको दृष्टिरज्जुसंधि या दृष्टिरज्जु योजिका (कायेझमा या चाक्षुष कमीशर) कहते हैं। इस संधिके पिछले भागसे चाक्षुषपथ शुरुं होकर मष्तिष्कके तलमें स्थित हुए प्राथमिक चाक्षुष केन्द्रमें यानी बाह्य जेनिक्युलेट पिंडमें, द्वियुग्मी पिंडके या चतुर्ष्पिडके (कारपोरा क्वाड्रिजेमिना) ऊपरवालेपिंडमें और चाक्षुष मुकुल (आपटिक थालेमस) की पेशियोंमें खतम होता है। इसे नीचेका या प्राथमिक चाक्षुष संज्ञापथ कहते है क्योंकि इसीमेसे चाक्षुषसंज्ञा मस्तिष्कको जा पहुंचती है ।

दृष्टिरज्जुके वर्णनके लिये तीन भाग माने गये हैं–पहला नेत्रगोलकमेंका भाग, दूसरा नेत्रगोलकके बाहरका यानी नेत्रगुहामेंका भाग और तीसरा मस्तिष्कमेंका भाग । कोई कोई शारीर शास्त्रज्ञ चाक्षुषछिद्रके भागको अलग मानते हैं ।

चित्र नं. ९४ नेत्रगुहामेंके मज्जारज्जू वातवाहिनीयां (बाहरी दृश्य)

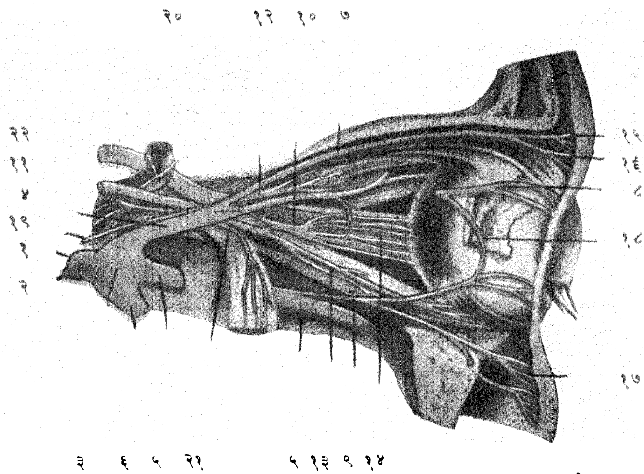

१ पाचवीं मस्तिष्क रज्जूका संज्ञावाहक मूल.
२ ,, ,, चालक मूल.
३ ग्यासेरियन मज्जा कंद.
४ पांचवीं मस्तिष्करज्जूकी चाक्षुष शाखा.
५ ,, ,, ऊर्ध्वदन्तास्थिकी शाखा.
६ ,, ,, अधो हन्वास्थि शाखा.
७ ललाटीय मज्जारज्जू.
८ अश्रुगा मज्जारज्जू.
९ गंडास्थिकी मज्जारज्जू.
१० चाक्षुष मज्जाकंद.
११ तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जू.
१२ तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जू ऊर्ध्व भाग.
१३ ,, ,, ,, अधो भाग.
१४ तारकातीत पिंडके मज्जारज्जू.
१५ गडगडीकी ऊर्ध्व मज्जारज्जू.
१६ नेत्रगौहिक ऊर्ध्व मज्जारज्जू.
१७ गंडास्थि–गौहिकी मज्जारज्जूकी सीरे.
१८ अश्रुगा मज्जारज्जूकी जोडनेवाली शाखा.
१९ चौथी मज्जारज्जू.
२० अंतर मातृका रोहिणी और आनुकंपिक मज्जारज्जू.
२१ छटी मस्तिष्क मज्जारज्जू.
२२ दृष्टिरज्जू.

दृष्टिरज्जुका पहला भाग यानी **नेत्राभ्यंतरका भाग**—शुक्लपटल और कृष्णपटल इन दोनोंमेंके छिद्रोंसे बनी हुई नालीमें होता है । इसकी लम्बाई **१ मि. मि.** होती है । वास्तवमें शुक्ल–कृष्णपटल नालीका यह भाग खोखला नहीं होता है । इस नालीका मुख चलनी जैसे परदेसे (लामिना क्रिब्रोसा) आच्छादित रहता है । इस परदेके छिद्रोंमेंसे दृष्टिरज्युके तन्तुओंके अलग अलग गुच्छे नेत्रगोलकके बाहर आते हैं । यह नाली नेत्रगोलकके पार्श्वध्रुवकी भीतरी ओर २–३ मि. मि. नासिकाकी ओरको होती है । इस नालीके पास शुक्लपटलका भीतरी $\frac{1}{3}$ भाग चलनीदार परदेमें शामिल होता है, और बाहरी $\frac{2}{3}$ भाग

दृष्टिरज्जुके बाह्य आवरणसे मिल जाता है। चलनीदार परदेके बाहर दृष्टिरज्जुओंके तन्तुओंपर मेदोमय यानी चरबीदार वेष्टन चढ जाता है। और इसी वजहसे वे अपारदर्शक होते हैं। परदेकी भीतरी ओरके तन्तुओंपर यह चरबीदार वेष्टन न होनेसे वे बारीक दिखाई देते हैं।

चलनीदार परदेका दृष्टिरज्जुके विकारोंमें बहुत कुछ अंग होता है। यह परदा छिद्रोंकी वजहसे शुक्लपटलके दूसरे किसीभी भागसे ज्यादह कमजोर होता है। नेत्राभ्यन्तरका दबाब बढ जानेसे उसका परिणाम पहले इस भाग पर होता है। यद्यपि नैसर्गिक अवस्थामें यह परदा सरल नहीं, बल्कि कमानदार होता है, और इस दबावके ज्यादह बढ जानेसे वह बाहरकी ओरको ज्यादह निकला हुआ और भीतरी ओरको ज्यादह गहरा होता है। इसी तरहसे काचबिंदुका पियाला तैयार होता है। इसमें दूसरा दोष यह होता है, कि इसमें रहे हुए तन्तुर संयोगी घटकोंके कारणसे पहलेसे ही दबे हुए दृष्टिरज्जुके तन्तु जब दाहज क्रियासे फूल जाते हैं तब वे इससे और जोरसे दब जाते हैं। नेत्रतलमें दिखाई देनेवाले इस

चित्र नं. ९५

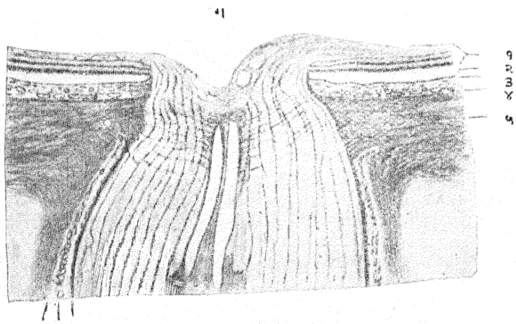

६ ७ ८

दृष्टिरज्जू शीर्षका चोंगा लम्बा काट

१. दृष्टिपटल.
२ दृष्टिपटल और रंजित तह इनके दरमियानका अवकाश.
३ बुकका आवरण. उसके ऊपरको काली लकीर है वह रंजित कला है.
४ कृष्ण पटल
५ शुक्ल पटल.
६ दूरामेटर मस्तिष्कावरण.
७ मस्तिष्क मध्यावरण. अरकनाईट
८ मस्तिष्क अन्तरावरण.

ग—गडहा

दृष्टिरज्जु शीर्षके केन्द्रमें बहुधा एक चोंगेके आकारका गडहा (चि. नं. ९५) होता है। इसीके कारण दृष्टिरज्जुके गुच्छ इस जगहमें अलग अलग होते हैं। इसी गढहमेंसे दृष्टिपटलकी रोहिणियां नेत्रतलपर आती हैं। दृष्टिरज्जु शीर्ष-नेत्रबिंब का व्यास १.५ मि. मि. होता है।

दृष्टिरज्जुका दूसरा यानी नेत्रगुहामेंका भाग—इस भागका विस्तार नेत्रगोलकके पश्चिम ध्रुवसे नेत्रगुहाके अग्रके पासके चाक्षुषछिद्र तक होता है। यह भाग सरल नहीं, बल्कि ड अक्षरके या अवग्रह चिन्हके समान टेढा होता है। इसी वजहसे नेत्रगोलकका

परिभ्रमण चारों ओरको आसानीसे हो सकता है । नेत्रगोलकके परिभ्रमणका विवर्तन केन्द्र (सेन्टर आफ रोटेशन) नेत्रगोलकके मध्यबिन्दुके पास होनेसे, तारकापिधान जितनी मात्रामें बाहरकी ओरको घूम सकता है, उतनीही मात्रामें नेत्रगोलकका पश्चिम ध्रुव अन्दरकी ओर जाता है। यदि दृष्टिरज्जु बिलकुल सरल होता, तो नेत्रगोलकका पश्चिम ध्रुव बिलकुल बंधा हुवा जैसा होता, और फिर नेत्रगोलकका चारों ओरका भ्रमण संभव न होता । इस अवग्रह चिन्हके आकारकी वजहसे दृष्टिरज्जुकी लम्बाई, नेत्रगोलकके पश्चिम ध्रुवसे नेत्र-गुहाके अग्रके अन्तरतक, ज्यादह होती है । जिससे पश्चिम ध्रुव आसानीसे घूम सकता है।

चित्र नं. ९६ दष्टिरज्जके आवरण (अनपस्थ) आडा काट

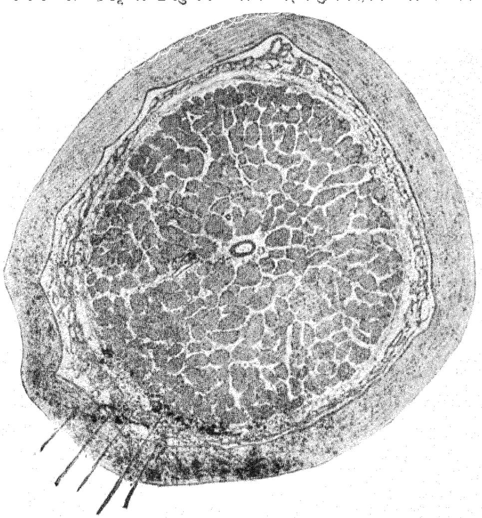

१ दृष्टिरज्जूका बाह्य दूरा मस्तिष्कावरण.
२ ,, अराकनाईड मस्तिष्क मध्यावरण.
३ ,, पाया मस्तिष्कावरण.
४ दूरामेटरके नीचेका अवकाश.
५ आरकनाईडके नीचेका अवकाश.

दृष्टिरज्जुकी कुल लम्बाई ३५ से ५५ मि. मि. होती है । नेत्रगुहामेंके भागकी लम्बाई २० से ३० मि. मि. होती है । यह भाग चरबीदार आवरणसे आच्छादित होता है । और उसके चारों ओर नेत्रस्नायु होती है जिनका एक आवरण जैसा ही होता है । नेत्रगोलककी पश्चिम ध्रुवके पास, इस भागके चारों ओरको तारकातीतपिंडकी रक्तवाहि-नयां और तारकातीतपिंडके मज्जातन्तु अन्दर घुसते हैं । नेत्रगोलकसे १५ मि. मि. अन्तर पर दृष्टिपटलकी मध्यरोहिणी (आरटेरिया सेन्ट्रालिस रेटिनी) दृष्टिरज्जुमें घुसती है। फिर उसके बीचमेंसे सीधी दृष्टि रज्जुशीर्ष तक वह जाती है । चाक्षुषरोहिणी (आफथाल-मिक आरटरी), और नासिका मज्जारज्जु इस भागके ऊपर या नीचेसे पार होकर नेत्रगुहाकी भीतरी दीवाल तक जा पहुँचती हैं ।

दृष्टिरज्जुके मज्जातन्तुओकी सख्या करीब करीब पाच लाख होती है इनके अनेक गुच्छ बनकर वे दृष्टिरज्जुमे समानान्तर रहते है। इन गुच्छोके भीतर और बाहर की ओर सयोगी घटकोसे बने हुए सहारा देनेवाले परदे (सपोर्टींग मेम्बरेन) होते है। दृष्टि-रज्जुके गुच्छ और इन परदोमे जो अवकाश रहता है, उसीमेसे लसिकाका अभिसरण होता रहता है।

दृष्टिरज्जुके तीन आवरण होते है। ये तीनों मस्तिष्कावरणसे पैदा होते है। सबसे बाहरी आवरण मस्तिष्कके दूरामिटरमे उत्पन्न होता है और वह कुछ मोटा होता है। यह आवरण सामनेकी ओरको शुक्लपटलमे शामिल हो जाता है। यह बाह्य आवरण दृष्टिरज्जुपर शिथिलसा रहता है। दृष्टिरज्जुका बिलकुल भीतरी आवरण मस्तिष्कके पायामिटर आवरणसे पाया जाता है। इस आवरणके तन्तु दृष्टिरज्जुके तन्तुओंके गुच्छोमे घुसते है, और उनके साथ रक्तवाहिनिया अन्दर जाती है। इन दो आवरणोके दरमियानमे तीसरा आकरण मस्तिष्कके आरकनाईडसे पैदा होता है। यह आवरण सूत्रके जालेके समान नाजूक और ममिश्रिन होता है। इस आवरणके तन्तु बाहरी और भीतरी आवरणमें जा पहुँचते है। और इससे बाहरी और भीतरी आवरणके दरमियानके अवकाशके दो भाग होते है। इन दोनो भागोका सबध मस्तिष्कके आवरणोके दरमियानमे रहे हुए अवकाशके दोनो भागोसे होता है। इन दोनो भागोकी दीवालोको भीतरकी ओरको अन्त.कलातहकी पेशियोका अस्तर लगा हुआ होता है। इन दोनो भागोका कार्य लसिकावशके समान होता है। चित्र न ९६ देखिये

चाक्षुषछिद्रमेकी दृष्टिरज्जूके **तीसरे भागकी** लम्बाई ४ से १० मि. मि. होती है। इसके साथ चाक्षुप रोहिणी होती है। इस अस्थिमय नालीमे सूजन होनेसे दृष्टिरज्जू दब जानेकी सभावना होती है।

यद्यपि दृष्टिरज्जू सधि तया चाक्षुपपथ नेत्रगुहाके घटक नहीं होते तोभी उनका दृष्टिरज्जूसे निकट सबध होनेसे उनका वर्णन यहा दिया है।

दृष्टिरज्जु संधि—दृष्टिरज्जु योजिका (आपटिक कायेझमा—कामीशर)

दोनो दृष्टिरज्जु खोपडीमे एक दूसरेसे मिलनेसे यह भाग तैयार होता है। यहा दोनो दृष्टिरज्जुओके कुछ मज्जातन्तु एक ओरसे दूसरी ओर मध्यरेषाको पार करके जाते है। दृष्टिस्थानकेन्द्र, पातबिन्दु और स्थैर्यबिन्दुओंको जोडनेवाली रेषाको दृगाक्ष कहते है; इस लब रेषासे दृष्टिपटलके दो भाग—नासिका और कनपटीके बनते है। इन दोनो भागोके दो गुच्छ होते है, और दोनो गुच्छ मिलनेसे दृष्टिरज्जू बनती है। दृष्टिरज्जूका खोपडीमे प्रवेश होनेके बाद दोनो दृष्टिरज्जूओंके नासिकागुच्छ एक ओरसे दूसरी ओर मध्य रेषाको पार होकर चले जाते है। यानी बायें दृष्टिपटलका नासिकागुच्छ दाहनी ओरको जाता है और दाहिने दृष्टिपटलका नासिका गुच्छ बाई ओरको जाता है। दोनों पटलके कनपटीके गुच्छ यानी बायेका बायी ओर और दाहिनेका दाहिनी ओर, इस तरह सीधे चले जाते है। इससे यह समझमे आयेगा कि प्रत्येक चाक्षुष पथमे दोनों दृष्टिपटलके मज्जातन्तु होते है।

दृष्टिरज्जु सधिकी लम्बाई १० मि. मि. और मोटाई १२ मि मि. होती है। इस सधिकी दोनो बाजूओंमे अन्तर्मातृकी रोहिणी (इन्टरनल कराटिड आरटरी) होनी है । इसके ऊपरकी ओर तीसरे मस्तिष्क कोष्ठका तल (फ्लोअर आफ थर्ड व्हेन्ट्रिकल) होता है । और नीचेकी ओर यह जतुकास्थिके आलिव्हरी नामके उन्नत भागपर स्थित होती है। दृष्टिरज्जु सधिक पिछला भाग 'गुडन'के गुच्छसे बना हुआ होता है । यह मज्जाततु गुच्छ चतुर्पिण्डके नीचेके पिडसे और अन्दरके जेनिक्युलेट पिडसे उत्पन्न होते है; और चाक्षुप पथके भीतरी ओरसे दृष्टिरज्जु सधिकी पिछली ओरको पार होकर दूसरी ओरको जाते हैं । इस मज्जातन्तु गच्छको चाक्षुप पथका भीतरी मूल कहते हैं । इन मज्जातन्तुओका दृष्टिकार्यमे कुछ तालुक नही होता (चित्र न ९३ तथा ९८ देखिये) ।

चाक्षुपपथ (आपटिक ट्राकस) दो होते है । एक दृष्टिरज्जु सधिकी बायी ओरसे और दूसरा दाहिनी ओरसे शुरू होता है । दाहिने चाक्षुषपथमे दाहिने दृष्टिपटलका कनपटीका भाग और बाये दृष्टिपटलका नासिकाका भाग होता है । इसी तरहसे बाये चाक्षुप पथमे बाये दृष्टिपटलका कनपटीका और दाहिने दृष्टिपटलका नासिकाका भाग होता है। जेनिक्युलेटपिडके नजदीक प्रत्येक चाक्षुष पथके दो भाग होते है और वे उसके भीतरी और बाहरी मल समझे जाते है । दृक्विषयके सब मज्जातंतु चाक्षुषपथके बाहरी मूल मे होते है । ये मज्जातन्तु बाह्य जेनिक्युलेटपिड और चतुर्पिण्डके ऊपरके पिडोकी पेशियोमे समाप्त होते है । भीतरी मूलमे 'गुडन'का गुच्छ होता है ।

दृष्टि रज्जूके सिवाय नेत्रगुहामे और भी मज्जारज्जुएँ होती है । (१) नेत्रगोलकके स्नायुको चालना देनेवाली मज्जारज्जुएं यानी तीसरी, चौथी और छटी मज्जरज्जुएँ । (२) सज्ञावाहक मज्जरज्जु यानी पाचवी–या–त्रिमुखी मज्जारज्जुकी चाक्षुप शाखाकी तीन उपशाखाये– अक्षुपिडगा, ललाटिका और नासिका शाखा । (३) आनुकपिक मज्जा-रज्जु शाखा (चि. न ९३, ९८ देखिये) ।

चालक मज्जारज्जुएँ

तीसरी मज्जारज्जु :—इस मज्जारज्जुमे नेत्रगोलककी सरल बहिश्चालनी और वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुके सिवाय सब स्नायुओको चालक मज्जातन्तु मिलते है । इसका **आन्तरीय उद्गम** तीसरे और चौथे कोष्टको जोडनेवाली सिलव्हियन नालीके तलके धूसर भागके केन्द्र समूहसे होता है । यह केन्द्रसमूह **लम्बे पश्चिम गुच्छके** (पोस्टेरियर लाजिटयुडिनल बन्डल) पिछली ओरको होता है । इस केन्द्रकी मज्जा पेशियोकी मुख्य रेषा एकत्रित होकर यह रज्जु बनती है। इस रज्जुके कुछ तन्तु दूसरी ओरके भागके केन्द्रसे पार होकर आते है। इन पार हुए तन्तुओके कुछ तन्तुओका छठी मज्जा-रज्जुके केन्द्रसे संबध होता है। इसमे एक नेत्रकी सरलान्तश्चालनी स्नायु और दूसरे नेत्रकी सरल बाह्यचालनी स्नायुओकी क्रिया दोनो नेत्रोको एकही ओरको घुमानेके समयमे सहकार्यसे होती है।

इस मज्जारज्जुका मस्तिष्कमेंका मार्ग :—यह मज्जारज्जु मध्य मस्तिष्क भागके लम्बे पश्चिम गुच्छ, टेगमेन्टम् और रक्तकेन्द्र (रेड न्युक्लियस) के सामनेकी ओरसे और

धूसर भागकी भीतरी ओरसे जाती है। इनके तन्तुओंके दस-बारह छोटे छोटे गुच्छ बनते हैं। यह रज्जु **मस्तिष्क स्तंभ** (क्रूरा सेरिब्राय) की भीतरी, और सेतुकी (पान्स) सामनेकी ओरसे बाहर आती है। वहांसे यह मज्जारज्जु सामने और बाहरकी ओरको पश्चिम छिद्रित अवकाश तक (पोस्टेरियर परफोरेटेड स्पेस) जाती है। फिर जतुकास्थिका पिछला क्लिनाइड शृंगतक जाकर वहांसे मधुकोपसम नीला विवरकी बाहरकी दीवालकी ऊपरी ओरको जाती है। फिर ऊर्ध्व नेत्रगौहिक दरारकी भीतरी ओरसे नेत्रगुहामें घुसती है। नेत्रगुहामें घुसनेके समय यह मज्जारज्जु सरल बहिश्चालनी स्नायुके दो मूलोंमेंसे जाती है। इस मज्जारज्जुकी ऊर्ध्व और अधो दो मुख्य शाखायें होती हैं। ऊर्ध्व शाखा छोटी होती है और उससे सरलोर्ध्वचालनी स्नायु और उर्ध्व **नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुको** चालक तन्तु मिलते हैं। अधोशाखासे अन्य स्नायुओंको चालक तन्तु मिलते हैं। एक शाखा चाक्षुष मज्जाकंदको भी जाती है। जिससे तारकातीत पिंड की स्नायु और तारका को चालक मज्जातन्तु मिलते हैं। तीसरी मस्तिष्क रज्जुमें १५००० मज्जातन्तु होते हैं, जो पांच स्नायुके ४५००० तन्तुओंमें ही बट जाते हैं।

अन्य चालक मज्जातन्तुके समान तीसरी मज्जारज्जुके केन्द्रका संबंध मस्तिष्कके धूसर भागके कुछ विशेष केन्द्रोंसे होता है। धूसर भागके केन्द्रोंकी मज्जा पेशियोंकी मुख्य रेषायें

चित्र नं. ९७

तीसरी मस्तिष्क रज्जूका मज्जाकेन्द्र और उसके सहचरित पेशिशोंके संघका नकशा:—

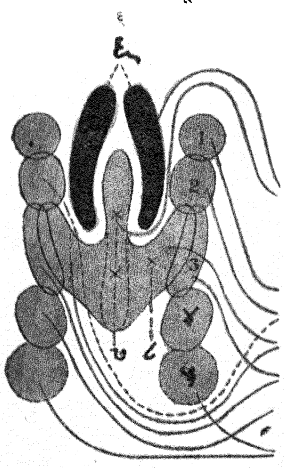

१ नेत्रच्छदोत्थापिको स्नायुका केन्द्र.
२ सरलोर्ध्वचालनी ,, ,,
३ वक्राधो चालनी ,, ,,
४ सरलाधो चालनी स्नायु ,,
५ वक्रोर्ध्वचालनी, चौथी मस्तिष्क रज्जू केन्द्र
६ नेत्रके भीतरी स्नायुके केन्द्र — ६ नेत्रगालकके भीतरीके स्नायु (तारकाका) संकोचक और तारकातीत पिंडीय स्नायु)
७ सरलान्तर चालनी स्नायु. एक केन्द्राभिमुखता
८ सरलान्तर चालनी स्नायु. आन्तरचलन.
ने. छ. — १, २, ३, ४, ८ मुख्य केन्द्रके असली बाहरी घटक जिसके निम्नलिखित उपभाग होते हैं।
स. उ. चा. — १, २, ३ केन्द्रका पिछला और बाहरीका उपभाग.
आ. स. चा. — ४, ८ सामनेका और बीचका उपभाग.
अ. व. चा. — ५ चौथी मस्तिष्क रज्जूका केन्द्र
अ. स. चा. — ६ एडिंबर वेस्टफालके सहचारी केन्द्र.
ऊ. व. चा. — ७ पारलिया का केन्द्र.

तीसरे मज्जारज्जुके केन्द्रकी चारों ओरको फैल कर उससे संबंध जोडती हैं। **पहला संबंध- अघोललाटीय तरंगकी** (आवर्तवकी) पिछली ओरकी मज्जापेशियोंकी मुख्य रेषाएँ (करोना रेडियेटा), मस्तिष्कीय आंतर धवल मार्ग (इन्टरनल क्यापसूल), मस्तिष्क

स्तभ (क्रस सेरिब्राय) मे होकर तीसरे मस्तिष्क रज्जुके चारो ओरको फैल जाती है। **(२) मस्तिष्किय चाक्षुष केन्द्रोंसे अप्रत्यक्ष संबंध**:—पाश्चात्य खडके चाक्षुष केन्द्रोकी पेशियोकी अक्षरेषाएँ पहियोके आरोके समान मार्गके द्वारा चाक्षुष पथकी ऊपरकी शाखामेसे होकर चतुर्ष्पिडमे जाती है। वहासे नये तन्तु उत्पन्न होकर तीसरी मास्तिष्क रज्जुके केन्द्रमे जाते है। चौथी और छठी मस्तिष्क रज्जुके केन्द्रोसे सबध लम्बे पर्ष्विय गुच्छद्वारा होता है। आठवी मस्तिष्क रज्जुके केन्द्रका–श्रवणकेन्द्र (व्हेस्टिब्युलर) भागसे सबध होता है। और लम्बे पश्चिम गुच्छद्वारा मानवी मस्तिष्क रज्जुके केन्द्रका भाग जिससे नेत्र-निमलिकी स्नायुका मज्जातन्तु निकलता है, उससे सबध होता है।

चौथी मस्तिष्क रज्जु (हृदयद्रावी मज्जारज्जु ट्राक्लियर या प्याथेटिक नर्व्ह)इसमे वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुको चालक मज्जातन्तु मिलते है। यह मस्तिष्क रज्जु सब मस्तिष्क रज्जुओमे बारीक होती है। इसका मस्तिष्कमे रहा हुआ उगमस्थान तीसरी मस्तिष्क रज्जुके उगम स्थानके केन्द्रके नीचे होता है। लम्बे पश्चिम गुच्छसे इसका सबध रहता है। इसका मस्तिष्कका मार्ग बहुत लम्बा होता है। इसके तन्तु उगम केन्द्रसे बाहर आकर चवथे कोष्टके ऊपरके सिरेको जा पहुचते है । इस जगह उसके बहुतमे तन्तु मध्यरेषाको पार होकर चतुर्ष्पिडके बाहरकी ओरको निकलते है। यही इस रज्जुका बाह्य उगम स्थान है।

यहासे यह मस्तिष्क रज्जु लघु मस्तिष्कके ऊपरके स्तभपरसे मस्तिष्क स्तभकी बाहरकी ओरको आकर लघु मस्तिष्क विनानके (टेन्टोरियम मेरिबे लाय) खुले भागमेसे मधुकोपसम नीलाविवरकी बाह्य दीवालमे तीसरी मज्जारज्जु और पाचवी मज्जारज्जुकी चाक्षुप शाखा इन दोनोके बीचको जाती है। फिर तीसरी मस्तिष्क रज्जुके पार होकर वह उर्ध्व नेत्रगौहिक दरारके भीतरी ओरको जाती है। नेत्रगुहामे जानेके समय यह सरलबहिश्चालनी स्नायुकी ऊपरकी ओरको रहती है। फिर यह ऊर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु और सरलोर्ध्व चालनी स्नायुके पार होकर वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुके ऊपरके पृष्ठमे घुसती है।

इस मज्जारज्जुको मधुकोपसमान नीला विवरकी (शहदके छत्ते जैसे) बाहरी दीवालमे ग्रैवेइक अनुकपित मज्जा जालसे कुछ मज्जातन्तु और पाचवी मस्तिष्क रज्जुकी चाक्षुष शाखामे संज्ञावाही तन्तु मिलते है ।

तीसरी मज्जारज्जुके केन्द्रके समान इसके केन्द्रका सबध भी अधो ललाटिय चक्राग की पेशियोकी मुख्य रेषासे होता है । लम्बे रेशेवाले पश्चिम गुच्छके मार्गका तीसरी और छठी मज्जारज्जुके केन्द्रोमे सबध होनेके कारण नेत्रगोलकके स्नायुओंके कार्यमे मेल रहता है । इसका श्रवण केन्द्रमे भी सबध रहता है ।

छठी मस्तिष्क रज्जु

इस मज्जा रज्जुसे नेत्रगोलककी सरल बहिश्चालनी स्नायुको चालक मज्जातन्तु मिलते है । इस रज्जुका मस्तिष्कीय उगमस्थान चौथे कोष्टके तलके धूसर भागके नीचेकी ओर होता है । यह केन्द्र मेतूके टेगमेन्टम भागकी पिछली ओरको होता है । यहा इसका सबंध सातवी-मौखिकी और आठवी मज्जारज्जुके केन्द्रोसे होता है । यहासे यह मज्जारज्जु

आगे जाकर सेतुके सामनेकी ओर सुषुम्ना शीर्षक के ऊपर और सूचीपिंडके बाहरकी ओरको निकलती है। यह इसका बाह्य उगमस्थान होता है। यहासे आगे जाकर जतुकास्थिके ड्यूरामेटरमे पाचवी मज्जारज्जुके नीचे पिछले क्लीनाईड शृगके नीचेकी ओरसे मधुकोषसमान नीलाविवर की भीतरी दीवाल की तरफ यह रज्जु जाती है। यहा यह मज्जारज्जू अन्तरमातृकी रोहिणीके नीचे और बाहरकी ओरको होती है। फिर इस विवरकी बाहरकी दीवालकी तरफ जाकर उर्ध्व नेत्रगौहिक दरारमेसे नेत्रगुहामे जाती है। इस समय यह मज्जारज्जु तीसरी, चोथी, मज्जारज्जु और पाचवीकी चाक्षुष शाखा के नीचेकी ओरको रहती है। फिर सरल बहिश्चालिनी स्नायुके दो मूलोमसे नेत्रगुहामे घुसती है। मधुकोषसमान नीलाविवरमे इसको ग्रैवेईक आनुकपिक मज्जाजालसे तन्तु मिलते है। और नेत्रगुहामे जानेके पहले पाचवी मस्तिष्क मजारज्जुसे कुछ सज्ञावाहक तन्तु मिलते है।

उस मज्जारज्जुके केन्द्रका सबंध मस्तिष्कीय केन्दोमे होता है। इसको सुपीरियर-आलीव्हके तन्तु लम्बे रेशावाले पश्चिम गुच्छ द्वारा मिलते है। और उस मार्गमे इसका श्रवण केन्द्रसे सबध होता है और नेत्रगोलकके स्नायुओका नियमन करनेवाला परावर्तन सवेदनामार्ग पूर्ण होता है। लम्बे रेशावाले पश्चिम गुच्छके मार्गके द्वारा दूसरी ओरकी तीसरी मज्जा रज्जुके केन्द्रसेभी इसका सबध होता है। छठी मस्तिष्क रज्जुके केन्द्रका सबध मस्तिष्कके स्नायुचालक केन्द्रोमे दूसरी ओरके सूची पिन्डके तन्तुओके जरिये होता है।

संज्ञावाहक मज्जारज्जु

नेत्रगुहामे अन्य मज्जारज्जू याने **पांचवी मस्तिष्क मज्जारज्जुकी** चाक्षुष शाखाकी उपशाखाये अश्रूपिडगा, ललाटिका और नासिका शाखाये होती है, इसके सिवाय संयोगी और दो आवर्त शाखाये होती है।

(१) चाक्षुष शाखा पाचमी अर्थात् त्रिमुखी मस्तिष्क मज्जारज्जुकी सबसे छोटी शाखा है और वह पूर्णत· सज्ञावाहक मज्जातन्तुओकी बनी है। ऊपरी नेत्रच्छद, शुक्लास्तर, नेत्र-गोलक, अश्रुपिड, अश्रुकोश, अश्रुपिटिका, ललाट, मस्तकावरणका सामनेकाभाग, ललाटीयविवर, नासिकामूल और उसके बाजूका भाग इन सबके सज्ञावाहक तन्तु इसी मज्जा रज्जुसे मिलते है।

चाक्षुष मज्जारज्जुका उगम अर्धचन्द्राकार मज्जाकदके (सेमिलुनर ग्यागलियन) सामनेके भागसे होता है। वहासे यह मधुकोषसमान नीलाविवर की बाह्यदीवाल मे जाकर चौथी मज्जारज्जुके नीचे जाती है। वहा जानेके पूर्व उसकी मुख्य तीन उपशाखाये निकलती है मधुकोषसमान नीलाविवरमे उसको आनुकपिक शाखाये मिलती है, (१) **अश्रुपिंडगा शाखा** (लाक्रिमल मज्जारज्जु) तीनोमे छोटी होती है। यह मज्जारज्जु उर्ध्व नेत्रगोहिक दरार के बाह्य कोणमेसे नेत्रगूहामे नेत्र गोलककी स्नायुकी ऊपरकी ओरसे घुसती है। और आगे नेत्रगुहाकी बाहरकी दीवाल की ओर सरलबहिश्चालनी स्नायुके पृष्ठ परसे जाती है। फिर नेत्रगुहाके बाहरके और ऊपरके कोण के पास नेत्रच्छदमे समाप्त होती है। इस शाखाद्वारा अश्रुपिड, ऊर्ध्वनेत्रच्छद, अंपाग के चारोओर की चमडी इनको सज्ञावाही तन्तु मिलते है। इसका सातवी मस्तिष्क मज्जारज्जु के साथ संयोग होनेके कारण उसमे सज्ञा वाहक तन्तु जाकर मिलते है।

(२) **ललाटिका मज्जारज्जु शाखा**:--(फ्रान्टल नर्व्ह) यह चाक्षुश मज्जारज्जुकी सबसे बडी शाखा होती है । यह ऊर्ध्व नेत्रगौहिक दरार से नेत्रगुहामे नेत्रगोलककी स्नायुके ऊपरकी ओर घुस जाती है । अस्थ्यावरण और ऊर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु इन दोनो के बीचमेंसे होती हुई वह आगे जाती है । नेत्रगुहाके मध्य भागमे इसकी ऊर्ध्व नेत्रगौहिक याने अधिभ्रुव, और अधिवर्तुल ऐसी दो अन्तिम शाखाये होती है । इन दोनो शाखाओके द्वारा उन खास भागोको सज्ञावाहक तन्तु मिलते है ।

उर्ध्व नेत्रगौहिक या अधिभ्रुवशाखा (सूप्राआरबिटल नर्व्ह) अस्थ्यावरणके नीचे होती है। यह शाखा उर्ध्व नेत्रगौहिक छिद्रमेसे बाहर आकर ललाट परजाती है । वहा उसकी उपशाखाये होती है। बाहरकी शाखा पार्श्वास्थितक जाती है । ललाटीय विवरको सज्ञावाही तन्तु इसीसे मिलते है ।

अधिवर्तुल मज्जारज्जु शाखा (इनफ्रा ट्राकलियर नर्व्ह) वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुकी फिरकीके ऊपरकी ओरको जाकर नेत्रगुहाके ऊपरी और भीतरी कोणमेसे बाहर जाती है। इससे शुक्लास्तर, नेत्रच्छदका अन्दरका भाग और ललाटके भीतरी और नीचेके भागोको संज्ञावाही तन्तु मिलते हैं।

(३) **नासिका मज्जारज्जु** (नेझल नर्व्ह) यह मज्जारज्जु ऊर्ध्व नेत्रगौहिक दरार मेसे नेत्रगुहामे जानेके समय सरल बहिश्चालनी स्नायुके दो मूलोमें होती है। फिर दृष्टि-रज्जुके पार होकर नेत्रगुहाकी भीतरी दीवालकी तरफ जाती है। वहासे झरझरास्थिके अगले छिद्रमेसे खोपडीमे जाती है । फिर आगे जाकर **कलगीदार हड्डी** (क्रिस्टा ग्याली) की बाजूकी चीरमेसे नासागुहामे जाती है। वहामे नासास्थिमेके भितरी पृष्ठकी नालीमे जाकर नासास्थि और नासा तरुणास्थि (नेझल कार्टिलेज) इन दोनोंमेसे बाहर जाती है। इसकी उपशाखाएँ इस तरह है **चाक्षुष मज्जाकन्दकी शाखा :** यह चाक्षुषमज्जाकदका सज्ञावाहक मूल है। यह शाखा मज्जाकदके ऊपरी कोणको जाती है। **तारकातीत पिंडकी दीर्घ मज्जारज्जुएँ** दो होती है। ये दो मज्जारज्जु दृष्टिरज्जुकी भीतरी ओरको होती है। नेत्रगोलकमे घुसनेके पहले तारकातीत पिडकी लघुमज्जातन्तुओमे इनका सबध होता है। इनसे तारकातीत पिड, तारका और तारकापिधानको सज्ञावाहक तन्तु मिलते है। नासिका मज्जारज्जुकी अन्य उपशाखाये —अधोवर्तुल, आन्तर नासिका, बहिर्नासिका और पुरोनासिका ये होती है ।

(४) **संयोगी शाखाएँ** तीन होती है और ये तीसरी, चौथी और छठी मज्जा-रज्जुओमें मिलती है। इनके कारणसे नेत्रगोलककी स्नायुको सज्ञावाहक ततु मिलते है।

(५) **आवर्तकशाखा** अर्धचद्राकार मज्जाकदके नजदीक उत्पन्न होकर मस्तिष्कवितानको जाती है।

चाक्षुष मज्जाकंद—(सिलियरी या लेन्टिक्युलर या आफथालमिक ग्यांगलियन) यह एक पिनके सिरेके आकारका चौकोन पिन्ड होता है । इसका स्थान नेत्रगोलकके पीछे १५ मि मि. के फासले पर, सरल बहिश्चालनी स्नायुके भीतरी ओरको होता है । वक्राधोचालनी स्नायुको तीसरे मस्तिष्क रज्जूसे जो तन्तु जाता है उसके अनुरोधसे देखे तो

यह मज्जाकंद नज़रमें आ जायेगा। इसका **संज्ञावाहक** मूल चाक्षुष मज्जा रज्जूकी नासिका शाखासे पाया जाता है। इस को बडा मूल कहते हैं, और वह इस मज्जाकंदके पिछले और ऊपरके कोण में मिलता है। इस मज्जाकंदके पिछले और नीचेके कोण में उसका **चालक मूल,** जो मोटा और छोटा होता है, मिलता है; और यह वक्राधोचालनी स्नायुके मज्जातन्तु से पाया जाता है। इसका **आनुकंपिक मूल** (सिम्पाथेटिक रूट) आनुकंपिक मज्जातन्तु सघात–धमनी मज्जारज्जूके क्याव्हरनस मज्जातन्तु सघात के बारिक तन्तुओंसे मिलता है। यह मूल इस मज्जाकंदको उसके पिछले ऊपरके कोणको जाकर स्वतंत्र रीतीसे या संज्ञावाहक मूलके साथ मिलता है। इस चाक्षुषमज्जाकंद की शाखाएँ उसके सामनेके भाग से निकलती हैं। इनकी संख्या करीब छ होती है और इनको तारकातीत पिंडके छोटे मज्जा तन्तु–(शार्ट सिलियरी नर्व्हज) कहते हैं। ये शाखाएँ तारकातीत पिंडकी छोटी रोहिणियो के साथ आगे जाती हैं। इनकी करीब बीस उपशाखाएँ होती हैं। फिर ये शुक्लपटलको भेदकर नेत्रगोलकमें घुसती हैं और फिर वे तारकातीतपिंडकी स्नायु, तारका और तारकापिधान को जा पहुँचती हैं। नेत्रगोलक मे घुसने के पहले उनको नासिका मज्जारज्जु की शाखाएँ मिलती हैं। **व्हिटकालके** मतानुसार इन मूलोंके कार्यका तफसील नीचे लिखे मुजब होता है (चित्र न. ९८ देखिये)।

१ **संज्ञावाहक मज्जातन्तु** कुल नेत्रगोलकमे पाये जाते हैं, लेकिन उनमेंसे तारकापिधानसे आनेवाले तन्तु अति महत्वके होते हैं और वे सीधे बिगर अटकाव मज्जाकंदमेंसे आगे जाते हैं। कोई कोई मानते हैं कि कनीनिकाका प्रसरण करनेवाले और तारकातीत पिंडकी स्नायुको ढीला करनेवाले संज्ञावाहक मज्जातन्तु इसीमें रहते हैं।

२ **चालक** मूल में दो तरह के तन्तु होते हैं,

(अ) **तारकाका संकोचन करनेवाले मज्जातन्तु** (स्फिंक्टर या कान्स्ट्रिक्टर प्युपिली फायबर्स) ये तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जु के केन्द्र के (जीवनबीज), जो मस्तिष्कके मध्य भागमे होता है, अगले भागकी पेशियोंमेंसे निकलकर तीसरी रज्जुके साथ आगे जाकर चाक्षुष मज्जाकंदमें खतम होते हैं, और फिर वहांसे नेत्रगोलकको प्रेरणा तारकातीतपिंडके छोटे मज्जातन्तुओंद्वारा जाती है। इन मज्जातन्तुओंमे इस मज्जाकंदके इस पारकी तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुसे काट देनेसे कुछ गुणऱ्हास (जलील अवस्था, बरबादी) नहीं पाया जाता। सन १९२० में **स्टारलिंग**ने जानवरोंपर प्रयोग करके सिद्ध किया कि तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुके मूल को उत्तेजित करनेसे या, चाक्षुष मज्जाकंद या तारकातीत पिंडके छोटे मज्जारज्जुके उत्तेजनसे कनीनिकाका संकोचन होता है।

(ब) तारकातीतपिंडकी स्नायुका आकुंचन करनेवाले मज्जातन्तुओंका–दृक्‌संधान शक्तिके मज्जातन्तुओंका–प्रारंभ और गमन इसी तरहका होता है (चित्र न. ९७ देखिये)।

३ **आनुकंपिक मूल** मेंसे कुल नेत्रगोलककी रक्तवाहिनीयोके ऐंटनदार मज्जातन्तु. नेत्रगोलकके सामनेके भागकी रक्तवाहिनियोंके प्रसरण करनेवाले मज्जातन्तु और तारकाकी कनीनिकाका प्रसरण करनेवाले मज्जातन्तु जाते हैं। चाक्षुष मज्जाकंदमें इन तन्तुओंको रुकावट होती है।

(ड) नेत्रगुहामेंकी रक्तवाहिनियां:—

(अ) नेत्रगुहाकी रोहिणियां:—

चाक्षुष रोहिणी (आफथालमिक आरटरी) यह अन्तर्मातृकी–अन्तग्रैवेइक रोहिणीकी–शाखा होती है। इसका उगम अन्तर्मातृकी रोहिणी मधुकोषसमान नीला विवरमेंसे जिस स्थानमे बाहर नीकलती है वहासे होता है। चाक्षुष रोहिणी चाक्षुष छिद्रमेंसे दृष्टिरज्जुके साथ लेकिन उसकी बाहरकी और नीचेकी ओरसे नेत्रगुहामे जाती है। फिर दृष्टिरज्जुके ऊपरसे या नीचेसे पार होकर नेत्रगुहाकी भीतरी दीवालको जा कर, वहासे वक्रोर्ध्व ओर सरलान्तर चालनी स्नायुओके बीचमेंसे सीधी आगे जाती है। और आखिर उसकी दो अन्तिम शाखायें–नेत्रच्छदीय, और नासिका रोहिणी शाखा–बनती है। इसकी अन्य शाखायें:—दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी,अश्रुपिंडगा, ललाटीय अधिरुव, तारकातीतपिंडीय, पुरो और पश्चिम झरझरास्थीय, और स्नायुकी शाखायें ये होती है (चि. न. ९८ देखिये)।

स्नायुओंकी शाखाएँ अनेक होती है; इन्हीसे तारकातीत पिंडकी पुरोरोहिणिया पायी जाती है और जिनकी शाखाएं तारकाका बृहत्-रोहिणी-वलय बननेमें भाग लेती है।

दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी (आरटेरिया सेन्ट्रालिस रेटिनी) चाक्षुष रोहिणीके दृष्टिरज्जुके पार जानेके पहले यह शाखा शुरू होती है। यह शाखा नेत्रगोलकसे १५ मि. मि. के अन्तरपर दृष्टिरज्जुमें घुमकर उसके भीतरसे सीधी दृष्टिरज्जुके शीर्षतक जाती है। वहा उसकी ऊपरकी और नीचेकी ऐसी दो शाखाये होती है। इन दोनो शाखाओंमें प्रत्येककी नासिका और कनपटीकी ऊपरकी तथा नीचेकी शाखा भी बनती है। फिर प्रत्येक शाखासे दो दो उपशाखाये होती जाती है। इन शाखाओमे विशेष यह है, कि इनका पारस्परिक या अन्य रक्तवाहिनीयोमे सयोग बिलकुल नही होता। इसका परिणाम यह होता है, कि जब शाखामें डाट लग जानेसे उसका रक्त प्रवाह रुक जाता है तब जिस भागमे इस शाखासे रक्त सचय होता है. उस भागके रक्त प्रवाहके रुक जानेसे वह भाग **निकम्मा** होजाता है। लेकिन इसके लिये एक अपवाद है। तारकातीत पिंडकी लघुरोहिणीकी उपशाखा का दृष्टिरज्जूकी मध्य रोहिणीसे कभी कभी सयोग होता है। इन रोहिणियोंमें दूसरी विशेषता यह होती है कि इनके रक्त प्रवाहका सयोग केशसदृश रक्तवाहिनियोंके केशिनियोके माध्यमके विनाही सीधा नीलामें होता है।

तारकातीत पिंडकी रोहिणी शाखायें (सिलिअरी आरटरीज) —इस शाखाओंसे कृष्णपटल, तारकातीत पिंडकी प्ररोहा और तारका, इन्हे रक्तसचय मिलता है। इन शाखाओंके अलग अलग दो समूह होते है—तारकातीत पिंडकी पुरोरोहिणी (एँन्टिरिअर सिलिअरी आरटरीज), शाखाओंका समूह और तारकातीत पिंडकी पश्चिम रोहिणी शाखाओका समूह (पोस्टेरिअर सिलिअरी आरटरीज)। तारकातीत पिंडकी पुरोरोहिणीयोंका शाखा समूह नेत्रस्नायुकी रोहिणीकी शाखाओंसे बनता है। तारकातीत पिंडका पश्चिम रोहिणी समूह चाक्षुष रोहिणीकी प्रत्यक्ष शाखाये होती है। इन शाखाओंके छोटी और लम्बी ऐसे दो प्रकार होते है। तारकातीत पिंडकी पश्चिम लम्बी शाखाओंका प्रारंभ चाक्षुष रोहिणी दृष्टिरज्जुके

पार जानेके पहले होता है। तारकातीत पिंडकी लम्बी पश्चिम रोहिणियां दो होती हैं। एक नेत्रगोलककी दाहिनी और दूसरी बाईं ओरको नेत्रमें घुसकर शुक्लपटल और कृष्णपटलके बीचसे आगे जाती हैं।

चित्र नं. ९८ चाक्षुष रोहिणी और उसकी शाखाएँ

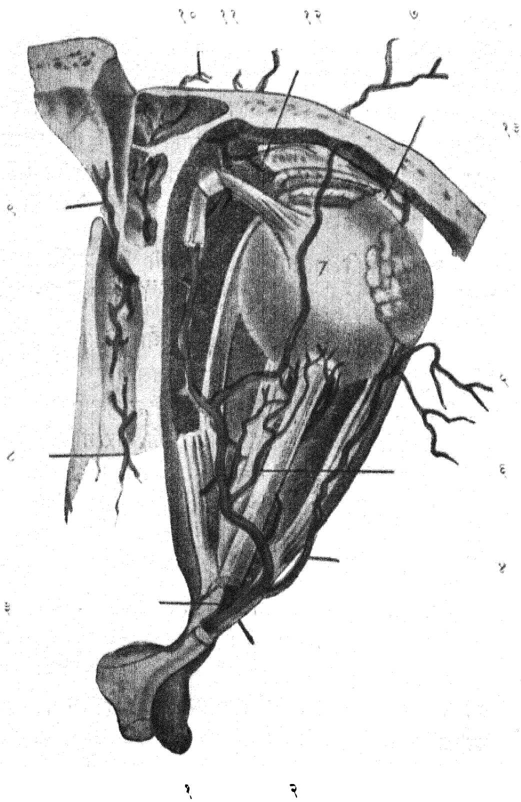

१ अन्तर्मातृकी रोहिणी
२ चाक्षुष रोहिणी
३ दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी
४ अश्रुपिंडगा रोहिणी
५ अश्रुपिंडगाकी गंडास्थि शाखा
६ तारकातीत पिंडकी शाखाएँ
७ ऊर्ध्व नेत्रगौहिक रोहिणी
८ पाश्चिम (झरझरास्थि) रोहिणी
९ पुरो झरझरास्थि रोहिणी
१० नासिका रोहिणीकी पिंडली शाखा
११ ललाटीय रोहिणी
१२ नेत्रच्छदकी मध्यशाखा रोहिणी
१३ नेत्रच्छदकी बाह्य रोहिणी

(ब) **चाक्षुष नीला** (आफथाल्मिक व्हेन)—ये दो होती हैं। एक ऊर्ध्व चाक्षुष और दूसरी अधो चाक्षुष नीला। दोनों नीलाएँ नेत्रगुहान्तस्थ सब घटकोंका रक्त लेकर सामनेसे पिछली ओरको जाती हैं। वे ऊर्ध्व नेत्रगौहिक दरारमेंसे खोपडीमें घुसकर मधुकोषके समान नीला विवरके पुरोभागके सिरेको मिलती हैं।

ऊर्ध्व चाक्षुष नीलाका प्रारंभ वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुकी सिरेके ऊपरी और नीचेकी ओरकी नीलाके संगमसे होता है। इस नीलामें नेत्रगुहान्तस्थ घटकोंका और नेत्रगोलकका बीब हुतसा रक्त वापिस जाता है। इसकी शाखायें: नेत्रगोलककी दो आवर्त नीलायें जिनमें

कृष्णपटल, तारकातीतपिंड और तारकाका नील रक्त वापिस आता है, तारकातीतपिंडकी पुरो और पश्चिम नीला और कभीकभी दृष्टिपटलकी मध्य नीला यह होती है । दो अधो आवर्तनीलाएं और कभीकभी दृष्टिपटलकी मध्य नीला अधोचाक्षुष नीलाको मिलती है ।

आवर्तनीला (व्हीना व्होरटिकोझी) ये प्राय. चार, और कभीकभी छ होती है । छोटी छोटी नीलाये पहियोके आरोके सदृश एक जगह मिलकर आवर्तनीला तैयार होती है । चाक्षुष नीलासे ललाटीय नीलाका भी सयोग होता है ।

(क) **नेत्रगुहाकी लसिका वाहिनियां:**—नेत्रच्छद, शुक्लास्तर और अश्रुजनकेन्द्रियोपकरणके सिवाय नेत्रगुहान्तस्थ अन्य घटकोमे लसिकावाहिनियोका अभाव होता है। उनके बदले नेत्रगोलकमे लसिकावकाश होते हैं । नेत्रगोलकके मुख्य लसिकावकाशको **टेननका** लसिकावकाश कहते है और इसमे अन्य लसिकावकाशोका सबध होता ।

टेननका लसिकावकाश:—इसका प्रारभ नेत्रगोलकके सामनेकी ओर शुक्लकृष्ण मधिके नजदीक और शुक्लास्तरके नीचे होता है । यह लसिकावकाश नेत्रगोलकके चारो ओर टेननके आवरणके भीतरी ओरको होता है । पिछली ओर दृष्टिरज्जुके बाहरी वेष्टन परसे होकर नेत्रगुहाके सिरेतक वह पहुँचता है और मस्तिष्कके बाह्य आवरणके अन्दरके अवकाशसे मिलता है । नेत्रस्नायुयोका आवरण टेननके आवरणसे उत्पन्न होनेसे स्नायुके लसिकावकाशका सबध प्रत्यक्ष टेननके लसिकावकाशसे होता है और स्नायुकी लसिका टेननके लसिकावकाशमे बिना विरोध मिलती है। शुक्लपटलके लसिकावकाशका सबध बाहरकी ओर टेननके लसिकावकाशसे और अन्दरकी ओर कृष्णपटल के अवकाशमे होता है । तारकापिधानकी पेशियोके चारो ओरके अवकाशका सबंध तारकापिधानके परिधि भागके पास शुक्लास्तरके लसिकावकाशमे होता है ।

नेत्रच्छदमें लसिकावाहिनियोके तीन जाल होते है—एक नेत्रच्छदको चमडीके नीचे, दूसरा च्छदपटके ऊपर और तीसरा शुक्लास्तरके नीचे । इन जालोमे बाहर जानेवाली लसिकावाहिनीके सिरे गालपरसे नीचे हन्वास्थिके नीचेकी ओरके लसिकापिंडमें जाते है । कुछ सिरे बाहरकी ओर जाकर कानके सामनेके लसिकापिंडमे जाते हैं और कुछ सिरे उपकर्ण पिन्डकी (पराटिड ग्लेंड) लसिका ग्रथिमे जाते हैं । शुक्लास्तरकी लसिकावाहिनीके सिरे भी उपकर्ण पिन्डकी लसिकाग्रथिमे जाते हैं । अश्रुजनकेन्द्रियोपकरणकी लसिकावाहिनियो का शोध अभीतक निश्चित नही हुआ है ।

पूर्ववेश्मनी और स्फटिकद्रवपिंडकी वेश्मनी लसिकावकाश माने गये है ।

(ग) नेत्रगुहाके चारों ओरके हवाभरे कोटर (विवर)

नेत्रगुहाके चारो ओर चार वात भरे अस्थिकोटर होते है—ललाटास्थि कोटर, उर्ध्वदन्तास्थि कोटर, झरझरास्थि कोटर और जतुकास्थि कोटर । ये कोटर नासा गुहामे जाते हैं ।

नेत्रगुहाके छतके संबंध का कोटर

ललाटास्थि कोटरः—यह कोटर सामनेसे त्रिकोणाकार दिखाई देता है। त्रिकोणकी एक भीतरी दीवाल दोनो कोटरोको उभयनिष्ठ होती है, लेकिन वह मध्यरेषामे नही होती। ऊपरकी दीवाल ऊपरसे नीचे और बाहरकी ओर जाती है। नीचेकी दीवाल बाहरसे अन्दरकी दीवालके नीचेके अग्रको जाती है। इस कोटरकी ऊचाई ३१ मि मि, मोटाई ३० मि मि और गहराई १७ मि. मि होती है। इसका घनक्षेत्र ३ से ८ सी. मी. होता है। ५० प्रतिशत उदाहरणोमे इस कोटरका मुख नासागुहाके मध्य सुरगमे जाता है और शेष अशोमे इसका मुख पहले झरझरास्थिके–गलनीके सदृश गड्हेमे जाता है, और फिर नासागुहामें घुमता है।

नेत्रगुहाके तल संबंधी कोटर

उर्ध्वदन्तास्थि कोटरः—(ऐन्ट्रम आफ हायमोर म्याक्झिलरि सायनस)

नेत्रगुहाके चारो ओरके वातभरे कोटरोमें यह कोटर सबसे बडा होता है। यह नेत्र-गुहाके तलकी नीचेकी ओरको तथा नासागुहाके बाहरकी ओरको होता है। इसका आकार साधारणतया त्रिकोणाकार शखके समान होता है। शखका अग्र बाहरकी ओर गण्डास्थिकी तरफ और तल नासिकाकी होता है। इस कोटरकी नेत्रगौहिक, सामनेकी और पिछली ऐसी तीन दीवाले होती है। कोटरकी तीनो दीवाले तथा तल बिलकुल पतली पटियासी होती है। इसका नासागुहाकी ओरका तल तात्वास्थिकी खडी पट्टी, झरझरास्थिकी बडिशाकृति (हुकफार्म) टेढी प्ररोहा, अधो शुक्तास्थिकी प्ररोहा और कुछ बाष्पास्थिका भाग इन सबके सयोगसे बना है। इस कोटरका सबध नासागुहाके मध्य सुरगके छिद्रसे होता है यह छिद्र मध्य सुरंगके तलसे थोडा ऊचा होनेसे कोटरकी निष्कासिक क्रिया (ड्रेनेज) अच्छी तरहसे नही होती। इस कोटरकी दीवालोकी श्लैष्मिक कलाका सबध नासिकाकी श्लैष्मिक कलासे होता है। इस कोटरके खडे मध्य व्यासकी लम्बाई ३५ मि. मि और घनक्षेत्र १५ मि मि होता है।

नेत्रगुहाकी भीतरी दीवालके संबंधका कोटर

झरझरास्थि कोटरः—यह कोटर अनेक छोटे छोटे (८–१०) उपकोटरोके सयोगसे बना है। झरझरास्थिका सयोग ललाटास्थि, उर्ध्वदन्तास्थि, बाष्पास्थि, जतुकास्थि और तात्वास्थि इनके साथ होनेसे यह कोटर बनता है। इन कोटरो और उपकोटरोकी श्लैष्मिक कलाका सबध नासा श्लैष्मिक कलासे होता है। इन उपकोटरोके सामनेका, मध्यका और पिछला ऐसे तीन भाग होते है। इन तीनोका सबध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे मध्य सुरगसे होता है। सामनेके उपकोटरका सबध ललाटास्थि कोटरकी चलनीके आकारके गड्हेसे पहले होनेके कारण उनका मध्य सुरगसे अप्रत्यक्ष सबध होता है। मध्य भागके उपकोटरका संबध प्रत्यक्ष मध्यसुरगसे होता है और पिछले भागके उपकोटरोका सबध उर्ध्व सुरगसे होता है। लेकिन इनका सबंध कभीकभी जतुकास्थि कोटर या उर्ध्वदन्तास्थि कोटरसे होता है। ये कोटर चाक्षुष छिद्रके भीतरी ओरको होते है।

जतुकास्थि कोटरः—ये कोटर जतुकास्थिके अगमे दो होते है। इन दोनोंकी बीचकी उभयनिष्ठ दीवाल पूरी नही होती। इनका संबध नासागुहाके ऊपरी और पीछेके

भागसे होता है। इनके ऊपरके और पिछले भागपर पोषणिकारक ग्रंथि (पिटयुईटरी बाडी), बाजूमें मधुकोषके समान नीला विवर और अन्तर्मातृकी रोहिणी, और बाहर चाक्षुष छिद्र होते हैं।

(त) अश्रुजनकेन्द्रियोपकरणः—इसमें नेत्रगुहामेंकी अश्रुग्रंथि, नेत्रच्छदमेंकी सहचारी ग्रंथियां, अश्रुग्राही मुख, अश्रुनलिका, नेत्राश्रुकोष (बाष्पकोष) और नेत्राश्रु नालिका या नासिकानालिका प्रणाली।

चित्र नं. ९९ अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण

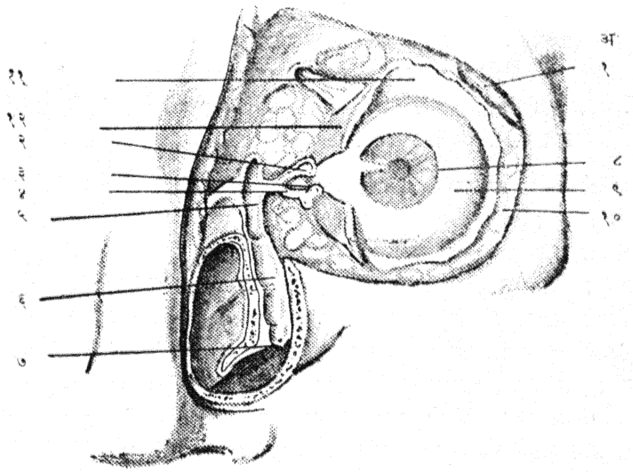

(१) ऊपरकी अश्रुग्रंथी; (२) अश्रुग्राही मुख; (३) मांसपिंड; (४) अश्रुनाली; (५) अश्रुकोष; (६) नासिका नाली; (७) हास्सर्स व्हाल्वन; (८) तारकापिधान; (९) शुक्लास्तर; (१०) नेत्रगुहाके चरबीदार घटक; (११) नेत्रच्छदास्तर; (१२) ऊपरी नेत्रच्छदका भीतरीं भाग।

अश्रुग्रंथि—यह ग्रंथि बदामके आकार जितनी बडी होती है (नीग्रो लोकोमें इसका आकार बडा होता है); यह नेत्रगुहाके प्रवेशद्वार की ऊपरकी और बाहरकी दीवालमेंके खास गडहेके अस्थ्यावरणको तन्तुर घटकोंसे बंधी रहती है। इस ग्रंथीका रस यानी अश्रु अनेक प्रणालीयोंसे (६ से १०) बहिरपांगके पास शुक्लास्तरपर बाहर गिरता है। ग्रंथीके सामने नेत्रगोहिक पटल, नेत्रच्छद निमीलक स्नायु और चमडी होती है। उर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिका स्नायुकी कण्डरा पत्रसे (अपान्युरोसिस) ग्रंथीमें गहरी नाली बनकर ग्रंथीके ऊपरका नेत्रगोहिक खंड और नीचेका खंड, ऐसे दो भाग होते हैं। नीचेके खंडको नीचेकी अश्रुग्रंथि या नेत्रच्छदमेंकी या सहचारी अश्रुग्रंथि इस नामसे जाना जाता है। ग्रंथिके आकारकी कल्पना चित्र नं. ९८–९९ से होगी। यह ग्रंथि अमर्यादित शाखा पद्धतिकी घटना की होती है। यह ग्रंथि बारिक आवरणसे ढकी रहती है जिसकी वजहसे उसका पिछले चरबीदार घटकोंसे प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता। **व्हिटनाल**को यह आवरणकी कल्पना मान्य नहीं है।

ऊपरकी अश्रुग्रंथिः—यह २० मि. मि. लम्बी, १२ मि मि. चोडी और ५ मि. मि. मोटी होती है। इस ग्रथीकी सामनेकी किनार नेत्रगुहाकी किनारको समानान्तर जैसी होती है और उसमें और नेत्रगोहिक पटलमें चरबीका एक गोला रहता है। इसकी पिछली किनार मोटीमी और टेढीमेढी होती है और उसका सरलोर्ध्व और सरल बहिश्चालिनी स्नायुओंके चरबीदार घटकोंसे सबध जुडा हुआ होता है। इसका ऊपरका पुष्ट उन्नतोदर होता है और वह ऊपरके अस्थियोमेंके गढहेसे ठीक मिल जाता है। इसके मध्यमे अश्रुग्रथीकी रोहिणी और मज्जारज्जु घुसती है।

नीचेकी या सहचारी अश्रुग्रंथिः—यह उपरकी ग्रथीके आधे या तीसरे हिस्से जितनी बडी होती है। बहुतसे मिसालोमें इस ग्रथीके छोटे छोटे २०–४० खड होते हैं, और वे ऊपरके या नीचेके नेत्रच्छदपर फैले हुए है ऐसे दिखाई पडते है। यह शुक्लास्तरसे मल्लबंधी रहती है। जिसमे इसकी प्रणालिया बाहर गिरती है। नेत्रच्छदको दुपटनसे और शुक्लास्तरको ऊपर उठानेसे ग्रंथीके खंड दिखाई पडते है।

अश्रुग्रंथीको रक्तकी भरती चाक्षुपी रोहिणीकी अश्रुगाशाखामे होती है। इसको ऊर्ध्व दन्तास्थिकी आन्तररोहिणीकी (इन्टरनल म्याक्झिलरी) अधोनेत्रगोहिक शाखा मिलती है। ग्रथीकी छोटीछोटी नीला मिलकर अश्रुग्रथीकी नीला बनती है जो चाक्षुपी नीलाको मिलती है और इस तरहसे इस ग्रथीका रक्त मधुकोपसम नीला विवर मे जा पहुँचना है। अश्रुग्रथीकी वातवाहिनिया या मज्जातन्तु त्रिमुखी पाचवी मस्तिष्क मज्जारज्जुकी अश्रुगा शाखा, सातवी यानी मोखीकी मजारज्जुकी शाखा और आनुकपिक मज्जातन्तु सघात की शाखा ऐसे तीन मज्जातन्तु मिलते है। अश्रुग्रथीके मज्जातन्तुके सबधमे कुछ संदेह है। यदि उसको पाचवी मस्तिष्क-रज्जुसे मज्जातन्तु पायेजाते है तो खास तौरमे छटवी मज्जारज्जुसे मज्जातन्तु–जो असल मे नवी मज्जारज्जुके केन्द्रमे उत्पन्न होते हे, मिलते है ऐसा **पारसन** का मत है। इसके ऊपरी या नेत्रगोहिक खडके मज्जातन्तु सातवी मज्जारज्जुसे और शायद आनुकपिक मज्जातन्तु सघातसे पाये जाते है। **गोल्डझीअर** के मतानूसार अश्रूग्रथीका आश्रावोत्तेजक रसवाही मज्जातन्तू पाचवी मज्जारज्जूमे नही, बल्कि सातवी मज्जारज्जूके तन्तुओसे, जो असलमें पिट्रोसलकी स्फिनो पैलेटाईन मज्जाकदमें जाती है और फिर वहासे चाक्षूषी मज्जा-रज्जूको अश्रूगा शाखाको जाती है।

नेत्राश्रुकी रासायनिक रचना या घटना- -अश्रु स्राव सफा, नमकीन जल होता है। इसमे **आर्ल्टके** सशोधनके अनूसार जल ९८·२२३ भाग, नमक १२५७, ओजस द्रव्य अलब्यूमेन ·५०४ होते है।

नेत्रच्छदान्तरालके भीतरके कोणमे अश्रुकासार होता है जिसमे अश्रु इकट्ठे होते है।

अश्रु बह जानेका रास्ता अश्रुके निष्कासिक मार्गके संस्थान:—

अश्रुजनकेन्द्रियोपकरणमे के अश्रूके बाहर बह जानेके रास्तेकी शूरूआत **अश्रुग्राही मुखोंसे** होती है। ये नेत्रच्छदकी भीतरी टोकके पासकी नेत्राश्रूपिटिकापर होते है। इनके

व्यासका आकार ½ से ¾ मि मि. होता है। इन्हीसे **अश्रुनलिका**ओका प्रारभ होता है। हरएक अश्रुनलिकाके एक खडा और एक आडा ऐसे दो भाग होते हैं। खडे भागकी लम्बाई १·५ से २ मि. मि और आडे भागकी लम्बई ७ से ८ मि. मि होती है। ये नलिकाएँ अश्रुकोषमे अलग अलग या दोनो एकत्रित होकर मिलती है। इन नलियोके भीतर स्लेटके आकारकी पेशियोकी (मेलोकी) लगातार ८ से १२ तहे होती है। **अश्रुकोष**—नेत्रगुहाके भीतरके नीचेके कोणकी अस्थियोमे एक छोटासा गडह होता है, जिसमे अश्रुकोष रहता है, जिसके सामने **टेन्डो आक्युलाय** और पीछे **हारनरकी स्नायु,** जिसको च्छदपटलको ताननेवाली स्नायु कहते है, होती है। हारनरकी स्नायु का उगम बाष्पास्तिके शिखरसे होता है। इसके दो भाग होते है और हरएक भाग हर छदपटके पिछले पृष्ठको जा मिलता है। इस स्नायुको सातवी मस्तिष्क मज्जारज्जूसे मज्जातन्तु मिलते हैं। ध्यानमे राखिये कि सातवी या मौखिकी मज्जारज्जूके स्तंभमे, सतत अश्रुप्रवाह होते रहना, यह उस स्तंभका पहले पहल का लक्षण पाया जाता है।

हारनरकी स्नायुके आकुचनमे, हालमे ऐसा माना जाता है कि, अश्रुकोपकी विस्तृति होती है जिससे पहले अश्रुनलिकामेसे अश्रु चूसे या खीचे जाते है, फिर स्नायु शिथिल होनेके पश्चात अश्रुकोप पहले जैसा अकड जाता है, और अश्रु नासिका-नालीके बडे मुखमेसे नासिकामे आगे ढकेले जाते है, नकि पीछे अश्रूनलिकाके तग मुखमे। पहले ऐसा मानते थे कि इस स्नायुके कार्यसे अश्रुकोप और अश्रु नालिका दब जाते थे जिससे टेन्डो आक्युलाय चाक्षुष कण्डरा पीछेकी ओरको और छदपट भीतरी ओरको खीचा जाता था।

अश्रुकोपका ऊपरी सिरेका भाग बडा और गोल होता है। लेकिन जहा वह नासिका नाली से मिलता है वहा तग होता है। अश्रुकोपकी दीवाल तन्तुर स्थितिस्थापक घटकोकी बनी हुई होती है। दीवालके भीतरी पृष्ठपर घनाकार और बेलनाकार पेशियोकी तहोकी झिल्ली होती है। अश्रुकोपकी रिक्तावस्थामे झिल्लीके झोल बनते हैं। अश्रुकोप जब विस्तृत होता है तब उसके व्यासकी लम्बाई ६ से ७ मि. मि. होती है और उसकी लम्बाई १२ मि. मि. होती है।

अश्रुकोप और झरझरास्थिकी पेशिओके दरमियानमे बाष्पास्थि होता है। इस अस्थिमे कभी कभी अनेक छिद्र होनेसे झरझरास्थिकी पेशिओमेका पीब नेत्रगुहामे जाता है, या नेत्र-गुहामेंका पीब झरझरास्थिमे जाता है। अश्रुकोपका फोडा कभी कभी नासिकामे बह जाता है।

नासिका नलिका अश्रुकोपसे नीचे १२ से १४ मि. मि. लम्बी होती है। यह अधोशक्तास्थिके नीचे सीधी या तिरछी खुली होती है। इस नालीके श्लेष्मल त्वचाके अनेक झोल होते है। इसमेसे अधोसुरगाके पासके झोलको **हासनरका अभिद्वार** या **व्हाल्व्ह** कहते हैं। इस नालीकी दिशा नीचे, पीछे और बाहरकी ओरको जैसी होती है।

(न) भौंहें—

भ्रुव ये दोनो नेत्रगुहाकी ऊपरकी ओरको दो बालयुक्त कमानदार उभार होते हैं जो नेत्रगुहा और ललाटके दरमियान की सीमा बनाते हैं। हर भौंह की घटनामे

जाडी चमडी, स्नायुके तन्तु जो चमडीको चिपके रहते हैं, चरबीदार पेशियोकी तह और खोपडीके इर्दगिर्दके स्नायुकी झिल्ली जिसकी नीचेकी तह नेत्रगुहाकी ऊपरी सीमाको चिपकी हुई होनी है, ये घटक होते हैं। इस रचनासे ललाटके जख्मसे पैदा हुआ रक्तस्राव, फोडा या ललाटीय कोटरकी हवा नेत्रच्छदमे उतरना सभाव्य नही होता; या नेत्रच्छदमे सूचीसे डाला हुआ द्रावण ऊपर ललाटमे नही जा सकता। इस चमडीमे सख्त छोटेछोटे बाल होते हैं जिनकी दिशा भीतरीमे बाहरकी ओर होती है, और जो एकके ऊपर एक चढे रहते हैं। भौंह मनुष्य जातीका विशेष होता है। उन भौंहसे पसीना, शल्य और तीव्र प्रकाशमे नेत्रका रक्षण होना है, और मुह बनानेमे बहुत काम की होती है, जैसेकि क्रोधमे या, सख्त **नफरत**मे दिखाई देनेवाली सकुचित भौह या इसके विपरीत ताजुब या घबराहटमें की ऊपर चढी हुई भौंह। भौंह की ऊचाई की वजह, कुछकुछ ललाटास्थिकी भौंह रेषा–भौह सबधकी उभार और उसकी तीन स्नायु–नेत्रनिमिलक स्नायु, भौह सकोचनी स्नायु और पश्चात कपाल–ललाटीय स्नायु जिनसे उसका चलन होता है, ये होती हैं। इन स्नायुओको सातवी मस्तिष्क मज्जा रज्जुसे चालक तन्तु और उर्ध्व नेत्रगोहिक मज्जा रज्जुसे और कनपुटीकी ओरको अश्रुगा मज्जा रज्जुसे सज्ञावाहक तन्तु पाये जाते हैं।

(म) नेत्रच्छद या पलक आयलिड्स—

नेत्रगुहाके प्रवेश द्वारकी किनारको चिपके हुए चमडीके हिलते परदेको नेत्रच्छद कहते हैं। ये ऊपरका और नीचेका ऐसे दो परदे होते हैं। इनका कार्य नेत्रगोलकका शल्यसे ओर तीव्र प्रकाशसे रक्षण करना यह होता है। ध्यानमे रखिये कि नेत्रच्छदका यह रक्षण कार्य अहम महत्वकी बात होती है। क्योंकि उसको इजा हुई हो, या उसके अभावमे (जैसे कि नेत्रच्छदकी हमजातकी फालकी अवस्था), या जरर, क्षतचिन्हके ऐंठ जानेके पश्चात, नेत्रच्छद उलट जाना, या सातवी मस्तिष्क मज्जा रज्जुका स्तभ इनसे तारकापिधानके घटकोका नाश होता है और दृष्टि नाकाबिल होती है।

नैसर्गिक अवस्थामे, जब उनको **मायबोमियन** ग्रथिके स्रावसे मदत होती है, और जब ये दोनो पारस्परीकमे सख्त तौरसे मिले हुए होते हैं, तब इनसे नेत्राश्रुको जलाभेद्य (वाटरटाईट) रुकावट होती है। इसका सबूत यह होता है कि नेत्रच्छदके कप वायुमे उनको जोरसे खोलनेकी कोशिश करनेमे भीतरका स्राव जोरसे बाहर उडता है।

नेत्रच्छदोंके प्रान्तका विस्तार, बाहरमे, ऊपर भौहसे नीचे नेत्रगुहाके प्रवेश द्वारकी नीचेकी किनारके पास जो अस्पष्ट खाँच होती है वहातक, फैलता है। भीतरसे यह नेत्रच्छदास्तरकी वजहसे मर्यादित होती है। **नेत्रच्छदका आकारः**—नेत्रच्छदका आकार **चौकोन** होता है जिसका आडा व्यास लम्बा होता है। ऊपरका नेत्रच्छद नीचेके नेत्रच्छदसे बडा होता है और उसका चलन नीचेके नेत्रच्छदके चलनसे बहुतही ज्यादह होता है। उसका विस्तार नेत्रच्छद बद करनेसे दिखाई पडता है। जब नेत्रच्छद खुले रहते है तब दोनोके बीचके दीर्घ वृत्ताकार अवकाशको **नेत्रच्छदान्तराल** (पाल्पेब्रल फिशर) नाम दिया है, और उसके सिरेको कोण कहते हैं। इस अवकाशका खडी रेषामेका नाप करीब ३० मि. मि. माना गया है, लेकिन हर शख्समे यह एकसा नही होता।

नेत्रच्छदान्तरालमेंसे नेत्रगोलकके बडे या छोटे आकारका असर नेत्रको देखनेवाले पर होता है। नीचेके नेत्रच्छदका चलन बिलकुल कम होनेसे सिर्फ ऊपरके नेत्रच्छदके

चित्र नं. १०० ऊपरी नेत्रच्छदमेंका काट

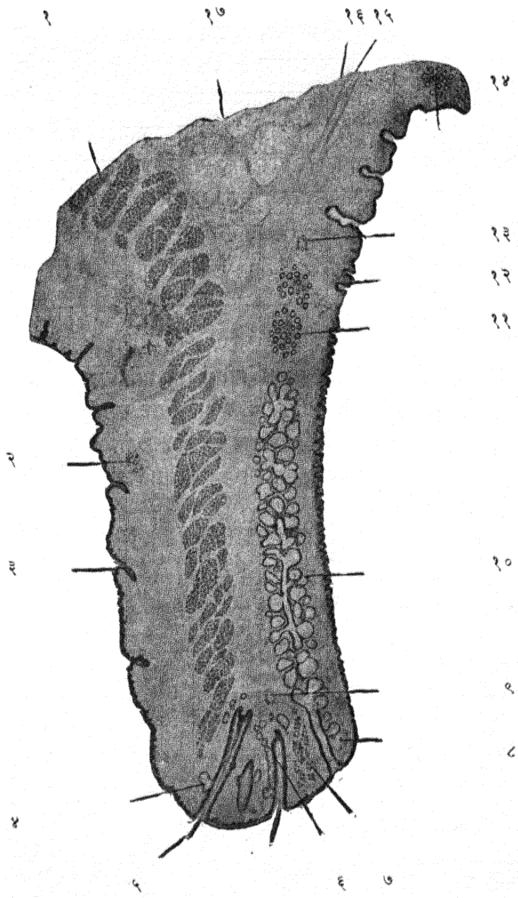

(१) नेत्रनिमीलक स्नायू;
(२) पैसाना ग्रंथी;
(३) पक्ष्मकी पीटिका;
(४) झापिसीसकी ग्रंथी;
(५) पक्ष्म-बाल;
(६) माल की ग्रंथी;
(७) नेत्रनिमीलक स्नायूका सिरेका भाग;
(८) नेत्रनिमीलक स्नायूका च्छदपटके नीचेका भाग;
(९) नीचेकी रोहिणीयोंका वलय, मिहराब;
(१०) मायबोपियन ग्रंथी;
(११) वुलफ्रिंगकी ग्रंथी;
(१२) शुक्लास्तरके तहकी खाच;
(१३) ऊपरी रोहिणीकी मिहराब;
(१४) क्राइसकी ग्रंथी;
(१५) मूलर्सकी स्नायू;
(१६) नेत्रच्छदोत्थापिका स्नायू;
(१७) चरबी.

चलनसे नेत्र ढांका जाता है; यह जब खुला रहता है तब उसकी चमडीमें तह गिरती है। ध्यानमें रखिये कि इसकी नष्ट हुई चमडीकी जगह अन्य मोटी चमडीका कलम करनेसे यह तह नहीं पायी जाती और नेत्रच्छद उठाना मुष्किल होता है।

नेत्रच्छद जब बंद होते हैं तब ऊपरी नेत्रच्छदका नीचेका भाग, नेत्रगोलकके जैसा उन्नतोदर होता है, और ऊपरका भाग जो नेत्रगुहाके नीचेके पेशीदार और चरबीदार

घटकोंपर स्थिर रहता है, नतोदर आकारका होता है; और उसमें एक खांच दिखाई पडती है जिसको नेत्रगोहिक नेत्रच्छदीय उर्ध्व खांत (सुपीरियर पालपेब्रल फरो) कहते हैं, और यह दुबले लोगोंमें गहरी, मोटे चरबीदार लोगोंमें उथली और कईदफा आज़ारमें मिट जाती है। नेत्रगोहिक बिस्फोटककी (आरबिटल फ्लेगमान) चिकित्सामें या नेत्रच्छदपातकी शस्त्रक्रियामें इसी स्थानमें काट दिया जाता है। **नेत्रच्छदकी किनारियां:–चिपकी हुई किनार** नेत्रगुहाकी सीमासे लगी रहती है और उसका संबंध ललाटीय और ऊर्ध्व दन्तास्थिके कोटरोंसे तथा नासा–झरझरास्थि भागसे (एथमायडल रिजन) संबंध आता हैं। ध्यानमें रखिये कि नेत्रच्छदकी चमडीके नीचेह वा भर जानेकी वजह इन भागोंको इजा यह होती है। **न चिपकी हुई किनार**के दो भाग कर सकते है–भीतरी भाग या अश्रुसंबंधी भाग यह छोटा होता है, और बाहरी या बालवाला भाग यह बडा होता है। और नेत्रच्छदकी विकृति, जैसे कि पक्ष्मोपरोध, लगण, अंजनी, अन्तर्वलित या बहिर्वलित नेत्रच्छद या नेत्रच्दछमेंका फालमें या अर्बुदमें शालाकिनका इसी भागसे संबंध आता है।

हर नेत्रच्छदके न चिपके हुए किनारके पास चमडी और शुक्लास्तर (कनजंकटायव्हा) पारस्परीकमें घुस जाते हैं और वहां उनसे दो ओष्ट बन जाते हें। पिछले ओष्ट की किनार सरल जैसी और सामनेके ओष्टकी किनार गोल होती है। मायबोमियन ग्रंथियोंकी प्रणालियां पिछले ओष्ठमें दिखाई देती हें। और सामनेके गोल ओष्ट पर पक्ष्म और उनकी पिटिकायें रहती हैं। नेत्रच्छदोंकी इन किनारियोंकी मोटाइ करीब २ मि. मि. होती है नेत्रगुहाके बाहरी और भीतरी कोणमें दोनों नेत्रच्छद पारस्परीकसे मिलते हैं। इन मीलन बिन्दुको **अपांग** (क्यानथस) कहते हें।

चित्र नं. १०१

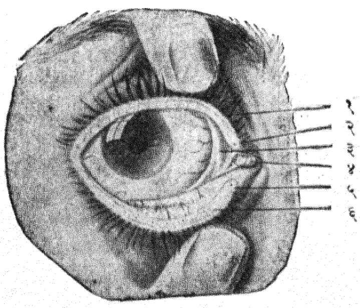

(१) किनारोंमेंकी दरर काली लकीर
(२) ऊपरका अश्रुग्राही मुख
(३) शुक्लास्तरका अर्धचंद्राकार झोल
(४) अश्रुकासारमें का मांसपिंड
(५) नीचेका अश्रुग्राही मुख
(६) च्छदपटके ग्रंथीओंके मुख

नेत्रच्छदोंकी किनारोंका नया शुक्लास्तर कोशका शरीर

आमतौरसे दोनों नेत्रच्छद नेत्रगोलकको लगे रहते हें, लेकिन आन्तरापांगके पास नेत्रच्छदोमें और नेत्रगोलकके दरमियान शुक्लास्तरका अर्धचन्द्राकार झोल (प्लायका सेमिलु-नारिस) रहता है। यह अर्धचन्द्राकार झोल कई प्राणियोंमें जो तीसरा नेत्रच्छद होता है उसका मूल ही होता है। इस झोलके अन्दरकी बाजुको एक लाल शंकाकार मांस पिंड

(कॅरकंक्युला लाक्रिमालिस) होता है जिससे इस अपागका अवकाश भर जाता है; यह पिंड चमडीका बना हुआ होता है जिसमें बदली हुई वसाग्रथिया, (सिबेशस ग्लैंड), स्वेद ग्रंथिया और बाल होते हैं । हर नेत्रच्छदकी नासिकाकी ओरकी किनारके सिरे पर दो छोटे उभार होते हैं जिनको नेत्राश्रुपिटिका–अश्रुअकुर (लाक्रिमल पापिली) कहते हैं; इनके मध्यमें छिद्र होता है जिसको अश्रुग्राही मुख अश्रुछिद्र, (पंकटा लाक्रिमालिस) कहते हैं; यह अश्रुग्राही मुख अश्रुनालिका ऊपरका छिद्र होता है । ऊपरके और नीचेके नेत्रच्छदपरसे नेत्रच्छदास्तर नेत्रगोलकके शुक्लास्तरको मिलता है; दोनोके सजोगके भागको शुक्लास्तरोंमि (फारनिक्स कनजकटायव्हा) नाम दिया है । ऊपरकी शुक्लास्तरोंमि नीचेकी शुक्लास्तरोंमिसे ज्यादह बडी और गहरी होती है (चित्र न. १०१ देखिये) ।

नेत्रच्छदकी रचना—(१)नेत्रच्छदकी बाहरकी चमडी बहुत पतली और ढीली होती है, उसपर वसायम ग्रथी दार नाजुक बाल और स्वेदन ग्रथियां होती हैं । ये ग्रथिया चमडीके नीचेके जालवत घटकमें रहती हैं । और इन जालवत घटकोमे चमडीका नेत्रनिमिलिकी स्नायुमे संयोग होता है ।

इस चमडीके नीचेके जालवत धटकोकी झिल्लीमें द्रव पदार्थ आसानीसे रह जानेसे वे फूले हुए होते हैं:—जैसेकि नेत्रगुहाकी दीवालोके अस्थि भंगमे उनमे हवा भर जाना, विसर्प या मूत्रपिंडकी बीमारीमे रक्तरस–लससे फूलजाना; त्वक्‌रक्तभिसरणमे लहुसे भरजाना, नेत्रच्छदके फोडेमे पीबसे फूलजाना, या अश्रुकोषको पिचकारीमे धोनेके ममय उसकी दीवाल फटी गयी हो, तो औषधीय द्रावणसे ये जालवत घटक फुल जाना आदि ।

(२) नेत्रनिमिलिकी स्नायु यह एक चपटी पतली और चौडी स्नायु होती है, और यह नेत्रच्छदान्तरालके इर्दगिर्द दीर्घवृताकार वलय और नेत्रगौहिक किनारपर, फैली जैसी रहती है । नेत्रच्छके भागका, जिसका कार्य सकोचनी स्नायु जैमा होता है, उद्‌गम **टेन्डो आक्युलासे**–चाक्षुपकण्डगसे यानी नेत्रच्छदके आन्तर बंदमे होता है, यह कण्डरा बद सुफेद रज्जू जैसा होता है और वह आन्तर अपागमे ऊर्ध्व दन्तास्थिके नामिका शृग को जा पहुँचता है। इस कण्डराके दो भाग होते हैं और उममेका एक भाग बाष्पास्थिकी नालीके सामनेके कटकसे मिलता है, इसीको प्रत्यक्ष कण्डरा कहते हे, और दूसरा भाग इस नालीके पिछले कटकसे मिलता है जिसको परिवर्तित कण्डरा कहते हैं ।

इस कण्डराके दोनो भागोके दरमियानमे **अश्रुकोष** रहता है । यह चाक्षुष कण्डरा हमेशाह दिखाई देनि है लेकिन जब नेत्रच्छदोको बाहरकी ओरको ताना जाना है तब वह ज्यादह स्पष्ट दिखाई पडती है । अश्रुकोपकी शस्त्रक्रियामे यह एक अहम महत्वकी निशान होती है । इस स्नायुके नेत्रच्छदके भागके स्नायुतन्तु इस चाक्षुप कण्डरासे शुरू होकर बाहरकी और पीछेकी ओरसे ऊपरके और नीचेके नेत्रच्छद परसे पार जाकर, दोनो बहिरु पागमें पेशिदार गुफासे पारस्परीकसे मिलते हैं । इनमेंके कुछ तन्तु बाह्य प्रतिरोधक बदसे और गण्डास्थिसे बद्ध होते हैं । नेत्रनिमिलिकी स्नायुके कुछ तन्तु इर्दगिर्दके स्नायुओंको जा मिलते है । यह स्नायू च्छदपटपर आसानीसे फिर सकती है लेकिन ऊपरकी चमडीको तगोमे चिपकी रहती है ।

इसके कुछ तन्तु नेत्रगुहाकी किनारपर फैल जाते है । ललाटास्थिकी भौंह संबधीकी उभराहकी भीतरी बाजूके टोकके पास इस स्नायूका नेत्रगुहाके बाहरी भागका एक जाडा बद होता है जिसको **भौंह संकोचनी स्नायु** (कारूगेटर सूपर सिलीयाय मसल) कहते है, इसको नेत्रच्छदपरके यानी नेत्रनिमिलिकी स्नायूके भागसे हुन्नरीसे अलग कर सकते है । ये स्नायूतन्तु ऊपरकी और बाहरकी ओरको फैलते है; इनका संबध ललाटीय स्नायूसे होता है और ये भौंहके मध्यमे चमडीसे बद्ध होते है । इनको चालक मज्जातन्तू सातवी मस्तिष्क मज्जारज्जूमे पाये जाते है । इसके कार्यसे भौहका मध्य भाग भीतरकी और नीचेकी ओरको खीचा जाता है; इस कार्यमे ललाटीय स्नायूसे इसको मदत मिलती है जिससे भौंह का अन्दरकी ओरका भाग ऊपरको उठाया जाता है और खडी वलिया गिरती हैं ।

नेत्रनिमिलिकी स्नायूका नेत्रच्छदकी किनारके पास एक भाग होता है जो पक्ष्म **और** किनारके पिछले ओष्ठ के दरमियान रहता है जिसको च्छदपटकी नीचेकी स्नायू या **रायओलान** की **तन्तुर स्नायू** (सिलियरी मसल) कहते है । ऊपरके नेत्रछदमेंकी यह स्नायू नीचेके नेत्रच्छदमेकी स्नायूसे बडी होती है ।

हर नेत्रच्छदकी छुटक किनारपर उसके एक टोकसे दूसरे टोक तक एक कुछ कालीसी लकीर दिखाई पडती है जिसको किनारकी दरमियान की लकीर कहते हैं । यह च्छदपटके सामनेके भागसे ठीक मिलती है, और यहा नेत्रच्छदके च्छदपटके भागका और चमडीके भागका संजोग होता है । पक्ष्म और अन्तर्वलित नेत्रच्छदकी शस्त्रक्रियामे नेत्रच्छदकी किनार इसी स्थानमे काटी जाती है ।

नेत्रनिमिलिकी स्नायुका च्छदपटका भाग नेत्रच्छदकी संकोचकी स्नायु होती है । इसके कार्यसे अश्रुस्रावको मदत होती है । अन्य स्नायुओके समान इसका स्तभ या ऐंठना (नेत्रच्छदोका कंपवायू) होता है । पहली अवस्थामे नेत्रच्छद बद नही होते जिसकी वजहसे तारकापिधान खुला रहता है और उस पर क्षत पैदा होकर दृष्टि पुरी या कमतर नष्ट होती है । नेत्रच्छदोंका कंप वायु अन्य चाक्षुप विकारोमे एक लक्षण होता है । भय या डरसे यह पैदा हो तो मोतीबिदुकी शस्त्रक्रियामे खतरा पैदा होकर स्फटिकद्रवपिंड बाहर गिरजानेका धोका होता है ।

(३) **च्छदपट**—नेत्रनिमिलिकी स्नायुके नीचे संजोगी घटकोकी बनी हुई झिल्ली होती है । इसके नीचे हर नेत्रमे च्छदपट होते है । इसको गलतसे तरुणास्थि कहा गया था, लेकिन ध्यानमें रखिये इसमें तरुणास्थिकी कोईभी पेशियाँ नही पायी गयी हैं । ये तन्तुर सयोगी घटकके बने हुए होते है। यह हर नेत्रच्छदकी किनारके पास शुरू होकर उसको समानान्तर रहता है । इसका विस्तार नेत्रच्छदके $\frac{2}{3}$ इतने प्रमाणका होता है और वह नेत्रच्छदके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक जा पहुँचता है जहां वह भीतरी और बाहरी बंदसे लगा रहता है। आन्तर अपांगके पास च्छदपट उर्ध्व दन्तास्थिके नासिका शृंगके चाक्षुष बंदसे सख्त बंधा रहता है और बाहरी ओरको वे बाह्य प्रतिरोधक बंदमे जाते है। इनसे नेत्रच्छदको सहारा मिलता है और आकार कायम रहता है । इनका आकार अर्धचंद्र जैसा होता है । ऊपरके

च्छदपटकी उन्नतोदर किनार नेत्रगौहिक पटलसे बधी रहती है । नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुसे इसको स्नायुपत्र मिलता है, नीचेके च्छदपटको सरलाधो नेत्रचालनी स्नायुके तन्तु उसके नीचेकी किनारको मिलते है । ऊपरके नेत्रच्छदमे करीब तीस और नीचेके नेत्रच्छदमे करीब पचीस मैबोपियन ग्रंथिया होती है, जिनकी प्रणालिया च्छदपटमे होती है और इनकी वजहसे च्छदपटके सामनेका और पिछला ऐसे दो भाग होते है। ये प्रणालियाँ नेत्रच्छदकी किनारपर बाहर आती हैं । जब दोनो नेत्रच्छद बंद रहते है तब च्छदपट और नेत्रगौहिक पटलसे नेत्रगोलकको सख्त तन्तुर आवरण मिलता है ।

(४) **नेत्रगौहिक पटल** यानी **च्छदपट—नेत्रगौहिक आवरण**की शल्य शास्त्र दृष्टिसे विचार करनेकी कुछ बाते ये होती है.–(१) इससे नेत्रगुहामे के विकारी जमावको एकाएक बाहर आनेमे रुकावट होती है (२) इससे नेत्रच्छदकी विकृति नेत्रगुहामेके घटकोको नही फैल सकती । (३) नेत्रच्छदपातकी कई शस्त्रक्रियाओमे इससे सबध आता है ।

(५) **नेत्रच्छदकी ग्रंथियाँ** (अ) **मायबोमियन ग्रंथियाँ** (इनका वर्णन पहले सन १६६६ मे **एच. मायबोमियस**ने किया था) हर ग्रथि खडी नालीकी बनी हुई होती है जिसमे आडी आडी शाखाएँ मिलती है । ये ग्रथिया लम्बे आकारकी होती है और वे शुक्लास्तर और च्छदपट के बीचमे पारस्परीकसे समानान्तर रहती है । इनमेंके चरबीदार अपारदर्शक पदार्थसे वे शुक्लास्तरमेसे दिखाई पडती है इनके मुख नेत्रच्छदकी किनारपर होते है। इन मुखोको स्तरीभूत कलातह (स्ट्रैटिफाईड एपिथेलियम) लगी रहती है और ग्रथियोकी नालीको घनाकार कला तह होती है । इन ग्रथियोंके स्रावसे नेत्रच्छदोकी किनारियोकी ओंगन मिलता है। (ब) **वालडेयर की ग्रंथियां** (जिनको भूलमे क्राऊझकी ग्रथिया कहा जाता था), च्छपटकी ऊपरकी किनारके पास होती है । इन ग्रथियोकी रचनामे आधारतलास्तरपर (बेसमेन्ट मेम्ब्रेन) पचपात्राकार या बेलनाकार पेशियोमे मर्यादित हुआ अवकाश रहता है, इनके तलमे गोल या दीर्घवृत्ताकार जीवन बीज (न्युकलियम) होता है । इनकी उत्सर्गक नालीमे पचपात्राकार कलातह लगी रहती है और ये नेत्रच्छदास्तर पर बाहर आती है । (क) **माल की ग्रंथियां** स्वेदन ग्रथिया जैसी होती है लेकिन उनमे कुछ फरक होता है। इनकी प्रणालियां नेत्रच्छदकी किनारके पास **रायोलन**की स्नायुके सामने होती हैं । (ड) **झैस**की ग्रथिया वसादार ग्रथियोमे फर्क होकर पैदा होती है । इनसे पक्ष्मको ओंगन मिलता है । **माल** की ग्रथियोकी उत्सर्ग नालियॉ **झैस** की नालियोंमे या परस्पर पक्ष्मकी पिटिकामे जाती है ।

(६) **पक्ष्म** ये लम्बे बाल होते है; नेत्रच्छदकी किनारपर जहा चमडी और शुक्लास्तर कोपके नेत्रच्छदास्तर का भाग पारस्परीकसे मिलते है उस जगहमें ये पक्ष्म पैदा होते हैं; इनकी दो या तीन पक्ष्म राजी होती है । ऊपरी नेत्रच्छदके ये पक्ष्म नीचेके नेत्रच्छदके पक्ष्मसे लम्बे होते है । और इनकी सख्या करीब ऊपरी नेत्रच्छदमें १०० से १५० और नीचेके नेत्रच्छदमे ५० मे ७५ होती है । इनकी दिशा दोनो नेत्रच्छदोमे विरुद्ध होती है यानी दोनोंका उन्नतोदर भाग आमने सामने होता है । हर पक्ष्म का आयु चार मास का माना गया है ।

(७) **शुक्लास्तर**–हर नेत्रच्छदके पिछले पृष्ठको इसका अस्तर होता है और वहांसे वह नेत्रगोलकके सामनेके भागपर जाता है। ये दोनो भाग यानी नेत्रच्छदका और नेत्र-गोलकका शुक्लास्तर जहा पारम्परिकसे मिलते है, पहलेही कहा है कि उसको शुक्लास्तरोमि नाम दिया है। शुक्लास्तर और सामनेकी तारकापिधानकी कला तहमे बहुत थोडा फरक होता है। नेत्रगोलपरका शुक्लास्तर ढीला रहता है। नेत्रच्छदास्तर च्छदपटको सख्त चिपका रहता है, और इसी वजहसे च्छदास्तरके काट को सीना संभाव्य नही होता, बल्कि नेत्रगोलकके शुक्लास्तरको आसानीसे टांका लगा सकते है।

शुक्लास्तर कोषकी सूक्ष्म रचनामे संजोगी घटकोकी झिल्लीपर स्तरीभूत स्तंभाकार कलाकी तह होती है। इस झिल्लीमे कुछ ग्रथिसदृश घटक होते है, लेकिन लसिका ग्रंथी नही पायी जाती। नेत्रच्छदास्तर और नेत्रगोलकका शुक्लास्तर एक सरीखे होते हैं। सिर्फ नेत्रगोलकके शुक्लास्तरमे तारकापिधानकी किनारके पास स्तभाकार कलाका स्तरीभूत कलामें रूपान्तर होता है। तथा जहा च्छदपटका सजोग शुक्लास्तरोमिसे होता है वहा शुक्लास्तरमे पिटिका और उनके बीचमे नालीया होती है। इन्हीको **हेनलेकी** ग्रंथिया कहते है। नेत्रच्छदकी किनारके पासकी ३ मि. मि. चौडाईके नेत्रच्छदास्तरमे स्तरीभूत कलाकी तह होती है। ध्यानमे रखिये कि इसी भागमे पोथकीका विकार नही पाया जाता। नेत्रच्छदास्तरमें छोटी छोटी बहुतमी रक्तवाहिनिया और लसिका वाहिनिया होती है। ऊपरके नेत्रच्छदकी लसिका वाहिनिया कानके सामनेकी लसिका ग्रथियोको मिलती है; और नीचेके नेत्रच्छदकी लसिका वाहिनिया हन्वास्थिके नीचेकी लसिका ग्रथीको मिलती है। नेत्रच्छदास्तरको पाचवी मस्तिष्क मज्जारज्जुकी शाखाओसे–अश्रुगा, और फिरकीकी ऊर्ध्व तथा अधो मज्जाशाखाओसे मजातन्तु पाये जाते है।

(८) **नेत्रच्छदकी रोहिणियां** अनेक होती है। हर नेत्रच्छदमे दो रोहिणिया होती है भीतरकी जो चाक्षुप रोहिणीसे पैदा होती है और बाहरकी जो अश्रुगा रोहिणीसे पायी जाती है। ये रोहिणिया भीतरी और बाहरी कोणसे नेत्रच्छदके मध्य भागको जाकर पारस्परीकसे मिलती है और वहा उनसे च्छदपटकी रोहिणीकी कमान बनती है। ऊपरके नेत्रच्छदमे च्छदपटकी ऊपरकी किनारके पास दूसरी बाहरी रोहिणीकी कमान बनती ह। नीचेके नेत्रच्छदमे भी कभी कभी यही रचना दिखाई पडती है। नेत्रगुहाके किनारके पास च्छदपटकी रोहिणीकी कमानका सबध ऊपरी कनपुटी, ऊर्ध्व नेत्रगौहिक, ललाटीय, नासिका और मौखिकी रोहिणियोसे होता है। **नेत्रच्छदकी नीलाके** दो भाग होते है। च्छदपटके सामनेकी और पीछेकी नीला; पहली ऊपरकी कनपुटीकी नीला और मौखिकी नीलाम जाती है और दूसरी चाक्षुष नीलासे मिलती है। **लसिकावाहिनियोंके** भी दो मार्ग होते हैं और वे नीलाके मार्ग जैसे होते है और वे हन्वास्थिके नीचेकी ग्रंथीमें, कानके सामनेके और कर्णमूलके लसिकापिंडमे जाते है।

(९) **नेत्रच्छदके मज्जातन्तु**—नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुकी तीसरी मस्तिष्क मज्जा-रज्जूसे और नेत्रनिमीलिकी स्नायूकी सातवी मज्जारज्जूसे मज्जातन्तु मिलते हैं। संज्ञावाहक मज्जातन्तु पाचवी मज्जारज्जुसे पाये जाते है।

नेत्रगोलकका शरीर

नेत्रगोलक—नेत्रगुहाके अगले भागमें नेत्रगोलक रहता है सही, लेकिन उसका स्थान नेत्रगुहाके बिलकुल बीचमें नहीं, बल्कि थोडा बाहरकी दीवाल और ऊपरकी छतकी तरफ झुका हुआ रहता है। नेत्रगुहाके प्रवेशद्वारकी ऊपरकी किनारसे नीचेकी किनारको सरल पट्टी लगाई जाय तो वह तारकापिधानके (कारनिया) पृष्ठको स्पर्शज्या होती है।

नेत्रगोलकका आकार आमतौरसे कुछ वृत्ताकार भासमान होता है। लेकिन उसको सामनेसे पीछे खडी लम्ब रेषामें छेदें तो सामनेका छोटा $\frac{1}{6}$ भाग छोटे गोलका और पिछला $\frac{5}{6}$ बडा भाग बडे गोलके टुकडेसे जुडा हुआ है ऐसा दिखाई पडेगा। अगला छोटा गोल प्रकाश कार्यके लिये पारदर्शक तारकापिधानसे बना है, और पिछला भाग अपारदर्शक शुक्लपटलसे बना है। दोनोंके संधिस्थानमें बाहरकी ओर एक नाली दिखाई देती है जो शुक्लास्तरसे आच्छादित रहती है।

चि. नं. १०२—नेत्रगोलककी लम्बाईमेंका काट

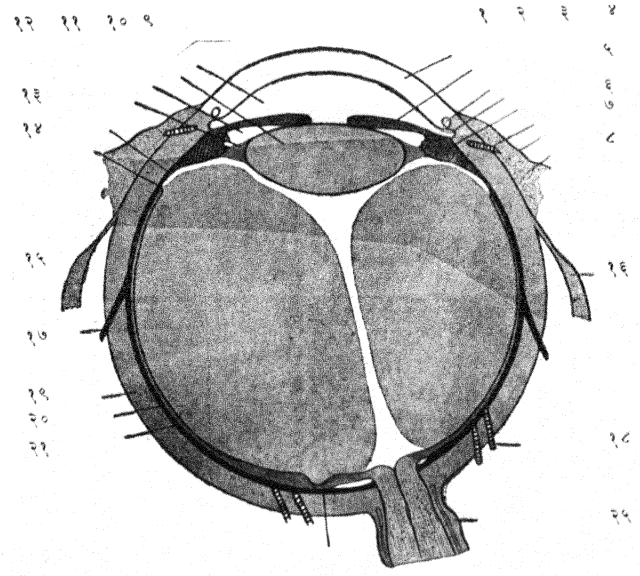

(१) तारकापिधान; (२) तारका; (३) श्लेमकी नाली; (४) पूर्व वेश्मनीका कोण; (५) तारकातीत पिंड; (६) तारकातीत पिंडकी पुरो रक्तवाहिनियां; (७) शुक्लास्तर; (८) शुक्लास्तरके नीचेके घटक; (९) पूर्ववेश्मनि; (१०) स्फटिक मणि; (११) पिछली वेश्मनी; (१२) स्फटिकमणिको लटकानेवाला बंद; (१३) पार्स प्लेना; (१४) दन्तुरिततटपरिणाह (ओरासिराटा); (१५, १६) सरलचालनी स्नायु; (१७) आवर्त नीला; (१८) तारकातीत पिंडकी पिछली रक्तवाहिनियां; (१९) शुक्लपटल; (२०) कृष्णपटल; (२१) दृष्टिपटल; (२२) दृष्टिस्थान केन्द्र; (२३) दृष्टिरज्जु; (२४) दृष्टिरज्जुका आवरण; (२५) डुरामेटरका भाग।

नेत्रगोलकके व्यास—नेत्रगोलकके सामनेसे पीछेकी ओरको जानेवाले व्यासकी लम्बाई साधारणतया २४·२ मि. मि., खडे व्यासकी २३·४ मि. मि. और आडे व्यासकी २३·६ मि. मि. होती है। यानी नेत्रगोलकका आकार कुछ लम्बगोलकके समान होता है। नेत्रगोलक ऊपरसे नीचेकी ओर और बाजुसे भी दबा हुआ होता है। स्त्रियोंमें इन व्यासोंकी मात्रा पुरुषोंसे आधे मि. मि. से कम होती है। नेत्रगोलकका वजन साधारणतया ७·२ ग्राम और उसका आयतन ६ क्यु. से. मि. इतना माना गया है। नेत्रगोलकके विषुववृत्तसे सामनेका और पिछला ऐसे उसके दो आधे आधे भाग होते हैं। नवजवानोंमे विषुववृत्तके परिधिका नाप ७७·६ मि. मि. होता है। नवजात बालकके नेत्रगोलकका वजन २·२ ग्राम और उसके सामनेसे पीछे जानेवाले व्यासकी लम्बाई १५·४ मि. मि. होती है। **वाईस** के मतानुसार नेत्रगोलकका पूरा विकास उसके पहले सालमेंही होता है। नेत्रगोलकके बृहत् परिच्छेदके पुरो और पार्श्वसीरेको ध्रुव कहते हैं।

जब दोनो नेत्र दूरीके पदार्थको देखते हैं, तब उनकी अक्षरेषाएँ समानान्तर भासमान होती है। लेकिन वास्तवमे ऐसा नही होता। दृष्टिरज्जु नेत्रगोलकके पिछले ध्रुवसे २·३ मि. मि. भीतरी ओरको नेत्रगोलकमें घुसा हुआ होनेके कारणसे अक्षरेषाऐं पिछली ओरको केन्द्राभिमुख होती हैं यानी पारस्परिकसे मिलती हैं, और सामनेकी ओरको केन्द्रच्युत होती हैं यानी फैल जाती है।

नेत्रगोलकके पटल—नेत्रगोलकके समकेन्द्रिक (कानसेन्ट्रिक) तीन पटल होते है। सबसे **बाहरका पटल** तन्तुर घटकोका बना हुआ होता है। इसके सामनेके भागको तारका-पिधान कहा हे जो पारदर्शक होता है। इसके पिछले भागको शुक्लपटल नाम दिया है और यह अपारदर्शक होता है। इसका कार्य है अन्तस्थ घटकोंका रक्षण करना। **दूसरा यानी मध्य पटल** रंजित और मुख्यतया रक्तवाहिनियोसे बना हुआ होता है। इसका कार्य चाक्षुष घटकोका पोषण करना यह है। इसके तारका, तारकातीतपिंड और कृष्णपटल ऐसे तीन भाग होते हैं। इसके भीतर मुख्यतया मज्जातन्तुका बना हुआ **तीसरा पटल** होता है, जिसे दृष्टिपटल कहा है। इसमें दृष्टिकार्यका प्रारंभ होता है। दृष्टिपटलमें मज्जातन्तुके सिवाय चाक्षुष संवेदानाकी विशिष्ट मज्जातन्तुकला पेशियोंकी तह होती है। तीसरे पटलकी भीतरकी ओर वक्रीभवन मार्गके (रिफ्राकटिव्ह मिडिया) चाक्षुषजल, स्फटिकमणि और स्फटिक द्रव-पिंड होते हैं।

नेत्रगोलकका बाहरी तन्तुरपटल (फायब्रस कोट), यानी शुक्ल मंडल

इसके दो भाग होते है: तारकापिधान और शुक्लपटल।

तारकापिधानः—स्थूल शरीरः यह भाग पारदर्शक होता है, इसको मज्जातन्तु खूब मिलते हैं लेकिन इसमें रक्तवाहिनियोंका अभाव होता है, और यह शुक्लपटलमें घडियालकी कांच जैसी बिठाई होती है उसी तौर बैठा रहता है। इसका नाप खडी रेषामें ११ मि. मि. और आडी रेषामें १२ मि. मि. है। इसके सामनेके पृष्ठके बांककी त्रिज्या खडी तौरमे ७.८ मि. मि. और आडी रेषामें

७.७ मि. मि. होती है, और पिछले पृष्ठके बांककी त्रिज्ज्या ६. मि. मि. होती है। इसके परिधि भागकी मोटाई १.२ मि. मि. और इसके केन्द्रस्थ भागकी मोटाई ०.८ मि. मि. होती है। इसका सामनेका पृष्ठ उन्नतोदर, और पिछला पृष्ठ नतोदर आकारका होता है और यह सामनेके पृष्ठसे बडा होता है। इसके परिधि भागपर शुक्लपटलका भाग होनसे वह सुफेद वलय जैसा दिखाई पड़ता है, जिसको **लिंबस** कहते हैं। तारकापिधान और शुक्लपटलके संधिकेपास बाहरके घेरेको एक उथली छोटीसी नाली होती है, जिसको शुक्लपटलकी नाली कहते हैं।

चित्र नं. १०३ मनुष्यके तारकापिधानमेंका काट

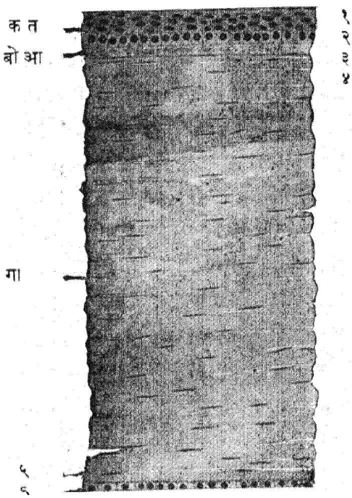

क. त. कलातह;

बो. आ. बोमनका आवरण;

गा. तारकापिधानका गाभा; (१) (२) (३) कलापेशियोंकी तह;

(१) चपटी; (२) बहुकोणाकृति; (३) खंबेके आकारकी कलापेशिओंकी तहें; (४) मज्जा-तन्तुओंकी नाली;

(५) डेसीमेटका आवरण; (६) भीतरी कलातह या अंतः कलातह।

सूक्ष्म शरीर: **तारकापिधानकी बनावट**में पांच तहें होती हैं। (१) बिलकुल बाहरी ओरको **कलापेशिओंकी** तह होती है जो शुक्लास्तरकी कलातहसे मुदामी होती है। इस तहमें मध्य भागमें एकके ऊपर एक रची हुई ६ से ८ पेशियां होती हैं; और परिधि-भागमें ज्यादह होती हैं। बिलकुल बाहरकी कलापेशियां चपटी, मध्यभागकी बहुकोणाकृति पेशियां, जिनको **प्रिकल सेल्स** कहते हैं, और भीतरी नींव की पेशियाँ खंबेके आकारकी होती हैं। (२) **दूसरी तह बोमनके आवरणकी** होती है; यह स्थितिस्थापक घटकोंकी बनी हुई होती है; इसको **सामनेका स्थितिस्थापक पत्र**—आवरण भी कहते हैं, इसकी रचना एकसी होती है; यह मध्य भागमें मोटा और परिधिभागमें पतला होता है। इसकी मोटाईका प्रमाण ०.०१ से ०.०२ मि. मि. होता है। यदि इसमें कण नहीं पाये जाते तोभी इसमें और तारकापिधानके गाभामें बहुत फर्क नहीं दिखाई पडता। (३) **तीसरी तहसे** तारकापिधानका गाभा--अहम भाग--बनता है और यह शुक्लपटलसे मुदामी होता है, और

इसमें तन्तु होते हैं जिनके पचीस बन्डल्स या पत्र होते हैं । ये तन्तु पारस्परीकसे चिपके रहते हैं; ये बन्डल तारकापिधानके पृष्ठको समानान्तर होते हुए भी इनके तन्तु इर्दगिर्दके बन्डलोंमें घुस जाते हैं। इसी तहमें तारकापिधानके अवकाश या छोटे गडहेसे पाये जाते हैं जिनका आकार तारा जैसा होता है। तारकापिधानके घटकोंको रजत नत्रित या स्वर्णके क्षारसे रंगनेसे इनपर रंग चढके वे अच्छे स्पष्ट दिखाई पडते हैं । इन छोटे गडहोंमेंसे छोटी प्रणाली जाती है जिनका अन्य गडहोंसे संबंध होनेसे यह लसिकाके रास्तेका एक संस्थान बन जाता है। इस लसिकाके प्रसरणसे तारकापिधानका पोषण होता है । इन अवकाशोंका तारकापिधानके परिधिभागके अवकाशोंसे संबंध होनेसे उनका शुक्लास्तरके लसिकावकाशोंसे संबंध जुडता है । इन अवकाशोंमें तारकापिधानके कण होते हैं जिनमेंसे कुछ स्थिर और कुछ फिरते ऐसे दो स्वरूपके होते हैं । स्थिर कण अवकाशकी दीवालोंको बंधे रहते हैं। इन कणोंसे अवकाश पूर्णतया भर नहीं जाते, और इनकी पेशिओंसे जीवनरसकी प्ररोहा प्रणालीयोंकी चारों ओर जाकर अन्य स्थिर कणोंसे संबंध जोडते हैं । इन अवकाशोंकी खाली जगहमेंसे लसिका प्रसरण होना संभाव्य होता है । फिरते कण लसिका कणही होते हैं। अव्यंग नेत्रमें इनकी संख्या बहुतही कम होती है, लेकिन विकृत अवस्थामें इर्दगिर्दकी रक्तवाहिनियोंके जालमेंसे ये अन्दर घुस जानेसे इनकी संख्या बहुतही बढ जाती है ।

चित्र नं. १०४

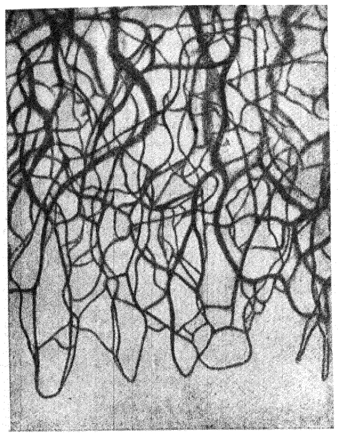

तारकापिधानके परिधिभागकी रक्तवाहिनियोंका जाला (म्यागिओर)

(४) **चौथी तहको पिछला स्थितिस्थापक पत्र** या **डेसिमेटका** या **डेमुअर्सका आवरण** कहते हैं । यह एकसी स्थितिस्थापक तह तारकापिधानका पिछला पृष्ठ बनता है, लेकिन तारकापिधानके गाभाकी तहोंसे अलग रहता है इससे अम्ल या क्षारकी क्रियाओंको तथा और विकृत क्रियाओंको प्रतिरोध होता है और इससे तारकापिधानके वेधको रुकावट होती है । इसकी मोटाई ०·००६ से ०.०१२ मि. मि. इतनी होती है । परिधिभागमें इसके तन्तुर गुच्छ बनते हैं जिनमेंसे कुछ गुच्छोंको तारकातीत पिंडकी स्नायु लगी रहती है । इनमेंसे कुछ तन्तुर गुच्छ पूर्ववेश्मनीके कोणके इर्दगिर्दसे पार होकर तारकाके घटकोंमें घुसते हैं। इन्हीं तन्तुओंसे **कांकताकार बंद** (लिगामेन्टम् पेक्टिनेटम) बनता है । इन तन्तुओंकी संख्या कई प्राणियोंमें (मेंढक, बैल) मनुष्यकी अपेक्षा ज्यादह होती है । तारकापिधानसे तारकामें जानेवाले इन तन्तुओंमें जो अवकाश रहता है उनको **फानटाना**के **अवकाश** कहते हैं लेकिन ये मनुष्यमें स्पष्ट नहीं दिखाई पडते । (५) तारकापिधानकी **पांचवीं**

तह अन्तःपटकला पेशियोंकी बनी हुई होती है। ये पेशियां छटकोनकी आकारकी होती हैं; उनकी एकही तह होती है और वह डेसीमेटके आवरणके पिछले पृष्ठको लगी रहती है।

तारकापिधानकी रक्तवाहिनियां—बालिग पृष्ठवंशी प्राणियोंमें तारकापिधानके केन्द्रस्थ भागमें रक्तवाहिनियां नहीं होतीं। मनुष्यमें तारकापिधानके परिधिभागमें रक्त-वाहिनीयोंका १ से १.५ मि. मि. चौडाईका वलय होता है। यह शुक्लास्तरकी ऊपरी रोहिणियोंकी शाखाओंसे बनता है। **लसिका वाहिनियां** तारकापिधानमें नहीं होतीं।

तारकापिधानके मज्ञातन्तु—ये बहुत होते हैं; वे तारकातीत पिंडकी लम्बी मज्जा-तन्तुकी शाखासे पाये जाते हैं। जो चाक्षुष मज्जारज्जुकी उपशाखा नासिका मज्जारज्जुसे पैदा होते हैं; चाक्षुष कंदकी तारकातीत पिंडीय छोटी शाखाओंसे, और कुछ मज्जातन्तु शुक्ला-स्तरके मज्जातन्तुओंसे (अश्रुगा और फिरकीके नीचेसे जानेवाली मज्जारज्जु) पाये जाते हैं। ये सब तारकापिधानमें जाते हैं। आमनियमसे तारकापिधानके हर तन्तु और उनकी शाखा उपशाखाओंके दो दो भाग हो कर उनका तारकापिधानके गाभाके सामनेके भागमें तन्तुजाल बनता है।

इस तन्तुजालकी शाखाएँ बोमनके आवरणमेंसे पार जाकर कलातहकी निचेका उप-तन्तुजाल बनती हैं। इस उपतन्तुजालकी शाखाओंकी आवर्त शाखाएँ हर कलापेशियोंके दरमियान जाती हैं। तारकापिधा-नकी पिछली तहोंको प्राथमिक तन्तुजालसे मज्जातन्तु मिलते हैं। बारीकसे बारीक तन्तु तारकापिधा-नमें के अवकाशोंमेंके कणोंको जा पहुँचते हैं।

चित्र नं. १०५

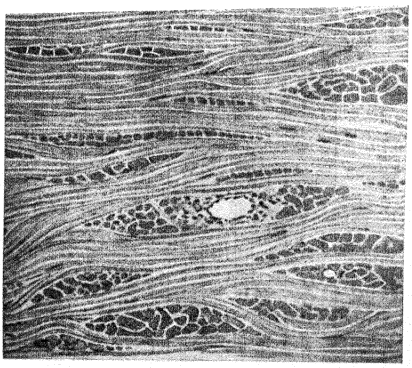

शुक्लपटल, आडा काट

शुक्लपटल
स्थूल शरीर

नेत्रगोलकके बाह्य तन्तुरपटलका पिछला ⅚ भाग शुक्लपटलसे बनता है। जिसकी त्रिज्ज्या १२ मि. मि. होती है ऐसे गोलका यह भाग होता है। यह सुफेद, और **अपारदर्शक** होता है। इससे नेत्रगोलकका आकार स्थिर रहता है और इसमें नेत्रस्नायुओंके बद्धस्थान होते हैं, इसके सामनेका भाग तारकापिधानसे मिल जाता है। इसके पिछले भागमें दृष्टिरज्जु अन्दर घुस जाती हैं, यह भाग ज्यादहसे ज्यादह (१.१ मि. मि.) मोटा होता है। यहांसे आगे वह पतला होता जाता है, और सामनेकी ओरको जहां नेत्रस्नायु उसे मिलते हैं वह ०.३ मि. मि. मोटा होता है, लेकिन जहां वे चिपकते हैं वहां उसकी मोटाई ०.६

मि. मि. होती है। शुक्लपटलका बाहरी पृष्ठ टेननके आवरणसे लपटा रहता है जिससे उसका, परिशुक्लपटलके अवकाशमेंसे, नाजुक प्ररोहाओंसे संबंध जुडा रहता है। इसका भीतरी पृष्ठ, जो परिकृष्णपटलके अवकाशको घेरता है, जिसमें क्रोम्याटोफोर नामकी रंजित पेशियो जैसी पेशिया होनेसे, कुछ बादामी रंगका मालूम होता है। यह रंजित द्रव्य शुक्लपटलमेंसे, अकसरकरके बच्चोंमे जिनका यह पटल पतला होता है और काले लोगोंमें जिनके शरीरमे नैर्सागकसे ही रजित द्रव्यका प्रमाण ज्यादह होता है, कुछ फीकासा दिखाई पड़ता है। बाजेवक्त तारकातीतपिडकी पुरो रक्तवाहिनियोकी नालीओके मुखपर स्लेट-पट्टीके रंग जैसे दाग दिखाई पड़ते हैं। और कभी कभी इसका विकास ज्यादह होनेसे इसको दृष्टिपटलकी **हमजातकी कृष्णरंगीन अवस्था** (कानजेनिटल मेलानोसिस) कह सकते हैं। बूढेपनमे इसमे चरबीदार घटकोके जमावसे उसका रग पीलासा मालूम होता है।

सूक्ष्मशरीर–इसकी बनावटमें सुफेद तन्तुर घटक, स्थितिस्थापक तन्तु, सयोगी घटकोके कण और रंजित पेशियाँ होती हैं। सुफेद तन्तुर घटकोके गुच्छ एक दूसरे से समकोण करके पार जाते हैं, इनमेके कुछ सरलस्नायुओके तन्तुओसे मुदामी होते हैं और दूसरे वक्र स्नायुओंके तन्तुओंके मार्गसे जाते हैं। शुक्लपटलके तन्तुरगुच्छोमे लसिकावश होते हैं और जिनमें कुछ संयोगी घटकोंकी स्थिर पेशियाँ पायी जाती हैं। शुक्लपटलमें कुछ रक्तवाहिनियाँ होती हैं लेकिन असली लसिकावाहिनियोका अभाव होता है; इसको तारकातीत पिंडके मज्जारज्जुओंसे बडी और छोटी मज्जातन्तु मिलती है। पिछले भागमे सामनेसे पीछेकी ओरको जानेवाली अक्षरेषाके के भीतर २·५ से ३ मि. मि. पर दृष्टिरज्जुके तन्तु नेत्रगोलकके चालन परदेके बाहर आते है। शुक्लपटलका बाहरी पृष्ठ मुलायम होता है और इसका शुक्लास्तरसे परिशुक्लपटलके द्वारा संयोग होता है। इसके भीतरी पृष्ठपर अनेक उथली नालीयाँ होती हैं, जिनमे तारकातीत पिडके मज्जातन्तु रहते हैं और इस पृष्ठका दूसरे भीतरी पटलके **फस्का नामके पत्रसे** संयोग होता है। सामनेकी ओर शुक्लपटल तारकापिधानसे मुदामी होता है। इसकी बाहरकी तहें तारकापिधानपर चढ जाती है।

नेत्रगोलकका दूसरा या मध्यपटलः कृष्णमंडल–युव्हिया

यह रक्तवाहिनियोसे बना हुआ, रजित द्रव्यदार पटल होता है। इसके अनुक्रमसे सामनेसे पीछे तारका, तारकातीतपिंड और कृष्णपटल (कोराईड) ऐसे तीन भाग हैं, जिनको समुच्छयसे **कृष्णमंडल** (युव्हियलट्राक्ट) नाम दिया है।

तारकाः स्थूलशरीरः—इसके रग, रूप और रचनामे फरक दिखाई पडते हैं। ये सिर्फ आदमी आदमीमें ही नही, बल्कि एकही आदमीमे उसकी उम्र और उसके देशके अक्षांशके अनुसार, या तारकाकी ऐठनकी अवस्थाके अनुसार पाये जाते हैं। और इसी वजहसे उसके शरीरका बराबर वर्णन करना मुष्किल हो जाता है। यह एक स्फटिकमणिके सामने और चाक्षुष जलमे नाजुक हिलता परदा होता है। यह तारकातीत पिडके सामनेके पृष्ठको मूलसे लगा रहता है और स्फटिकमणिके सामनेके पृष्ठपर स्थिर होता है। स्फटिकमणिके अभावमे यह हमवार होता है और उसका सहारा निकल जानेसे वह कांपता हुआ होता है (आयरिडे-

डोनेमीस)। इससे पूर्व वेष्मनी पश्चिमी वेष्मनीसे अलग होती है। तारकाके मध्यभागमें, कुछ नासिकाकी ओरको एक कुछ गोल छिद्र होता है जिसको कनीनिका नाम दिया है, (कोई इसीको ताराभी कहते हैं)। इसके आकारमें जीवन दशामे हरदम फरक् होता रहता है। इसके आकारका औसत यानी मध्यमान ४.४ माना गया है। औसतमें--ह्रस्व दृष्टिवाले लोगोंमें यह दीर्घदृष्टिवाले लोगोकी अपेक्षा ज्यादह चौडी होती है और स्त्रियोमे भी पुरुषोकी अपेक्षा बडी होती है। मृत्युके पहले यह विस्तृत (८ मि. मि.) होती है। नवजात बालककी तारका पहले कुछ भूरे--नीले रगकी होती है; बादमे उसके गाभाके भागमें रंजित द्रव्योत्पादन होनेसे वह कालीसी होती है। ऊष्ण कटिबंधमें रहनेवाले लोगोमें तारकाका रंग बादामी या कपिल होता है। शीत कटिबधमेके लोगोमें वह भूरे या नीले रंगकी होती है। साफ काले रंगकी तारका नही दिखाई पड़ती। बाजे वख्त नैसर्गिक मनुष्यके नेत्रकी तारकाएँ भिन्नभिन्न रंगकी दिखाई पडती हैं (हीटरोक्रोमिया) एक कपिल या हरे रगकी और दूसरी भूरी या नीली होती है; इनके मा-बापकी कनीनिका भिन्न भिन्न रंगकी होती है ऐसा संशोधन हुआ है। कभी कभी एक या दोनो कनीनिकामे कुछ काले कपिल रंगके डाग दिखाई पडते हैं; इस अवस्थाको **पीअबाल्ड** तारका कहते हैं। **बालके** सशोधनसे काचताका प्रमाण इनमे ज्यादह दिखाई पड़ता है। **फान सुमेरिंग**के मतानुसार तारकाके रंगका प्रमाण जितना ज्यादह फीका होता है, उसी प्रमाणमें नेत्रगोलकके पटल ज्यादह पतले होते हैं।

तारकाकी बनावट—तारकाकी बनावटमे संयोगी घटक असलमे होते है। और इनमे रक्तवाहिनिया, मज्जातन्तु, रंजितपेशिया और स्नायुततु मिले हुए होते है। सामनेका पृष्ठ कनीनिकाके भागके सिवा ना हमवार होता है और इसमे गडहे और झोल दिखाई पडते हैं। झोल दो किस्मके होते हैं; एक बनावटके जो कायम स्वरूपके होते हैं और ऐंठनके झोल या खात जिनमे तारकाके चलनके अनुसार फरक होते हैं; तारकाकी **सामनेकी तह** अन्त:पटकी (एन्डोथेलियम) उपलेपक कला पेशियोकी तह की बनी हुई होती है और यह तारकापिधानकी पिछली पाचवी तहसे मुदामी होती है। इन पेशियोमें, असलमें जिन लोगोंकी बाह्य चमडी काले रंगकी होती है, रंजितकण होते है। तारकाके **गाभामें** संयोगी घटकोंकी पेशियां और तन्तु होते है जिनका जालासा बनता है और इसीमे रक्तवाहिनिया, मज्जाततु और रंजितकण पाये जाते हैं। तारकाके स्नायु अनैछिक और दो तरहके होते है वर्तुलाकार और पहियेके आरे जैसे जानेवाले। गाभाके पिछले भागमे कनीनिकाके पास ०.६ मि. मि. चौडाईका स्नायुका वलय होता है। जिसको कनीनिका सकोचन स्नायु कहते हैं।

तारकाका सामनेका पृष्ठ अनेक तरहके रंगका दिखाई पडता है, लेकिन इनके आमतोरसे भूरे या नीली तारका और कपील तारका ऐसी दो तरह कर सकते हैं। ध्यानमे रखिये कि तारकाकी बनावटमें **कलल मध्यत्वककी** दो तहे होती। इनमेंसे सामनेकी तहसे नेत्रमेके सामनेके भागका कनीनिका परदा बनता है जो धीरे धीरे कुछ समयमे नष्ट हो जाता है; लेकिन कुछ मिसालोंमें उसके शेषभाग रहजाते हैं, जिनपर कनीनिकाका आखिरी-

स्वरूप अवलम्बित रहता हैं । दूसरी तौरसे कनीनिकामेंके रंजितद्रव्योत्पादनपर भी कनीनिकाके स्वरूपमें फरक हो सकता । पिछलेकी तह (दृष्टि पटलकी तह) रंजित द्रव्योंसे पूरी, भरी रहती है

तारकाके सामनेके पृष्ठके दो भाग होते है—एक **परिधिकी ओरका** तारकातीत पिन्डिय भाग जिसमे कललमध्यत्वककी दोनो तहे कायम रहती हैं, और दूसरा **केन्द्रकी ओरका** कनीनिकाका भाग जिसमे कललमध्यत्वकी सामनेकी तह गायब होजानेसे सिर्फ पिछली तह रहती है । इन दोनोंका संधिस्थान कनीनिकासे १·५ मि मि. फासलेपर होता है और यह लहरीयादार (टेढामेढा) और कनीनिकासे समकेन्द्रिक रहता है । इसीको तारकाकी कालर या गलपटी कोई कोई कहते हैं । च्यूंकि सामनेकी तह पीछेकी तहसे छुटक रहनेसे दोनोंके दरमियान जो दरार रहती है और जिसकी गहराई सब जगह एकसा नही रहती, उससे इस संधिस्थानकी इर्दगिर्द खात होती है इसीको **फुक्सका कोण** कहते हैं ।

कनीनिकाका भाग सापेक्षसे चपटा होता है । कनीनिकाकी किनारका सिरा काले रगका होता है और यह उसके पिछले पृष्ठकी रजित तहका बना हुआ होता है, और इसपर अनेक दाते जैसे दिखाई पड़ते हैं । जब कनीनिका मध्यम आकारकी होती है तब यह सिराका भाग उपरकी ओर नीचेकी ओरकी अपेक्षा ज्यादह चौडा होता हैं ऐसा **दाहमन** और **व्होगट** इन्होने सशोधन लगाया हैं । जब कनीनिकाका प्रसरण होता है तब यह सिरा नही दिखाई पड़ता, लेकिन जब कनीनिका संकुचित होती हैं तब यह सिरा सामनेकी ओरको कनीनिकाका संकोचन करनेवाले स्नायुसे (ज्यादह) खीचा जाता हैं; जिससे वह ज्यादह चौडा होता है । कनीनिकाके इस खास भागपर आरा सदृश लकेरिया दिखाई पड़ती हैं, खास तोरसे कुछ काले रंगकी तारकामें, कालरके गलपटीके स्थानमें इसके दोनों ओरको अनेक काले रंगके खात दिखाई पडते जिनका तारकाके गाभासे प्रत्यक्ष संबंध होता हैं (चित्र नं. १०६ देखिये)।

तारकाके गाभाका पिछला भाग बारीक तहसे बनता है जिसको **पश्चातकी मर्यादक** तह कहते हैं । यही **ब्रुकका पत्र** होता है । और यह कृष्णपटलके व्हिट्रिया पत्रका भाग होता हैं; कई प्राणियोंमे इस पत्रमें स्नायुतन्तु होते है । ब्रुकके पत्र और रंजित पेशियोंकी कलातहकी दरमियानमे पहियाके आरा सदृश जानेवाले स्नायुतन्तुकी तह होती है जिसको कनीनिका प्रसरणकारक स्नायु कहते हैं । हालके संशोधनसे स्थापित हुआ हैं कि इस प्रसरणकारक स्नायुके बनावटमें बेलनाकार पेशियोकी एक तह होती हैं, और इन पेशिओका जीवन बीज दंडेके आकारका होता है । तारकाके परिधि भागमें, **आल्ट** के मतानुसार, इस प्रसरणकारक स्नायुके तन्तु बाहरकी और पीछेकी ओरको घुस जाकर तारकातीत पिंडके संयोगी घटकोमे गायब होजाते है । कनीनिकाकी किनारके पास ये प्रसरणकारक तन्तु उसके संकोचक स्नायुमें मिल जाते हैं । तारकाके स्नायुतन्तु उनको कोई खास प्रकारसे निरंग करनेसे दिखाई पडते हें। प्रसरणकारक स्नायू और संकोचक स्नायु दोनों कलातहकी बनी हुई होती है । पहली स्नायु कलल या भ्रुणसबंधिके चौथे मासमें और दूसरी सातवे मासमें पैदा होती हैं । **प. फान. झिलिके** मतानुसार दोनोंका उगम कललके बाह्यपटलसे

होता है। **रंजित द्रव्य** का प्रमाण तारकाके भिन्न भिन्न स्थानमें भिन्न सा होता है। भूरे रंगकी तारकामें रंजित कण गाभा, सामनेका पृष्ठ और इस पिछले पृष्ठमें पाया

चित्र नं. १०६ मनुष्यकी तारकाका त्रिज्ज्यामेंका काट (बाल)

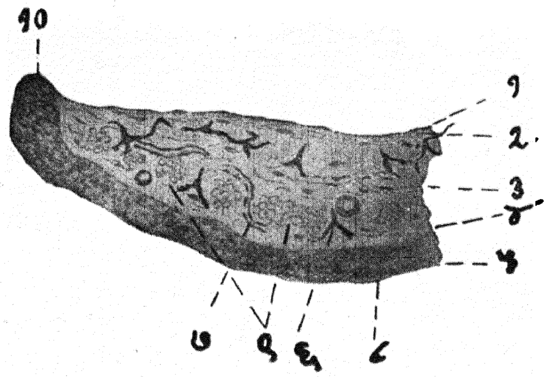

१ अन्तःपटकी तह;
२ सामनेकी मर्यादक तह;
३ रक्तवाहिनियोंकी तह;
४ पिछली मर्यादक तह;
५ रंजित कला तह;
६ रंजित पेशी;
७ केशिनी;
८ आंतर मर्यादक पत्र या आवरण;
९ तारकाकी संकोचक स्नायु;
१० कनीनिका की किनार।

जाता है। **पिछली तह** या अन्तःपट **रंजित कलातह**से मुदामी है। इन रंजित पेशियोंकी दो तहें होती हैं जो तारकाके पीछेसे कनीनिकाकी किनार तक जाकर वहां पारस्परीकसे मिलकर कुछ सामनेकी ओरको दिखाई पड़ती हैं।

तारकाकी बनावट : सूक्ष्म शरीर :—तारकाकी बनावटमें कृष्णमंडल और दृष्टिमंडल यानी कललके मध्यपटल और कललके बाह्य पटलका हिस्सा होता है। इसकी कल्पना नीचेकी तसबीरसे समझमें आजायेगी—

कृष्णमंडलका यानी कललमध्यपटलका भाग	१ तारकाका अन्तःपट (एन्डोथेलियम)	यह तारकापिधानके अन्तःपटसे मुदामी होता है।
	२ रक्तवाहिनियोंकी तह (अ) सामनेका पत्र जिसमें किनारकी सामनेकी तह शामिल होती है (ब) पिछला पत्र	यह तारकातीत पिंड और कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियोंकी तहसे मुदामी होती है।
	३ संकोचक और प्रसरणकारक स्नायु	तारकातीत पिंड और दृष्टिपटलकी रंजित पेशियोंकी कलातहसे मुदामी
दृष्टिपटलका यानी कलल बाह्यपटलका भाग	४ रंजित पेशियोंकी कलातह	तारकातीत पिंडकी कलातह और दृष्टिपटलके पार्स रेटिना नामके भागसे जो तारकातीत पिंडके पीछे लगा रहता है उससे मुदामी होती है
	५ आन्तर मर्यादक आवरण	आन्तरमर्यादक आवरणसे मुदामी

अन्तःपट यह एक नाजुक पारदर्शक तह होती है जो जीवित दशामें नहीं दिखाई पड़ती; शरीर तन्तुविज्ञान शास्त्रसे भी उसमेंके फरक रजत नत्रितसे रंगाये विना जानना मुश्किल होता है। यह तह नवजवानोंमें और प्राणियोंमें (**कोगानझिके** मतानुसार) ज्यादह आसानीसे दिखाई पड़ती है और वह तारकापिधानके अन्तःपटसे मुदामी होती है। काटे हुए भागमें यह सामनेकी तहपर जीवनरससे घेरी हुई जीवन बीजकी श्रेणी जैसी भासमान होती है।

क्रुकमान और **बोलफरुम**के मतानुसार मनुष्यप्राणियोंमें अन्तःपटका अभाव होता है; लेकिन विकृत शरीरसंशोधनके अनुसार इसमें तथ्य नहीं है।

तारकाकी रक्तवाहिनियोंकी तह अनेक रक्तवाहिनियोंकी बनी हुई होती है। आमतौरसे ये रक्तवाहिनियां तारकातीत पिंडके सामनेके भागपरके **तारका बृहत् रोहिणी वलय** (सरक्युलस आरटिरिओसस आयरिडिस मेजर) की शाखाएँ होती हैं और कनीनिका को त्रिज्ज्या जैसी इनकी दिशा होती है। ये रक्तवाहिनियां तारकातीत पिंडके खातोंमेंसे अन्दर घुसकर पारस्परीकसे लघुकोणमें पार होकर उनकी अनेक तहें बनती हैं। तारकाके प्रसरणमें, ये पेंच जैसी टेढीमेढी होकर उसकी अवस्थाको मिली झुली होती हैं। तारकाके कालर या गलाबंदके पास इनका तारका लघुरोहिणी वलयकी उपशाखाओंसे संजोग होता है। इनकी केशिनियोंका वर्णन अन्य जगहमें करेंगे।

चित्र नं. १०७ तारकाकी रोहिणियां

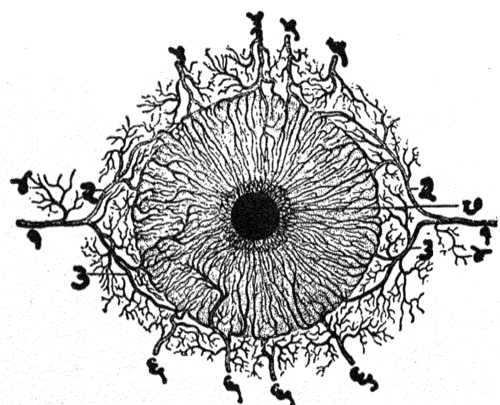

(१-१) तारकातीत पिंडकी लम्ब रोहिणी जिसकी आखरी शाखाएँ; ऊपरकी (२-२) और नीचेकी (३) होती हैं। (४-४) कृष्णपटलको आनेवाली परिवर्तित शाखाएँ; (५-५,६-६) तारकातीत पिंडकी पुरो रोहिणियां; (७) कनीनिकाको घेरनेवाला रोहिणियोंका जाला।

रक्तवाहिनियोंकी तहका ऊपरी भाग रंजित द्रव्योंसे खूब भरा रहता है; इस भागमें रक्तवाहिनियोंका अभाव होता है। इसमें कुछ कोलोजिनस तन्तु पाये जाते हैं, और आम तोरसे इसमें क्रोम्याटोफोरके तन्तुओंका जाला होता है। और इसी वजहसे इसको **सामनेकी मर्यादक तह कहते हैं।**

तारकाके गाभामें क्रोम्याटोफोर नामकी सशाख और पीले रंगके कणसे भरी हुई पेशियां होती हैं। इन पेशियोंकी बारीक प्ररोहा पारस्परीकसे मिलनेसे उनका जालसा बनता

है। तारकाके गाभामें नाजुक प्ररोहावाली **निरंग पेशियाँ, घूमनेवाली पेशियाँ** और रक्तज **दानेदार जीवनरस पेशियाँ** भी (प्लाझमा सेल्स) होती हैं। इनके सिवा और एक तरहकी **क्लम्प सेल्स** नामकी पेशियां होती हैं और ये पेशियाँ आकुंचक स्नायु और तारकातीत पिंडकी किनारकी ओरको पायी जाती है; ये रंजित द्रव्योसे भरी हुई होती हैं और इनमे प्ररोहोका अभाव होता है; इनमेका रंजित द्रव्य धवल मनुष्यमें और नीली तारकावाले लोगोमें दिखाई पड़ता है। **फुक्स** के मतानुसार इनका उद्गम रंजित कलातहकी पेशियोसे होता होगा। तारकामें मज्जातन्तु घुसकर उनके जाल बनते हैं; इन तन्तुओमेके कुछ मज्जामय वेष्टनदार होते हैं और कई बिना वेष्टनके होते हैं जिनका सबध ज्ञानतन्तु मंडलोंके साथ होता है। इनसे सज्ञावाहक तन्तु गाभामें जाते हैं, और नियमन कारक तन्तु रक्तवाहिनियोंको और संकुचक और प्रसरणकारक स्नायुको जाते हैं।

तारकाकी स्नायुः—तारकाकी प्रसरणकारक और संकोचक स्नायु दृष्टिपटलके सामने जानेवाले भागके रंजित कलातहकी पेशियोसे बनती हैं। संकोचकी स्नायुमे इन कलापेशियोका सादे स्नायुतन्तुमें रूपान्तर होता है लेकिन प्रसरणकारक स्नायुमें यह रूपान्तर नही होता, बल्कि उनसे "मायोग्लियल" तन्तु बनते है। **संकोचक स्नायु** कनीनिकाके इर्दगिर्द ०·७५ से. ८ मि. मि. चौडाईकी वलयाकार पट्टी होती है। सामनेके पृष्ठपर स्नायुके मोटे गुच्छ पारस्परीकसे समानान्तर जैसे होते हैं, लेकिन पिछले पृष्ठपर वे गाभाके संयोगी घटकोमे गायब होजाते है। कनीनिकाकी किनारके पास इस स्नायुका संयोग रंजित कलापेशियोकी तहसे होता है, और इस स्नायुके आकुंचनसे यह तह सामनेकी ओरको खीचा जाता हैं। तारकाकी सकोचक स्नायुको चालक मज्जातन्तु तीसरी मस्तिष्क-रज्जुसे मिलते हैं; इसके आकुचनसे तारका तारकातीत पिडसे नीचे खीची जानेसे कनीनिका छोटी या संकुचित होती है।

तारकाकी **प्रसरणकारक स्नायु** पेशियोकी बनी हुई होती है; इन पेशिओंका कलातहका स्वरूप कायम रहता है। पेशिया बेलनाकार (७ ﺻ × ६० ﺻ) मायक्रान नापकी होती है, इनका जीवनबीज दीर्घ वृत्ताकार (४ ﺻ × १४ का मायक्रान नाप) होता है; इनका जीवन रस रंजित होता है और पेशियोके एक या दोनों ध्रुव लम्बी तन्तुदार प्ररोहा जैसे होते हैं। इनको रंगनेसे स्नायुके जैसा रंग चढता है। इन तन्तुदार प्ररोहाओंका एक पत्र बनता है और उसमें ये पहियाके आरा सदृश रहती हैं और इसी वजहसे आडे काटमें प्रसरणकारक स्नायु दो तहोंकी बनी है ऐसा दिखाई पड़ता है। सामनेकी पत्र जैसी तह; इसीको **ब्रुक** या **हेनलेका आवरण** पत्र या **फुक्स** का पिछली किनारका पत्र ऐसा कहते हैं; और पिछली पेशीदार तह रंजित बेलनाकार पेशियोंको तह या **फुक्सकी** सामनेकी रंजित तह कहते हैं। इस स्नायुकी तह समाकारकी होती है और वह तारकाके पिछले भागमें तारकाका गाभा और रंजित कलातह इनके दरमियान होती है। कनीनिकाकी किनारसे कुछ फासलेपर ये तन्तु संकोचक स्नायुसे मिलते हैं, लेकिन कनीनिकाके नजदीक उनका पेशीदार तहका स्वरूप कायम रहता है। और इसी वजहसे कनीनिकाकी किनारके पास यह तह और

रंजित कला तह ऐसे दो तह होते हैं। और तारकातीत पिंडकी ओरको यह प्रसरणकारक स्नायु मोटी होती है, और उसके विस्तार, जो एक या अनेक स्नायु पेशियोके बने हुए होते हैं, निकलकर वे तारकातीत पिंडकी स्नायुमे तथा कांकताकार बंदमें तिरछी तौरसे कण्डरा जैसे घुसते हैं। इस स्नायुको आनुकंपिक मज्जामंडलसे तन्तु पाये जाते हैं, और इसके आकुंचनसे तारका उपरकी ओरको दुपट्टी जैसी होनेसे कनीनिकाका प्रसरण होता है।

इस स्नायुके अस्तित्व सबंधमे प्राचीन शास्त्रविशारदोमें एकमत नही था, क्योंकि कलल बाह्य त्वककी पेशियोसे स्नायुकी पैदाईश होना संभाव्य नही ऐसा कई मानते थे। **ग्यालन** के मतानुसार तारकाका प्रसरण या ऐंठन, उसमे न्यूमा-हवा भर जानेसे, और अन्य लोगोके मतानुसार उसमें द्रव यानी रक्त भर जानेमें होता है; वह उभरे **होनेवाले** घटक जैसा होता है, लेकिन सन १८८९ मे **ब्राउन सेक्वर्ड**ने सिद्ध किया की तारकाकी रक्तवाहिनियोंमे द्रव पदार्थोका प्रक्षेपण करनेसे फरक नही होता। सन १८९२ मे **लँगले** और **एन्डरसन** इन्होने प्रयोग करके बतलाया कि इस क्रियासे रक्तवाहिनियोसे और संकुचक स्नायुकी रुकावटसे कुछ ताल्लुक नही है। पिंडवृद्धि शास्त्रके संशोधनसे इस बातका पूरा निर्णय हुआ है।

रंजित कलापेशियोंकी तहमे रंजित द्रव्य पूरी तौरसे भरा हुआ होता है। ये पेशिया भिन्न भिन्न आकारकी और भिन्न प्रमाणके क्षेत्रकी होती हैं। यह तह पिछली ओरको तारकातीत पिंडकी कलातहसे मुदामी होती हैं और सामनेकी ओरको सामनेकी कलातहकी पेशियोसे इनका संबंध जुडा हुआ होता है।

तारकातीत पिंड (सिलियरी बाडी) उपतारानुमंडल

स्थूल शरीरः—तारकातीत पिंड तारकाके इर्दगिर्द असम वलय जैसा रहता है और इसी वजहसे इस भागको तारकातीत पिंड ऐसा नाम दिया है। इसका कनपटीकी और नीचेकी ओरका भाग (५६ से ६३ मि मि.) नासिकाकी ओरके भागसे (४५ से ५२ मि. मि.) चौडा होता है। इसकी बनावट त्रिकोणाकार होती है और त्रिकोण का सिर कृष्णपटलसे मुदामी होता है, और इसका तल कुछ तारकापिधानके मध्यभागकी दिशामे होता है। इसकी बाहरकी बाजू शुक्लपटलके कांटा सदृश भागको लगी रहती है और यह कृष्णमंडल का सामनेका बद्धस्थान होता है। इसकी भीतरकी बाजू खुली रहती है और यह स्फटिकमणिके विषुववृत्तके सामने आती है। इसका **बाहरका पृष्ठ** शुक्लपटलको मिलता है लेकिन दोनोके दरमियान कृष्णपटलके बाहरका अवकाश होता है। इसका **भीतरी पृष्ठ** स्फटिकद्रवपिंडकी ओरको होता है और वह दृष्टिपटलके अन्तके भागसे यानी दन्तुरिततटपरिणाहसे (ओरा सिराटा) मुदामी होता है। इस पृष्ठके दो भाग होते है। इसकी पिछली बाजुको दंतुरिततटपरिणाहके पास ३·६ से ४ मि. मि चौडाईका काले रंगका भाग होता है; जिसको आरबिक्युलस सिलिआरिस (पार्स प्लेना) कहते हैं। और इसपरका जो बेडौली भाग होता है वह पहियेके आरोंके सदृश दिखाई देनेवाले उभारसे बना हुआ होता है; और ये उभार दन्तुरिततटपरिणाह के दांतोंसे तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओके दरमियानकी दरारको जाते है। इस पृष्ठके शेषभागमें सामनेकी ओरको **कारोना सिलियारिस** (पार्स प्लायकाटा) का २ मि. मि.

चौडाईका वलय रहता है जो स्फटिकमणिसे ढका रहता है और जो तारकाके पिछले पृष्ठसे मुदामी होता है। इस पृष्ठका विशेष यह होता है कि इसपर फीके रंगके पहियेके आरा सदृश पट्टे होते हैं, जिनको तारकातीत पिंडकी प्ररोहा नाम दिया है। इनकी संख्या ७०।८० होती है, ये पट्टे या प्ररोहा रेखांशकी दिशामे रहते है, इनकी लम्बाई २ मि मि. और चौडाई ०·५ मि मि और ऊँचाई ०·८ से १ मि. मि होती है। और इनका सामनेका सिरा डन्डे के सिरे जैसा होता है। ये प्ररोहा रक्तवाहिनियोंकी बनी हुई होती है क्योकि इसी जगहमे कृष्णपटलकी रक्तवह केशिनी खतम होती है और उनकी एक तह बनती है और ये सामनेसे पीछे समानान्तर जाती है। प्ररोहाओकी दरारमे रंजित द्रव्य रहता है और अनेक झोल भी होते है। **तारकातीत पिंडके सामनेका पृष्ठ** यानी त्रिकोणका तल ढका रहता है। यह भीतरी ओरको तारकाके मूलसे मुदामी होता है और परिधिकी ओरको पूर्ववेश्मनीके कोणके जालाका इसमे संबध जुडा हुआ होता है। इन दो भागोंके दरमियान जो पट्टा रहता है उसपर यह जाला जाता है या तारकाके घटकोंका नीचेका विस्तार जाना है, कभी कभी इस पट्टेमे पूर्ववेश्मनीकी पिछली दीवाल बनती है।

सूक्ष्म शारीरः—असलमे तारकातीत पिडकी रचनामे कललमध्यत्वक् (कृष्णमडल) और कललबाह्यत्वक् (दृष्टिपटल)के भागसे पैदा हुए घटक पाये जाते है। इसमे कृष्णपटल और दृष्टिपटलके सामनेके भाग होते है यह बात आगे दियी हुई (डयुक एल्डर्सके) तसबीरसे ध्यानमें आजायेगी।

कृष्णपटल	**तारकातीत पिंड**
कृष्णपटलके बाहरके घटक	तारकातीत पिडकी स्नायु
रक्तवाहिनियोकी तह कृष्णपटलकी रक्तवह केशिनिया }	रक्तवाहिनियोकी तह
ब्रुकका आवरण { स्थितिस्थापक पत्र	स्थितिस्थापक पत्र
	दरमियानकी सयोगी घटककी तह
दृष्टिपटल त्वक्पत्र (क्युटिक्युलर लामिना)	त्वक्पत्र (क्युटिक्युलर लामिना)
रंजित कलातह	रंजित कलातह
पार्स आपटिका रेटिना	तारकातीत पिंडकी कलातह
आन्तर मर्यादक पत्र·आवरण	आन्तर मर्यादक आवरण या पत्र

(१) **तारकातीत पिंडकी स्नायुः**—कृष्णपटलके विषुववृत्तके नजदीक कृष्णपटलके बाहरीके घटकोंमें निरंकित तारासदृश स्नायुतन्तुओंकी शुरुआत होती है। इनकी संख्या और इनका आकार बढता जाकर तारकातीत पिडके भागमें उनकी बडी स्नायु जैसी बन जाती है, लेकिन इसका कृष्णपटलके बाहरीके घटकोंसे संबंध कायम रहता है। इस स्नायुके अक्षरेषामे, त्रिज्ज्यामें जानेवाला और वलयाकार ऐसे तीन भाग होते हैं (चित्र न. १०८)।

(अ) **अक्षरेषाकी दिशामें जानेवाले भाग** के स्नायुतन्तु सबके बाहर होते हैं। इनका उगम कृष्णपटलके बाहरके घटकोंमेंके तारासदृश स्नायुतन्तुमे होता है और वहांसे

आगे जाकर उनका बडा स्नायुतन्तु बमता है, और वे शुक्लपटलके कांटामें तन्तुर संयोगी घटकोंमेंसे खतम होते हैं और इस कांटेमें वे सख्त बद्ध होजाते हैं। इसको शुक्ल-पटलके कांटेसे छीलनेसे वह कृष्णपटलकी ओरको नाजुक पत्र जैसा होता जाता है, जिसमें तारकातीत पिंडके मज्जातन्तु दिखाई पडते हैं लेकिन जिसमें कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियोंका कुछ भी अंश नहीं दिखाई पड़ता है।

चित्र नं. १०८ तारकातीत पिंडके त्रिज्ज्यामेंका काट

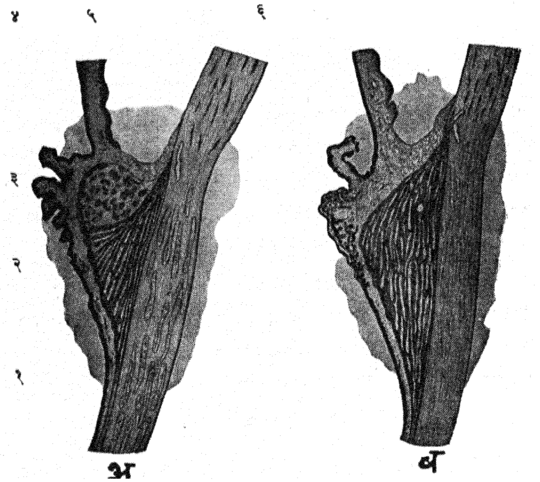

अ–दीर्घदृष्टिनेत्रमेंकी तारकातीत पिंडकी स्नायु; ब–ऱ्हस्व दृष्टि (ऱ्हानाफ) मेंकी ता. पिंडकी स्नायु (१) अक्षरेषाके स्नायु तन्तु; (२) त्रिज्ज्यासदृश तन्तु; (३) प्ररोहा; (४) वलयाकार भाग; (५) तारका; (६) तारकापिधान।

सन १८४६ में पहले पहल **ब्रुक** ने इस स्नायुके भागका कृष्णपटलको ताननेवाला स्नायू ऐसा वर्णन किया था, और हालमें भी यह मत मान्य है। जब इस स्नायुका आकुंचन होता है तब उसका असर उसके बद्धस्थानपर यानी शुक्लपटलके कांटे पर होनेसे उसका असर स्क्लेमकी नालीपर पंप जैसा होता है। इस बातका असर चाक्षुषजलके बाहर जानेपर होता है। इसका वर्णन अन्य जगह करेंगे।

(ब) **त्रिज्ज्यासदृश जानेवाले स्नायुतन्तु** ज्यादह भीतरकी और सामनेकी ओरको होते हैं और ये पंखे जैसे दिखाई पडते हैं। इनके साथ संयोगी घटक ज्यादह प्रमाणमें होते हैं। इन संयोगी घटकोंमें तारकाकी बनावटका मूल होता है, और इन्हीसे पूर्व-वेश्मनीके कोणका जाला बनता है।

(क) **वलयाकार भाग**के तन्तु ये त्रिज्ज्यासदृश जानेवाले तन्तुओंसे मुदामी होते हैं और उनसे अलग करना मुष्किल होता है। उनका वलयाकार गुच्छ बनता है; यह वलय तारकाके मूलके पीछे और तारकातीत पिंडकी खुली किनारके इर्दगिर्द रहता है।

(२) **तारकातीत पिंडको रक्तकी भरती** तारकातीत पिंडकी पुरो रोहिणियोंसे और तारकातीत पिंडकी पिछली लम्बी रोहिणीसे होती है। और यह रक्त प्रवाह तारकातीत पिंडकी पुरो नीलाओंमेंसे और रक्तवाहिनियोकी तहमेसे कृष्णपटलकी नीलाओमेसे वापिस जाता है। महत्त्वकी बात ध्यानमें रखिये कि नेत्रगोलकके पुरो भागकी रोहिणिया इस पिंडमेंसे पार जाती है। तारकातीत पिडकी मज्जारज्जु स्नायुमे घुसनेके पहले उनका जाला बनता है। और इस जालाके तन्तुओमेसे कई पर वसादार आवरण रहता है और उनके बीचमें मज्जाकंद पेशियां होती है, जिनसे बारिक मज्जातन्तु तारकातीत पिड और तारकाको जा पहुँचते हैं।

रक्तवाहिनियोंकी तह अहम तोरसे नीलाओकी बनी हुई होती है, क्योंकि तारकातीत पिंडकी रोहिणियाँ, कृष्णपटलके बाहरी घटकोमेसे सीधी **तारकाके बृहन रोहिणी वलय को** जाती है। यह वलय तारकाके मूलके पीछे होता है और इससे तारकातीत पिडकी प्ररोहाओको और भी शाखाओंसे रक्त की भरती होती है। इन शाखाओके गुच्छ बनकर वे समानान्तरसे पीछे जाते है, और इन गुच्छो की वजहसे तारकातीत पिंडकी प्ररोहा उभरी हुई होती है यद्यपि स्नायुका भीतरी पृष्ठ साफ मुलायम होता है। ये रोहिणीयोंकी शाखाएँ प्ररोहाओके सामनेके सिरोमें जाकर उनसे रक्तवहा केशिनीयो और नीलाओका जाला संस्थान बनता है। इन नीलाओके जालासे कई नीलाएँ आवर्तनीला बननेको जाती हैं। इन रक्तवाहिनियोके साथके सयोगी घटकोमे क्रोम्याटोफोर की संख्या कम होती है लेकिन प्रतिस्फटिकज (दार) तन्तु (कोलयाजिनस फायबर्स) ज्यादह होते हैं।

(३) **स्थितिस्थापक पत्र या परदा** रक्तवाहिनियोकी तहमेंके स्थितिस्थापक तन्तु एकत्रित होनेसे बनता है। ये तन्तु आगे बढकर ऊपरकी तहमे गायब हो जाते है।

(४) **दरमियानके संयोगी घटकोंकी तह** प्रतिस्फटिकदार तन्तुओंकी बनी हुई होती है। इससे स्थितिस्थापक पत्र त्वक्दार पत्रसे अलग हो जाता है। यह अवस्था दन्तुरिततटपरिणाहके पहलेसे होती है और यह कुल कृष्णपटलमें दिखाई पडती है। जहा स्थितिस्थापक पत्र रक्तवाहिनियोंकी तहमे गायब हो जाती है वहा यह तह भी रक्तवाहिनियोंकी तहमें गायब हो जाती है।

(५) **त्वक्दार पत्रसे,** इसके अलावा, दृष्टिपटलका आधारतलास्तर (बेसमेन्ट मेमब्रेन) सामनेको तारकाके मूल तक पहुच जाता है। इसके पृष्ठ पर अनेक सशाख उभार पैदा होनेसे वह सिकुडा हुआ होता है जिससे वह मधुकोष सम (शहदकी मक्खियोंका छत्त) दिखाई पड़ता है। इस रचना कार्यमें असलमे कलापेशियोको लंगरिया मिलती है जिससे ग्रान्युलका जोर कम हो सकता है।

(६) **रंजित कलातह** यह दृष्टिपटलकी रंजित कलातहसे मुदामी होती है। इसीमें पेशियोंकी एक तह होती है जो त्वक्दार पत्रसे लगी रहनेसे उसके उभारपर और उसके खातमें फैली रहती है। इन पेशिओंके पिंडके इर्दगिर्द मेलानिन के गोल कणोंका समुदाय

होनेसे इनको रंगहीन किये विना वे पहचाने जाना मुष्किल होता है। इन पेशिओंका आकार साधारण तया पंचपात्र जैसा होता है, इनका जीवन बीज दीर्घ वृत्ताकार अन्डाकृति होता है, और ये पेशिया पारस्परीकसे सीमेन्ट जैसे जोडनेके मसालेसे बंधी रहती हैं; जालाओके खातोमे पेशियां अनियमित बहुकोणाकृति जैसी होती हे, लेकिन तारकातीत पिंडकी प्ररोहाके सिरोंपर ये छोटे आकारकी होती हैं और उनमे रंजित द्रव्यका प्रमाण कम होनेसे ये प्ररोहा सुफेद जैसी मालूम होती हे ।

रजित कलातहकी पेशिया जालाके अन्दर घुसजानेसे उनके आडे काटमे वे ग्रंथियां जैसी भासमान होती हे। सन १८९१ में **ट्रीचर कालिन्स**ने इनका तारकातीत पिडकी ग्रंथीयां ऐसा वर्णन किया था; और चाक्षुषजलके पैदाईशमें इन ग्रंथियोंका हिस्सा होता है ऐसा इनका कहना था। लेकिन शरीर शास्त्रकी दृष्टिसे विचार करनेसे हालके संशोधकोंको (ग्रिभिथ, सालझमन, रूटेमन, फिनाफ) कालिन्सका यह मत मान्य नही है ।

(७) तारकातीत पिंडकी कलातहः—यह एक पेशीदार तह होती है, और दृष्टिपटलका कुल संज्ञावहा भागका सामनेका बढा हुआ भाग होता है। इन पेशिओमे रंजित द्रव्यका अभाव होता हे, इसको एक अपवाद यह होता है कि बिलकुल सामनेका बढाव जो तारकाके पिछले पृष्ठको लगा रहता है उसमे रजित द्रव्य होता है । ये पेशिया पंचपात्रके आकारकी होती हे जिनका जीवनबीज लम्बा और ऊपरकी ओरको होता है । इन पेशियोंकी ऊंचाईमे जगह जगह फरक दिखाई पडता है; दन्तुरिततटपरिणाहके पास इन पेशियोकी ऊंचाई ३० मायक्रान (सालझमन), जालाओके ऊभारपर ६० मायक्रान और तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओंके सिरेपर उनका आकार छोटा और घनाकार (१५ × १५ मायक्रान) होता है। ये पेशियां रंजितकलातहकी पेशियोंसे सीमेन्ट जैसे जोडनेके मसालेसे बधी रहती हैं; इससे यह फायदा होता है कि यह तह, दृष्टिपटल की इसी तह जैसी, झट अलग नही हो जाती।

(८) आंतरमर्यादिक पत्र या आवरणः—यह तह समावयवकी होती है और पेशियोके दरमियानमें जहां घुसती हे उसके सिवा अन्य भागमे यह आसानीसे अलग हो सकती है।

कृष्णपटल (कोराईड)

स्थूल शरीर

कृष्णपटल मुलायम बादामी रगके परदे–पत्र–जैसा भासमान होता है; इसका विशेष यह होता है कि यह रक्तवाहिनियोका बना हुआ होता है और इसमे रंजित द्रव्य भरा हुआ होता है। रक्तवाहिनियां असलमें पोषण करनेवाली होती हे; लेकिन नीलाओसे सब अवकाश भरा हुआ होनेस यह प्रहर्षिण घटक जैसा (बुलुन्ददार, इरेकटाईल) भासमान होता है, नेत्राभ्यन्तरके दबावका नियंत्रण करना यह इसका महत्वका कार्य है ।

कृष्ण पटलके बाहरकी ओरको शुक्लपटल होता है, और दोनोंके दरमियान परिकृष्ण-पटलका अवकाश (पेरिकोरायडल स्पेस) रहता है । जिन्दि अवस्थामें यह अवकाश संभाव्य रूपका (पोटेनशियल) होता है जिसमेंसे कृष्णपटलका ऊपरी नाजुक पत्र शुक्लपटलके **फरका**

नामके पत्रसे मिलनेको जाता है। यह अवकाश, जिसमेंसे कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियां और मज्जातन्तु जाते हैं, कृष्णमंडलके दोनों बद्ध स्थानके वलय तक, यानी सामनेका वलय जहां

चित्र नं. १०९ कृष्णपटलमेंसे खडा काट

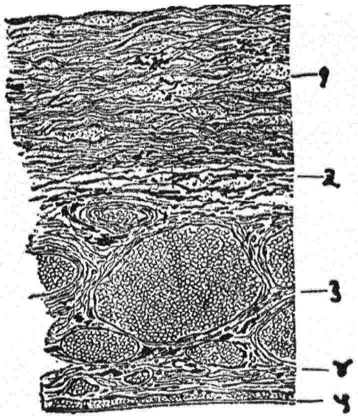

तारकातीत पिंडकी स्नायु शुक्लपटलके काटेको लगी रहती है और पीछे दृष्टिरज्जुके शीर्ष-तक, फैला रहता है। दोनोंके बीचमेंका पत्र नाजुक होनेसे कृष्णपटल शुक्लपटलसे आसानीसे अलग हो जाता है, जब अलग हुआ पृष्ठ वूनी जैसा दिखाई पड़ता है। लेकिन कृष्णपटलका भीतरी पृष्ठ दृष्टिपटलकी बाहरी तहोंसे सख्त बंधा रहता है; वास्तवमें दोनों पटलोंको अलग रखनेवाले तलास्तरकी पैदाईश इन दोनों पटलोंसे होती है और दृष्टिपटलकी रंजित कलातह कृष्णपटलको लगी रहती है। इससे यह कह सकते हैं कि दृष्टिपटल जब स्थानभ्रष्ट होता है तब यह फटनेकी दरार दृष्टिपटलकी मज्जा तहोंमेंसे पार्स–आपटिका और दृष्टिपटलकी कलातह–जाती है; और दृष्टिपटलकी रंजित कलातह कृष्णपटलको लगी रहती है।

सूक्ष्मशरीर

कृष्णपटलके बाहरसे अन्दरकी ओरको नीचे लिखे मुजब तहें होती हैं:—

१ परिकृष्णपटल या कृष्णपटलकी ऊपरकी तह (सुप्राकोराईड एपिकोराईड);

२ रक्तवाहिनियोंकी तह–(अ) बडी रक्तवाहिनियोंकी तह–(**हालेर्स** लेअर);

(ब) छोटी रक्तवाहिनियोंकी तह (**साटलर्स** लेअर),

३ कृष्णपटलकी रक्तवह केशिनियोंकी तह;

४ स्थितिस्थापक पत्र (लामिना व्हिट्रिया) **ब्रुकका** आवरण या पत्र–बाहरी तह।

(१) परिकृष्णपटल कृष्णपटलकी ऊपरकी तह (एपिकोराईड) १० से ३५ मायक्रानकी मोटाईका होती है; इसकी रचनामें नाजुक तन्तुके पत्र होते हैं, जो कृष्णपटलसे पीछेकी

और बाहरकी ओरसे शुक्लपटल को जाते हैं। च्यूंकि परिकृष्णपटलका अवकाश संभाव्य-रूपका होनेसे ये छः से आठ पत्र समानान्तर जैसे होते हैं। सामनेके पत्रके तन्तु लम्बे होते हैं और जादह तिरछे जाते हैं; पिछले पत्र छोटे होते हैं, सीधे जाते हैं और बिलकुल सामनेके सिरेके पत्र तारकातीत पिंडकी स्नायुमें गायब हो जानेसे परिकृष्णपटलका अवकाश खाली होता है। **हर पत्र** (२ से ३ मा. मोटा) नाजुक, पारदर्शक अन्तःपटके पत्र पर, स्थिर होता है। इनकी पेशियां स्थितिस्थापक तन्तुओंके जालमें रहती हैं और इनमें अन्डाकृति चपटा जीवन बीज होता है। बाजेवख्त इन अन्तःपट पेशियोंमें रंजितद्रव्य दिखाई पडता है। अन्तःपट पेशियोंके साथ **घूमती पेशियां** भी पाई जाती हैं; इनके जीवन बीजपर ज्यादह रंग चढ जानेसे इन्हे अन्तःपट पेशियोंसे जान सकते हैं। पत्रके दोनों पृष्ठपर **निरंकित स्नायुतन्तु** होते हैं; यह स्नायुतंतु अकेले होते हैं, लेकिन कभीकभी अकसर करके, विषुववृत्तके सामनेकी ओर जहां तारकातीत पिंडकी स्नायुका उगम होता है, ये तारे जैसे होते हैं (मसल स्टार्स)। **क्रोमोफोर पेशियां** सशाख और बडी होती हैं, इनकी प्ररोहा लम्बी होती है और उनमें मेलानिन रंग भरा हुआ होता है। मनुष्यमें क्रोमोफोरका विकासका संबंध अनुकंपिक मज्जामंडलके साथ जुडा हुआ होता है।

यद्यपि तारकातीत पिंडकी रोहिणियां इस अवकाशमें से पार जाती हैं तो भी उनसे रक्तवहा केशिनियां पैदा नहीं होतीं; लेकिन तारकातीत पिंडके मज्जातन्तुओंसे इसके बिलकुल भीतरी भाग को मज्जातंतु जाते हैं जिनका जालासा बनता है और इनके साथ साथ बहुध्रुव मज्जाकंद पेशियां होती हैं।

चित्र नं. ११० शुक्लपटल, तारका और कृष्णपटल

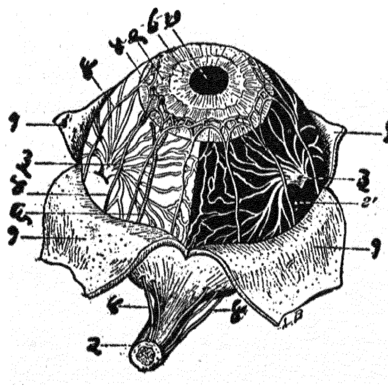

१ शुक्लपटल
२ दृष्टरज्जु
३ आवर्त नीला
४ तारकातीत पिंडकी मज्जारज्जुए.
५ ता. पि. मज्जारज्जु जाला
६ तारकातात पिंडकी पिछली लम्बी रोहिणियां
७ कनीनिका, ८ तारका
८ तारकातीत पिंडका वलय
(निमियर और देपागनेट)

(२) **रक्तवाहिनियोंकी तह**:—असलमें इस तहमें रक्तवाहिनियां ज्यादह तादादमें होती हैं। इनका आकार बाहरसे भीतरकी ओरको छोटा होता जाता है। दृष्टिस्थानके नजदीक सिर्फ छोटी रक्तवाहिनियोंकी अनेक तहें दिखाई पडती हैं; और विषुववृत्तके सामनेकी ओर छोटी रक्तवाहिनियां रक्तवहा केशिनियोंकी तहमें शामिल हो जाती हैं।

कृष्णपटलके बाहरी पृष्ठपर ध्यानमें रखनेकी बातें: चार आवर्त नीला, दो ऊपर और दो नीचे की जो नीलाओंके एकत्रित संयोग होनेसे बनती हैं; कभी कभी चारके बदले छः आवर्त नीला होती हैं; रक्तवाहिनियोके यानी रोहिणीयां और नीलाओंके दरमियान परि-कृष्णपटलके अवकाशमे के घटक यानी पत्र, क्रोमाटोफोर्स, घूमती पेशियां, निरंकित स्नायु-तंतु और मज्जातंतु आदि पाये जाते हैं।

(३) **कृष्णपटलकी रक्तवहा केशिनियांः**—असलमें यह रक्तवहा केशिनियोंकी तह होती है और जो अत.पट की नाली होती है और जिनमें कृष्णपटलकी रोहिणियां खतम हो जाती है। रोहिणियां सिधी लम्ब रेषामे उतरकर उनकी अनेक शाखा होनेसे वहां तारा का आकार दिखाई देता है। इन शाखाओंके संयोगसे नीलाओंकी छोटी आवर्त नीला बनती है और इनके संयोगसे बडी आवर्त नीला बन जाती है। ये रक्तवहा केशिनियां इतनी चौडी होती हैं कि उनमेसे अनेक रक्तकण एकत्र मिलकर आसानीसे जा सकते हैं; इसका महत्त्व नेत्राभ्यंतरका दबाव बढ जानेमें दिखाई पड़ता है।

इन केशिनियोके दरमियानके अवकाशोमे स्थितिस्थापक और कोलाजिनस तन्तुओसे बने हुए घटक होते हैं, जिनके संयोगसे केशिनियोके दोनों बाजूको एक अन्त.पट पत्र बन जाता है। कई प्राणियोंमें इसीसे **टापिटम** नामका पड़दा बनता है। कृष्णपटलकी रक्तवहा केशिनियोंकी भीतर की बाजूको स्थितिस्थापक तन्तु एकत्र जमा होनेसे उनका **ब्रुक्के** आवरण या पत्रका बाहरी भाग बनता है। इन रक्तवहा केशिनियोकी तहमें रंजित द्रव्योका अभाव होता है।

(४) **ब्रुक के आवरण** या पत्रके दो भाग होते हैं—बाहरका पत्र कृष्णपटलका भाग होता है और भीतरका पत्र दृष्टिपटलका भाग होता है। ये दो अलग अलग होते ही दोनोंका वर्णन इसी स्थानमें किया है। बाहरका पत्र बारीक स्थितिस्थापक तन्तुओका जाला होता है। इसकी मोटाई ०·५ μ मायक्रान होती है; और भीतरका पत्र (क्युटिक्युलर लामिना) त्वक्दार पत्र २ μ मायक्रान मोटाईका होता है और यह दृष्टिपटलकी रजित कला तहसे समावयव रचना जैसा पैदा होता है। सब जगह यह इसकी दोहरी रचना खास तरहसे रंगाये विना या निकृत अवस्थाके सिवा समझमे नही आती; लेकिन तारकातीत पिंडके भागके नज-दीक ये दोनो भाग अलग अलगसे दिखाई पडते हैं और नेत्रबिंबके पास अच्छी तरहसे स्पष्ट मालूम होते हैं। **वुलफ्रमके** मतानुसार दोनों पत्रोके दरमियान कोलाजिनस तन्तु सब जगह पाये जाते हैं। यह रचना तारकातीत पिंडके भागमें स्पष्ट पायी जाती है इससे वुलफ्रमका मत रास्त है यह कल्पना कर सकते हैं।

कृष्णपटलके मज्जातन्तुः—कृष्णपटलको तारकातीत पिंडके मज्जारज्जुसे तन्तु मिलते हैं। ये तन्तु कृष्णपटलके इर्दगिर्दके अवकाशमेंसे आगे जाकर उनके नाजुक जाले बनते हैं और जिनके तन्तु परिकृष्णपटलकी और रक्तवाहिनियोंकी तहमें घुसते हैं; इन तन्तुओंके सिरेपर गोलसी गठान जैसी होती है। इन जालाओंके साथ आनुकपिक मज्जा मंडलकी बहुध्रुव रूपकी मज्जाकंद पेशियां पायी जाती है, जिनका काम शायद रक्तवाहिनियोंको विस्तृत करना यह होता है ऐसा मानते हैं।

बिलकुल उथली होती है, वहामे यह घटक तारकातीत पिंडको जहा मिलता है वहा वेश्मनी फिरसे गहरी होती जाती है और इसके कोणके इर्दगिर्द एक दरारसी बन जाती है। पूर्व-वेश्मनी जवानीमें, ऱ्हस्वदृष्टिमे ओर जिन विकारी अवस्थामे गुणऱ्हासकी क्रिया होती जाती है उनमे वह गहरी रहती है। पूर्ववेश्मनीकी गहराईका जो संशोधन हुआ है उनका औसत नैसर्गिक दृष्टिमे ३ ३६, दीर्घदृष्टिमे ३·२२३, और ऱ्हस्वदृष्टिमे ३·५६ मि मि होता है।

पूर्ववेश्मनी का कोण

यह प्रान्त ऐन्द्रिय दृष्टिमें तथा विकृत शरीरकी दृष्टिमें बहुतही महत्त्व का होता है, क्योकि इसी भागमेसे ही नेत्राभ्यन्तरके द्रवदार घटक बाहर जाते हैं, और इसी वजहसे इसको **छाननेका कोण** (फिलट्रेशन एंगल) कहा है। और इसके अलावा शस्त्रक्रियाकी दृष्टिसे इसका महत्त्व है, क्योकि नेत्राभ्यन्तरकी शस्त्रक्रियामे **शुक्लकृष्ण संधिमेंसे** या **तारकापिधान** और **शुक्लपटलके संधिस्थान**मेसे यानी **लिम्बस्**मेसेही चाकू अदर घुसाते है। ध्यानमे रखिये कि इसका प्रादेशिक वर्णन (टोपाग्राफिक) महत्त्वकी बात होती है। तारकाका मूल लिम्बस्के पीछे १ ५ मि मि होता है।

स्क्लेमकी नाली

इसीको **लेबर**ने नीला का वलय और **रोकां–दुविनो**ने शुक्लपटलकी दरार कहा है।

नेत्रगोलकके घेरेके इर्दगिर्दकी शुक्लपटलकी खातके नीचे **स्क्लेमकी नाली** नामका नीला वलय होता है। सचमुच कहे तो कह सकते हैं कि यह एकही नाली नही होती; इसमे अनेक छोटी छोटी नालिया होती हैं जो पारस्परीकसे मिलती हैं और फिरसे अलग होती जाती हैं ऐसी इसकी बनावट होती है। इस नालीको भीतरसे नाजुक अन्तःपटका, जिसमे एक पेशियोकी तह होती है, अस्तर लगा रहता है, और यह शुक्लपटलसे, जिसमे वह होती है, एक नाजुक पेशिदार पत्रसे अलग रहती है। नालीके बाहरकी और पीछेकी ओरको शुक्लपटल होता है, इसके बिलकुल पीछे और भीतरी ओरको शुक्लपटलका काटा (स्क्लेरल स्पर) होता है, और इसकी भीतरी दीवालको पूर्ववेश्मनीके कोणकी प्ररोहाओंसे सहारा मिलता हैं। ध्यानमें रखिये कि इस नालीका पूर्ववेश्मनीसे कुछ प्रत्यक्ष संबध नही पाया जाता, बल्कि इर्दगिर्दके शुक्लपटलके घटकोंमे तारकातीत पिन्डकी पुरोनीलाओसे जो नीला जाल बनता है उनमे बिलकुल बारीक शाखाओके द्वारा सबंध होता है (चित्र न. १११–अक ८)।

इसकी बनावटका वर्णन पहले पहल **स्क्लेम**ने (बर्लिनके शरीर शास्त्रज्ञ) १८३१ मे किया था। इसके बनावटके सबंधमे बहुत वाद मच रहा था। **श्वालबे** और अन्य लोगोके मतानुसार यह एक लसिका वाहिनीका मार्ग था और इसका पूर्ववेश्मनीसे प्रत्यक्ष संबंध था। **लेबर** (१८७३–९५) के मतानुसार यह नीला जैसा मार्ग है और नीलाओमे अन्तःक्षेपण करके यह बात शाबित हो सकती है। **ट्रोनास्को**ने (१९२५) शाबित किया कि नैसर्गिक हालतमें यह नाली चाक्षुषजलसे भरी रहती है और यदि उसमे लहु हो तो वह विकृत अवस्थाका लक्षण समझना चाहिये।

नेत्रगोलकमेंकी वेश्मनियां

पूर्ववेश्मनी (एन्टेरीयर चेम्बर)

पूर्ववेश्मनी (चि. नं. १११) यह नाम नेत्रगोलकमेंके उस अवकाशको दिया है जिसकी सामनेकी मर्यादा तारकापिधानसे बनती है, जिसकी पिछली मर्यादा तारकातीत पिंडके सामनेके पृष्ठका कुछ भाग, तारका और कनीनिकामेंसे स्फटिकमणिका दिखाई देनेवाला भाग इन घटकोंसे बनी हुई होती है; इस अवकाशके परिधिका कोण शुक्लपटलकी तारकापिधानसे जहां संधि होती है उस भागकी प्ररोहाओंसे होता है। जो भाग स्फटिकमणिसे बना हुआ होता है, और तारकामेंकी खांच, इनके सिवा मर्यादाओंके अन्य भागको अन्तःपट पेशिओंकी तह लगी होती हैं।

चित्र नं. १११—नेत्रगोलकके पूर्ववेश्मनीका प्रान्त

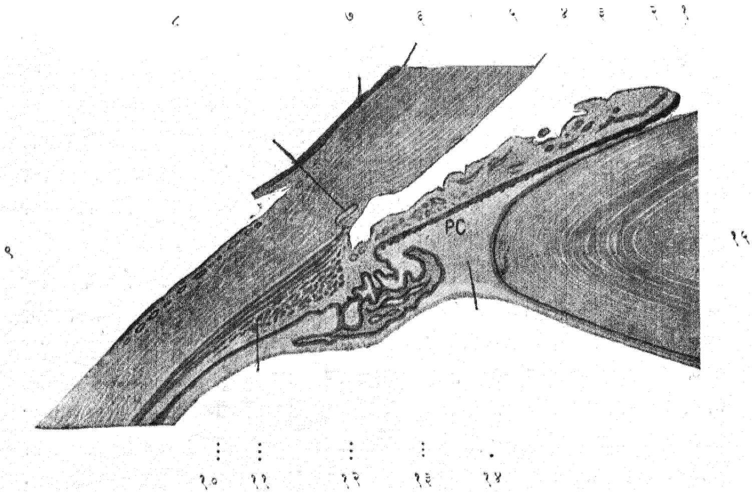

१ पूर्ववेश्मनी
२ तारका
३ तारकामेंकी खांच
४ डेसिमेटका आवरण
५ तारकापिधान
६ बोमनका आवरण
७ शुक्लास्तर
८ स्क्लेमकी नाली
९ शुक्लपटल
१० दृष्टिपटलका पासे बना भाग
११ तारकातीत पिंडकी स्नायु
१२ स्फटिक द्रव पिंड
१३ तारकातीत पिंडकी प्ररोहा
१४ स्फटिकमणिको लटकानेवाला झिनका बंद
१५ स्फटिकमणि
पी. सी. पश्चिमी वेश्मनी

पूर्ववेश्मनीके व्यासका प्रमाण ११·३ से १२·४ मि. मि. होता है। इसकी गहराई वेश्मनीके अक्षमें सबसे ज्यादह होती है; वहांसे परिधिकी ओरको ऊसका प्रमाण कमतर होता जाता है। ऊपरेके चित्रसे ध्यानमें आजायेगा कि तारकाके मूलके सामने वेश्मनी

इस नालीके शुक्लपटलमेंके नीला जालोंको जोडनेवाले मार्ग बिलकुल सूक्ष्मरूपके होते हैं, वे तिरछे और चपटे होते हैं, और उनमें अभिद्वार जैसी रचना होनेसे द्रव पीछे जानेसे रोका जाता हैं। इसके अलावा, चाक्षुषजल नीलाओंकी बारीक दीवालोंमेंसे अन्योन्य प्रसरणसे अन्दर जासकता है, यह बात नेत्रगोलकमें रंगीन द्रवोंका प्रक्षेपण करनेसे सिद्ध कर सकते हैं। ध्यानमें रखिये कि नीलाओंमेंका जलस्थितिका दबाव और पूर्ववेश्मनीमेंका दबाव इस जगह संस्थितिमें रहता है, जबतक नीलाओंकी ओरको जलका अभिसारक आकर्षण (आसमाटिक अट्राकशन) रहता हैं।

पूर्ववेश्मनीके कोणमें का जालादार घटक

स्क्लेमकी नालीके भीतरी ओरको **पूर्ववेश्मनीके कोणमेंका जालादार** घटक होता है, और जिससे नालिका अन्य भाग भरा हुआ होता है। इस घटककी बनावटमें प्ररोहा होती है और यह त्रिकोणाकार होता है। इस त्रिकोणका शीर्षकोण तारकापिधानमें घुसा रहता है, इसका तल तारकातीत पिंडके सामनेके पृष्ठको और शुक्लपटलके काटेंको लगा रहता है, बाहरी बाजू स्क्लेमकी नालीकी भीतरी दीवाल बनती है और यह शुक्लपटल तारका-पिधानसे मुदामी (चित्र नं. १११ व ११२ देखिये) होती है, और इसकी भीतरी बाजुसे पूर्ववेश्मनीके कोणकी सीमा होती है।

इस घटकके बनावटके बडा और छोटा ऐसे भिन्नभिन्न दो भाग होते हैं। गहराईमेंका भाग बडा होता है और यह मुख्यतया जालादार घटकका ही होता है; और इसीको **शुक्ल-पटलका जालादार घटक** या **शुक्लपटल तारकापिधान** की प्ररोहा ऐसा नाम दिया है और इसी के भीतरी पृष्ठपरके नाजूक तन्तुओंसे बनाहुआ दूसरा छोटासा भाग होता है। जिसको **कांकताकार बंद** (पेक्टिनेट लिगामेंट) या कृष्णमंडलका जालादार घटक नाम दिया है।

चित्र नं. ११२ फानटानेके अवकाश और कांकताकार बंद (शाकाहारी प्राणि घोडेके)

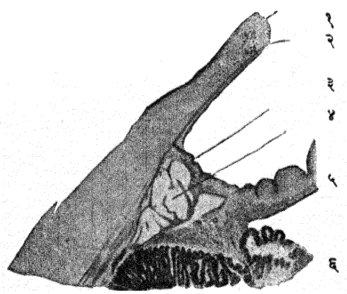

१ तारकापिधान
२ डेसिमेटका आवरण
३ कांकताकार बंद
४ फानटानेके अवकाश
५ तारका
६ तारकातीत पिंड

शुक्लपटलका जाला घटक (चित्र नं. ११२) इसका उगम तारकापिधानकी नीचेवाली तहोंसे स्थितिस्थापक तन्तु और संयोगी घटकोंके वलयाकार गुच्छसे होता है। यह डेसिमेटके आवरणके बाहर होता है। इससे त्रिकोणाकार प्ररोहा पीछेकी ओरको जाती ह। इसमेंकी बाहरी ओरकी प्ररोहा शुक्लपटलके कांटेको मिलती है और भीतरी ओरकी प्ररोहा

तारकातीत पिंडके संयोगी घटकोंमें जा मिलती हैं। ये प्ररोहा नाजुक होती हैं और इनमें चार घटक होते हैं जिनका अनुक्रम पहले कोलाजिनस तन्तु उनके बाहर स्थितिस्थापक तन्तु उसके बाहर डेसिमेट आवरणसे मुदामी होनेवाली और समायवतह और सबसे बाहरकी ओरको तारकापिधान और तारकाके अन्तःपटकी पेशियोसे मुदामी होनेवाली पेशियोके बडे जीवनबीजकी तह होती है। ये प्ररोहा पारस्परीकसे पार जानेसे उनके दरमियान अवकाश बनते है; इन अवकाशोंको भीतरसे अन्त.पटका आस्तर होता है और इसी वजहसे नेत्राभ्यन्तरके द्रव श्लेमकी नालीमें जा सकते है, और तारकापिधानके घटकोसे और परिकृष्णपटलके अवकाशसे उनका संबंध हो जाता है। ध्यानमें रखिये इस भागमें उनकी कठिनता या अन्य विकार होनेसे रूकावट होती है और कांचता की शुरुआत होती है।

शुक्लपटलके जालाके घटक का कृष्णमंडलसे बनाहुआ भाग या **कांकताकार बंद:**—यह एक नाजुक प्ररोहा धनुष्यकी कमान जैसी पूर्ववेश्मनीके कोणके घेरेमे तारकापिधान शुक्लपटलके सधिके यानी शुक्लकृष्ण संधिके भीतरी ओरको लगी रहती है। इस भागकी प्ररोहा चपटी होनेके बदले गोल होती है, और इसकी बनावटमे स्थितिस्थापक तन्तुके सिवा अन्य घटक पाये जाते हैं।

शुक्लपटलका कांटा:—इसकी बनावटमे शुक्लपटलके वलयाकार रचेहुए तन्तु होते हैं। इसके पिछले पृष्ठको तारकातीत पिडकी स्नायु लगी रहती है (चित्र नं. १११ देखिये)। इस स्नायुके आकुंचनसे यह कांटा पिछे खीचा जानेसे श्लेमकी नालीका मुख चौडा हो जाता है और पूर्ववेश्मनीमेंका चाक्षुषजल अन्दर चूसा जाता है। इसके विपरीत जब स्नायु ढीली हो जाती है तब काटेके सामनेके पृष्ठमेके स्थितिस्थापक तन्तुओकी वजहसे यह कांटा सामने खीचा जाता है और नाली दब जाती है। दोनो क्रियाओसे पम्पयत्र जैसा कार्य होता है।

पूर्व और पश्चिम वेश्मनी दोनो चाक्षुषजलसे भरी हुई होती हैं और इनका संजोग कनीनिकामेंसे होता है।

पश्चिमीवेश्मनी (चित्र नं. १११ पी सी)

पश्चिमीवेश्मनी यह एक अवकाश होता है। इसकी सामनेकी सीमा तारकासे बनी हुई है; और इसके पीछे स्फटिकमणिका सामनेका पृष्ठ और झिनके बंदका सामनेका पृष्ठ होता है। और झिनका बंद और स्फटिकद्रव पिन्डमेके अवकाशको **पेटिट** की नाली कहते हैं, इसीको **ग्रोड्रोनेकी नाली** और **होनोवर की नाली** ऐसा भी कोई कोई कहते थे, हालके शरीर तन्तुर शास्त्रविशारदोके मतानुसार झिनके बंदमे स्वतंत्र तन्तु होते हैं; जो पश्चिमीवेश्मनीमेंसे पार होकर दन्तुरिततट परिणाह तक जा पहुंचते हैं। और इनके वर्णनके अनुसार इस कुल अवकाशके नीचे लिखे मुजब भाग हो सकते हैं:

(१) **झिनके बंदके सामनेका भाग** यानी तारका और झिनके सामनेके बंदके दरमियानका भाग यानी **पश्चिमीवेश्मनी;**

(२) **झिनके बंद्के दोनों भागमेंका अवकाश–स्फटिकमणिके घेरेकी ओरका अवकाश** (सरकमलेन्टल स्पेस) जो स्फटिकमणि और तारकातीतपिंडकी प्ररोहाओमे का अवकाश होता है, इसके सामने और पीछेकी ओरको झिनके बदके सामनेका और पीछेका भाग होता है। यही **होनावर**की नाली होती है।

(३) **झिनके बंद्के पीछेका अवकाश** यही **पेटिट की नाली** होती है, यह एक तग दरार होती है जिसका चौडा भाग तारकातीत पिडकी चीरोमे होता है और तग भाग तारकातीत पिड और स्फटिकद्रव पिडमे होता है।

लेकिन हालके सशोधनके अनुसार पश्चिम वेश्मनी की सीमा ऊपर लिखी जैसी होती है।

नेत्रगोलकका भीतरी का पटल–दृष्टिमंडल–रेटिना

नेत्रगोलकके भीतरी पटलको दृष्टिमंडल नाम दिया है। इसके सामनेका और पिछला ऐसे दो भाग होते हैं। बरी वसअतसे कह सकते हैं कि दृष्टिमडलके दोनो भाग चाक्षुप प्यालेसे बने हैं। सामनेका भाग जो तारकातीत पिड और तारकापर फैलता है उसका वर्णन पहले ही किया है। अब सिर्फ पिछले भागका, जिसको दृष्टिपटल नाम दिया है, वर्णन करेगे। इस भागकी दो मुख्तलिफ तहे होती हैं (१) **रंजित कलातह** और ब्रुकका त्वक्दार पत्र जो चाक्षुष प्यालेकी बाहरी दीवालसे पैदा होता है; और (२) चाक्षुष प्यालेकी भीतरी दीवालसे पैदा होनेवाला **पार्स आपटिका रेटिना** जिसकी बनावट उलझनकी होती है। इन दोनोके दरमियान चाक्षुष प्यालेका सभाव्य अवकाश होता है, जिसमेसे रंजित कलातहकी पेशियोकी प्ररोहाएं पार जाती हैं। और इसी वजहसे बाहरी तह कृष्णपटलमे सख्त मिली रहती है और भीतरी तह विकृत अवस्थामे और मृत्युके बाद अलग हो जाती है।

रंजित कलातह

रजित कलातहमे बहुकोणाकृति–अक्सर करके शटकोणाकृति पेशियोकी एकही तह होती है। ये पेशिया आमतौरसे बराबरी की होती हैं, सिर्फ दृष्टिस्थानके भागमे जहांकी पेशिया ऊची होती हैं कालारंग दिखाई पडता है, और दन्तुरि ततटपरिणाहके इर्दगिर्द ये बहुत बडी और नाहमवार होती है। हर पेशी इर्दगिर्द की पेशियोसे और **ब्रुक** के पत्रमे सिमेंट जैसे जोडनेके मसालेमे बधी रहती है। हर पेशीमे गोलाकार जीवनबीज होता है और वह आधारतलास्तर के पास दिखाई पडता है, और इनमे मेलानिन रजित द्रव्य जिसको फुक्सीन भी कहते हैं, ज्यादह प्रमाणमे मिलता है, और यह पेशीके भीतरी ओरको होनेसे बाहरका जीवनबीजनाला भाग निर्रंग दिखाई देता है। पेशियोंके बाहरी भागमेका रंजित द्रव्य, कृष्णपटलमेंके रजित द्रव्यके जैसा दानेदार और गोलाकार होता है, भीतरी भागमेका रंजित द्रव्य स्फटिककी सूची जैसा भासमान होता है। इन पेशियोमे वसादार पदार्थके (लिपाईड सबस्टनस) बुद भी पाये जाते है। इन पेशियोके भीतरी पृष्ठपर प्ररोहाएँ होती है जो दृष्टिपटलकी राड तहमें घुसती है।

दृष्टिपटलका पिछला भाग—पार्स आपटिका रेटिना

स्थूल शरीर

दृष्टिपटलका यह पिछला भाग नेत्रगोलकका असली संवेदनशील–तमीजदार–भाग होता है, जिसीके लिये ही नेत्रगोलकके सब घटक जैसे बने हुए हैं, और ऐसा कह सकते हैं, कि ये सब उसकी हुकम बरदारी करते हैं। यह नाजुक परदा नेत्रगोलकके भीतरी पृष्ठको आस्तर जैसा लगा रहता है। जिन्दी अवस्थामें यह पारदर्शक होता है, लेकिन मृत्युके बाद ५–१० मिनिटमें यह सुफेद और कुछ अपारदर्शक होता है। रंजित कलातहसे यह ढीलेपनसे लगा रहता है, लेकिन नेत्रबिम्ब और दन्तुरिततट परिणाहके पास सख्त बंधा रहता है और यहां उसमें फर्क होकर वह सामनेकी ओरको तारकातीत पिंडकी कलातह ऐसा जाता है। इसकी

चित्र नं. ११३ दृष्टिपटलका आडा काट

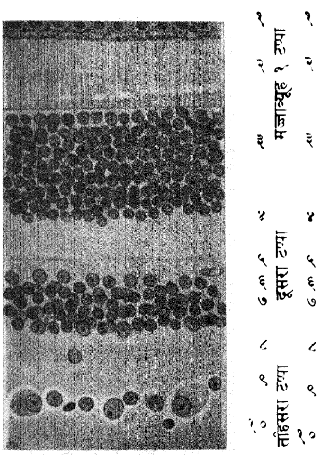

चित्र नं. ११४ दृष्टिपटलकी बनावटके घटक

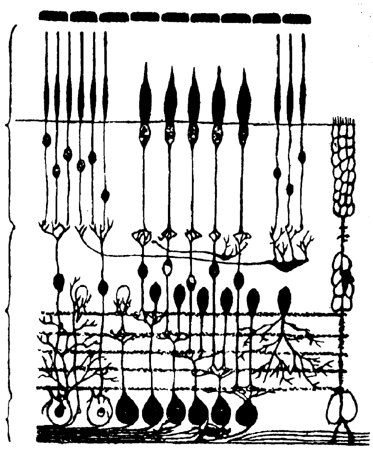

(१) रंजित कलातह
(२) राड और कोनकी तह
(३) बाह्य जीवनबीजकी तह
(४) बाह्य तन्तुर जालकी तह
(५) आडी पेशियां
(६) द्विध्रुव पेशियां
(७) अमाक्राईन पेशियां
(५)–(७) आन्तर जीवन बीज की तह
(८) आन्तर तन्तुर जालकी तह
(९) मज्जाकंदकी पेशियोंकी तह
(१०) ज्ञान तन्तुकी तह

(अ) बाह्य मर्यादक पत्र; (ब) आन्तर मर्यादक पत्र; (क) मूलर का तन्तु।

मोटाई नेत्रबिम्बके पास सबसे ज्यादह (०·५६ मि. मि.) होती है, और वहांसे परिधिकी ओरको अकसर करके कनपटीकी ओरको ज्यादह पतला होता जाता है; विषुववृत्तके पास उसकी मोटाई ०·१८ मि. मि. और सामनेके सिरेको ०·१ मि. मि. होती है। **दन्तुरित-**

तटपरिणाह शुक्लकृष्ण सधिके पीछे ६ मि मि. फासलेपर होता है; लेकिन नासिकाकी ओरको यह फासला ५ मि. मि होता है यह असमता अकसर करके जिन सस्तन प्राणि-योके नेत्र बाजूमें होते हैं उनमें ज्यादह प्रमाणमें दिखाई पडती है । इसके किनारकी शक्ल टेढी होती है, इन दांतोकी सख्या १७ ते ३४ तक होती है, उनके आकारमे फरक होता है, कभी कभी इनका अभाव होता है जब आरबीक्युलारिस सिलिआरिसमे और दृष्टिपटलमे गोल किनार दिखाई देती है ।

सूक्ष्म शरीर

दृष्टिपटलकी सूक्ष्म बनावटमे बहुतही नाजुक घटक होनेसे उसका सशोधन सादी तरहसे करना बहुत मुष्किलकी बात होती है । और ध्यानमे रखिये कि मृत्युके पश्चाद जल्द ही इन घटकोमें गुण-हासज–अवनतावस्था पैदा होती है; दो घटेके अन्दर चाक्षुष ज्ञान मज्जामडल पेशिया सुकड जाती है जिसमें **निझ्सल** की गुणन्हासकी अवस्था और शुन्य स्थान पैदा होते हैं; जीवनबीजकी तहोंमेकी लकिरिया गायब होजाती हैं और सात घटेके भीतर क्रोम्याटिन भी नष्ट होजाता है । और इसी वजहसे कृत्रिम और अनैसर्गिक भाग भूलसे दृष्टिपटलकी नैसर्गिक अवस्था मानी गयी है ।

लेकिन **गालजीने क्रोमसिलव्हर**से अपनी रगानेकी पद्धति शुरू करनेके बाद और इसी समय **अहर्लिकने मेथिलिन ब्ल्यू**से रगानेकी तरकीब शुरुं करनेसे दृष्टिपटलकी अनेक तहे स्पष्ट दिखाई पडने लगी । और इसी समय **रमान यी कजल** के संशोधनसे इस विषयकी नीव पूर्णतया रची गयी ।

दृष्टिपटलकी तहें

दृष्टिपटलमें बाहरीसे भीतरी ओरको नीचे लिखे मुजब तहे होती हैं (चित्र नं. ११३–११४ देखिये) ।

मज्जातन्तु कलातह
- (१) रजित कलातह
- (२) राड और कोनकी तह (बासिलरी लेअर)
- (३) बाहय मर्यादक पत्र (एक्सटरनल लिमिटिंग मेम्ब्रेन)
- (४) बाहय जीवन बीजकी तह (आउटर न्युकलीय लेअर)
- (५) बाहय तन्तुर जालकी तह (आउटर प्रेक्झिफार्म लेअर)

} मज्जाव्यूह १ टप्पा (फर्स्ट न्युरान)

मस्तिष्ककी तह
- (६) आन्तर जीवन बीजकी तह
  - (अ) आडी पेशिया (हॉरीझाटल सेल्स)
  - (ब) द्विध्रुव पेशिया (बायपोलर सेल्स)
  - (क) अमाक्राईन पेशियां

  } मज्जाव्यूह २ टप्पा
- (७) आन्तर तन्तुर जाल (रेटिक्युलर) की तह
- (८) मज्जाकद की पेशियोकी तह (ग्यांगलियन सेल लेअर)
- (९) ज्ञानतन्तु की तह (नर्व फायबर लेअर)
- (१०) आन्तर मर्यादक पत्र (इनटरनल लिमिटिंग मेम्ब्रेन)

} मज्जाव्यूह ३ टप्पा

इन कुल घटकोके बाहरीका संज्ञाग्राहक मज्जातन्तु कलातह, और भीतरीका मस्तिष्क का भाग ऐसे दो सस्थान हो सकते है । भीतरके भागका कार्य मस्तिष्कके कार्य जैसा होता है, और इसकी बनावटमे ही मस्तिष्क जैसे ही मज्जातन्तु और आधार घटक होते हैं ।

(अ) **संज्ञाग्राहक मज्जातन्तुकी कला तह**

सज्ञाग्राहक मज्जातन्तु की कलातहकी बनावटके तीन भाग हो सकते हैं—सबके बाहर अन्तिम इन्द्रिय, फिर जीवन बीज. और भीतरकी अन्तिम तन्तु । हरएक अलग तह मालूम होती है । अन्तिम इन्द्रिय दो किस्मके होते है, जो **राड** और **कोन**की बाहरी तहमे (बासिलरी लेअर) होते हैं; इस तहकी मोटाई ८० मायक्रान होती है । इस तहके नीचे **जीवनबीजोंकी तह–बाह्य जीवन बीजोंकी तह**–होती है; इसकी मोटाई ४० से ५० मायक्रान होती है । इनके अन्तिम तन्तु नीचे जाकर मस्तिष्ककी तह के तन्तुओसे मिलते हैं; जिससे **बाह्य-तन्तुर जालकी** (**कजल**की तह) बनती है (इसी तहको **मूलर** की इन्टर न्युकलीयर लेअर यानी जीवनबीजोकी दरमियानकी तह और **स्कुल्ट्झ**का बाह्य दानेदार तह भी कहते है)। राड और कोनकी तहके नीचे **मूलर** के धारक तन्तुओके आडे भागके सिरे पारस्परीकसे मिलनेसे **बाह्य मर्यादक पत्र** (एक्सटरनल लिमिटिग मेम्ब्रेन) बनता है ।

इस कलातहमे रक्तवाहिनियोका अभाव होता है इनको कृष्णपटलकी केशिनियोंमेसे पारपृथक्करणसे लहुरस बाहर आनेसे खुराक मिलना है ।

संज्ञाग्राहक मज्जातन्तु कलातहके मौलिक तत्त्व

राड—राड घटकोकी पेशिया लम्बी बारीक होती है जिनके दो भाग हो सकते है—एक बाहरीका डट्टा जैसा भाग और दूसरा **भीतरका तन्तु** जैसा जिसपर पेशीका जीवन बीज होता है । डट्टा नाजुक नलिका होती है जिसके भी समसमान आकारके और २ ‿ मायक्रान चौडाईके दो भाग होते है । इसके **बाहरीके भागमें** लम्बी दरार और आडी रेषाएँ दिखाई देती है जो कई लोगोंके मतानुसार अलग अलग चपटी तश्तरीया जैसी होती है और अन्य लोगोके मतानुसार यह दृश्य, तन्तु पेच जैसा होनेसे पाया जाता है । इस भागमे **दृक्–चाक्षुष नील लोहित पिंग** (व्हिज्युअल परपल–व्हाडापसिन) होता है और इसका ऐन्द्रिय कार्यमें महत्त्व होता है जिसका बयान अन्य भागमे करेगे । भीतरका तन्तुर भाग अति नाजुक होकर वह राडके जीवनबीज और जीवन रसदार कणके आवरणके छिद्रमेसे पार जाता है और बाह्य तन्तुरजालकी तहमे गोलीदार बनकर खतम होता है जिसके इर्दगिर्द द्विध्रुव पेशीके तन्तुकी शाखाएँ फैल जाती है ।

कोन—कोन पेशियोंमे राड पेशियोके जैसा ही रचना सादृश दिखाई पडता है; तो भी दृष्टिपटलके परिधि भागमे वे राड पेशियोसे आधे आकारकी और कुछ उनसे मोटी होती है । इसके **बाहरके भागका** आकार शंकु जैसा होता है, वह छोटा होता है लेकिन रजित कलातह तक जा पहुँच सकता है । लेकिन इसका विशेष यह होता है कि इसमे चाक्षुष नीललोहित पिगका अभाव होता है । इसका **भीतरी** भाग सापेक्षतासे राडके इसी भागकी अपेक्षा ज्यादह मोटा होता है, इसका तन्तुर भाग ज्यादह मोटा होता है और इसमें एकके

बदले अनेक तन्तु होते हैं। **कोन तन्तु** ज्यादह छोटा और मोटा होता है, और **कोन कण** का जीवन बीज बडा होता है और इसमें राड कणकी अपेक्षा ज्यादह जीवनरस दिखाई पडता है। कोन तन्तु छोटे होनेसे कण बाह्य मर्यादा पत्रके बिलकुल नीचे रहते हैं। कोन तन्तु नाजुक शाखाओंमें खतम होते हैं जिनके इर्दगिर्द द्विध्रुवपेशियोंके तन्तु फैलते हैं।

चित्र नं. ११५ द्विध्रुवपेशियां (गालजीका रंग) ग्रीफके अनुसार

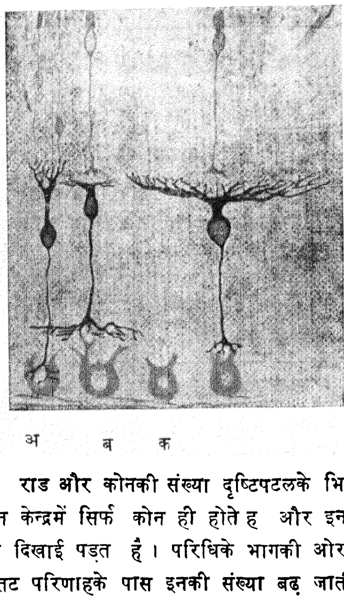

(अ) राड द्विध्रुव ; (ब) कोन द्विध्रुव
(क) अतिवृहन द्विध्रुव-जायन्ट द्विध्रुव पेशि
(१) राड और कोनके जीवन बीज
(२) बाह्य तन्तुर जालकी तह
(३) द्विध्रुव पेशियां—भीतरी जीवन बीज की तह
(४) आन्तर तन्तुर जालकी तह
(५) मज्जाकंदकी पेशियोंकी तह
(६) ज्ञान तन्तुकी तह

राड और कोनकी संख्या दृष्टिपटलके भिन्न भिन्न भागोंमें भिन्न सी होती है। दृष्टि-स्थान केन्द्रमें सिर्फ कोन ही होते ह और इनका आकार इस जगह कुछ राडके आकार जैसा दिखाई पड़त है। परिधिके भागकी ओर इनकी संख्या घटती जाती है लेकिन दन्तु-रिततट परिणाहके पास इनकी संख्या बढ़ जाती है; ऐसा माना गया है कि कोनकी कुल संख्या ७०,००,००० होती है जिनमेंसे तेरह हजार (१३,०००) पीत लक्ष्यमें दृष्टि-स्थानमें और चार हजार (४,०००) दृष्टिस्थान केन्द्रमें होती हैं। राडकी संख्या साडह सात कोटीसे सतराह कोटी होती है ऐसा माना गया है।

(ब) मस्तिष्ककी तह

मस्तिष्ककी तहकी रचना उलझन मिश्र-स्वरूप की होती है। **बाह्य तन्तुर जालकी तह** राड और कोनके तन्तुके सिरेमें नीचेके द्विध्रुव पेशियोंके तन्तुओंके सिरे मिलनेसे बनती है। इनमें धारक पेशियोंके तन्तु भी पाये जाते हैं। इस तहके बाहरीके दो तृतियांश भागमें लम्बे समानान्तर तन्तु और भीतरी एक तृतियांश भागमें जाला जैसा दिखाई पड़ता है। इसकी मोटाई २० μ होती है। इसके नीचे कुल पेशियोंसे भरी हुई **आन्तर जीवनबीज की तह** होती है। इस तहमें तीन तरहकी पेशियोंके जीवनबीज होते हैं —(१) **द्विध्रुव पेशियां** जिनमेंसे चाक्षुष संज्ञाका मार्ग मज्ज्जाकंद पेशियोंमेंके मार्गसे मुदामी होता है।

सहकारी पेशियां जिनसे दृष्टिपटलके घटक अन्योन्यसे जुडे रहते हैं। **आडी और अमाक्राईन पेशियां;** और **मूलरके** धारक तन्तुओंकी जीवनरसदार, पेशियोके जीवन बीज होते है। इसकी मोटाई ३० ~ होती है।

इस जीवन बीजकी तहकी तीन अलग अलग स्पष्ट सफे दिखाई पडती है–बाहरी आडी पेशियोंकी, दरमियानकी द्विध्रुव पेशियोकी और भीतरी अमाक्राइन पेशियोकी सफ। इन पेशियोकी असलमें द्विध्रुव और अमाक्राइन पेशियोंकी अक्षरेषाओका मज्जाकंद पेशियोके ऊपर जानेवाले मज्जातन्तुओंसे संयोग होता है। और इस संयोगसे **आन्तर तन्तु जालकी तह** बनती है चित्र न. ११५ देखिये। इस तहकी मोटाई ३६ ~ होती है और रचना जालादार होती है जिसकी अनेक सफें मालूम होती है। इस तहके नीचे **मज्जाकंद पेशियोंकी तह** होती है; इसकी मोटाई १० से २० होती है और इस तहमें पेशियोकी एक ही सफ होती है, और इन पेशियोंके दरमियान मकडीके आकारकी मज्जाधारक पेशियां (न्युरोग्लियासेल्स) पायी जाती है। इन पेशियोंकी अक्षरेषाएँ ज्ञानतुन्तुकी तहमे जानेसे, चाक्षुप संवेदना मार्ग आन्तर तन्तुर जालसे ज्ञानतन्तुतक मुदामी होता है। आखरी तह **ज्ञानतन्तुकी** तह होती है। यह तह, यद्यपि इसमें कुछ मज्जाधारक पेशियां होती है तो भी असलमें ज्ञानतन्तुओकी बनी है। ये ज्ञानतन्तु ज्यादह तौरसे, मज्जाकद पेशियोंसे पैदा होनेसे, केन्द्रगामी (सेन्ट्रीपिटल) होते है और इनसे चाक्षुष सवेदना दृष्टिरज्जुद्वारा मस्तिष्कको जा पहुँचती है। इनमेके कुछ नाजुक तन्तु केन्द्रत्यागी (सेन्ट्रीफ्युगल) होते है, और मज्जाकंद पेशियोंसे पार हो कर अमाक्राईन पेशियोंके या तन्तुर जालके इर्दगिर्द फैल जाते है। ये सब तन्तु दृष्टि रज्जुमे जानेके लिये त्रिज्ज्या जैसे जाते हैः और इसी वजहसे नेत्रबिम्बके पास यह तह ज्यादह २० से ३० ~ मोटा होता हु। लेकिन यहांसे परिधिकी ओरको इसकी मोटाई कमतर होती जाती है; दन्तुरिततट परिणाहके पास इसको मज्जाकंद पेशियोकी तहसे जानना मुष्किल होता है। दृष्टिपटलकी नैसर्गिक अवस्थामे इन ज्ञानतन्तुओ पर वसादार मायलिन आवरणका अभाव होता है। यह आवरण शुक्लपटके चालन पत्रके पास उन पर चढता है। दृष्टिपटलकी कुल तहोंमेंसे **मूलर**के धारकतन्तु पार जाते है, इनके भीतरी सिरे ज्ञानतन्तुकी तहकी भीतरी ओरको पारस्परिकसे मिलनेसे उनका एक पत्र बनता है; जो **आन्तर मर्यादक पत्र** बनता है। इस पत्रसे दृष्टिपटल स्फटिकद्रव्य पिंडसे अलग रहता है।

इन तहोंको रक्तका खुराक दृष्टिपटलकी रोहिणियोसे मिलता है। जिनकी केशिनिया आन्तरजीवन बीजकी तह तक जा पहुँजती है। इन रोहिणियोका विशेष यह होता है कि इनकी शाखाएँ पारस्परीकसे मिलती नही। ये अन्तिम इन्द्रिय जैसी होती है और इनके इर्दगिर्द लसिकावकाशकेही आवरण होते है।

मस्तिष्क संबंधीकी तहोंके मौलिक तत्त्वः—इनके कार्यके अनुसार तीन संस्थान बनते है।

(१) **संज्ञावाहक संस्थानः**—इसमें द्विध्रुव पेशिया और मज्जाकद पेशियोंका समावेश होता है।

(अ) द्विध्रुव पेशियांः—इन पेशियोके पिड आन्तर जीवन बीजकी तहमे होते हैं और इनकी **राडवाली** द्विध्रुव पेशिया और **कोनवाली** द्विध्रुव पेशि ऐसी दो किस्म होती है । **राडवाली द्विध्रुव पेशीका** जीवनबीज बडा होता है । इससे तन्तुकी अनेक खडी तौरकी शाखाएँ बनती है जो अनेक राडके गोलीदार सिरेके इर्दगिर्द फैलती हैं । इसकी अक्षरेषा आन्तर तन्तुर जालमेसे पार जाकर मज्जाकद पेशीकी शाखाओसे मिलती है । **कोनवाली द्विध्रुव पेशी** इनके ऊपरसे आडी तौरकी शाखाएँ निकलती हैं जो कोनकी अक्षरेषाकी शाखाओसे मिलती है, कोनवाली एक द्विध्रुव पेशीका सजोग एकही कोनकी पेशिओंसे होता है; इसकी अक्षरेषा नीचेकी मज्जाकद पेशीकी शाखाओसे आन्तर तन्तुरजालकी तहमें मिलकर खतम होती है । इनके सिवा इस तहमें कुछ बृहन द्विध्रुव पेशियां होती है जिनका जीवनबीज सूची स्तभाकार होता है (चि. न. ११५ देखिये)।

(ब) मज्जाकंद पेशियांः—इनमेसे और बहु ध्रुववाली पेशियोसे चाक्षुप सज्ञावाहक मार्ग आगे जाता है । इन पेशियोंसे आन्तर तन्तुर जालकी तहमे शाखाए जाती है, और इनकी अक्षरेषाएं दृष्टिरज्जुमेसे जाकर मस्तिष्कको जा पहुचती हैं । इनको रंगानेकी तरहके अनुसार इनके स्तरीभूत और सार्वत्रिक फैली हुई डिससेमिनेटेड जैसी पेशिया दिखाई पड़ती है ।

(२) संयोगी या इत्तफाककी पेशियोंका संस्थान (असोसिएशन एलिमेंट्स्)

इस संस्थानमें **आडी पेशियां** और **अमाक्राईन पेशियां** ऐसी दो किस्मकी पेशियां होती है ।

(अ) आडी पेशियांः—आन्तर जीवन बीजकी तहमें पाई जाती है । इनमेकी कुछ छोटी बाहरकी आडी पेशियां होती है जिनकी प्ररोहा बाह्य तन्तुरजालकी तहमे जाती हैं और कुछ बडी भीतरकी आडी पेशिया होती है, जिनमेंकी कई की प्ररोहा आन्तर तन्तुर जालकी तहमें जाती है । इन प्ररोहाओका मीलन कुछ फासले तक फैलकर आखिर उनकी उलझनकी–मिश्र स्वरूपकी–बनावट होती है जो आडे समतलमे रहती है ।

(ब) अमाक्राईन पेशियांः—इन पेशियोके जांबके आकारके जीवन बीज की मुदामी तह आन्तर जीवन बीजकी तहकी भीतरी ओरको होती है । इनकी प्ररोहा आन्तर तन्तुर जालमेंसे पार जाकर उनका मज्जाकंद पेशियोंकी तन्तुओसे संजोग होता है । इन पेशियोंकी तीन किस्म होती है–स्तरीभूत, सार्वत्रिक फैली हुई और इत्तफाककी यानी मेलकी पेशियां (असोसिएशन सेलस) ।

स्तरीभूत अमाक्राईन पेशिया इनकी एक ही अन्तिम शाखा आन्तर तन्तुजालकी तहमें जाती है; सार्वत्रिक फैली हुई पेशियां जिनके अन्तिम शाखाओका मीलन आन्तर तन्तुरजाला तहमें होता है, और संयोगी पेशिया जिनकी शाखा उपशाखाएँ आन्तर तन्तु जालमें, और इसकी लम्बी अक्षरेषा आन्तर तन्तु जालमेसे होकर आन्तर जीवन बीजकी तहमें जाता हैं और इनका संयोग केन्द्रत्यागी तन्तुओसे होता है ।

(३) धारक मज्जा पेशियोंका (ससटेनटाकुलर न्युरोगालिया सेल्स) संस्थान : दृष्टिपटलकी बनावटमें (अ) **मूलर्स** के तन्तु अहम होते हैं। ये लम्बी पेशियां होती हैं। और वे दृष्टिपटलकी कुल तहोंमेंसे सीधी त्रिज्ज्या जैसी जाती है; सिर्फ दृष्टिस्थान केन्द्रके भागमें वे तिरछी होती हैं। इन पेशियोंके जीवन बीज आन्तर जीवन बीजकी तहमें होते हैं। इन पेशियोंमें जीवनरस ज्यादह होता है और उनमें **निझल** के कण पाये जाते हैं। जिसकी वजहसे उनको अन्य मज्जापेशियोंके जीवन बीजसे जान सकते हैं। इन पेशियोंसे दोनों दिशाको तन्तु जाते हैं। इन तन्तुओंसे आडी शाखाएं निकलती हैं जिनका जीवन बीजकी तहोंमें जाला जैसा बनता और तन्तुर तहोंके पृष्ठ पर वे समानान्तर रहती हैं। इनसे मज्जाकंद पेशियोंको या ज्ञानतन्तुकी तहको तन्तु नहीं मिलते, लेकिन कभी मिलते भी हों तो बिलकुल कमतर तादादमें। राड और कोनकी तहके समतलपर उनकी सिरे पारस्परीकमें मिलकर उनका **बाह्य मर्यादक पत्र** बनता है। इनके भीतरी सिरे पारस्परीकसे मिलनेसे **आन्तर मर्यादक पत्र** बनता है। भीतरी सिरोंसे पहले **बेसल कोन्स** या फुट प्लेटसे होते हैं जिनके संयोगसे आन्तरमर्यादिक पत्र बनता है।

(ब) मकडी पेशियां (स्पायडर सेल्स) असलमें ज्ञानतन्तुकी तह और मज्जाकंद पेशियोंकी तहमें अकसर करके दृष्टिरज्जुके शीर्शके नजदीक पायी जाती है। इनके पेशीपिंड कमतर आकारके होते हैं, जिनसे लम्बी, नाजुक तन्तुर प्ररोहा निकलकर वे चारों दिशाको मिल जाती हैं।

चित्र नं. ११६ दृष्टिस्थान या पीतलक्ष्यके केन्द्रमेंका काट

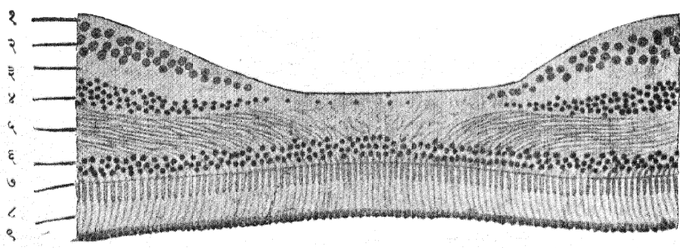

(१) ज्ञानतन्तुकी तह
(२) मज्जाकंद पेशियोंकी तह
(३) आन्तर तन्तुर जाल तह
(४) आन्तर जीवन बीज तह
(५) हेनलेकी तन्तुर तह
(६) बाह्य जीवन बीज तह
(७) बाह्य मर्यादक पत्र
(८) राड और कोनकी तह
(९) रंजितकला तह

दृष्टिपटलके दृष्टिस्थानका या पीत लक्ष्य का भाग

नेत्रगोलकके पिछले ध्रुवकी ओरके दृष्टिपटलके भाग की रचना और तोरसे बनी है जिससे दृक्शक्तिकी तीव्रताको खास मदद मिले। इसीके लिये दृष्टिपटलको मस्तिष्क संबंधीकी तहोंसे पायी जानेवाली तहें फैल जाती हैं और उनके साथकी रक्तवाहिनियोंका इस स्थानमें अभाव होनेसे प्रकाश, किसी भी तरहकी रुकावट बिना संज्ञाग्राहक घटकोंको जा पहुंचता है;

और इसीसे औंधे दृष्टिपटलके गैर फायदे नाकाम होजाते हैं। और इसके सिवा इस स्थानमें मज्जातन्तु कलातहमे फर्क होकर सिर्फ कोन घटक पाये जाते हैं। इस भागके समकेन्द्रिक तीन क्षेत्र होते है। (अ) दृष्टिस्थान या पीत लक्ष्य; (ब) राड सिवा क्षेत्र; (क) दृष्टिस्थान।

केन्द्र

(अ) **दृष्टिस्थान या पीत लक्ष्य** (म्याकुला लुटिया, यलो स्पॉट) इस क्षेत्रकी असली बात यह होती है कि इस भागके मस्तिष्ककी तहोमे पीला रजित द्रव्य होता है। ये तहे केन्द्रकी ओरको गायब हो जानेकी वजहसे केन्द्रस्थ भाग फीका मालूम होता है। यह रजित द्रव्य लाल रंग सिवा प्रकाशसे अच्छा दिखाई पडता है, और काली चमडीवाले लोगोमे भी दिखाई पडता है ऐसा **डिमर** का मत है। **शिवलेरो** और **पोलक**के मतानुसार उम्र बढती जानेसे यह ज्यादह काला होता जाता है, और मृत्युके बाद भी अच्छा दिखाई पड़ता है। **गुलस्ट्रान्ड** के मतानुसार यह मृत्युके पश्चात का फर्क है; लेकिन रंग शोषणकी वजहसे यह जिन्दी अवस्थामे भी पाया जाता है। दृष्टिपटलकी स्थानभ्रष्टताकी अवस्थामें यह दिखाई पड़ता है ऐसा **कोमबर्ग** का शोध है।

दृष्टिस्थान या पीत लक्ष्यकी सूक्ष्म रचना (चित्र न ११६) दृष्टिस्थानकी रचनामे ध्यानमें रखनेकी असल बात यह होती है कि इसमे सज्ञाग्राहक मज्जातन्तु कलातहके मौलिक तत्वोमेके सिर्फ कोन घटक पाये जाते हैं। लेकिन ये इतने छोटे और नाजुक होते हैं कि उनका राड घटकोसे बहुत साम्य दिखाई पड़ता है। इनकी एकके ऊपर एक रची हुई अनेक तहे होती है, इस रचनामे ये तिरछे जैसे रहते हैं और इनके लम्बे तन्तु मध्यभागसे कमान करके समतलको समानान्तर जैसे जाते हैं। जिससे उनकी आडी जैसी रचना दिखाई पड़ती है, और इसी रचनाको **हेनलेकी तन्तुर तह** नाम दिया गया है। इन तन्तुओकी इस रचना की वजहमे दृष्टिस्थानके मध्यभागमे खात बनती हैं जिसमे अन्य भीतरी तहोका अभाव होता है। दृष्टिस्थानके घेरेके पास ये तहे दिखाई पडती हैं और यहा मज्जाकंद पेशियोंकी जिनका दृष्टिस्थानके कोन घटकोसे संजोग होता है पांच या छः सर्फे होती हैं। कोनके तन्तुओंकी दिशाके अनुसार **मूलर**के तन्तुओकी दिशा होजाती है। **हेनले**के तन्तु और मज्जाकद पेशियोके जमावसे इस जगह जो गोल क्षेत्र बनता है उसीको **शिनिट्स** ने **मध्यक्षेत्र** (एरिया सेन्ट्रालिस) नाम दिया है।

दन्तुरिततटपरिणाह (ओरा सिराटा)

दृष्टिपटलके परिधि भागके घेरेमे, जिसको दन्तुरित तटपरिणाह नाम दिया है, उसकी सब तहे गायब होजाती हैं, इन संमिश्र तहोके बदले सिर्फ एक पेशीकी तह बनती है जो तारकातीत पिडके पृष्ठपर रगहीन पेशियोकी तह जैसी आगे जाती है।

नेत्रबिम्ब-दृष्टिरज्जु शीर्ष-(आपटिक डिस्क-आपटिक प्यापिला):—दृष्टिपटलमें ध्यानमे रखनेकी और एक बात होती है। दृष्टिस्थानकी नासिकाकी ओरको करीब ०·८ मि. मि. ऊचाई पर दृष्टिपटलके ज्ञानतन्तु दृष्टिरज्जु बननेके लिये एकत्रित होते हैं। यह स्थान दृष्टिपटलके समतलसे कुछ उभरा हुआसा मालूम होता है। यह नासिकाकी

ओरको, यहां सबसे ज्यादह ज्ञानतन्तु होनेसे, ज्यादह मोटा और उभरा हुआ होता है । यहां ये ज्ञानतन्तु दृष्टिरज्जु बननेके लिये समकोण करके बाहर जाते हैं जिससे बीचके भागमें एक खात सी होती है जो नासिकाकी ओरको, ज्यादह तन्तु होनेसे, किंचित कनपटीकी ओरको ढकेली हुई होती है । इस खातमेंसे दृष्टिपटलकी रोहिणियां, उसकी नासिकाकी बाजूको लगी हुई दृष्टिपटलपर आती हैं । दृष्टिपटलके इस स्थानको **नेत्रबिम्ब** या **दृष्टिरज्जु** शीर्ष कहते हैं। इसका आकार साधारणतया शुक्लकृष्ण नाली, जिसमेंसे दृष्टिरज्जु बाहर जाता है, उसपर अवलम्बित रहता है । इस नालीके मुखके व्यासका औसत नाप १·५ मि. मि. (१·२६ से १·६) होता है । मुख यदि इससे तंग हो तो नेत्रबिम्बकी खात कीप जैसी मालूम होती है; यदि बडा हो तो वह चपटी, ज्वालामुखी पर्वतके मुख जैसी प्राकृतिक प्याले जैसी (चित्र नं. ११७) होती है; यदि बहुतही तंग हो तो खात उभार जैसी मालूम होती है क्योंकि इस जगह कुल ज्ञानतन्तु जमे हुए होते हैं जब दृष्टिरज्जु दाहका आभास (सूडो आपटिक न्यूरायटिज) होता है ।

चि. नं. ११७

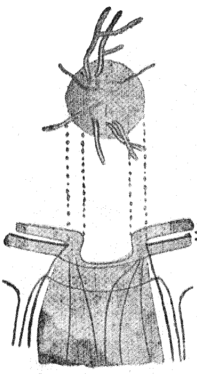

प्राकृतिक प्याला

चि. नं. ११८

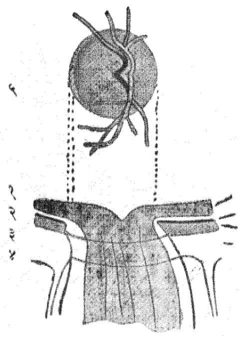

(५) शुक्ल पटलका वलय

चि. नं. ११९

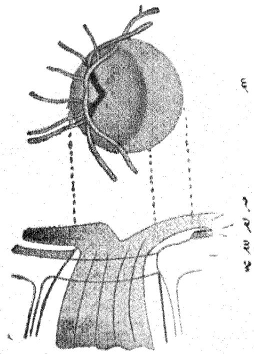

(६) चंद्रकोर

(१) दृष्टिपटल; (२) रंजित कला तह; (३) कृष्णपटल; (४) शुक्लपटल।

दृष्टिरज्जुके नजदीक दृष्टिपटलकी तहें गायब होजाती हैं । इससे तीन अलग अलग दृश्य दिखाई पडना संभाव्य होता है : (१) कृष्णपटल और रंजित तह जब दृष्टिरज्जुतक नहीं पहुंचते तब नेत्रबिम्बके घेरेको शुक्लपटलका सुफेद वलय दिखाई पड़ता है (चित्र नं. ११८) यदि यह अवस्था बडी हो तो वह भाग चंद्रकोर जैसा दिखाई पड़ता है । यह चंद्रकोर साधारणतया कनपटीकी ओरको दिखाई पडती है (चि. नं. ११९) । (२) यदि रंजित द्रव्य नेत्रबिम्बके इर्दगिर्द ज्यादह जमा हो तो शुक्लपटलके सुफेद वलयके बदले काले रंगका वलय दिखाई पड़ता है जिसको गलतसे कोई कोई कृष्णपटलका वलय कहते हैं । (३) इसमें

दृष्टिपटलका संस्थान, जो प्राकृतिक और विकृत दृष्टिसे बिलकुल अलग अलग होते है, अलबत्ता **लेबर**के मतानुसार उनमे कुछ जगह, केशिनियोका संजोग होता है लेकिन आमतौरसे यह घटना नही पायी जाती । दोनो सस्थानका उगम **चाक्षुष रोहिणी**से होता है ।

कृष्णमंडलका रुधिराभिसरण संस्थान (सिलियरी सरक्युलेशन)

इस संस्थानसे नेत्रगोलकके दृष्टिपटल और दृष्टिरज्जुके कुछ भागके सिवा अन्य, सब घटकोको रक्तकी भरती होती हैं । इस संस्थानकी रक्तवाहिनियोके दो भाग होते है।

(१) **तारकातीत पिंडकी पश्चिमी रोहिणियां:**—इनका उगम चाक्षुप रोहिणीसे दो अलग शाखाओसे या ६ से ८ शाखाओका एक मेला जैसा होता है । उगम किसी भी तरहसे हो, नेत्रगोलकके पिछले ध्रुवके पास इनकी करीब २० उपशाखाएँ बनती हैं जो परिशुक्लपटलके घटकोको रक्तकी भरती करनेके बाद शुक्लपटलमेसे तिरछी जैसी नेत्रगोलकमे घुसती है । इनमेसे बहुतेरी दृष्टिरज्जुके इर्दगिर्दके वलयमेसे जाती है जिनको **तारकातीत पिंडकी पश्चिमी छोटी रोहिणियां** कहते है; और इनमेसे दो बडी रोहिणिया नेत्रगोलकके आडे रेषाशमे पहलेकी कुछ बाहरी ओरको शुक्लपटलमेसे घुसती है जिनको **तारकातीत पिंडकी पश्चिमी लम्बी रोहिणियां** कहते हे (चित्र नं. १२०, अक ७)।

तारकातीत पिंडकी पश्चिमी छोटी रोहिणियां दो भागको रक्तकी भरती करती हैः—

(अ) इन रोहिणियोंकी सख्यामेसे ज्यादहतर सीधी कृष्णपटलमे घुसकर उसके पिछले आधे भागको रक्तकी भरती करती है जिनकी शाखा और उपशाखाओके दो दो भाग बनकर वे कृष्णपटलकी केशिनियोंतक अन्दर घुसती जाती हैं ।

(ब) इनमेकी कुछ दृष्टिरज्जुकी ओरको जाकर पारस्परीकसे मिलती है जिसमे दृष्टि-रज्जुके घेरेपर रोहिणी वलय–**झिनका रोहिणी वलय**–बनता है इसका **दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी**के साथ सयोग होता है और इससे दृष्टिरज्जुके नजदीकके भागको, उसके पाया-मिटर आवरणको और चालन परदेको रक्तकी भरती होती है ।

तारकातीत पिंडकी पश्चिमी लम्बी रोहिणियां दो होती हैं एक भीतरी ओरकी और दूसरी बाहरकी ओरकी । ये दोनो तारकातीत पिडकी मज्जारज्जुके साथ कृष्णपटलके बाहरी अवकाशमेसे आगे जाती है, और तारकातीत पिडके नजदीक उन दोनोकी दो दो शाखाएँ बनती है जो तारकातीत पिडकी स्नायुमे घुसती हैं । यहा ये शाखाएँ पारस्परीकमे और तारकातीत पिंडकी पुरो रोहिणियोकी शाखाओसे मिलनेसे उनका **तारकाका बृहन् रोहिणी वलय** बनता है (चित्र न. १२०, अक १५)।

(२) **तारकातीत पिंडकी पुरो रोहिणियां:**—साधारणतया इनकी संख्या सात होती है; इनका उगम चाक्षुष रोहिणीकी सरल स्नायुओको जानेवाली शाखाओसे होता है । इन स्नायुकी कण्डराओके साथ दो शाखाएँ होती हैं सिर्फ बाह्य सरल चालनी स्नायुके

कण्डराको एक ही शाखा होती है। ये शाखाएँ शुक्लपटलमें समकोणमें घुसकर तारकातीत पिंडकी स्नायुके पार जाकर तारकातीत पिंडकी पश्चिमी रोहिणियोंकी शाखाओंसे मिलती हैं जहां तारका वृहन् रोहिणी-वलय बनता है (चित्र नं. १२०, अंक १०)।

तारकाका वृहन् रोहिणीवलयः—इससे कृष्णमंडलके सामनेके भागको रक्तकी भरती होती है। इसकी असली शाखाएँ:—(१) तारकातीत पिंडकी स्नायुको जानेवाली; (२) तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओंको पीछेसे जानेवाली शाखाएँ; (३) कृष्णपटलके सामनेके भागको जानेवाली आवर्तक या पुनरागामी शाखाएँ जिनकी संख्या दससे बारा होती है; (४) तारकापर जानेवाली शाखाएँ जिनसे **तारका का लघु रोहिणी वलय** बनता है। इस वलयसे कनीनिकाकी ओरको त्रिज्ज्जा जैसी शाखाएँ जाती हैं।

चित्र नं. १२१ कृष्णमंडलकी रक्तवाहिनियां (**लेबर**)

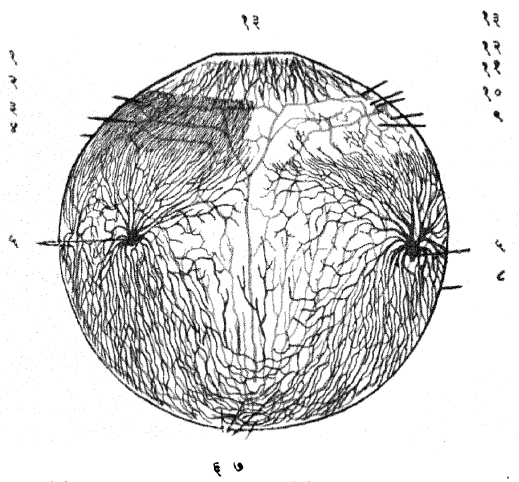

(१) तारकाकी रक्तवाहिनियां
(२) तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओंकी रोहिणिया
(३) तारकातीत पिंडकी आवर्तक रोहिणियां
(४) आरबिक्युलस सिलियारिस
(५) आवर्त नीला
(६) तारकातीत पिंडकी पश्चिमी छोटी रोहिणियां
(७) दृष्टिरज्जु
(८) कृष्णपटल
(९) तारकातीत पिंडकी स्नायु की रोहिणी
(१०) तारकातीत पिंडकी पुरो नीला
(११) तारकातात पिंडकी पुरो रोहिणी
(१२) तारकाका बृहन् रोहिणी वलय
(१३) तारकातीत पिंडकी पश्चिमी लम्बी रोहिणी की शाखा

दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहक कलातहको, अप्रत्यक्ष रीतीसे, कृष्णपटलकी केशिनियोंमेंसे ारपृथक्करणसे रक्तकी भरती होती है यह पहले ही कहा है। उनके जाले दृष्टिस्थानके ास ज्यादह मोटे होते हैं, और कई विकारोंमें सिर्फ इसी भागकी विकृती दिखाई देनेसे, अनुमान कर सकते हैं कि इसकी रोहिणी स्वतंत्र होगी। कृष्णपटलके पिछले भागमें जिसको

तारकातीत पिंडकी पश्चिमी छोटी रोहिणियोंसे, और सामनेके भागमे, (जिसमें तारकातीत पिडकी लम्बी पश्चिमी रोहिणिकी आवर्तक शाखाओसे रक्तकी भरती होती है, रोहिणियोंकी शाखाओका संगम विपुववृत्तकी अपेक्षा ज्यादह प्रमाणमे होता है; रजित द्रव्यका गुणऱ्हासकी विकृतिमें दिखाई देनेवाला वलयाकार अंधतिलका यही कारण होता होगा ऐसा माना जाता है।

कृष्णमंडलकी नीलाके सस्थान जिनमेसे रक्त वापिस जाता है, तीन होते हैं :—

(१) आवर्त नीलाएँ; (२) तारकातीत पिंडकी पुरो नीलाएँ; (३) तारकातीत पिंडकी पश्चिमी नीला :

(१) आवर्त नीलाओमेसे तारका, तारकातीत पिड और कृष्णपटलका ज्यादहसे ज्यादह रक्त वापिस जाता है। तारका और तारकातीत पिडकी नीलाएँ कृष्णपटलकी नीलाओमेंसे छोटी और बडी आवर्त नीलाओंको मिलती है; आखरीमे इनकी चार आवर्त नीला बनती है, जिसमेसे नेत्रगोलकके इन प्रान्तोका रक्त नेत्रके बाहर निकल जाता है। इन आवर्त नीलाओकी लम्बाई १५·२ मि. मि मानी गई है; ये शुक्लपटलकी नाली-ओमेंसे (४ से ५ मि. मि. लम्बी) तिरछी तोरसे बाहर जाती है। ये चार आवर्त नीलाएँ सम समान फासलेपर ९०° रहती है। ऊपरी जोडीका बाहर निकलनेका स्थान विपुववृत्तके पीछे ७ मि. मि. (नासिकाकी) और ८ मि. मि. (कनपटीकी ओरकी नीलाका) होता है; और नीचेकी जोडीका बाहर निकलनेका स्थान विषुववृत्तके पीछे ५५ और ६ मि. मि होता है। कनपटीकी ओरकी आवर्त नीलाओंका सबध वक्रचालनी स्नायुओकी कण्डरासे रहता है। ऊपरीकी दोनो आवर्त नीला नेत्रगुहाकी ऊपरी नीलामे और नीचेकी दोनो आवर्त नीला नेत्रगुहाकी नीचेकी नीलासे सबध होता है (चित्र न १२१, अक ५)।

(२) तारकातीत पिंडकी पुरो नीला, तारकातीत पिडकी स्नायुके पुरो भागमेसे रक्त लेकर शुक्लकृष्ण सधिके पासके सीदी नालीओमेसे शुक्लपटलके पार जाती हैं। शुक्लपटलमे इन नीलाओंका जाला बनता है जिससे **स्क्लेमकी** नालिका प्रत्यक्ष संबध होता है। शुक्ल-पटलके बाहर आनेके बाद इनका सबध परिशुक्लपटलकी जालाओसे होता है, इनमे तारकापिधानकी किनारके पासके जाला और परिशुक्लपटलकी जाला मिलते हैं। अन्तमे ये नीलाएँ नेत्रगुहाकी नीलाको मिलती हे।

(३) तारकातीत पिंडकी पश्चिमी नीलाओंकी सख्या बहुत कम होती है। इनमेसे शुक्लपटलके पिछले भागका रक्त वापिस जाता है।

इन रक्तवाहिनियोकी बनावट शरीरके अन्य जगहकी रक्तवाहिनियोकी जैसी होती है। शुक्लपटलमेसे पार जानेके बाद रोहिणियोकी स्नायुका भाग गायब होजाता है; कृष्णपलट और तारकाकी रोहिणियोमे कहे तो कह सकते हैं कि वह बिलकूल बे खबरी होता है। इसके अलावा उनके बाहरीके आवरणमे कोलाजिनस घटक ज्यादह होनेसे वह मोटा होता है; यह मोटाई रोहिणियोंकी नालीके आकारसे भी बडी होती है; यह अवस्था तारकाकी रोहिणियोमे ज्यादह पायी जाती है। नीलाओके इर्दगिर्द अवकाश होते हैं, केशिनियां ज्यादह चौडी होती हैं;

शरीरके अन्य भागकी केशिनियोंमेंसे, एक लाल रक्तकण मुष्किलीसे जा सकता है, लेकिन नेत्रकी केशिनियोंमेंसे अनेक रक्तकणकी आडी पंक्ति आसानीसे बह सकती है। इसका केशिनियों मेंके रक्तके दबाव पर असर होता है।

दृष्टिपटलको रक्तकी भरती

दृष्टिपटलकी मध्यरोहिणीके मार्गका वर्णन पहलेही कीया है। (२१९ पन्हा देखिये) इनकी शाखाएं ज्ञानतन्तु तहमें रहती है। इस भागके मार्गमें उसकी **एक आवर्तक शाखा** होती है, जो दृष्टिरज्जुको रक्तसंचय करती है और जो चाक्षुप छिद्र तक जा पहुँचती है; **दूसरा बारीक** शाखाओंका समूह दृष्टिरज्जु और उसके आवरणको जाता है; और तीसरा शाखाओंका समूह चालन परदेको जाता हैं, जहां उनका संयोग, तारकातीत पिंडकी पश्चिमी रोहिणीके **झिन**के रोहिणी वलयके शाखाओंसे होता है। ध्यानमें रखिये कि इसी एक ही जगहमें कृष्णमंडल और दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियोंके संस्थानका संयोग होता है।

चित्र नं. १२२ दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियां

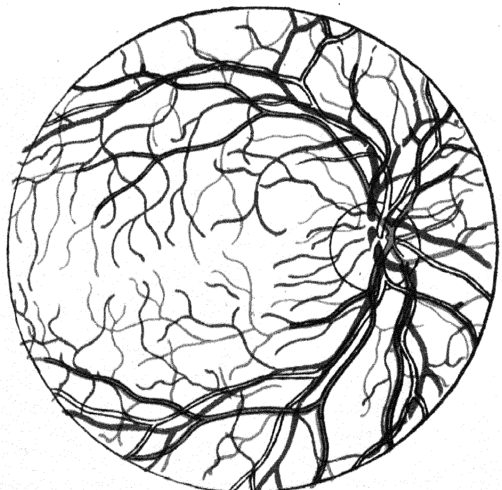

दष्टिपटलकी मध्य रोहिणी नेत्रगोलकमें घुसते ही उसकी **ऊर्ध्व** और **अधो नेत्रबिंबकी रोहिणी शाखा** ऐसी दो शाखाएँ होती है; और फिर नेत्रबिम्बसे कुछ फासलेपर इनकी नासिका और कनपटीकी रोहिणी शाखा होती है। इन हरएक शाखाओंकी दो दो शाखाएं होती जाती है और जब वे दन्तुरिततटपरिणाहको जा पहुंचती है तब वे पीछेकी ओरको घुमकर उनकी नीलाएं बनती हैं। इन शाखाओंके सिवा एक या दो नासिका रोहिणी नामकी शाखा होती है जो नासिकाकी ओरके नेत्रबिम्बको जाती है, और एक या दो रोहिणि-योंकी शाखा कनपटीकी ओरसे दृष्टिस्थानको जाती है।

दृष्टिस्थानके भागके सिवा दृष्टिपटलके अन्य सब भागोको रक्तकी भरती एकही तरहसे होती है; लेकिन दृष्टिस्थानके इर्दगिर्द रक्तवाहिनियोकी बडी कमानिया जैसी होती है और जिनसे बारीक शाखाए दृष्टिस्थानकी तरफ जाती हैं, लेकिन दृष्टिस्थान केन्द्रके ०·४ से ०·५ मि मि. का भाग विना रक्तवाहिनियोका होता है। दृष्टिस्थान केन्द्रके इर्द-गिर्दके भागको जानेवाली ऊपरी और नीचेकी शाखाओसे मध्य भागमे रक्तवाहिनियोकी आडी गुम्फा जैसी बनती है, और इसी वजहसे इन रोहिणियोमे जब डाट बैठ जाता है तब केन्द्रस्थ अंधतिलकमे यह भाग आडा जैसा भासमान होता है।

नीलाएं :—ये परिधिकी ओरको रोहिणिया जैसी नही जाती लेकिन इनमेकी बडी नीलाएं जमावसे जाती हैं। ये नीलाए दृष्टिपटलकी मध्य नीलाको प्रत्यक्ष जा मिलती है जो मधुकोषसम नीला विवरमे प्रत्यक्ष जाकर मिलती है; लेकिन कभी कभी इनमे और चाक्षुष नीला, अकसरकरके ऊपरकी चाक्षुष नीलामे सयोग होता है। इस तरहसे दृष्टि-पटलके नीला सस्थानका और आवर्त नीला सस्थानका सयोग होता है· और कभी मधु-कोषसम नीला विवरमे रक्त जम गया हो तो रक्त वह जानेका यह अन्य मार्ग होता है।

कहा जाता है, कि दृष्टिपटलकी रोहिणियां नेत्रान्तरगदर्शक यंत्रसे परीक्षा करनेसे दिखाई पडती है। लेकिन ध्यानमे रखनेकी अहम बात यह होती है कि रोहिणियोमेका सिर्फ रक्त सुतून–खभा जैसा मालूम होता है, उनकी दीवाले नही दिखाई पड़ती। इन रोहिणियोकी बडी शाखाओमेका रक्तका खंभा या सुतून नीलाओमेके रक्तके खभेसे ज्यादह चमकदार मालूम होता है। छोटी शाखाओमे यह फर्क इतना साफ नही होता। रोहिणियोमेका रक्त चमकदार दिखाई पडनेकी वजह यह होती है, कि उनके मध्यमे प्रकाशकी एक लकीर दिखाई पड़ती है: इस दृश्यके कारण का कुछ निर्णय नही हुआ है; शायद यह प्रकाश परिवर्तनसे होता होगा। नैसर्गिक अवस्थामे दृष्टिपटलकी रोहिणियोमे स्पदन या धडक नही दिखाई पड़ती। इसकी वजह यह होती है नैसर्गिक नेत्राभ्यन्तर दबावमे हृदय प्रसरणके असरका प्रभाव नष्ट हो जाता है। नैसर्गिक नेत्रगोलकपर दबान लानेमे रोहिणिया धडकने लगती है। नेत्राभ्यन्तरके दबावमे और रोहिणियोके आन्तर–दबावमे जब फरक होता है तब यह धडक पैदा होती है। लेकिन ध्यानमे रखिये, कि कुछ मिसालोमे **जीगर, फान ग्राफ, डान्डर्स** और अन्य संशोधकोंने इन रोहिणियोंमें नैसर्गिक अवस्थामे स्पदन देखा है।

ऊपर बयान कियी हुई रक्तवाहिनियोके सिवा कुछ अनियमित रक्तवाहिनिया दिखाई पड़ती हैं, जिनको नैसर्गिक जैसी समझना चाहिये, उनका वर्णन करना मुनासिब है।

(१) तारकातीत पिंडीय दृष्टिपटलकी–सिलियो रेटायनल–रक्तवाहिनियां:—साधारणतया ये रक्तवाहिनिया छोटी और अकेली होती हैं; इनका उगम **हालेर** के वलयसे होता है और ये नेत्रबिम्बकी कनपटीकी ओरकी किनारमे नजरमे आती हैं। इसका उगम मध्य रोहिणीके दृष्टिरज्जुमेके भागमेसे होना सभव है। इससे नेत्रबिम्ब और दृष्टिस्थान इनके दरमियानके भागको रक्तकी भरती होती है। यदि दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणीमे इस शाखाके सामने डाट बैठ गया हो तो दृष्टिपटलके कुछ भागको इससे रक्तकी

भरती होनेसे उस भागका सज्ञाग्राहक कार्य चालू रहता है। आमतौरसे ये रोहिणियां ही होती है। नैसर्गिक नेत्रमें १० से १५ प्रतिसैकडा मिसालेमे ये पायी जाती है।

(२) आपटिको सिलियरी रक्तवाहिनियां:—ये दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणीकी शाखाए होती हैं और ये दृष्टिपटलको स्पर्श किये विना सिधी कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियोके सस्थानमें जाती हैं। ये रक्तवाहिनियां काचता, दृष्टिरज्जुशीर्षका दाह, और जखम इन विकृत अवस्थाओमे नयी जैसी बनती हैं; नैसर्गिक तौरमे नही दिखाई पडती।

नेत्रके वक्रीभवन दोषका दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियोपर असर होता है; ऱ्हस्व दृष्टिके लम्बे नेत्रगोलकमे रक्तवाहिनिया तनी जैसी होकर नेत्रतलको लर्गा जैसी दिखाई पड़ती है। इसके अलावा दीर्घदृष्टिके छोटे नेत्रगोलकमे उनको काफी जगह न मिलनेसे वे टेढीमेढा जैसी हो जाती है। कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियोपर यही असर दिखाई पड़ता है। दृष्टि-पटलकी रोहिणी और नीला पारस्परीकको पेंच जैसी लपेटती है। लेकिन एक रोहिणी अन्य रोहिणीको या एक नीला अन्य नीलाको नही लपेटती।

रक्तवाहिनियोकी दीवालोके इर्दगिर्द लसिकावकाश होता है। इसका शोध पहले पहल सन १८६५ मे **हिज** शरीर शास्त्रज्ञने किया था।

नेत्रगोलकमेकी रक्तवाहिनियोका आकुचन करनेवाली मज्जातन्तुओका अस्तित्व प्रस्थापित हुआ है, लेकिन **पारसन**के मतानुसार उनके प्रसरणकारक तन्तुओका अभीतक पूरा शोध नही लगा है।

नेत्रान्तरंगदर्शक यत्रसे नैसर्गिक नेत्रतलको देखनेमे दृष्टिपटल और कृष्णपटल इन दोनोकी रक्तवाहिनिया एक साथ दिखाई पडती हैं। उनमेका भेद नीचेकी तसबीरसे ध्यानमे आजायेगा:—

दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियां	**कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियां**
ये गोलाकार होती है।	ये चपटी होती हैं।
इनमे प्रकाशकी लकीर दिखाई पड़ती है।	इनमे प्रकाशकी लकीरका अभाव होता है
इनकी शाखा उपशाखाओके दो दो भाग होते हैं।	इनकी शाखा अनियमित सी होती है।
इनका पारस्परीकसे संयोग नही होता।	इनके अनेक सयोग होते है।
ये नेत्रबिम्बके पास मिलनेको जाती है।	इनकी एक दिशा नही होती; ये आवर्त-नीलाकी ओरको मिलनको जाती हैं।
ये ऊपरकी ओरको रहती है।	ये नीचे गहराईमे रहती है।

चाक्षुष लसिकावकाश

नेत्रगोलकके शुक्लास्तरमें ही सिर्फ लसिकावाहिनियां पायी जाती हैं। अन्य भागमे इनके लसिकावाहिनियोके बदले लसिकावकाश होते हैं, जिनके पुरो और पश्चिमी ऐसे दो संस्थान होते हैं।

नेत्रगोलकके सामनेके भागकी लसिका नेत्रगोलकमेंकी पुरो और पश्चिमी वेश्मनीमें जाकर वहांसे कांकताकार बंदमेंसे स्क्लेमकी नालीको जा पहुंचती है। यहांसे वह तारकातीत पिंडकी पुरो नीलामें जाती है।

पश्चिमी लसिकावकाश ये होते हैं:—(१) हायलाईडकी नाली; (२) शुक्लपटल और कृष्णपटलके दरमियानका परिकृष्णपटल अवकाश: इनका आवर्तनीलाओके इर्दगिर्दके अवकाशके द्वारा टेननके अवकाशसे संबंध होता है; (३) टेननका अवकाश जो शुक्लपटल और टेननके आवरण इनके दरमियान होता है। यहांसे लसिका इकट्ठी होकर वह (४) दृष्टिरज्जुके आवरणोके दरमियानके अवकाशमे और (५) दृष्टिरज्जुके आवरणके बाहरी अवकाशमे जाती है। दृष्टिपटलकी नीला और केशिनियोके इर्दगिर्द और शायद रोहिणियोंके इर्दगिर्द, लसिकावकाश होते हैं। पुरोभागके लसिकावकाशमें रुकावट होनेसे काचता पैदा होती है।

नेत्रगोलकमेंके वक्रीभवन मार्ग

नेत्रगोलकके पटलोके भीतर तीन पारदर्शक वक्रीभवन मार्ग होते हैं जिनके नाम है. चाक्षुषजल, स्फटिकद्रव पिंड और स्फटिकमणि। प्राचीन पाश्चात्य शास्त्रज्ञ इनको एक्वियस, व्हिट्रियस और क्रिस्टलाईन ह्युमर्स कहते थे। यद्यपि द्रवकल्पनाका अभी लोप हो गया है तो भी अभी पहलेको एक्वियस ह्युमर कहते है: दूसरेको व्हिट्रियस बाडी और तीसरेको जिसमें पेशीदार घटक होते है क्रिस्टलाईन लेन्स कहते हैं। पहले दो का पारस्परीक संबंध होता है; तीसरा बिलकुल अलग घटक होता है।

ध्यानमें रखिये कि नेत्रगोलकमेंका द्रवभाग, कृष्णमंडलके केशिनियोमेंसे पारपृथक्करणसे पूर्व वेश्मनीमें इकट्ठा होता है। ये केशिनियां सापेक्षसे अभेद्य होनेसे यह पारपृथक्करणसे पैदा हुआ जल सफा और पारदर्शक होता है, जिसमे जीवन रसके कोलाईड घटकोका कुछ अंश पाया जाता है, लेकिन रक्तके प्रसरण दार घटक **उष्णता गतिदार अवस्थाका समतुलन**का–थरमोडायनामिक ईक्वलीब्रियमका–समानुपातके अनुसार पाये जाते हैं। नेत्राभ्यन्तरका द्रव भाग जो पूर्व तथा पश्चिमी वेश्मनीमे भरा रहता है उसीको चाक्षुष जल नाम दिया है। शेष भाग जो स्फटिकमणिके पिछले अवकाशमेके लसलसे प्रतिस्फटिक पिंडसे मिलता है, उसको स्फटिकद्रव पिंड नाम दिया है।

चाक्षुष जल की पैदाईश कृष्णमंडलसे होती है यह बात मानी गई है, लेकिन वह किस तरहसे होती है इस बारेमें अभीतक एकमत नही हुआ है। **ट्रीचर कालिन्स** के मतानुसार यह तारकातीत पिंडकी ग्रंथीओका आश्राव (सेक्रिशन) होता है; अन्य संशोधकोंके मतानुसार यह सादा **छाना हुआ** जल है; और दूसरे कई लोग मानते हैं, कि यह दोनों क्रियाओंसे पैदा होता है।

चाक्षुष जलकी प्रतिक्रिया नमकीन (क्षार) जैसी होती है; इसका विशिष्ट-गुरुत्व (यानी वह संख्या जो यह बतलावे कि अमुक वस्तु पानीसे कितने गुना

भारी है) १.००५२ होता है, और इसका वक्रीभवनका दर्शनांक (आवर्तनांक) १.३३६६ होता है। इसकी रासायनिक रचनामें ९६.६८७ भाग पानी, ०.१२२३ भाग ओज द्रव्य और १.१९०७ भाग नमक होता है। इसका कुल वजन ३.५ से ५ ग्रेन होता है। विकृत अवस्थाओंमें यानी **तारकादाह, तारका-तारकातीत पिंडका दाह, कांचतामें** चाक्षुष जलमें ओज द्रव्योंका प्रमाण बढजाता है; **पारसन**के मतानुसार इसकी वजह यह होती है कि इन विकारोंमें कृष्णमंडलकी रक्तवाहिनियोंकी दीवालोंकी जरर पैदा होती है।

स्फटिकद्रव पिंड (व्हिट्रीयस बाडी)
स्थूल शरीर

स्फटिकद्रव पिंड प्रतिस्फटिक जैसा लसलसा पारदर्शक घटक स्फटिकमणिके पीछेके अवकाशमें भरा रहता है: **हायलाईड पत्र** नामके आवरणसे यह लपटा रहता है। साधारण तया नेत्रगोलकके भीतरी आयतनका दो बटे तीन भाग इससे भरा रहता है। इसका आकार नेत्रगोलकके पटलोके बांकके अनुसार होता है: इसके सामनेके भागमें तश्तरीके आकारकी खात होती है जिसमें स्फटिकमणि ठीक बैठ रहता है। इस खातको **पटेलर फास्सा** भी कहते है। यह पिंड दृष्टिपटलके नेत्रबिम्बके पास और सामनेकी ओरको दन्तुरिततट परिणाहके इर्दगिर्द तारकातीत पिन्डकी १५ मि. मि चौडाईकी कलातहको सख्त चिपका रहता है। विकृत अवस्थासे जब यह सुकड जाता है या मृत्युके बाद इसको दृढतासे पक्का किया जाता है तब भी ये दोनो चिपके हुए स्थान कायम रह जाते है। ध्यानमे रखिये कि जब स्फटिकद्रव पिड फटकर अलग हो जाता है। तब सामनेका कलातहका स्थान इसके साथ अलग हो जाता है। स्फटिकमणिको भी ८.९ मि. मि. चौडाईके वलयसे यह चिपका रहता है; स्फटिकमणिके शेष भागमें और इसके दरमियान केशमय अवकाश रहता है; इसीको **इगर्लेकी लकीर** कहते हैं। रुग्णविषयक अवस्थामे इसमे जब लहु घुस जाता है तब यह स्फटिकमणिकी किनारको समकेन्द्रिक जैसी दिखाई पडती है। स्फटिकद्रव पिडके मध्यभागमें नेत्रबिबसे स्फटिकमणिके पिछले पृष्ठ तक जानेवाला हायलाईड लसिकावकाश होता है, जिसको **क्लोकेकी** या **स्टिलिंग**की नाली कहते हे (चित्र नं. ११२ देखिये)। कललकी अवस्थामें इसमें **हायलाईड रोहिणी** रहती है। स्फटिकद्रव पिडसे दृष्टिपटलको साहरा मिलता हैं; और इसका यह कार्य वक्रीभवनमेंके इसके कार्यकी अपेक्षा ज्यादह महत्त्वकी बात है। इसका वक्रीभवनका दर्शनाक कमतर (१.३३६) होता है। इसके रासायनिक रचनामे ९८.५ प्रति सेकडा पानी होता है और कुछ घन, द्रव्य, क्षार, एक्सट्राकटिव्हज प्रोटीड और न्युकलियो अलब्युमिन होते हैं।

स्फटिकद्रव पिंडकी सूक्ष्म रचना

जिन्दी अवस्थामे नेत्रगोलकको स्लिट लॅम्पसे देखनेसे स्फटिकद्रव पिडमे धारक रचना, जो जालादार पत्र जैसी होती है, दिखाई पडती है। प्रकाशके मार्गमें अनेक बारीक तन्तु जैसे घटक (खास तन्तु नही) दिखाई पडते है। हायलाईड पत्र, जिसके अस्तित्वके संबंधमे पहले संदेश था, होता है ऐसा हालके संशोधनसे शाबित हुआ है।

इनका आकार मायक्रानातीत का होता है। एक घंटेतक ये स्थिर रहकर बादमें उनमें चलन भासमान होता है । पहले पहले वह गति बहुत मंद होती है, फिर गति जल्द होकर आखिरमें वह **ब्राउनियन** गति जैसी होती है । इन तन्तु सदृश घटकोंके मणि जैसे बने है ऐसा भास होता है और फिर तन्तुके सिरेको मणिकी माला लटकाई है ऐसा भास होता है । इन तन्तुओंका खास तन्तुओंसे बिलकूल समानता नहीं होती । ये लसलसामें घोलकी अवस्थामें होते हैं, इससे ख्यालमें आ जायेगा की स्फटिकद्रव पिंडमें कोलाईड लसलसा स्फटिककी रचना होती है। इनको पेशिदार घटक कहना मुनासिब नहीं होगा बल्कि पेशिजन्य घटक ।

इसके रचनामें दिखाई देनेवाले कुछ फर्क

इसकी अहम रचनाके दो भागोंमें फर्क दिखाई पडते हैं, (१) झिनके वलयके पासके तन्तु खडबडे होते हैं और एकत्रित जम जाते हैं जिससे स्फटिकमणिको साहरा मिलता है; इसका वर्णन अन्य जगहमें किया है । फर्कका दूसरा भाग स्फटिकमणिके पीछे होता है । यह नेत्रगोलके मध्यमें तंग नली जैसा नेत्रबिंब तक जाता है, जिस जगह यह थोडा चौडा होता है । इस नालीके मध्य भागको **क्लोके**की या स्टिलिंग की हायलाईड नाली कहते हैं, सामनेके चौडे भागका स्फटिकमणिके पीछेका अवकाश (रीट्रो लेन्टलस्पेस) और पीछेके चौडे भागको **मारटेग्लानीका** अवकाश कहते हैं ।

स्फटिकमणि

नेत्रगोलकके दृक्संधानके व्यापारका स्फटिकमणि यह एक अहम घटक होता है।

चित्र नं. १२३ स्फटिकमणि

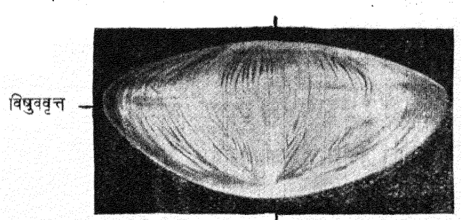

स्फटिकमणि पारदर्शक युगल उन्नतोदर पिंड होता है और वह स्फटिकद्रव पिंडके सामनेके भागके तश्तरीके आकारके खातमें (पटेलर फासा) रहता है, इसका परिधि भाग **झिनके** वलयके तन्तुओंसे लगा रहता है, और इसके सामनेके भागपर तारका रहती है जिसको इससे साहरा मिलता है । इसका सामनेका पृष्ठभाग चपटे दीर्घ वृत्ताकार होता है, जिसका पूरा बांक पुरोध्रुवमें होता है; इसका पिछला पृष्ठभाग सामनेके भागसे ज्यादह बांकदार पर वलय जैसा होता है और इसका मध्यभाग पश्चिमी ध्रुव होता है । इन दोनों ध्रुवोंको

जोडनेवाली रेषाको स्फटिकमणिका अक्ष कहते हैं। स्फटिकमणिकी गोल किनार और तारकातीत पिन्डकी प्ररोहामें ०·५ मि. मि. का अवकाश होता है। स्फटिकमणिके घेरेके इर्दगिर्द **पेटिटकी नाली** होती है जो झिनके वलयके तन्तु फैल जानेसे बनती है। इन तन्तु-ओंके बारीक छिद्रोंमेंसे पेटिटके नालीका संबंध सामनेकी पश्चिमी वेश्मनीसे और पीछेके स्फटिकद्रव पिंडसे हो सकता है। स्फटिकमणिकी परीक्षामें उसका **केन्द्रस्थ भाग,** उसका **गाभा** और उसका **आवरण** इनका विचार करना चाहिये। स्फटिकमणिके आकारमें फर्क हो सकता है जिससे प्रकाशका वक्रीभवन कमतर या ज्यादह हो सकता है; चाक्षुष दृक्शास्त्रीय व्यूहका यह एक बेनाजीर घटक होता है।

स्फटिकमणिके नापः—गर्भावस्थाके चार से सातवे मासतक स्फटिकमणिका विकास जल्द होता है; इसकी वजह यह होती है कि, इसके आवरणके इर्दगिर्द रक्तवाहिनि-योंका जाला होता है जिससे इसको पोषक द्रव्य मिलते हैं। इसके पिछले भागको पोषक द्रव्य मध्य हायलाईड रोहिणिसे और सामनेके भागको तारकातीत पिंडकी पुरोरोहिणीसे मिलता है। कनीनिकाके सामनेके इस रक्तवाहिनियादार आवरणके भागको **कनीनिका** पत्र (प्युपिलरी मेम्ब्रेन) कहा है जिसके अवशेष कभी कभी नवजवानोंमे तारकापिधानके सूक्ष्म-दर्शक यंत्रसे और स्लिट लैंम्पसे दिखाई पडते हैं।

स्फटिकमणिके सामनेसे पीछे जानेवाले अक्षकी लम्बाई **प्रिस्टले स्मिथ** के सशोधनके अनुसार ४ ५ से ५ मि. मि. होती है; बूढे पनमें यह नाप ६ मि.मि. होता है; इसका आडा नाप ८.६७ से ९.६२ मि. मि. होता है; इसका वजन ०.२ ग्राम और इसका आयतन ०.२५ क्यु. सें. मि. और इसका विशिष्ठ गुरुत्व १.१२१ होता है।

इसकी रासायनिक रचनामें, मालुम हुआ है कि ६० प्रति सेकडा पानीका अंश, ३५ प्रति सेंकडा घुलनशील और २.५ अनुघल ओजस द्रव्य, २ प्रति सेकडा चरबीदार घटक जिनमें कुछ कोलोस्ट्रिन भी मिला रहता है और ०.५ रक्षा का प्रमाण होता है। दूरीका देखनेके समय स्फटिकमणिके सामने बांकदार पृष्ठकी त्रिज्ज्या १० मि. मि. और नजदीकका देखनेके समय इस त्रिज्ज्याका नाप ६ मि. मि. होता है। स्फटिकमणिका सामनेका पृष्ठ उसके पीछेके पृष्ठसे कमती बांकदार होता है। स्फटिकद्रव पिंडके खातमें स्फटिकमणिका पिछला पृष्ठ गडा रहता है। कोई लोक मानते हैं कि इस खातमें हायलाईड पत्रका अभाव होता है, लेकिन जब स्फटिकमणिको आवरणके साथ निकाला जाता है तब इसका अस्तित्व शाबित करना संभाव्य होता है ऐसा **कर्कपाट्रिक** का कहना है।

स्फटिकमणिकी सूक्ष्म रचना बराबर समझमे आनेके लिये उसके विकासका संक्षिप्तमें बयान करना मुनासिब होगा। ध्यानमें रखिये कि स्फटिकमणिका विकास कललकी बाह्यत्वक पटलकी पेशियां अन्दरकी ओरको घुसकर जो इसका पिंड बनता है, उससे होता है; इन पेशिओंके आन्तरोत्सर्गसे उनके इर्दगिर्द आवरण बनता है। इस पिंडकी सामनेकी दीवालकी पेशियां जनमभर वैसी की वैसी स्फटिकमणिकी कलातह की पेशियां रहती हैं; इस पिंडकी पिछली दीवालकी पेशियोंके कललकी अवस्थामें प्राथमिक तन्तु बनते हैं जो इस पिंडके

खोखले भागमें घुसकर स्फटिकमणिके मध्यभागके तन्तु बनते हैं, और इस पिंडकी विषुववृत्तकी पेशियोंका कार्य जीवनभर चालू रहता है जिससे स्फटिकमणिका विकास एकसहा बढता रहता है। विषुववृत्तकी ये पेशियां, दोनों ध्रुवकी ओरको, सामने कलातहके नीचे और पीछे आवरणके नीचे बढती जाकर प्राथमिक तन्तुओंको घेरकर उनको आच्छादित करती हैं। इस तौरसे स्फटिकमणिके एकके बाहर एक ऐसे अनेक क्षेत्र या मंडल बनते जाते हैं; यानी मध्य भागकी पेशियां सबसे पुरानी होती हैं और उनपर नयी पेशियोंकी सर्फे चढती जाती हैं इस तरहसे जीवनभर उम्रके अनुसार स्फटिकमणिका आकार बढता रहता है।

स्फटिकमणिके रचनाके अनुसार उसके तीन भाग होते हैं: (१) आवरण; (२) कलातह और (३) स्फटिकमणिकी गाभा या अहम माल।

चित्र नं. १२४

स्फटिकमणिका आवरण और उसके नीचेकी कलातह (विषुववृत्तका भाग)

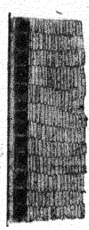

चित्र नं. १२५

५९ उम्रके मनुष्य उम्रके स्फटिकमणिका रेखांश-मेंका काट

अ वलयाकार पत्र; ब स्फटिकमणिका आवरण; क स्फटिकमणि की कलातह; गा स्फटिक-मणिका गाभा; स कलातहकी समतल।

स्फटिकमणिका आवरण

स्फटिकमणिका आवरण उसको पूर्णतया घेरता है; यह साफ पत्र जैसा होता है जिसकी स्पष्ट रचना नहीं दिखाई पडती। यह विकृत अवस्था या रासायनिक क्रियाको अच्छी तरहसे रोक सकता है; यह लचीला होनेसे इसमें काट करेसे काटा हुआ भाग पीछे मुड जाता है। इसकी रचनामें दो तहें होती हैं, जिनको खास तरहसे रंगनेसे स्पष्ट देख सकते हैं। एक खास आवरण और उसके बाहरका नाजुक वलयाकार ग्रानुलर-पत्र जो विकृत अवस्थामें अलग हो जाता है।

स्फटिकमणिके आवरणकी मोटाई उसके भिन्न भिन्न भागोमे भिन्नसी होती है, और उम्रके बढनेके साथ साथ मोटाई बढती जाती हैं। इसके पिछले ध्रुवके पास यह सबसे पतला होता है। इस मोटाईके फरकसे स्फटिकमणिके आकारपर फरक होता है। दृक्-संधानके व्यापारमे स्फटिकमणिका सामनेके पृष्ठका मोटा भाग चपटा होता है और पिछले पृष्ठके मोटे भागसे इस पृष्ठकी नतोदरता बढ जाती है। सामनेकी ध्रुव की मोठाईमे उम्रके अनुसार दिखाई देनेवाली मोटाई इस तरहकी होती है:—१४ दिनकी उम्रमे ६ मि. मि.; दो बरसेमें ८; १९ बरसमे १२, ३५ बरसमे १४, ४० बरसमे १६ मि. मि. होती है।

स्फटिकमणिके आवरणके नीचेकी कलातह

यह कलातह सामनेके आवरणके नीचे एक पेशीदार तह होती है और यह विषुववृत्त तक ही पायी जाती है। इसके तीन क्षेत्र हो सकते है। सामनेके ध्रुवके नजदीकका भाग जिसकी पेशियां बडी और प्यालेके आकारकी होती है, जिनके दरमियान जीवनरसका सेतु जैसा होता है और जिनका जीवनबीज बडा और दीर्घवृत्तका होता है (चित्र नं. १२४ देखिये)। विषुववृत्तकी ओरकी पेशिया छोटी, खभे जैसी गोल जीवनबीज वाली होती है। खास विषुववृत्तकी भागकी पेशिया रेखाशकी दिशामे रहती है (चित्र न. १२५ देखिये); उनका आकार सूचीस्तभ जैसा बनता है। इनका भीतरी ओरका भाग सामनेके आवरणकी कलातहके नीचे जानेके लिये पहले लम्बा होकर फिर तिरछा होता है। इसी समय आवरणकी कलातहकी पेशियां स्फटिकमणिके नवजात तन्तु जैसी होती है। इनका भीतरी ओरका सिरा (अब सामनेका भाग) आगे घुसता जाता है, और इसका बाहरी सिरा उसके सामनेकी पेशीसे पीछे ढकेला जाता है। यानी यह सिरा जो पहले आवरणको लगा रहा था वह अब इस तन्तुका पिछला सिरा होता है, और पेशीका सिरा जो आवरणसे पहले दूर था वह अब तन्तुका सामनेका सिरा होता है। यानी पेशीका असली अक्ष ९० अंशमेसे घूम जाता है। जब पेशियोके स्फटिकमणिके तन्तु बनते हैं तब उनके जीवनबीज एक जगह जमा होजाते है; उनका एक वलयसा बनता है, और उनके सिरे सामनेको जाते है।

स्फटिकमणिका गाभा या अहम माल (लेन्स सबस्टन्स)

कलातहकी पेशियोसे स्फटिकमणिके तन्तु बनकर उनसे स्फटिकमणिका गाभा या अहम माल बनता है यह ऊपर ही कहा है। बिलकुल बाहरी या ऊपरके नये बने हुए तन्तुओंका आकार पहले त्रिपार्श्व जैसा होता है फिर वे चपटे होते हैं (८ से १० मि. मि. ८ से १२ μ से २ μ) इनका आडा काट शटकोनाकृति दिखाई पड़ता है। मध्य भागके तन्तु अनियमित आकारके होते हैं। विषुववृत्तके पासके नवजात तन्तुकी किनार मुलायम होती है और उनका जीवनबीज अण्डाकृति होता है। मध्यभागके तन्तु, जो पुराने होते हैं, उनकी किनार खरखरी होती है और उनमे जीवनबीज नही पाये जाते।

नवजवानके स्फटिकमणिमे नीचे लिखे मुजब भिन्न भिन्न क्षेत्र स्लिट लैम्पसे पहंचान सकते है। च्यूंकि भीतरी तन्तु पुराने होनेसे वे परिधिके ओरके नये बने हुए मुलायम तन्तुओंकी अपेक्षा ज्यादह कठिन और अपारदर्शक होते हे। इससे स्फटिकमणिका केन्द्रस्थ

जीवनबीजका क्षेत्र और परिधिका गाभाका क्षेत्र इनको अलग अलग जान सकते हैं। स्फटिकमणिके आवरणसे नये तन्तु वनते जाते हैं जिससे स्फटिकमणिकी दलदारी, उम्र बढ़ती जानेसे, बढ़ती जाती है।

चित्र नं. १२६
स्लिट लैम्पसे तीन उम्रके बालकके स्फटिकमणिकी दिखाई देनेवाली **बनावट**

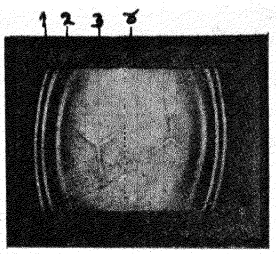

१ पुरो आवरण; २ बालकका केन्द्रस्थ भाग; ३ गर्भावस्थाका भाग; ४ कललावस्थाका भाग।

चित्र नं. १२७ स्लिट लैम्पसे ४० उम्रके नवजवानके स्फटिकमणिकी बनावट

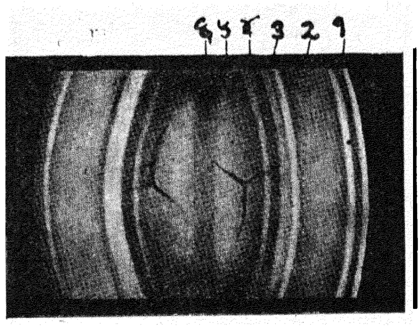

१ पुरो आवरण; २ गाभा; ३ नवजवानका केन्द्रस्थ भाग; ४ बालकका केन्द्रस्थ भाग; ५ गर्भावस्थाका भाग; ६ कललका भाग।

स्फटिकमणिकी कुल मोटाईकी मात्रा एक समझें तो उम्रके अनुसार गाभा और **जीवन-बीजकी मोटाईकी मात्राका प्रमाण :**

उम्र	गाभाकी मोटाई	जीवनबीजकी मोटाई
१६–१९	०·१७८	०·८२२
२०–२९	०·२०७	०·७९३
३०–३९	०·२५६	०·७४४
५०–५९	०·३०९	०·६९१
७०–८१	०·३२५	०·६७५

उम्रके बढ़ जानेके साथ गाभाके जीवनबीज पर नयी नयी तहें जम जाती है जिनका मिश्र स्वरूप लैम्पसे नवजवानोंमें देख सकते हैं (चित्र नं. १२७ देखिये)।

(अ) **जीवनबीज** (१) कलल अवस्थाका (१ से ३ मास) जीवनबीज क्षेत्र मध्य भागमें सफा दिखाई पड़ता है, यह प्राथमिक स्फटिकमणिके तन्तुओंका बनता है और यह पारदर्शक होता है। इसके बाहरकी ओरको (२) गर्भावस्थाका (३ से ८ मास) जीवन-बीजका क्षेत्र होता है: (३) बाल्यावस्थाका जीवनबीजका क्षेत्र यह गर्भावस्थाकी आखरी अवस्थामें शुरू होकर नवजवानीकी अवस्था खतम होनेतक बढ़ता रहता है: (४) बालिग जीवनबीजका क्षेत्र बालिग दशा खतम होनेके बाद पैदा होता है।

(ब) बाहरी भाग इसमें जीवनबीज और आवरणके नीचेकी कलातहके दरमियानका भाग होता है: इस भागके तन्तु नये और दब जानेवाले होते हैं।

स्फटिकमणिके विकासपर असर करनेवाली विकृतियोंकी वजहसे इन बे मुदामी तन्तुओंके गुच्छोमें फर्क होता है। ये तन्तु जैसे पुराने होते जाते हैं उसी प्रमाणमें उनके वक्रीभवन दर्शनांकमें फरक पैदा होता है; और यदि जनन या नवजवानीके अवस्थामें उनका विकास चंद समय तक रुका गया हो तो तन्तुओंके वक्रीभवनका विकास एक दर्जेका होनेके बदले उसमें बेमुदामी अवस्था पैदा होती है। कभी कभी एन्डोक्राइनकी बीमारी या अन्य भयंकर (सनजीडी) बीमारीकी वजहसे गाभाके भीतरी भागमें आगन्तुक तन्तुओंके गुच्छ दिखाई पडते हैं।

स्फटिकमणिके भिन्न क्षेत्र समकेन्द्रिक नहीं होते। च्यूकि स्फटिकमणिके तन्तु विषुववृत्तके पास मोटे हो जानेसे स्फटिकमणिके केन्द्रके बाहरी क्षेत्रोंका बाक अण्डाकृति यानी कमती होता जाता है। इसका नतीजा ऐसा होता है, कि मनुष्यकी उम्र जैसी बढती जाती है उसी मात्रामें स्फटिकमणि चपटा होता जाता है। लेकिन इसके साथ साथ इस वक्रीभवन संस्थानका दर्शनांक बढ जानेसे बदला भर जाता है। यदि वक्रीभवन दर्शनांकका विकास बुढे पनके स्फटिकमणिके चपटे होनेके मात्राके बराबर न हो तो वह नेत्र दीर्घ दृष्टिवाला होता है; यदि स्फटिकमणिका केंद्रस्थ भाग ज्यादहतर कठन होवे, जैसे कि मोतीयाकी अवस्थामें, तब नेत्र न्हृस्व दृष्टिवाला होता है।

चित्र नं. १२८
स्लिट लैम्पसे नवजवानके स्फटिकमणिके जीवनबीजकी दिखाई देनेवाली सीवनीयां।

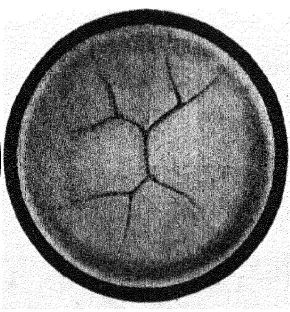

चित्र नं. १२९
स्लिट लैम्पसे नवजवानके स्फटिकमणिके गाभामेंकी दिखाई देनेवाली सीवनियां।

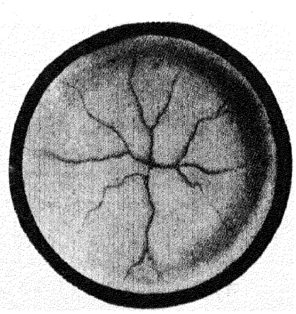

स्फटिकमणिमें की सीवनीया (सूर्चर्स इन दी लेन्स):—यदि स्फटिकमणिके तन्तुओंकी लम्बाई उसके एक ध्रुवसे दूसरे ध्रुवतक पहुंच जावे इतनी बडी हो, तो सब तन्तु ध्रुवोंके पास केन्द्रीभूत हो जायेंगे। यह दृश्य कई मच्छी जैसे प्राणियोंमें दिखाई पडता है। यदि तन्तु एक ध्रुवसे दूसरे ध्रुवको जा पहुंचे इतने लम्बे न हो तो उनका मीलन ध्रुवोंके

बदले रेषाओंमें होता है । इन मीलन रेषाओंको **सीवनियां** कहते हैं । इन रेषाओंके संस्थानके एक सामनेका खडा और एक पिछला आडा ऐसे दो भाग होते हैं । ये सीवनीयां रेषाओके सिरेके मीलन स्थानमेंकी संभाव्य दरार ही समजना चाहिये । इस तदबीरसे रेषाओका मीलन दृक्शास्त्रीय दृष्टिसे बराबर होना संभाव्य होता है । मानव जातीके स्फटिकमणिके विकासमें पहले पहल यही सादी रेषाओंकी अवस्था पायी जाती है । लेकिन बादमें सामनेकी सीवनीका आकार गुलेलके डन्डेके आकार, यानी ऊपर दो और नीचेकी एक त्रिज्ज्या ऐसा होता है; पिछली रेषाको नीचेको दो और ऊपरकी एक त्रिज्ज्या ऐसा आकार होता है । यह सीवनीका त्रिज्ज्यादार आकार गर्भावस्थाके स्फटिकमणिके जीवनबीजकी कुल मोटाइमे से पार जाता है (चित्र नं १२६ देखिये) । बिलकुल नये बने हुये तन्तुओका मीलन ज्यादह उलझनदार सीवनीयोंमें होता है । बालककी अवस्थामें स्फटिकमणिमेकी त्रिज्ज्यादार सीवनी तारा जैसी होती है । नवजवानोके स्फटिक-मणिके सीवनीको ऊपर दो और नीचे दो शाखाएँ दिखाई पडती है; और गाभामें यह रचना और भी उलझनदार होती है, सीवनीके ऊपरके भागसे ९ से १२ शाखा पैदा होती है । सब मिसालोंमें पिछली सीवनीकी रचना सामनेकी रजनासे उलटी होती है; यानी जो तन्तु सामने केन्द्रकी नजदीक पहुंच सकता है वह पिछली ओरको केन्द्रसे बहुत दूरीको पहुंच सकता है ।

स्फटिकमणिका लटकानेवाला बंद, कटिबंधका-झिनका-वलय (धी झान्युल)

मृत्युके बाद फौरन मनुष्यके नेत्रको जांचा जाय तो स्फटिकमणिको लटकानेवाला **बंद कटिबंधका-झिनका-वलय** पट्टा जैसा दिखाई पड़ता है । यह वलय स्फटिकमणिके विषुववृत्तको लगा रहता है । इसका सामनेका पृष्ठभाग स्फटिकमणिसे तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओंको सीदा जैसा जाता है और इससे पश्चिमी वेश्मनीकी पश्चिमी सीमा बनती है । इसका पिछला पृष्ठभाग कमानदार होता है और वह तारकातीत पिंडकी भीतरी पृष्ठ-भागसे होकर दन्तुरिततटपरिणाह तक जाता है और यह स्फटिकद्रव पिंडके सामनेके पृष्ठभागसे **पेटिटकी नाली** नामके संभाव्य अवकाशसे अलग रहता है (चित्र नं. १११ देखिये)। इस वलयका सामनेका तथा पिछला पृष्ठभाग जमकदार जैसे मालूम होते है और इनमें स्फटिकमणिसे तारकातीत पिंडको जानेवाली लकीरिया जैसी बनावट दिखाई पडती है । इस बनावटमें स्फटिकद्रव पिंडमेके जैसा ही गाढा द्रव्य होता है, और इसमे पारदर्शक समाकार का लसलसा पदार्थ भरा रहता है जिससे यह पत्र जैसा दिखाई पड़ता है । इस लसलसा पदार्थमेंसे पश्चिमी वेश्मनीमेके द्रवांशका पूर्व वेश्मनीमें आसानीसे प्रसरण होता है ।

प्राचीन शरीर शास्त्रज्ञोंके मतानुसा स्फटिकद्रव पिंडकी पत्रदार बनावट जैसी ही इसकी बनावट होती है । सन १७२३ में पेटिटने कल्पना कीयी थी की हायलाईड पत्रके तारकातीत पिंडके नजदीक दो भाग होते है, जिनमेसे एक स्फटिकद्रव पिंडके सामनेके पृष्ठपर जाता है, और दूसरेसे स्फटिकमणिका लटकानेवाला बंद बनता है ।

खंड तृतीय

अध्याय ७

मानवी नेत्रगोलक का विकास

भ्रूण या कलल विज्ञान स्वयमेव महत्त्वका शास्त्र होते हुये भी, नेत्ररोगविज्ञान शास्त्र से विचार करनेमें उसका महत्त्व और भी ज्यादह समजना चाहिये । क्योंकी नैसर्गिक शरीरविकाश का पूरा समज होवें बिगर नेत्रके विकासमें पायी जानेवाली दुर्घटना बराबर ध्यानमें नहीं आयेगी । शरीरकी अन्य इन्द्रियोंकी अपेक्षा नेत्रेन्द्रियमें दुर्घटना ज्यादह दिखाई देती हैं; और विकासकी अवस्थाओंका विकारसे पैदा होनेवाली अवस्थाओंसे ठीक ठीक निदान करना मुष्किलकी बात, लेकिन जरूरीकी होती है, क्योंकि इस बात पर ही महत्त्वके निर्णय अवलम्बित रहते हैं । पहले शरीरके विकासका संक्षिप्तके बयान करेंगे फिर नेत्रके विकासका वर्णन करेंगे ।

शरीरके विकाशकी तरतीब

गर्भाधानके उत्तेजनके बाद फौरन डिम्बकी एक पेशिकी दो, दो की चार, चारकी आठ पेशियां इस तरहसे विभाजन होता जाता है; और आखिरको उन पेशियोंका एक गोल जमाव बन जाता है । इसीको **कलल अवस्था—मोरूला स्टेज** कहते हैं । फिर इन पेशियोंका बाहरीकी तह, और भीतरीका पेशियोंका समुदाय ऐसा अवकलन होता है । बहुतसे सस्तन प्राणियोंमें इस अवकलन होनेके साथ साथ भीतरी ओरको एक अवकाश तैयार होता है । जिसमें भीतरीका पेशियोंका समुदाय बाहरीके तहसे, एक जगह सिवा, अलग हो जाता है । यही विकासकी **बुद्बुद्**की **बास्टुला**की अवस्था होती है । लेकिन मनुष्यके कलल या भ्रूणमें ऐसा दिखाई पड़ता है कि, बहुतही पहले भीतरीके पेशियोंके समुदायके कललका **बाह्यत्वक पत्र, अन्तरत्वक पत्र** और **मध्यत्वक पत्र** ऐसे तीन (एक्टोडर्म, एन्डोडर्म और मेसोडर्म) समूहोंमें अवकलन होता है । मध्यत्वक पत्रकी पेशियोंका बहु प्रसवन जल्द होकर उनका लसलसा जैसा घटक बनकर उससे यह अवकाश पूरा भर जाता है (चित्र नं. १३०) ।

भीतरी पेशियोंके पहले दो समूहोंमें (कलल बाह्यत्वक पत्र, और अन्तरत्वक पत्र) कोटर—गरहा—होकर उनकी दो खोखली पिटिकाये बनती है, जिनको **गर्भोदकावरणका कोटर** या गहरा (ॲमनियाटिक क्याव्हिटी) और **आरकेनटेरिक कोटर** कहते हैं । इन दोनों पिटिकाओंके दरमियानमें मध्यत्वक पत्रकी तह घुस जाती है (चित्र नं. १३१, १३२) । इसके साथ मध्यत्वक पत्रके अहम भागमें पिटिकाओंके दोनो ओरको दो दरारे पहले पैदा होती है, जो बादमें एकत्र मिल जानेसे उनका एक बड़ा कोटर बन जाता है, जिसमें कललके घटक डिम्बकी दीवालसे लटके जैसे रहते हैं (चित्र नं. १३३) । ये दोनों पिटिकाये जिस क्षेत्रमें आपने सामने रहती है, उस क्षेत्रसे ही गर्भ बनता है । इसीको **गर्भ क्षेत्र**

डिम्बके विकास की कल्पना

चि नं. १३०

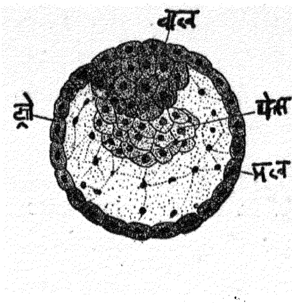

बात्व—बाह्यत्वक पत्र
पेस—कललकी पेशि समुदायु
म. त्व—मध्यत्वक पत्र
ट्रो—ट्रोफोब्लास्ट पोषणपत्र

चि. नं. १३१

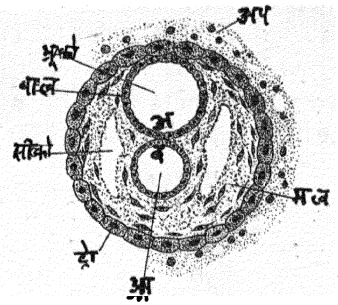

आ—आर्किएनटेरान; ट्रो—ट्रोफोब्लास्ट
सीको—गर्भके बाहरका सीलामिक कोटर
बा. त्व—गर्भोदक आवरणका बाह्यत्वक
भ्रू को—गर्भोदकावरणका कोटर
अप—प्लासमोडियल ट्रोपोब्लास्ट
म त्व—मध्यत्वक
अ—गर्भका बाह्यत्वक ब—गर्भका अन्तरत्वक

चित्र नं. १३२

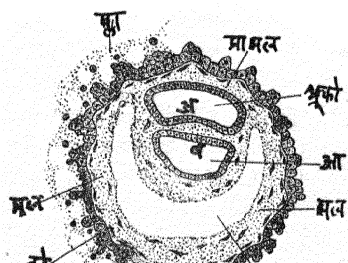

आ—आर्किएनटेरान
भ्रूको—गर्भोदकावरणका कोटर
प्रामत्व—प्राथमिक मध्यत्वक
प्ला—प्लासमोडियल ट्रोपोब्लास्ट
मत्व—मध्यत्वक
ट्रो—ट्रोफोब्लास्ट
अ—गर्भका बाह्यत्वक जो मध्य त्वकसे
ब—गर्भके अन्तर त्वकसे अलग होता है।

चित्र नं. १३३

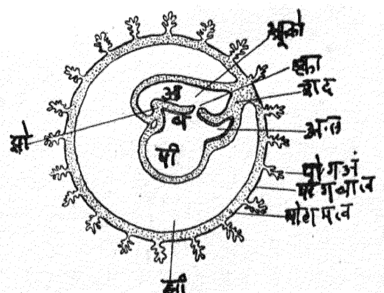

अल—अलनटाईस शद—शरीरदंड
ब्ला—ब्लास्टोफोर
भ्रूको—गर्भोदकावरण का कोटर
झो—शीर्शका झोल सी—सीलामिक कोटर
पो गमत्व—गर्भ पोषण आवरणका मध्यत्वक
पो ग बात्व—गर्भ पोषण आवरणका बाह्यत्वक
पो ग अं—गर्भ पोषण आवरणका अंकुर
अ—गर्भका बाह्यत्वक नो
ब—गर्भके अन्तर त्वकसे अलग होता है।

भ्रूण क्षेत्र की पट्टी कहते हैं । इससे ध्यानमें आजायेगा कि यह पट्टी बाह्यत्वक पत्र, अन्तरीयत्वक पत्र और दोनोंके दरमियानका मध्यत्वक पत्र की बनी है । इस गर्भ की पट्टीपर पहले पहल **प्राथमिक लकीरि** का (प्रिमिटिव्ह स्ट्रीक) अवकलन होता है जो उसके पृष्ठकी पिछली सिरेपर लम्बी तौरसे दिखाई देती है । और जिसके सामनेकी सिरेको **ब्लास्टोफोर** नामक छिद्र होता है जो गर्भकी पट्टीमें रहता है और जिसका संबंध आरकेनटेरिक कोटरसे होता है (चित्र नं. १३३–१३४) ।

चित्र नं. १३४

२ मि. मि. लंबाईका मानवी कलल पिछला दृश्य–कलल अन्तर आवरण खोला है

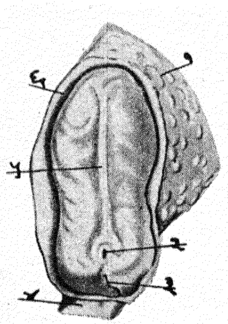

१ अन्डपती पेशी; २ न्युरेन्टेरिक नाली; ३ प्राथमिक लकीर; ४ शरीर दंड; ५ न्यूरल नाली; ६ कलल अन्तर आवरण (ॲमनियन) ।

चित्र नं. १३५

२·११ मि. मि. लम्बाईका मानवी कलल पिछला दृश्य–कलल अन्तर आवरण खोला है

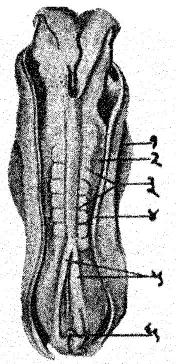

१ अन्डपति पेशी; २ मध्यत्वक पत्रका बाहरी भाग; ३ प्राथमिक खंड (मध्य कलल पत्रका भीतरी भाग); ४ कलल अन्तर आवरणकी खोली हुई किनार; ५ न्यूरल झोल; ६ न्युरेन्टेरिक नाली ।

प्राथमिक लकीरिके सामने एक नाली पैदा होती है (न्युरल ग्रूव्ह) जिसके दोनो ओरका बाह्यत्वक पत्र मोटा होकर उसके **न्युरल झोलें** बनते हैं । इस नालीकी किनारियोंका विकास होकर वे पारस्परीकसे मध्य रेषामें मिल जानेसे इस नालीकी **नलिका** (न्युरल टयूब) बनती है; और ब्लास्टोफोर को अब **न्यूरेनटेरिक** नाली कहते है जिससे न्यूरल नलिका का प्राथमिक पोषण नलीकासे कुछ समय तक संबंध होता है । न्यूरल टयूब की किनारियां पारस्परीकसे मिलनेको जानेके समय अपने साथ इर्दगिर्दके बाह्यत्वक पत्रको ले जाती है । इससे न्यूरल क्रेस्ट नामका उभार पैदा होता है । न्यूरल टयूबकी दीवालोंसे, मस्तिष्क, सुषुम्ना, दृष्टिपटल, दृष्टिरज्जु जैसे मध्य मस्तिष्कके मज्जा संस्थानके भाग बनते हैं और न्यूरल क्रेस्टके उभारमें मस्तिष्क सुषुम्ना आनुकंपिक मज्जातन्तुके मज्जाकंद, अन्य मज्जातन्तुओंके पेशिदार आवरण और रंगदार इन्द्रियोंकी रंगदार पेशियोंका मूल होता है ।

इन दरमियानमें गर्भक्षेत्रकी पट्टीमेंके मध्यत्वक पत्रके उसके लम्बाईमें **भीतरीका मध्यत्वक भाग** (प्यारा एक्झियल मेसोडर्म) जो न्यूरल नालीके पास होता है और **बाहरीका मध्यत्वक भाग**का पत्र, जो न्यूरल पट्टीकी किनारतक फैलता है, ऐसे दो भाग होते हैं। भीतरीका मध्यत्वक भाग, मध्यमस्तिष्कके समतलसे उसके पिछले भाग तक (दुमतक) खंडित होता है; और इसीसे शरीरके स्नायु, मस्तिष्ककी हड्डियां और आवरण, शुक्लपटल, कृष्णमंडलका बहुतसा बडा भाग और नेत्रकी बाहय स्नायुएँ बनती हैं। बाहरीके मध्यत्वक भागसे शीर्शके क्षेत्रमें **आशयी कमानिया** (व्हिसरल ब्रँकियल आरचेस) बनती है (चित्र नं. १३५)।

नेत्रगोलकके विकाशकी तरतीब

न्यरल झोलके मिलनकी शुरुआत पहले पहल मस्तिष्कके क्षेत्रके भागमें होती है, और इस नालीका सामनेका और पिछला सिरा कुछ समयतक खुला रहता है। सामनेके सिरेके दोनों उभारोंका विकास ज्यादह होनेसे नया बना हुआ भाग मूंड जाकर उससे शीर्शका झोल बन जाता है; इससे उभारका सिरा जो पहले सामनेकी ओरको था वह अब शीर्शके भागके नीचे हो जाता है। दरमियानमें उभारके सामनेके सीरे पारस्परीकसे मिल जाते हैं जिससे न्यूरल नालीके सामने आडा न्यूरल झोल बनता है। साथ साथ न्यूरल नालीके उभारोंके बीचका खोखला भाग ज्यादह चौडा होता है जिससे मस्तिष्कका चौडा भागका सुषुम्नाके तंग भागसे अवकलन कर सकते हैं। इस मस्तिष्कके भागमें तीन और फैलाव पैदा होते हैं जिससे मस्तिष्कके पिछला, बीचका और सामनेका मस्तिष्क भाग अलग अलग जान सकते हैं; इस सामनेके मस्तिष्कके भागके मूलमें, सामनेके न्यूरल झोलके हर कोणके भीतरकी ओरकी बाजूको एक एक खात बनती है; यही **चाक्षुष खात** मानी जाती है। इस क्षेत्रमेंके न्यूरल झोलके सामनेके सिरेसे **चाक्षुष पट्टी** बनती है जिनकी पेशियोंसे दृष्टि-पटल और अनुषंगिक घटक तैयार होते हैं।

चित्र नं. १३६

मस्तिष्कके सामनेके भागमेंका आडा काट ५ मि. मि. का मानवी गर्भ

१ भीतरी तह
२ बाहरी तह
३ चाक्षुष प्याला
४ स्फटिकमणिकी खात
५ शीर्षका मध्यत्वक
६ चाक्षुष प्यालेकी दुय्यम प्याला
७ चाक्षुष दंड
८ सामनेका मस्तिष्कका भाग

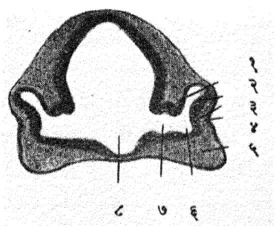

चाक्षुष खात न्यूरल नालीके सामनेके सिरेसे बाहरकी ओरको निकली हुई दो पिटिका जैसी होती है। इस नालीका शीर्शकी ओरका सिरा इस समय खुला होनेसे ये दो पिटिका शरीरपर बाहयत्वक पत्रकी खात जैसी ही होती है। जब न्यूरल नाली छतसे ढाकी जाती

है तब ये बाहर उभरी हुई पिटिकाओंका आकार बढ़ता जाता है और फिर मस्तिष्कके सामनेके और बाजूके क्षेत्रमें उभार जैसी मालूम होती है (चित्र नं. १३६ देखिये)।

चित्र नं. १३७

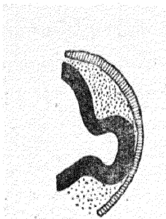

प्राथमिक चाक्षुष पिटिकाकी अवस्था, कललके मस्तिष्कके सामनेके भागसे शुरु होती है; और यह कललके बाह्य-त्वकपत्रको स्पर्श करती है।

चित्र नं. १३८

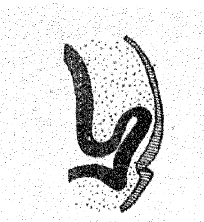

प्राथमिक चाक्षुष प्यालेका सामनेका भाग अन्दर घुसा हुआ होता है और बाह्य-त्वक पत्रमें खात दिखाई पड़ती है।

चित्र नं १३९

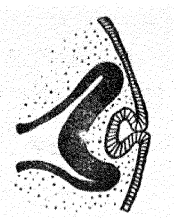

द्वितिय चाक्षुष प्यालेकी और स्फटिकमणि पिंड की अवस्था

चित्र नं. १४०

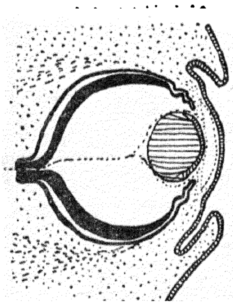

चाक्षुष प्याला गहरा हुआ होता है, स्फटिकमणिका पिंड कललके बाह्य पत्रसे अलग हुआ है और हायलाईड रोहिणीयां नेत्रमें शुरूं होती है।

चित्र नं. १४१

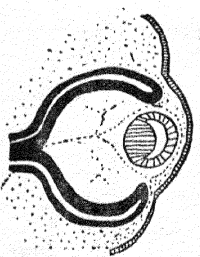

तारकातीत पिंडका भाग और तारकाके सामनेके पृष्ठभाग कललके बाह्य पत्रसे बननेके लिये चाक्षुष प्यालेकी सामनेकी सिरे आगे बढ रही है। स्फटिक-मणिके पिछले पेशियोंसे तन्तू बनते हैं। पूर्ववेश्मनी और नेत्रच्छदोंको झोल दिखाई देते हैं। इर्दगिर्द कललके मध्य पत्रके घटक दिखाई देते हैं।

चित्र नं. १४२

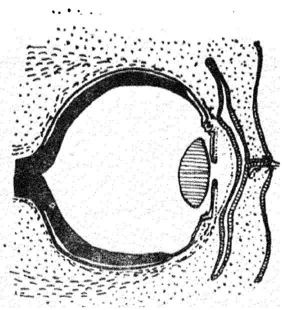

नेत्र विकास पूरा हुआ है और हायलाईड रोहिणीयां गायब होगई है।

मनुष्यके नेत्रगोलकका नैसर्गिक विकास : काला भाग मज्जामय घटकोंके लिये है कललका बाह्यपत्र रेषांकित है। कललके मध्यपत्रका भाग बिन्दुचिन्हांकित है।

इन चाक्षुष खातोंके इर्दगिर्द न्यूरल नालीकी बाजूका भीतरी मध्यत्वक पत्र और नीचे और पीछे उर्ध्वदन्तास्थिकी प्ररोहाका आशयी मध्यत्वक पत्र होता है। मध्यत्वक पत्रके

विकाससे मध्यमस्तिष्क मज्जासंस्थानसे इसका जुडा हुआ भाग तंग हो जानेसे यह प्राथमिक चाक्षुष गोल पीटिकाको मस्तिष्कको जोडनेवाला दंडा तंग होता है । दरमियानमें चाक्षुष पिटिकाका जो भाग, बाह्यत्वक पत्रसे स्पर्श करता है, वह अन्दर घुस जाकर दुय्यम चाक्षुष पीटिका या चाक्षुष प्याला बनता है । नेत्रके विकासमें प्राथमिक पीटिकाकी सामनेकी दीवाल अन्दर घुस जानेकी अवस्था अहम महत्त्वकी मानी है । यह अन्दर घुसनेकी क्रिया पहले पीटिकाकी नीचेकी ओरको दरारसे शुरू होकर पहलेकी बाहरीकी दूरीकी दीवाल इस ओरके नजदीककी दीवालसे मिल जाती है । इस नजदीककी दीवालसे दृष्टिपटलकी रंजित कलाकी तह बनती है और भीतरी घुसी हुई दीवालके भागसे दृष्टिपटलका (पार्सरेटिना) अहम भाग बनता है । इसी समय यह दरार नेत्रगोलकके इर्दगिर्दके मध्यत्वक पत्रके घटकोके जैसे घटकोंसे भर जाती है और इन घटकोंसे ही दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी और हायलाईड रोहिणी संस्थान तैयार होता है ।

चाक्षुष पीटिका बाह्यत्वकपत्रसे जहा मिलती है उस जगहकी पीटिकाकी पेशियोमे बहुप्रसवनशीलता पैदा होनेसे वह भाग बडा हो जाता है । इसके बाद नये भागकी दीवाल पीटिकाके अन्दरकी ओर घुस जाती है । इसका नतिजा यह होता है, कि पीटिकाका खाली भाग इससे भर जाना है और पीटिका का आकार प्यालेके जैसा हो जाता है । इस प्यालेकी दीवालकी भीतरी और बाहरी दो तहे होती है । इस प्यालेको द्वितीय चाक्षुष प्याला (सेकडरी आपटिक व्हेसिकल) कहते हैं । इसी प्यालेसे दृष्टिपटलके अलग अलग भाग तैयार होते हैं । इससे यह ध्यानमे आजायेगा कि, दृष्टिपटल भी मस्तिष्कका ही एक भाग है ।

प्राथमिक चाक्षुप पीटिकाकी अगली दीवाल भीतर घुस जानेके साथ साथ ही उसकी पेशियोमें बहुप्रसवन शुरू होता है । चाक्षुष प्यालेकी दो दीवालोंमेसे बाहरी दीवाल पतली होकर उससे इकहरी पेशियोवाली एक कलाकी तह बनती है । ये पेशिया समचतुर्भुज आकारकी होती हैं । इन पेशियोके जीवन रसमे रंगीन कण पैदा होते है और इससे पेशियां काले रंगकी दिखाई देती हैं । चाक्षुष प्यालेकी बाहरकी इस दिवालसे दृष्टिपटलकी बाहरकी रंगीन तह बनती है प्यालेकी भीतरी दीवालकी पेशियोके बहुप्रसवनसे दृष्टिपटलके मुख्य मज्जा भागका विकास होता है ।

प्राथामिक चाक्षुष पीटिका की दीवालका सामनेका भाग भीतर घुस जाता है इतनाही नही; किन्तु नीचेकी दीवाल अन्दर घुस जानेसे वहा कलल—भ्रूणकी—चाक्षुष दरार बनती है । यह दरार चाक्षुष दंडके नीचेकी ओर जाकर एक नालीसी बनती है । इस दरारमें चारो ओरके कलल मध्यपत्रके अंगोसे बनी हुई रक्तवाहिनियां नेत्रगोलक तथा दृसष्टिरज्जुमे घुसती है । बादमें यह दरार बद हो जाती है । इस दरारकी हायलाईड रोहणी फिर दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणीकी रूपमें तबदील होती है । इस रक्तवाहिनियोके साथ कलल मध्यपत्रके भागोंसे स्फटिकद्रव पिंड बनता है । लेकिन यह साधारणमत **शून, कुलीकर, वुलफ्रम** आदि लोगोंको मान्य नही है । ऐसा समझा जाता है कि तारकातीत पिडका सामनेका भाग द्वितीय चाक्षुष प्याले की अन्दरकी पेशियोसे बनता है; शुक्लपटल तथा कृष्णपटल कललमध्य पटलसे बनते हैं ।

जब चाक्षुष प्यालेके विकासमें ये फरक होते रहते हैं, उसके साथ साथ चाक्षुष पिटिकाके सामनेका बाह्यत्वक पत्रका भाग मोटा होकर स्फटिकमणिकी प्राथमिक पट्टी बनती है; फिर इसमें ही खात होकर उसका पिंड बनकर वह बाह्यत्वक पत्रसे अलग होकर स्फटिकमणिका पिंड बनता है (चित्र. नं. १३६, १३७, १३८)। इसके बाद कललमेंकी दरार बंद हो जाती है। इस दरारमेंसे उसके पिछले भागमेंसे हायलाईड रोहिणी संस्थान बनानेवाले मध्यत्वक पत्रके घटक रहते हैं। चाक्षुष प्यालेकी सामनेकी किनार आगे बढकर उससे तारकातीत पिंडका भाग, और तारकाका बाह्यत्वक पत्रसे बननेवाला भाग तैयार होता है: दरमियानमें चाक्षुष प्यालेके इर्दगिर्द मध्यत्वक पत्रके घटकोंका अवकलन होकर चाक्षुष प्याला और स्फटिकमणिके दरमियानसे वह अन्दर घुसकर उससे नेत्रकी रक्तवाहिनियां, उसके पटल, नेत्रगुहाकी ऊपरकी और भीतरकी दीवाले, नेत्रछदके संयोगी घटक और अन्तस्थ घटक बनते हैं।

पूर्ण विकास हुए नेत्रके कौनसे कौनसे भाग कललके तीन तरहके घटकोसे पैदा होते हैं इसका सारांश नीचेकी तदबीरसे ध्यानमें आजायेगा। यह तदबीर **मान** ने १९२८ में प्रकाशित कीई थी उसके आधार पर रची है।

कललके पृष्ठके बाह्यत्वक्पत्रसे पैदा होनेवाले घटकः—स्फटिकमणि; तारका-पिधानकी कलातह; शुक्लास्तरकी कलातह और अश्रुग्रंथी; नेत्रच्छद की कलातह, उसके पक्ष्म या रोम, मायबोमियन ग्रथियां, और माल तथा झायसिसकी ग्रंथियां।

न्यूरल बाह्यत्वक पत्रसे पैदा होनेवाले घटकः—दृष्टिपटल और उसकी रंजित कलातह, तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओंपरकी कलातह, तारकाके पिछले पृष्ठकी रंजित कलातह, कनीनिकाका आकुंचन और प्रसरण करनेवाले स्नायु, दृष्टिरज्जू (मज्जामय मौलिक तत्व)।

बाह्यत्वकपत्र और न्यूरल बाह्यत्वकपत्रके संयोगसे स्फटिकद्रव पिंड और स्फटिकमणिको लटकानेवाला बंद पैदा होते है।

कललके नजदीकके मध्य त्वकपत्रसे पैदा होनेवाले घटकः—रक्तवाहिनियां जो जननके पश्चाद भी कायम रहती है (कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियां दृष्टिपटलकी मध्यरोहिणी, तारकातीत पिंडकी और नेत्रगुहाकी अन्य रक्तवाहिनियां), और जो जननके पहलेही गायब होजाती है (यानी हायलाईड रोहिणी, स्फटिकमणिके आवरणके इर्दगिर्दकी रक्तवाहिनियां); शुक्लपटल; दृष्टिरज्जुका आवरण; तारकातीत पिंडकी स्नायु; तारकापिधानके गुदाका भाग और उसके पिछले पृष्ठकी अन्त.कलातह; तारकाका गुदा, नेत्रगोलकके बाहरी स्नायु; नेत्रगुहामेंका चरबीदार घटक, अन्य संयोगी घटक और बंद; नेत्रगुहाकी उपरकी और भीतरकी दीवालें; उपरी नेत्रच्छदके संयोगी घटक।

आशयिक मध्यत्वकः—(उर्ध्व दन्तास्थि प्ररोहा) जो नेत्रगोलकके नीचे होता है उससे पैदा होनेवाले घटकः—नेत्रगुहाकी नीचेकी और बाहरकी दीवालें। नेत्रगोलकके पीछे और नीचेके घटक यानी जतुकास्थिके पंख, गंडास्थि और उर्ध्वदन्तास्थिका चाक्षुष फलक; नीचेके नेत्रच्छदके संयोगी घटक।

कललके विकासकी भिन्न अवस्थाओंके अनुसार कललकी लम्बाई का खुलासा नीचे मुजब होगा:—

४ हप्ते	२८ दिन	७·८ मि. मि	११ हप्ते	७७ दिन	५९·२ मि मि
५ „	३५ „	१२·२ मि मि.	१२ „	८४ „	७०·५ मि मि
६ „	४२ „	१७·६ मि मि.	१८ „	१२६ „	१३० मि. मि
७ „	४९ „	२४·० मि. मि	२४ „	१६८ „	१९० मि मि.
८ „	५६ „	३१·३ मि. मि	३० „	२१० „	२५० मि मि
९ „	६२ „	३९·६ मि. मि	३६ „	२५२ „	३१० मि मि.
१० „	७० „	४९ मि. मि.	३९ „	२७३ „	३४० मि. मि

नेत्रका निर्धारण

प्रत्यक्ष प्रयोग और भ्रूण शास्त्रके तुलनात्मक विचारसे मालूम हुआ है, कि किसी भी इन्द्रियके पूरे विकासकी तीन अवस्थाएँ होती हें। सबसे पहले ध्यानमें रखिये, कि अन्डा सब घटकोंको बनाने काबिल होता है और जिनमे, कललके दन्डेके भागके सिवा अन्यत्र फर्क नहीं दिखाई पडता; फिर विकासकी प्रगतिमें उनमें फर्क होने लगते है जिसमें ब्लास्टोफोर का कुछ संबंध होता है; आखिरमें कुछ रासायनिक उत्तेजनसे पेशियोंके समुदाय बनकर उनमें खास इन्द्रिय बननेकी ताकद पैदा होती है। इस तरहसे इन्द्रियका निर्धारण होता है। इसके बाद उसके प्राथमिक मूल स्वयमेव अपना विकास करनेके काबिल होते हैं; और फिर ब्लास्टोफोर की किनारसे जारी हुआ अवकलन पेशियोंमेंके खास गुणधर्मसे चालू रहता है। इस रीतिसे इन्द्रियका निर्धारण होनेके बाद उसका विकास स्वतंत्र रीतिसे होता रहता है।

नेत्र स्थानिक और स्वतंत्र संस्थान होनेसे वह इस मकसद की अच्छी मिसाल होती है। **स्पेमान** ने (सन १९१२) प्रयोग करके बताया है, कि डिम्बकी **गास्ट्रुला**की अवस्था का विकास पूरा होनेके पहले, दो भिन्न भिन्न गर्भमेंके दो भाग, एक गर्भमेंका संभाव्य न्यूरल नालीमेका सामनेका और दूसरे गर्भमेंके संभाव्य पेटकी चमडीका भाग, अलग करके उनकी आपसमें अदला बदली की जाय, यानी दूसरे गर्भकी पेटकी चमडीको पहले गर्भके न्यूरल नालीके सामनेके भागमें कलम किया जाय, तो यहां चमडीके भागसे नेत्रकी ही पैदाईश होगी न की चमडीकी। इससे यह बात स्पष्ट होसकती है, कि इन्द्रियका निर्धारण सिर्फ उसकी खास पेशियोंपर नहीं अवलम्बित रहता बल्कि यह घटना उन प्राथमिक अवकलन रहित पेशियोंपर कुछ रासायनिक असर होनेसे उनमें पैदा हुई संभाव्य शक्ति पर अवलम्बित रहती है। **लेपलाटने** (सन १९२२) इसी कल्पना पर संशोधन करके बताया है, कि गासट्रूला की अवस्थामें यानी ब्लास्टोफोर बंद होनेके पहले भ्रूणको, जिस भागसे कर्ण या नेत्रेन्द्रिय बनता है, सिर्फ उसको क्षति होवे तो उस भ्रूणमे इन इन्द्रियोका अभाव दिखाई पडेगा। यदि ब्लास्टोफोर बंद होजानेके बाद तक विकासमें कुछ खतरा न हुआ हो तो नेत्रकी अनेक दुर्घटनाएँ पैदा होंगी ऐसा मालूम होगा।

चाक्षुष पट्टीका निर्धारण होनेके पश्चाद उसमें स्वतंत्र रीतिसे अपना विकास करनेकी काबिलियत दिखाई पड़ती है। **स्पेमान** आदि संशोधकोको प्रयोगसे मालूम हुआ है, कि कुछ मर्यादा तक चाक्षुपपीटिका का कुछ थोडा सा भी भाग बचा हो तो उससे नैसर्गिक नेत्रका विकास होना संभाव्य होता है। एक दफे विकास की क्रिया शुरू होनेसे, नेत्रेन्द्रियके मूलमें पूर्ण स्वतंत्र और स्वयं निर्णय की शक्ति दिखाई पडती है। उसको उसके मस्तिष्कके भागसे और उसकी रक्तवाहिनियोसे अलग करनेसे या उसको उस शरीरके बाहर निकालकर दूसरी जगह कलम करनेसे उससे नेत्रेन्द्रिय ही बनेगा। नेत्रेन्द्रियकी इस शक्तिका सशोधन पहले पहल **ल्युइस** ने (१९०७ में)किया। उन्होनेही शोध लगाया, कि मेंढक जैसे भूजलचर प्राणियोकी प्राथमिक चाक्षुप पिटिका को उसके खास जगहसे निकालकर उसको अन्य जगहपर यानी उस प्राणिकी पीठकी चमडीके नीचे कलम किया, तो उस चाक्षुष पिटिकाका नेत्रमे ही विकास होगा। उन्होने यह भी बताया था कि चाक्षुषपिटिकाके बाहरी भागके कुछ हिस्सेको, जिसका नैसर्गिक नेत्रके विकास में कुछ भी हिस्सा नही होता, अन्य जगहमे कलम किया जाय, तो उससे पूर्ण नेत्रका ही विकास होगा।

चाक्षुष खात और चाक्षुषपिटिका का मध्य मज्जामस्तिष्कके संस्थानसे विकास होनेके बाद उसको लगे हुए बाह्य त्वकसे नेत्रके वक्रीभवन मार्गके संस्थानका विकास होनेमें मदत होती है। स्फटिकमणि बननेके पहले इस भागका बाह्यत्वक पत्र मोटा होना है: लेकिन बाह्यत्वक पत्रका मोटा होना यह उसका स्वाभाविक धर्म है, या वह चाक्षुष पिटिकासे मिली हुई रासायनिक क्रियाके असर से पैदा होता है इस बातका अभीतक पूरा निर्णय नही हुआ है। **ल्युइश** के ऊपर दिये हुए संशोधनसे नि.संशय साबित होसकता है, कि अन्य जगह पर कलम किये हुए चाक्षुष पिटिकासे नजदीकके किसी भी बाह्य त्वकपत्रमें स्फटिकमणि होनेके पहले की मोटाई पैदा होती है। चाक्षुप पिटिकासे नजदीकके किसी भी बाह्यत्वक पत्र पर इस तरहका उत्तेजक मिलता है जिससे उसमे स्फटिकमणिकी पैदाईश होना संभाव्य होता है। मस्तिष्क भागके बाह्यत्वक पत्रसे स्फटिकमणिका विकास होनेका स्वभाव-मकदूर होता है इस बातको मान लेना जरूरी है तो भी यह क्रिया रासायनिक क्रियाके असरसे होती है इसका सबूत ज्यादह मिलता है।

नेत्रके संस्थानोंका विकास

(१) कललके बाह्यत्वक् पत्रसे विकास होनेवाले घटकों का बयान

स्फटिकमणि का विकास

स्फटिकमणिके विकास का बयान दो भागोंमे होसकता है:—

स्फटिकमणिके पिडका विकास, और स्फटिकमणिके तन्तुओका विकास

कलल यानी गर्भ चार हफ्तोंका होनके बाद उसके मस्तिष्कके अगले भागकी दाहिनी तथा बायी ओरको एकएक कलीके समान, भाग पैदा होता है।

कललके बाह्यत्वकपत्रको प्राथमिक चाक्षुष पीटिका जिस जगह स्पर्श करती है, उस भागकी पेशियां भी उत्तेजित होनेसे वहां बहुप्रसवनशीलताकी क्रिया शुरू होकर उसमें नयी

पेशियां पैदा होती हैं। इसके सामनेके कललके बाह्यत्वक पत्रके भागमें बाहरकी ओर एक गडहा पैदा होता है, जिसे स्फटिकमणिका गडहा कहते हैं। इस गडहेके बढनेसे उसका आकार पहले प्यालेके समान होता है। प्यालेकी किनार बादमें पारस्परीकसे मिलनेके कारण इस प्यालेका मुह बंद हो जाता है। इस बंद प्यालेको स्फटिकमणिका पिड कहते हैं (चित्र नं. १३५, १३६ देखिये)। इस पिंडकी दीवाल इकहरी कलातहकी रहती है।

कुछ दिनोंतक स्फटिकमणिका यह पिंड कललके बाह्यत्वक पत्रको चिपका हुआ रहता है, लेकिन जल्दही बाह्यत्वक पत्रसे वह अलग हो जाता है। यह स्फटिकमणि पिंड भी पहले खोखला होता है। लेकिन उसकी पेशियोमें बहुप्रसवन क्रिया होनेसे उन नयी पेशियोसे वह पूर्णतया भर जाता है। प्रथमतः इस पिंडके कारणसे द्वितीय चाक्षुष प्यालेका खाली भाग भरा हुआ मालूम होता है; लेकिन बादमें यह प्याला गहरा हो जानेसे स्फटिकमणिपिंडके पिछले भाग और चाक्षुष प्यालेके बीचमें खोखली जगह पैदा होती है। यही खोखला भाग स्फटिकद्रव पिंडकी वेश्मनी या कोठरी बनता है। इसी समय स्फटिकमणि पिड और कललका बाह्यत्वक पत्र इन दोनोंके दरमियानके अवकाशमे कलल मध्यत्वक पत्र (मेसोब्लास्ट या डर्म) के भाग धुस जाते हैं। कलल मध्यत्वक पत्रके इस भागसे **तारका** और **तारकापिधानका** गूदा यानी असली मध्यभाग (स्ट्रोमा) तैयार होता है, तारकापिधानकी कलाकी तह कललके अन्य अंगोसे बनती है।

कललके बाह्यत्वक पत्रसे स्फटिकमणि पिंड अलग होजानेके बाद उसके **विकासका दूसरा भाग** शुरू होता है। उसकी पिछली दीवालकी पेशियोंमे बहुप्रसवमन शुरू होता है। लेकिन इसकी अगली दीवाल इकहरी तहकी ही रहती है। यह तह आखिर तक स्फटिकमणिके आगेके आवरणके अन्दर रहती है। पिछली दीवालकी पेशियां बढ़कर लम्बी हो जाती है। इन लम्बी पेशियोसे ही स्फटिकमणिके तन्तु बनते हैं। इन तन्तुओसे स्फटिकमणिका खाली भाग भर जाता है। ये तन्तु स्फटिकमणिकी अगली दीवाल तक पहुँचते हैं। अगली दीवालकी पेशियोंसे भी तन्तु बनते हैं। स्फटिकमणिकी वृद्धि पिछली दीवालकी पेशियोपर अगली दीवालकी पेशियो के तन्तुओकी तहोपर तहें चढ जानेसे होती है। अगली दीवालकी पेशियां विषुववृत्तके पास जानेके बाद तन्तु बनने लगती हैं। इसके पहले पेशियोके जीवनबीज विषुववृत्तके पास धनुष्याकार रेषाओंमें एकत्रित होते हैं। इन रेषाओको जीवनबीज मंडल (न्युकलीयर झोन) कहते हैं।

स्फटिकमणिका आवरणः—स्फटिकमणिके आवरणकी विकासकी शुरुआत स्फटिकमणि पिंड बंद होनेके पहले, और उसके चारों ओर रक्तवाहिनियोका जाला बननेके पहले होती है। पहले यह आवरण पिछले भागसे शुरू होता है और फिर वह संपूर्ण स्फटिकमणिको आच्छादित करता है। कोई कोई मानते हैं कि यह आवरण स्फटिकमणिकी पेशियोंके उत्सर्जित द्रवसे बनता है।

स्फटिकमणिका विकास जल्दी होनेके लिये उसे लगातार रक्त मिलते रहनेकी आवश्यकता होती है। यह रक्त उसे स्फटिकमणिके शिराजाल कोषसे (टयुनिका व्हासक्युलोझा लेन्टिस)

मिलता है। यह शिराजाल कोष गर्भावस्थाके दूसरेसे लेकर आठवें मास तक स्फटिकमणिके चारों ओर फैला हुआ रहता है। उसके बाद यह कोष अदृश्य हो जाता है। इस कोषसे मिलनेवाला रक्त संचय कलल चाक्षुष दरारसे अन्दर घुसी हुई स्फटिकद्रव पिंडकी रोहिणीसे होता है।

चित्र नं. १४३ १३·५ मि. मि. लम्बाईके मानवी गर्भके नेत्र और भ्रूणकी दरारमेंसे काट

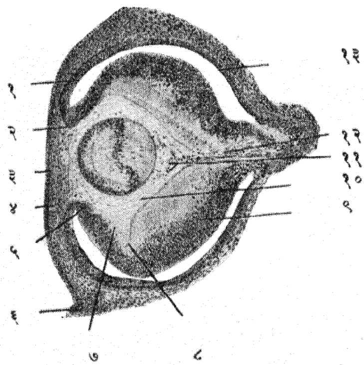

१	तारकाकी रंजित कलातह	७	तारकातीत पिंडका दृष्टिपटलका भाग
२	चाक्षुष प्यालेकी किनार	८	दन्तुरित तटपरिणाह
३	तारकापिधानकी आयतह	९	दृष्टिपटलका असल भाग
४	चाक्षुष प्यालेकी तह	१०	स्फटिकद्रव पिंड
५	तारकाका दृष्टिपटलका भाग	११	हायलाईड रोहिणीकी शाखाएँ
६	बाह्यत्वक	१२	गर्भमेंकी दरार

१३ रंजित कलातह

स्फटिकद्रव पिंडकी असली रोहिणी, मध्यभागकी **क्लोकेकी नाली**मेंसे होकर स्फटिकमणिकी पिछली दीवाल तक जाती है। वहां उसकी अनेक शाखाएँ होजाती हैं जो उसके विषुववृत्तको जाकर वहांसे अगली दीवालपर फैल जाती हैं। वहां उसका संयोग कलल मध्य पटलके जिन अंगोंसे तारका और तारकातीत पिंड बनते हैं उसकी रक्तवाहिनियोंमें होता है। फिर ये शाखाएँ कनीनिका तक जाकर वहां उनकी अन्तिम शाखाएँ बनती हैं। इस शिराजाल कोषको कनीनिकाका शिराजाल कोष कहते हैं। बालकका जन्म होनेके पहले ही यह शिराजाल गायब हो जाता है। लेकिन कभी कभी कनीनिकामें या स्फटिकमणिके पार्श्व ध्रुवके पास कुछ तन्तुओंका अंश जन्मके बाद भी दिखाई पड़ता है। इनके साथ हायलाईड रोहिणीका कुछ भाग अपारदर्शकसा रह जाता है।

तारकापिधानकी कलातहका विकास

स्फटिकमणिका पिन्ड अलग हो जानेके बाद बाह्यत्वक पत्रकी सिरें पारस्परीकसे मिलकर उनसे चतुष्कोणाकार पेशियोंकी तह बनती है जिससे **तारकापिधानकी कलातह**

बनती है। भ्रूण छः हफ्तेका होते ही इस एक\तहकी दो तहें बनती हैं जिसके बाहरी तहकी पेशियां चपटी होती हैं और उनका जीवनबीज बडा होता है। भ्रूण छः मासका होनेतक इसमें कुछ फर्क नहीं होते फिर इन दो तहोंके दरमियान बहुकोणाकृति पेशियां पैदा होती हैं। बालकका जनन होनेके समय चौथी तह पैदा होती है और फिर चौथेसे पांचवे मासमें पांचवी और छटी तहें बनती हैं।

गर्भ चार मासका होनेके बाद चाक्षुष प्यालेके सामनेकी किनारके ओष्ट, कलल मध्यपत्रजन्य अंशोके साथ ही साथ, स्फटिकमणि पिंडके सामने आते हैं। इस कलल मध्यपत्रके घटकोंसे तारकाके गूदाका विकास होता है। तारकाके पिछले भागकी रंगित कलाकी तह दृष्टिपटलकी तहसे आती है। इसी तहसे कनीनिकाका प्रसरण करनेवाली स्नायुका विकास होता है। कानीनिका का आकुंचन करनेवाली स्नायुका विकास भी इन्हीं भागोंसे होता है ऐसा कोई कोई मानते हैं।

चित्र नं १४४ ३८ मि. मि. लम्बाई (२¾ मास)के भ्रूणमेंका खडा काट

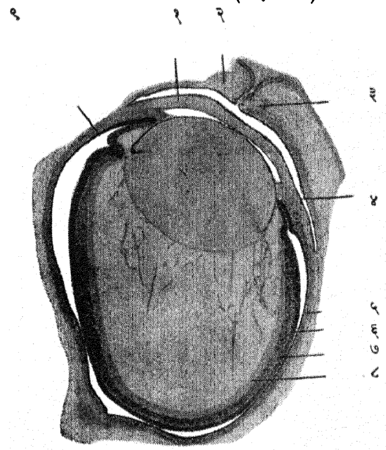

१ तारकापिधान
२ जुडे हुए नेत्रच्छद
३ अश्रुग्राही नाली
४ शुक्लान्तर कोष
५ कृष्णपटल
६ आद्य जीवनबीजकी तह
७ मज्जाकंद पेशियोंकी तह
८ मर्यादक तह
९ रंजित कलातह

तारकापिधानके पीछेका सुफेद भाग पूर्व वेश्मनी का है।

चार मासकी गर्भावस्थामें चाक्षुष प्यालेकी बाहरकी ओरसे तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओंका विकास होता है। इस आवरणमें झुर्रियां पडती हैं और उनमें रक्तवाहिनियां घुसती हैं। इसी समयमें तारकापिधानका मध्यभाग शुक्लपटलसे मिलनेके कारण दोनोंका अखंड पटल बनता है।

(२) कललके न्यूरल बाह्यत्वकसे पैदा होनेवाले घटक

दृष्टिपटलका विकासः—पहलेही कहा जा चुका है कि द्वितीय चाक्षुष प्यालेकी दीवालसे दृष्टीपटलका विकास होता है। इस प्यालेकी बाहरकी दीवालसे दृष्टिपटलकी रंजित कलातहका विकास होता है। यह रंजित द्रव्य पहले चाक्षुष प्यालेकी किनारके पास बनना शुरू होता है। दृष्टिपटलकी अन्य तहे प्यालेके अन्दरकी ओर घुसी हुई दीवाल्मे बनती हैं। यही मज्जाकलाकी तह होती है। मज्जाकी तहकी पेशियोसे पहले मूलर्स तन्तुयुक्त तह बनती है। इसमें कललकी मध्य त्वक पत्रसे बनी हुई रक्तवाहिनियोकी तहे अन्दर मिलती है। जिन पेशियोसे मज्जाकलाकी तहे बनती है उनमेंसे कुछ पेशियां अन्दर ढकेली जाती है, उनसे दृष्टिपटलकी मज्जाकंदकी पेशियोकी–ज्ञानमडल पेशियोकी (ग्यागलियन सेल्स) तह बनती है। मज्जाकद सबसे पहले तैयार होनेके कारण वे सबसे पुराने होते हैं। इस रीतिसे पेशियोकी एक के ऊपर एक रची हुई सात आठ तहे बननी है। मज्जाकंद पेशियोंसे बारीक अक्षरेषा तन्तु पैदा होते हैं, जो इकट्ठे होनेसे दृष्टिरज्जु बनती है। सबके आखिरमे खास चाक्षुप पेशियोका विकास होता है। राड तथा कोन नामक तहें बाह्य जीवनबीजकी तहसे पैदा होती है।

दृष्टिपटलके विकासका वर्णन चार अवस्थाओमें कर सकते हैं:—

पहलेकी अवस्थामे जो चौथे से पाचवे हप्ते तक के विकासकी होती है, चाक्षुष पीटिकाकी दिवालमें, मध्य मस्तिष्क मज्जा संस्थानके जैसे, दो मंडल दिखाई पडते हैं:— **(१) मज्जाकलाकी असली तहका मंडल** जिसमें ८ से ९ पक्तिमे रचे हुए दीर्घ वृत्ताकार जीवनबीजोका समुदाय होता है और जो भीतरकी ओरको होता है। **(२) किनारिका मंडल** जो पृष्ठपर होता है और इसमें जीवनबीजोकी संख्या बहुत ही कम दिखाई पडती है। भीतरी पृष्ठपर जिससे चाक्षुष पीटिका मर्यादित होती है, सुषुम्नाकी मध्यनालीमेके जैसे रोएँ होते है: और किनारिके मडल पर सूक्ष्म रक्तवहा केशिनिया पैदा होकर इसको रक्तकी भरती होती है। मध्य मस्तिष्कमें ये केशिनिया कायम रहती है लेकिन चाक्षुष पीटिकाकी ये केशिनियां भ्रूण या कलल ७ मि. मि. लम्बाईका होनेके बाद गायब होजाती हे फिर वह १०० मि. मि. लम्बाईकी होनेके बाद फिरसे दिखाई पडती हैं। **मावान्स** और **म्याजिटाट**के मतानुसार इनसे **आदि स्फटिकद्रव पिंडका** विकास होता है।

दृष्टिपटलके विकासकी दूसरी अवस्था भ्रूण १० मि. मि लम्बाईका होनेके समय शुरू होती है जब उसमे तहोका अवकलन दिखाई पडता है। यह क्रिया इस अवस्थामें, मध्य मस्तिष्कके संस्थानके मुताबिक भीतरी पृष्ठकी पेशियोंका विभाजन, बहुप्रसवन और उनके बाह्य भ्रमणसे संपूर्ण होती है: ये फर्क पिछले ध्रुवकी ओरको जल्द होते जाते हैं लेकिन भ्रूण की दरारके पास रुक जाते है। किनारिका मंडल चौडा होजाता है और इसमें भीतरकी असली मज्जा कलातहकी पेशियां घुस जानेसे भीतरी पेशियोंकी तह बनती है। यानी असली पेशियोंकी तहसे दो तहें बनती है भीतरी और बाहरी न्युरोब्लास्टिक तहे जिनके दरमियानमें जीवनबीजरहित तंग क्षेत्र—**शीयिटझ**की चंदरोक्षी या नापैदार

तन्तुरतह होती है; यह बालिग दशामें नही दिखाई पडती । लेकिन दोनों न्युरोब्लास्टिक तहोंसे दृष्टिपटलकी संमिश्र घटना होती है, यह अवकलनकी क्रिया धीरे धीरे भीतरीसे बाहरी पृष्ठको फैल जाती है । मज्जाकद पेशियां सबसे पहले और राड कोन आखिरमे बनते हैं।

तीसरी अवस्थामें (१७ मि. मि. चि. नं. १४५) भीतरी न्युरोब्लास्टिक तहमे खास तरहका विकास पहले शुरू होता है लेकिन बाहरी न्युरोब्लास्टिक तह कुछ समयतक जैसी की वैसी ही रहती है । बिलकुल भीतरी पेशियोके मज्जाकंदका पेशियोमे रुपान्तर होता है जिनसे केन्द्रगामी प्ररोहा पदा होकर वे चाक्षुष दंडमेसे मस्तिष्कको जाती है । लेकिन इस तरहकी शेष पेशिया असली स्वरूपकी रहती हैं और इन्होंकी बादमे **अमाक्राईन** पेशियां बनती है; लेकिन **मूलर्स** की पेशिया स्पष्ट दिखाई देती है, इनकी प्ररोहा भीतरी पृष्ठको जाकर फैलती है जिनके पारस्परीकसे मिलनेसे **आन्तर मर्यादकपत्र** बनता है । धारक घटक हमेशा पहले बनते हैं, जो माचन जैसे होते है जिनके इर्दगिर्द खास घटक बन सकते हैं । ये फर्क भीतरी न्युरोब्लास्टिक तहमें एक पर एक रची हुई ८ पेशियां की तहका अवकलन होने तक चालु रहना है; इनसे नापदार **शीविटझ** की तहम आक्रमण होता है । (२१ मि. मि. लम्बाईकी अवस्था चित्र. नं. १४६) इस आवरसे मे बाहयमर्यादा पत्र परके अविकसित रोंएे से बडे तन्तु बनते हैं जिन्होसे बादमे राड और कोन बनते हे; और फिर कुछ समयके बाद (४८. मि. मि. लम्बाईकी अवस्था चित्र नं. १४८) बाहरी न्युरोब्लास्टिक तहमें अवकलन शुरू होता है जब बाहरीके जीवनबीज मूत्रपिंडके आकारके बनकर उन्हीका कोन पेशियोका जीवनबीज बनता है । इसके बाद बाहरी तहमे फर्क जल्द पैदा होते हैं, और ११० मि. मि. की अवस्थामे उसके दोस्तर होते हैं । कोन के जीवनबीजोमेसे अनेक दीर्घवृत्ताकार जीवनबीजोकी तहें एक खोखले क्षेत्रसे (येही राडकी पेशियां बनती हैं) । शेष तहके भागसे अलग हो जाती हैं । (जिनकी द्वी ध्रुव पेशियां बनती है) । यही बादमें होनेवाली बाहय तन्तुर जालकी तहका समतल होता है, जिनमें कुछ थोडे गोल जीवनबीज दिखाई पडते हैं जिनसे आडी पेशिया बनती हैं। इस अरसेमें शीविटझ की तह (दृष्टिस्थानके भागके सिवा) गायब हो जानेसे द्विध्रुव पेशियोके जीवनबीज अमाक्राईन पेशियोंके जीवनबीजोसे और मूलर्सके तन्तुओकी पेशियोके जीवन-बीजोसे मुदामी होते हैं इस तरहसे बने हुये पेशियोके समुदायसे, जो न्युरोब्लास्टिक तहोसे पैदा होती हे, बादकी आन्तर जीवनबीज की तह बनती है और यह मज्जाकंद पेशियोके तहसे, बीजके आन्तर तन्तुर जालकी तहकी वजहसे अलग रहती है ।

१७० मि. मि. अवस्थामे (५½ मास–चित्र नं. १४९) राड और कोनके जीवनबीज, द्विध्रुव पेशियोंकी तहसे बीचके बाहय तन्तुर जाल की तहकी वजहसे अलग हो जाते हैं, और बालिग दृष्टिपटलकी कुल तहोंका विकास पूरा हो जाता है । २५० मि. मि. लम्बाईकी (·७ मास) अवस्थामें भीतरी तहोंमें रक्तवाहिनियोका विकास दिखाई पडना शुरू होता है । जननके बाद पेशियोंमें विभाजन नही होता; नेत्र बालिग अवस्थाके नापका होता है तब दृष्टिपटलके क्षेत्रकी मर्यादा, जीवनबीजोंकी तह फैलकर और पतली होकर बढती है, लेकिन उसकी मोटाई तन्तुर तहोंकी मोटाईमे बढत होकर कायम रहती है।

दृष्टिपटलका अवकलन (मानके अनुसार)

१ अवस्था	२ अवस्था	३ अवस्था	४ अवस्था
४–९ हप्ते	६ हप्ते से २ मास	३.७ मास	बालिग
किनारकी तहका पृष्ठ →			आन्तर मार्यदक पत्र
किनारकी तह	किनारकी तहका ऊपरी भाग →	ज्ञानतन्तुकी तह →	ज्ञानतन्तुकी तह
	आन्तर न्यूरो-ब्लास्टिक तह	– मज्ज्याकंद पेशिया →	मज्जाकंद पेशियां
		– अमाक्राइन पेशियां	आन्तर तन्तुर की तह
		– मूलर्स की पेशिया	आन्तर जीवन-बीजकी तह
असली मज्जा कलाकी तह	शीविट्झकी नापैदार तह	– द्विध्रुव पेशिया,	
		– आडी पेशिया,	बाह्य तन्तुरकी तह
	बाह्य न्यूरो-ब्लास्टिक तह	– राड और कोनके जीवनबीज	बाह्य जीवन-बीजकी तह
आधारतलास्तर पत्र →			बाह्यमयार्दक पत्र
रोए →	रोए →	आदि राड कोन →	राड और कोन
चाक्षुष प्यालेकी बाहरी दीवाल →			रांजितकला तह

संज्ञाग्राहक मौलिकतत्वः—पहले ही कहा है, कि चाक्षुष प्याले की भीतरी दीवालके बाह्य पृष्ठको पहले रोएवाला आधारतलास्तर लगा रहा था (कुलमध्य मस्तिष्कमज्जा संस्थानमें यही रचना दिखाई पडती है)। यह बात संभाव्य है, कि इन रोएँके राड और कोन घटकके बाहरीके अवयव बनते हैं, इस क्रियामे उनकी संख्या घट जाती है लेकिन उनका आकार बडा हो जाता है।

गर्भकी १७ मि मि लम्बाईकी अवस्थामे जीवनरसकी लम्बी प्ररोहा एक ओरसे प्राथमिक चाक्षुष प्याले के खोखले भागके पार जाती हैं, और दूसरी ओरसे रंजित कलातह को चिपकी रहती हैं। यह उनका चिपकना मजबूत रहता है; इसका सबूत यह है कि प्याले की दोनो दीवालोंको अलग करनेकी कोशिश की जाय तो वे रंजित कलातहकी पेशियोकी चिपकी रहती हैं। विकासकी ८० मि. मि. लम्बाईकी प्रगतिमें पेशियोके जीवनबीज गोलाकार होते हैं और पेशियोके जीवनरसका दूरी का भाग आधारतलास्तरमेसे आगे उभरा होकर आगे बढ जाता है; इस बढे हुए भागके सिरेपर प्राथमिक तन्तुर प्ररोहाकी टोपी जैसी होती है, जिसके तलमें रंगनेवाले दो कण (डिपलोझोम) पैदा होते हैं। आस्तरमेंसे घुसे हुए बडे भाससे कोन घटकोंका भीतरीका भाग होता है, और बारीक रोंएसे कोनका बाहरीका भाग बनता है। करीब आठवे मासमें मूलर्स के तन्तुओंकी प्ररोहाएँ बाहरी आधारतलास्तरको जा पहुंचती हैं जहा उनके सिरे पारस्परीकसे मिलकर उनका बाह्य मर्यादक पत्र बनता है जिनके जालाओंमेसे कोन उभरे होते हैं। राडका विकास करीब सात मासके समय इसी तौरसे होता है।

दृष्टिस्थानः—दृष्टिस्थानके भागमें गर्भके तीन मासतक अवकलनकी क्रिया सबसे जल्द और ज्यादह तादादमें होती जाती है। उसके बाद वह मंद होजाती है; लेकिन आठवें

चित्र नं. १४५ चित्र नं. १४६ चित्र नं. १४७ चित्र नं. १४८ चित्र नं. १४९

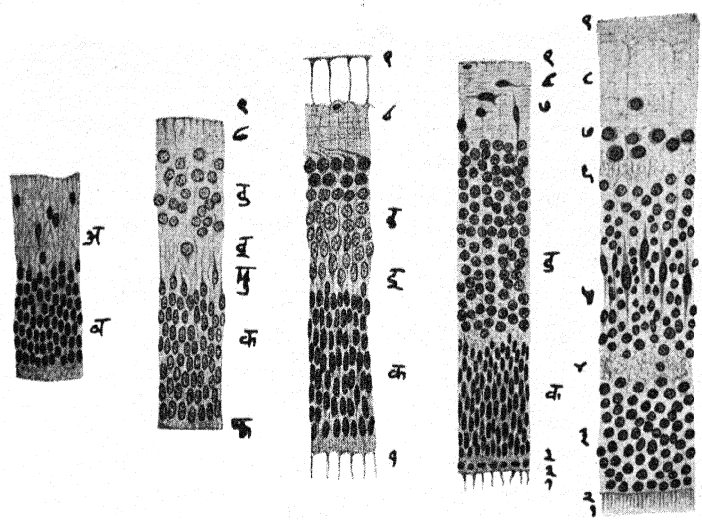

चित्र नं. १४५	चित्र नं. १४६	चित्र नं. १४७	चित्र नं. १४८	चित्र नं. १४९
चाक्षुष प्याले के भीतरी तह-में‌का काट १२मि. मि. का मानवी भ्रूण	वही काट १७ मि. मि. लम्बाईकी भ्रूणकी अवस्था	२१ मि. मि. लम्बाईकी भ्रूणकी अवस्था	४८ मि. मि. लम्बाईकी भ्रूणकी अवस्था	उसी तरहका काट १७० मि. मि. की भ्रूण की अवस्था

१	राड और कोन	अ	किनारकी तह
२	बाह्यमर्यादक पत्र	ब	असली मज्जा कला
३	राड और कोनके जीवनबीज	क	बाह्य न्यूरोब्लास्टिककी तह
४	बाह्य तन्तुर जालकी तह	ड	आन्तर न्यूरोब्लास्टिककी तह
५	आन्तर जीवनबीजकी तह	इ	ना पैदार तह (शीविट्झ)
६	आन्तर तन्तुर जालकी तह	फ	आस्तर तह
७	मज्जाकंदकी पेशियां	मु	मूलर्स के तन्तु
८	ज्ञानतन्तुकी तह		
९	आन्तर मर्यादक पत्र		(मीफेलडर और मान)

माससे फिर जल्द होने लगती है। और इस भागके सिवा दृष्टिपटलका विकास ९ मासमें पूरा हो जाता है; लेकिन इसके विकासका अवकलन जननके पश्चाद १६ हप्ते तक चालू रहता है।

तारकातीतपिंडका दृष्टिपटलका भाग (चि. नं. १४३-७) **(धी पार्स सिलिआरिस रेटीना)**

भ्रूण की दरार बंद हो जानेके बाद थोडे समयमें चाक्षुष प्याले की सामनेकी किनार आगे बढने लगती है (४८ मि. मि. का भ्रूण)। पहले पहल चाक्षुष प्याले की खातकी दीवालके दो भाग होते है, जब भीतरी दीवालकी वृद्धि ज्यादह होनेसे वह बाहरी दीवाल के सिरेपर चढ जाती है और इसकी वजहसे बाहरकी दीवालकी रंजित कलातह किनार तक नही जा पहुंच सक्ती। इनके दरमियान चाक्षुष प्यालेकी परिधिकी ओर को त्रिज्जाकी दिशामें अनेक झुर्रियां पहले भीतरकी तहमे बादमे दोनों तहोंमें पैदा होती है; और प्यालेकी किनार सामने बढकर उससे तारकाका बाह्यत्वकसे बननेवाला भाग बनता है और झोलसे तारकातीत पिडकी प्ररोहाएँ बनती है। हर झुर्री न्यूरल कलाकी दोनों तहोसे, बाहरी रजित तह और भीतरकी निरंग, बनी हुई होती है, जिसमे ४ मि. मि. लम्बाईके भ्रूणके आद्य दृष्टिपटलके सब धर्म दिखाई पडते है। इन झुर्रियोंका आकार और लम्बाई धीरे धीरे बढती जाती है, और हरमे मध्यत्वक पत्रका भाग, जिसमे रक्तवाहिनियोंके आद्य घटक होते है, घूसता है। पाचवेंसे नौ मासतक ये सामने बढते जाते है जिसकी वजहसे पीछे, मुलायम दोनों तहोंसे बना हुआ भाग रहता है जिसको **पार्स प्लेना** कहते हैं।

तारका का दृष्टिपटलका भाग (चित्र नं. १४३-५) **(पार्स आयरिडीका रेटीना)**

चाक्षुष प्यालेकी किनार इर्दगिर्दके मध्यत्वकमे बढती जानेके साथ साथ उसके भीतरकी तहमें जो पहले निरंग होती है और जो अब पिछली तह होती है, अब रंचित द्रव्य पैदा होता है और आहिस्ते आहिस्तेसे तारकातीत पिडके क्षेत्रकी ओरको पीछे बढती जाती है। इसके सिवा इसमें कुछ फर्क नही पाये जाते। इसके अलावा सामनेकी तहका कनीनिकाका आकुंचन और प्रसरण करनेवाली स्नायुके भागमें अवकलन होता है। **आकुंचन करनेवाली स्नायुके** भागकी पेशियोंमें चौथे मासमे स्नायुकी पेशियां पैदा होती हैं। ६ वे मासमे स्नायुमे केशिनियां और संयोगी घटकोंका विकास होता है और ८ वें मासमे वह आद्य कलातहसे अलग होजाती है।

प्रसरणकारक स्नायुके भागका विकास ६ मासके बाद शुरू होता है जब इसकी पेशियोमें सूक्ष्म तन्तु उसकी लम्बाईमें पैदा होते है। इस स्नायुकी भ्रूणकी अवस्था आयुके आखिरतक कायम रहती है; इसपर मध्यत्वकका आक्रमण नही होता न उसमे केशिनियां दिखाई पडती।

दृष्टिरज्जुका विकासः—दृष्टिरज्जुके विकासमें चाक्षुष दंडकी द्वितीय अवस्था पैदा होती है। चाक्षुष दंड पहले पहल खोखला होता है, फिर उसके नीचेकी ओरको खुली नाली बनती है। इस नालीकी किनारके अन्दर रक्तवाहिनियां घुस जानेके बाद वह नाली बंद हो जाती है। दृष्टिपटलकी मज्जाकंद पेशियोंकी असली अक्ष-रेषाएँ दृष्टिरज्जुके तन्तु बनते है। दृष्टिरज्जुके ये तन्तु मस्तिष्कमे की पेशियोंसे नही बल्कि दृष्टिपटलमे पैदा होते हैं। ये तन्तु दृष्टिरज्जु तथा चाक्षुषपंथके अन्य विभागोको अलग हटाकर मस्तिष्ककी तरफ जाते है। इन मस्तिष्क केन्द्र गामी तन्तुओंके सिवाय मस्तिष्ककी मज्जा पेशियोसे बाहर आनेवाले तन्तु भी दृष्टिरज्जुमें होते हैं। इन तन्तुओंको धारण करनेवाले अंश

चाक्षुषदंडकी पेशियोका बहुप्रसवन होकर बने हुए अंशसे, तथा अन्दर जानेवाले कलल मध्य-पत्रसे बनते हैं। और यही **न्युरागलिया** नामकी तह होती है। दृष्टिपटलके मज्जातन्तु-ओंपर मज्जामय वेष्ठनका विकास बहुत देरसे होता है।

(३) बाह्यत्वक पत्र और न्यूरल बाह्यत्वक पत्रके संयोगके घटकोंका विकास

स्फटिकद्रव पिंड और **तारकापिधानका गुदा,** जिनका संबंध इस बाहयत्वक पत्रसे जुडा हुआ होता है, इनकी पैदाइशके सबंधमें निश्चित कल्पना अभीतक नही हुई है। इस अनिश्चितता की वजह यह है कि बाहयत्वक पत्र और न्यूरल बाहयत्वक पत्र इन दोनोंके दरमियानमे जीवनरसके तन्तुर जाल जैसे घटक मुदामी दिखाई पडते हैं। इससे ऐसी कल्पना की गई कि स्फटिकमणिकी पैदाइश होनेके बाद स्फटिकमणि पिड और चाक्षुष प्याला इन दोनोंका संबंध जोडनेवाले घटकोंसे स्फटिकद्रव पिंडकी पैदाइश होती है और स्फटिकमणि और बाहयत्वक पत्र इनके दरमियानके घटकोसे तारकापिधानका बाहयत्वक पत्रसे बननेवाले भागका विकास होता है। **फान पसाझिल**ने (सन १९०८) इस परसे ऐसा सिद्धात मुकर्रर किया था कि इन तन्तुर घटकोकी वजहसे मध्यत्वक पत्रकी पेशिया बाहयत्वक पत्रकी तहोंसे मुदामी होती है, और इससे पैदा होनेवाले घटकोमे दोनो घटकोके अंश दिखाई पडते हैं। लेकिन तन्तुओका कौनसा भाग मध्यत्वक पत्रका बना है और कौनसा बाहयत्वक पत्रसे बना है इसका ठीक निर्णय करना मुष्किल की बात है। और इसी वजहसे स्फटिकद्रव पिडका विकास मिश्र स्वरूपका है ऐसा हालमे माना जाता है।

स्फटिकद्रव पिंड और स्फटिकमणिको लटकानेवाले बंद का विकास

स्फटिकद्रव पिड पेशियोंसे बना है इस कल्पनासे यह कौनसी पेशियोसे बनता है इसका फैसला करना यह बात महत्वकी मानी गई। पहले पहल स्फटिकद्रव पिडके शरीरकी रचना परसे कल्पना कीई थी कि स्फटिकद्रव पिंड संयोगी घटकोंकी पेशियोकी पैदाइश है। **स्क्रुलर**ने इस बारेमें (स. १८४८) पहली कल्पना कीई थी की वह **मध्यत्वक पत्र**से पैदा होता है। यह कल्पना १८९७ तक जारी थी। मध्यत्वक पहलेसेही वहा था, या भ्रूणकी दरारमेंसे अन्दर घुसा था, या हायलाईड रक्तवाहिनियोमे से पार हुआ था या फिरती पेशियोसे वह बना था इस संबंधमे उस समय बहुत बहस होता था। लेकिन बादमे **टारनाटोला**ने (१८९७–१९०४) बताया कि स्फटिकद्रव पिंडकी पैदाइश, मध्यत्वकको निकाल डालनेसे या हायलाईड रक्तवाहिनियोंके संस्थानका क्षय होनेसे जारी रहती है, और उन्होंने दूसरी कल्पना कीई कि वह **दृष्टिपटलसे** पैदा होता है। **लेनहासेक**ने इस कल्प-नामें सुधार किया कि स्फटिकद्रव पिंडकी पैदाईश दृष्टिपटलसे नही बल्कि स्फटिकमणिसे होती है। **सिरिनसिओन**ने मत प्रचार किया कि स्फटिकद्रव पिंडके विकासमें दृष्टिपटल और स्फटिकमणि इन दोनोंका हिस्सा होता है। इसके बाद **तीसरी ऐसी** कल्पना प्रचलित हुई कि स्फटिकद्रव पिंडके विकासमें मध्यत्वक पत्र और बाहयत्वक पत्रका हिस्सा होता होता है। लेकिन ध्यानमें रखना चाहिये कि ये सब बातें शरीरतन्तु विज्ञानकी गलत हुज्जतोंपर रची गयी थी; यह बात स्पष्ट है कि स्फटिकद्रव पिंड मूलतया न्यूरल बाहयत्वक पत्रकी और बाहयत्वक पत्रकी तहकी पैदाइश है और उसके विकासके आखरी अवस्थामें

दृष्टिपटलके ग्लायल मौलिक तत्वोका हिस्सा होता है। स्फटिकमणिको लटकाने वाले बंदका विकास तारकातीत पिंडकी कलातहसे होता है।

स्फटिक द्रवपिंड और स्फटिकमणिको लटकानेवाले बंदके विकास की तीन अवस्थाएँ हो सकती है।

(१) आद्य स्फटिक द्रव पिंडः— बिलकुल शुरू की अवस्थामें स्फटिक द्रव पिंड के घटक, न्युरल बाह्य त्वकपत्र और बाह्य त्वकपत्र (यानी पहलेकी स्फटिकमणिकी पट्टी जो बादमें स्फटिकमणिका पिड बनती है) इन दोनोके जीवनरस के घटको की मुदामी अवस्थासे, पैदा होते है। इसी भागको **सामनेका स्फटिक द्रव पिंड** भी कहते हैं। शुरूमे ही इस बाह्य त्वकपत्र पर मध्य त्वकपत्रकी पेशिया घुसकर उससे इतनी मिल जाती हैं कि दोनोको अलग अलग पहचानना मुष्किल होता है। लेकिन खोजसे मालुम हुआ है कि, तारकापिधानका मूल और पूर्ववेश्मनी बननेमे इसका महत्त्वका हिस्सा होता है। **हेजेडूर्नने** अपने भ्रूण शास्त्रके तुलनात्मक शोधसे सिद्धान्त बनाया है कि सब पृष्ठवंशी प्राणियोंमें **बाह्य त्वकपत्रसे बना हुआ चंद्रोझी, आद्य तारकापिधान**का मूल इस **आद्य स्फटिक द्रवपिंड** मे होता है, और जिसके पीछेकी ओरको मध्य त्वकपत्रके मौलिक घटकसे कलातह बनती है (जिससे भविष्यमें डेसिमेटके आवरणकी स्राव तौरसे पैदाइश होती है) और सामनेकी ओरको आद्य तारकापिधान और बाहरी कलातह इन दोनो के दरमियान मध्यत्वक पत्र मेख जैसी बनती है।

(२) दुय्यम स्फटिक द्रव पिंडः— पहली अवस्थामे कुल स्फटिक द्रव पिंडको हायलाईड रोहिणीके सस्थानसे रक्तकी भरती होती है : लेकिन बादमे ये रक्तवाहिनियां गायब हो जाती हैं और बेरसदार रक्तहीन स्फटिक द्रव पिड चाक्षुष प्यालेकी भीतरी दीवालसे पैदा होता है। इसकी पैदाईश से नये बने हुए घटक आद्य स्फटिक द्रव पिडके मध्यभागम एकठ्ठा होजाते है : यह दुय्यम स्फटिक द्रव पिंड आद्य स्फटिक द्रव पिडसे ज्यादह घन और बाकायदादार होनेसे दोनोकी सीमाके दरमियान एक लकीर जैसी बनती है, जो जनम भर क्लोकेकी नाली और स्फटिक द्रव पिंडके पिछले अवकाशकी सीमाजैसी दिखाई पड़ती है।

(३) तृतीय अवस्थाका स्फटिक द्रव पिंडः— भ्रूणके तीसरे मासकी अवस्थाके बाद चाक्षुप प्यालेकी किनार तारकातीत पिंडका भाग बननेके लिये आगे बढती जाती है यह ऊपर कहा गया है; और यहाकी न्युरल कलाकी तहसे, चाक्षुष प्यालेके अन्य भागोके जैसे, स्फटिक द्रव पिडका स्राव होता रहता है। इस प्यालेकी किनारमें तन्तुओंकी रचना समानान्तर जैसी होकर वह पीछेकी ओरको प्यालेके अन्दर घुसती है जिससे किनारका साफ बंडल बनता है। चाक्षुष प्यालेकी किनार आगे बढ जानेसे ये तारकातीत पिडके क्षेत्रमेंसे बने हुए तन्तु, जो जाडे और मजबूत होते है, आगे समकोण करके बढते जाते हैं। आखिरको सामनेको दुय्यम स्फटिक द्रव पिंडके भागका, जिससे किनारके तन्तु बनते है, क्षय होजाता है; लेकिन उसका दृष्टिपटलसें संबंध दन्तुरित तट परिणाह तक कायम रहता है यहां वह बंधा जैसा रहता है और इससे स्फटिक द्रव पिडकी नीव बनती है। इससे तृतीय अवस्थाका स्फटिक द्रव पिंड सामनेकी ओरको ठोस और मर्यादित घटक जैसा दिखाई पडता

है। यह भाग अब तारकातीत पिंडसे स्फटिकमणिके आवरण तक फैला रहता है, और तन्तुर शास्त्रकी दृष्टिसे विचार करनेसे यह भाग झान्युलके मिश्र तन्तुर जैसा दिखाई पडता है।

बालिग अवस्थामें आद्य स्फटिक द्रव पिंडसे क्लोकेकी नाली और स्फटिकमणिका पिछला अवकाश भरा रहता है, दुय्यम स्फटिक द्रव पिंडसे स्फटिक द्रव पिंडकी वेश्मनी भरी रहती है और तृतीय अवस्थाके स्फटिक द्रव पिंडसे झान्युल या स्फटिकमणिको लटकानेवाले बंद का भाग होता है।

(४) नेत्रके मध्यत्वक पत्रसे बननेवाले घटकोंका विकास

मस्तिष्कके भागसे चाक्षुष पिटिका बाहरकी ओरको बढने लगती है तब उसके, जहां वह मस्तिष्कके भागको लगी रहती है उसका सिवा अन्यत्र, इर्दगिर्द मध्यत्वक पत्रका विकास होता है। इस मध्यत्वक पत्रके दो संस्थान हो सकते हैं: (१) भीतरी मध्यत्वक पत्रका भाग जो चाक्षुष प्यालेको घेरता है; (२) जो उसके नीचेकी ओरको होता है।

चित्र नं. १५०
५ मि. मि. मानवी भ्रूण का चाक्षुष प्याला

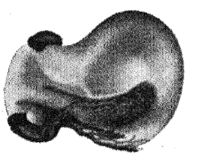

अन्तर्मातृकी रोहिणीकी जो चाक्षुष दंडके पीछे जाती है दो शाखाएँ निकलती हैं:— हायलाईड रोहिणी चाक्षुष प्यालेमें घुसती है और एक प्यालेकी किनारको रक्तकी भरती करती है।

चित्र नं. १५१
रोहिणी वलय

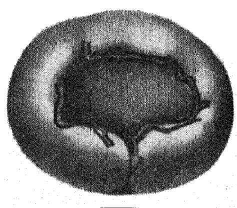

मानवी भ्रूण का १० मि. मि. का चाक्षुष प्यालेका सामनेके दृश्य; चाक्षुष प्यालेकी दरार नीचे दिखाई पडती है; प्यालेकी किनारके रोहिणीवलयकी शाखाएँ स्फटिकमणि के पीछेसे हायलाईड रोहिणी संस्थानको मिलने जाती है (फा. एसझिली)

प्राथमिक रक्तवाहिनियोंका संस्थान

पहले पहल भ्रूणकी ३ से ४ मि. मि. की अवस्थामें प्राथमिक भीतरी मध्यत्वक पत्रके भागमें कुछ भी अवकलन नहीं दिखाई पड़ता, लेकिन इसके बाद फौरन इसमें सूक्ष्म अन्तःकलाकी रक्तवाहिनियोंका, जो अन्तर्मातृका रोहिणीकी चाक्षुष रोहिणी शाखासे पैदा होती है, विकास होता है। चाक्षुष रोहिणीकी एक शाखा भ्रूणकी चाक्षुष दरारमें घुसती है और **हायलाईड रोहिणी** और अन्य चाक्षुष प्यालेकी किनारकी ओरको जाती है। बादमें (१३ मि. मि. अवस्थामें) चाक्षुष प्यालेकी किनारके घेरमें इनका **सामनेका रोहिणी वलय** बनता है और इसका और मध्यभागकी हायलाईड रोहिणीका संयोग होता है।

इसके साथ साथ, चाक्षुष प्यालेकी बाहरकी दीवालमें रंजित द्रव्योंकी पैदाइश होते ही, उसकी परिधिके भागमें (५.६ मि. मि.) अनेक सूक्ष्म रक्तवाहिनियोंकी पैदाइश

चित्र नं. १५२ रक्तवाहिनियोंके संस्थानका विकास (१८ मि. मि. भ्रूण)

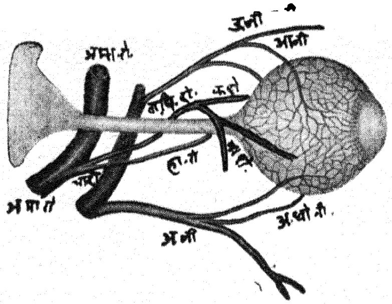

अ. मा. रो. अन्तर्मातृकी रोहिणी; ऊ. नी. ऊर्ध्व नीला; आ. नी. आवर्त नीला; ता. पि. रो. तारकातीत पिंडकी रोहिणी; क. रो. कनपटीकी शाखा; ना. रो. नासिका शाखा; चा. रो. चाक्षुष रोहिणी; हा. रो. हायलाईड रोहिणी; अ. नी. अधो नीला।

होती है; इनकी संख्या बढकर उनसे कृष्णपटलकी रक्तवह केशिनियोंका जाला बनता है (१३ मि. मि.)। इस जालाका सामनेके रोरिणी वलयसे संबंध जुडा होता है; और इस जालाकी ऊपरकी दो शाखाओंका उर्ध्वनेत्रगौहिक रक्तवाहिनियोंके जालासे और नीचेकी दो शाखाओंका अधो नेत्रगौहिक रक्तवाहिनियोंके जालासे संबंध होता है, और इस तरतीबसे नेत्रगोलकका रक्त **मधुकोषसम नीला विवरमें** (क्याव्हरनस तायनस) बह जाता है। तारकातीत पिंडके रुधिराभिसरणकी रोहिणीयोंका विकास भ्रूणके १८ मि. मि. की अवस्थामें होता है। चाक्षुष रोहिणीसे उसकी हायलाईड रोहिणीशाखा नेत्रमें घुसनेके पहले तारकातीत पिंडकी रोहिणी निकलती है। तारकातीत पिंडकी रोहिणी झरझरास्थिके क्षेत्रकी ओरको जाती है; लेकिन उसके पहले उससे नेत्रको दो लम्बी रोहिणियां, नासिका और कनपटीकी, पैदा होती हैं; और इनसे कृष्णपटलकी रक्तवह केशिनियोंके जालाको छोटी पश्चिमी रोहिणी शाखाएँ पायी जाती हैं, और इनसे चाक्षुष प्यालेकी किनारके पास **बृहन तारका रोहिणी वलय** बनता है। इससे पहलेका सामनेका रोहिणीवलय कृष्णपटलके जालामें गायब हो जाता है।

हायलाईड रक्तवाहिनियोंका संस्थान और स्फटिकमणिका रक्तवाहिनीदार आवरण (टुनिका व्हासक्युलोझा लेन्टिस)

हायलाईड रोहिणी पहले पहल चाक्षुष रोहिणीका मुदामी भाग होता है; यह भ्रूणके दरारके ऊपरी सिरेमेंसे होकर नेत्रमें घुसकर जल्दही स्फटिकमणिके पिछले ध्रुवको जा पहुँचती है (६–७ मि. मि. की अवस्था)। यहां पहुँचते ही उसका स्फटिकमणिके पिछले पृष्ठ भागपर केशिनियोंका जाला जैसा फैल जाता है जिससे **स्फटिकमणिके**

रक्तवाहिनीदार आवरण का पिछला भाग बनता है (८–९ मि. मि. अवस्था)। इस केशिनीदार जालाके असली तीन भाग (नीचेका, नासिकाका और कनपटीका) होते हैं जो स्फटिकमणिके विषुववृत्त और चाक्षुष प्यालेकी किनार इन दोनोके दरमियानसे जाकर रोहिणी वयलसे संबंध जोडते है, और इस तरतीबसे नेत्रकी भीतरी और बाहरी रक्तवाहिनियोंके संस्थानका संजोग होता है (चित्र नं. १४३)। इसके बाद पिछले रक्तवाहिनीदार आवरणसे सीधी शाखाएँ निकलकर उससे स्फटिकमणिके इर्दगिर्दके कुल भागको रक्तवाहिनियां मिलती हैं। इससे स्फटिकमणिके रक्तवाहिनीदार आवरणका **कनीनिकाके रक्तवाहिनीदार पत्र**का भाग तैयार होता है। इसके बाद यानी भ्रूणकी १७ मि. मि. लम्बाईकी अवस्थामे रोहिणी वलयपर अनेक कलिका पैदा होती हैं, जिनसे आखिरमे **स्फटिकमणिके रक्तवाहिनीदार आवरण का सामनेका** यानी **कनीनिकाका रक्तवाहिनीदार** पत्र स्पष्ट दिखाई पडता है। इस समय हायलाईड रक्तवाहिनियोके संस्थानका पूरा विकास होता है, और स्फटिकद्रव पिंडकी वेश्मनी असली हायलाईड रोहिणियो की शाखाओंके मिलनसे भरी हुई होती है (व्हासा हायलाईडिया प्रोप्रिया) और इनका संयोग स्फटिकमणिके पिछले रक्तवाहिनीदार आवरणसे भी होता है।

हायलाईड रोहिणीकी शाखाएँ जब स्फटिकमणिके विषुववृत्तको जाती हैं तब उनके साथ साथ मध्यत्वक पत्रके मौलिक तत्व भी जाते हैं और उनका चाक्षुष प्यालेके इर्दगिर्दके भीतरी मध्यत्वक पत्रके भागसे संयोग होता है और यह स्फटिकमणिके इर्दगिर्द होनेसे उसका प्राथमिक स्फटिकद्रव पिंडसे संयोग होता है और इनसे स्फटिकमणिके इर्दगिर्द तन्तुर आवरण बनता है।

इस तरहसे हायलाईड रोहिणी संस्थानका पूरा अवकलन होनेके बाद उसमे गायब हो जानेकी क्रिया शुरू होती है। भ्रूणकी ६० मि. मि. लम्बाई की अवस्थामे **असली हायलाईड रोहिणीके संस्थान**मे सिकुडनेकी क्रिया शुरू होती है, और ८½ मास की अवस्थामे उनका क्षय पूर्ण होजाता है कुछ शेष रहे तो वे जनम भर **मसी व्हाली टान्टिस** नामसे जाने जाते हैं। हायलाईड रोहिणीका असली भाग तंग होकर उसकी बीचकी नाली बंद हो जाती है, और आखिरको नेत्रबिम्बसे उसका सजोग अलग हो जानेसे वह क्लोके की नालीमें तैरती है ऐसा दिखाई पड़ता है। कभी कभी स्फटिकमणिके पिछले ध्रुवसे वह भाग लटका है ऐसा मालूम होता है। पिछले भागका क्षय होनेसे स्फटिकमणिके रक्तवाहिनीदार आवरणका बाजूका भाग निकम्मा होकर उसका भी क्षय हो जाता है।

कनीनिका पत्र और तारकाका विकास:—सामनेके रोहिणी वलयपर कलिका पैदा होकर वे अपने साथ मध्यत्वक पत्रका कुछ भाग स्फटिकमणिके सामनेके पृष्ठ भागपर ले जाकर स्फटिकमणिके सामनेके आवरणका भाग बनानेमें मदत करती हैं यह पहले ही कहा गया है। भ्रूणकी २२ मि. मि. लम्बाईकी अवस्थामे पूर्ववेश्मनी दिखाई पडती है, और उसकी पिछली दीवालमें मध्यत्वक पत्रकी पेशियां, जिनको परिधि भागके रोहिणी वलयसे रक्तकी भरती होती है, पायी जाती हैं। इसका परिधिका भाग मोटा रहता है जिससे तारकाका अहम भाग बनता है; लेकिन उसके मध्यभागमें पेशियोंका अभाव होता है और वह

आखिरमें गायब हो जाता है। इस भागकी रक्तवाहिनियोंकी तीन मिहराबदार राहकी कतारें होती हैं (५ मास की अवस्था)। दरमियानमें तारकाका बाह्यत्वक पत्रका भाग परिधिके मध्यत्वक पत्रके भागके पीछे बढता जाता है और इसके साथ साथ तारकातीत पिंडकी लम्बी रोहिणियोंकी शाखाएँ तारकाके मूलमें घुसकर **तारकाबृहन रोहिणीवलय** बननेमे भाग लेती है। इस रोहिणी वलयसे तीन तरहकी रक्तवाहिनियां पैदा होती हैं:—

(१) तारकाके पृष्ठ परकी रक्तवाहिनियां जिनसे कनीनिका का पत्र बननेमें मदत होती है; (२) तारकाकी गुदामेंकी रक्तवाहिनियां; (३) तारकातीत पिंडकी परिवर्तित शाखाएँ जो तारकातीत पिंडको जानेके लिये पीछे फिरती हैं।

तारकाकी आकुंचक स्नायुका उसके बाह्यत्वक पत्रसे विकास होनेके बाद उस स्नायुमें तारकाकी गुदाकी रोहिणियां, अपने साथ मध्यत्वक पत्रके मौलिक तत्व लेकर घुसती हैं। बादमें इनसे आकुंचन स्नायुके बंडलोंमें रक्तवाहिनियोंका जालासा बनता है। भ्रूणकी सात मासकी अवस्थामें इन रोहिणियोंकी मिहराबें गायब होना शुरू होता है और ८½ मासमे सब गायब हो जाती हैं, सिर्फ पहली मिहराबके कुछ भागसे **तारकाका लघुरोहिणी वलय** बनता है। तारकाके पृष्ठ परकी रक्तवाहिनियोंका कुछ भाग गायब हो जानेसे उनसे तारकामेंके खात बनते हैं।

दृष्टिपटलका रुधिराभिसरण संस्थानका विकासः—भ्रूणके विकासमें उसकी दरारके ऊपरी सिरेमें हायलाईड रोहिणी जब घुसती है तब यह नेत्रके कोटरमें घुसने तक उससे कुछ शाखा नही पैदा होती है। बादमे भ्रूणकी १०० मि. मि. लम्बाईकी अवस्थामें संभाव्य नेत्रबिम्बके पिछले कोणाकार भागमें हायलाईड रोहिणीके प्रकाडमे फुलाव पैदा होकर उसकी शाखाएँ पहले उस कोणमें आपसमें मिलती हैं और बादमे दृष्टिपटलके ज्ञानतन्तुकी तहमें मिलती हैं। ये रक्तवाहिनिया आखिरमें आन्तर तन्तुर जालकी तहमें घुस जाती हैं और उसके साथ साथ दन्तुरिततट परिणाह तक जा पहुँचती हैं। भ्रूणकी तीन मास की अवस्थामें नेत्रबिम्ब के क्षेत्रमें रोहिणीके बाद कुछ समयसे मध्य नीला दिखाई पडती है।

कृष्णमंडलकी रक्तवाहिनियोंका संस्थान

कृष्णपटलः—भ्रूण की ५ मि. मि. की अवस्थामें चाक्षुष प्यालेकी बाहरी दीवालमे जब रंजित द्रव्य पैदा होता है तब उसके साथ प्यालेके घेरेमें जो केशिनियों का जाला पैदा होता है वही कृष्णपटलकी रक्तवहा केशिनियोंका मूल होता है। यह जाला बादम मोटा होकर साफ दिखाई पडता है। १४ मि. मि. की अवस्थामें वह चाक्षुष प्यालेकी बाहरी दीवालसे एक साफ पत्रकी वजहसे अलग हो जाता है। यही पत्र **ब्रुक** का आवरण या पत्र होता है। इस केशिनियोंके जालामें कुछ समय तक अवकलन नही दिखाई पडता। दो मासकी अवस्थामें इस जालाके सामनेके भागकी रक्तवाहिनियां सीधी और समानान्तर लकीरों जैसी होती है। तीसरे मासकी अवस्थामें जालाकी रक्तवाहिनियों से बडे आकारकी नीलाकी तहका विकास होता है। और चौथे मासमें, पिछले भागमें जिसको तारकातीत पिंडकी

रोहिणियोंसे रक्तकी भरती होती है, रोहिणियोंकी तह पहले दोनों तहोंके दरमियान पैदा होती है; जो धीरेधीरे सामने बढती जाती है । पांचवें मासमें बालिगके कृष्णपटलकी रक्त-वाहिनियोकी सब तहें बन जाती है; और सातवें मासमें **क्रोम्याटोफोर** दिखाई देना शुरूं होता है यह रंजित अवस्था बाहरकी तहमें शुरूं होकर पीछेसे सामने बढती जाती है ।

तारकातीत पिंडका भागः—उपर कहा है कि तारकातीत पिंडकी लम्बी पश्चिमी रोहिणी आगे बढकर उनसे तारका का **बृहन रोहिणीवलय** बनता है; और उसकी जो तीन तरहकी शाखाएँ पैदा होती है उनमें से परिवर्तित शाखाओंमेंसे हरएक तारकातीत पिंडकी प्ररोहाको एकएक शाखा जाकर उनको रक्तकी भरती मिलती है (८ मासकी अवस्था)।

नेत्रका बाह्य पटल- शुक्लपटल-और पूर्ववेश्मनी का विकास

शुक्लपटल (स्क्लेरा):—१८ मि. मि. की अवस्था तक चाक्षुष प्यालेकी इर्दगिर्दके भीतरीके मध्यस्त्वक पत्रमें कुछ अवकलन नहीं दिखाई पडता, लेकिन उसके बाद जल्दही सरलस्नायु के संभाव्य बद्धस्थानमेंके घटकोकी तह मोटी होने लगती है । यह क्रिया पहले सामने शुरूं होकर शुक्लकृष्ण संधिकी ओरको फैलती जाती है और कुछ देरके बाद पीछे पिछली ध्रुव की ओरको फैल जाती है । शुक्लपटल का पूरा अवकलन पांच मासके बाद होता है। पिछले भागका देरसे अवकलन होना और ऱ्हस्वदृष्टिकी पैदाईश में कुछ संबंध होगा ऐसा माना जाता है ।

चित्र नं. १५३

पूर्ववेश्मनीका कोण ५ मासका भ्रूण

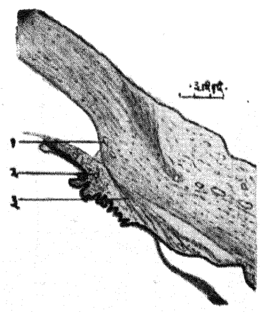

१ स्क्लेमकी नाली; २ तारकाका बृहन रोहिणी वलय; ३ तारकातीत पिंडकी स्नायु

तारकापिधान और पूर्ववेश्मनी

भ्रूणकी १८ मि. मि. की अवस्थामें स्फटिकमणि **और** उसके सामनेकी कलातहके **पत्रके** दरमियान के मध्यस्त्वक पत्रके मौलिक घटकोंका तारकापिधान और कनीनिकाके पत्रमें अवकलन होता है । और २० मि. मि. की अवस्थामें जाड तारकापिधान का विकास होता है। २५ मि. मि. की अवस्थामें सामनेकी कलातहकी दो तहे बनती है। और तारकापिधान के गुदामें कोलाजिन तन्तु बनते हैं । ७५ मि. मि. की अवस्थामें **डेसीमेट** का आवरण या पत्र, और १०३ मि. मि. अवस्थामें **बोमन**का आवरण या पत्र पैदा होता है। पूर्व-वेश्मनीका विकास देरसे यानी ५ या ६ मासके समय में होता है (चित्र नं. १४४)।

(५) नेत्रगोलकके इर्दगिर्दके घटकोंका विकास

नेत्रगुहाका विकास

चाक्षुष पिटिका, जो भ्रूणके शीर्षके भागके मध्यत्वक पत्रके भीतरीके भागमें रहती है बिलकुल शुरूके ४·५ मि. मि. की अवस्थामें शीर्षक झोल और ऊर्ध्वदन्तास्थिकी प्ररोहामें दिखाई पडती है (चित्र नं. १५४ देखिये)। दूसरे मासके शुरुमें (८ मि. मि.) मध्यत्वक पत्रकी नासिकाकी बाहरीकी प्ररोहा ऊपरसे नीचेकी ओरको बढती जानेसे और ऊर्ध्वदन्तास्थिकी प्ररोहा नीचेसे बाजूको बढती जानेसे चाक्षुष पिटिका घेरी हुई होती है (चित्र नं. १५५)। १२ मि. मि. की अवस्थामें मध्यत्वक पत्रके ये दोनों भाग मिलते हैं (चित्र नं. १५६) जिनके मिलनकी लकेरीमें संभाव्य **नासिकानाली** का स्थान होता है। इसके बाद ऊर्ध्व-दन्तास्थिकी प्ररोहा जल्द ही सामने और ऊपरकी ओरको बढकर नासिकाकी बाहरीकी प्ररोहाको और नेत्र और नासिकाकी प्ररोहाके दरमियानके मध्यत्वक पत्रके भीतरीके भागको ढाकती है, और दोनोंकी मिलन रेखा गढी हुई हो जाती है। जब १६ मि. मि. की अवस्थामें ऊर्ध्वदन्तास्थिका प्ररोहाकी नेत्रकी नीचे पट्टी जैसी बनती है तब उसपर वह स्थिर होता है (चित्र नं. १५७)।

चित्र नं. १५४ चित्र नं. १५५ चित्र नं. १५६ चित्र नं. १५७

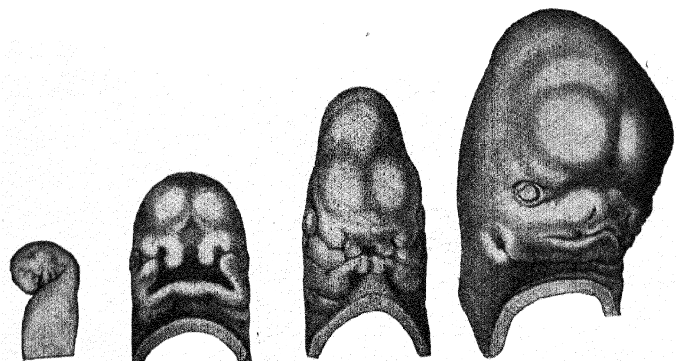

४·५ मि. मि. का भ्रूण बाजूका दृश्य — ८ मि. मि. का भ्रूण २ मासका सामनेका दृश्य — १३·७ मि. मि. का भ्रूण — १७ मि. मि. का भ्रूण

इस तरहसे नेत्रको चारो ओरसे घेरनेवाले मध्यत्वक पत्रके ये घटक सख्त होजाते हैं, और उन्होंसे नेत्रगुहाकी दीवालोंका अस्थिदार भाग बनता है। ऊपरीकी दीवाल, सामनेके मस्तिष्कके आवरणमें जो ललाटास्थिका विकास होता है उससे बनती है। बाहरीकी और नीचेकी दीवालोंका विकास ऊर्ध्वदन्तास्थिकी मध्यत्वक पत्रकी आशियी प्ररोहामें बननेवाली गंडास्थी और उर्ध्व दन्तास्थिकी अस्थियोंमे होता है। भीतरीकी दीवाल नासिकाकी बाहरीकी प्ररोहासे जिसमें ऊर्ध्वदन्तास्थिकी ललाटीय प्ररोहा, नासिकास्थि, वाष्पास्थि

और झरझरास्थिके बाजूके गोलोंका विकास होता है, बनती है । नेत्रगुहाका पिछला भाग खोपडीके तलके भागमे विकास होनेवाले नेत्रगौहिक–पुरोजतुकास्थिके भागोसे, जिनमेंसे दृष्टिरज्जु खोपडीके अन्तर जाती है, बनता है और जतुकास्थिके बडे पंखका पृष्ठभाग पत्रदार भागमेंसे बनता है और इस तरहसे नेत्रगुहा पूरी तैयार होती है ।

नेत्रच्छद और शुक्लास्तरका वीकास

भ्रूणकी दो मासकी अवस्थामे (१६ मि. मि.) नेत्रच्छदोंके मूल, बाह्यत्वक पत्रसे चाक्षुष पिटिकाकी ऊपर और नीचेकी ओरको पैदा होनेवाले एक एक दुपटे झोलमें होते हैं । ऊपरके नेत्रच्छदका विकास ललाटीय और नासिका प्ररोहासे भीतरीका और बाहरीका ऐसे दो भागमें होता है; बालिग अवस्थामे कभी कभी इनके मिलन स्थानमें खात दिखाई पडती है । नीचेका नेत्रच्छद ऊर्ध्वदन्तास्थिकी ऊपर बढे हुए प्ररोहाके भागसे बनता है । इस बाह्यत्वकके दुपटे हुये झोलके बाहरी भागसे चमडी और भीतरी भागसे शुक्लास्तर बनता है; भीतरी तह तारकापिधानकी कलातहसे मुदामी होती है; और मध्यत्वक पत्रके घटक अन्दर घुस जाते हैं जिनसे छदपट, सयोगी घटक और स्नायु बनती है । ये झोल जलदही नेत्रके सामनेके पृष्ठपर बढकर पारस्परीकसे ३ मासमें चिपक जाते हैं; यह चिपकनेकी क्रिया दोनों झोलके सिराओंमे (३१ मि. मि) शुरू होकर ३५ मि. मि. की अवस्थामें पूरी होजाती है (चि. न १४४ देखिये)। यह चिपकी हुई अवस्था पाच मासतक रहती है बादमे ये नासिकाकी ओरसे अलग होने लगते हैं और छ. मासमे पुरी होकर पूरे अलग होजाते है । कभी कभी जनन तक यह क्रिया पूरी नही होती । यह अपूरी अवस्था चूहे, बिल्ली और खरगोष प्राणियोमें कायम दिखाई पडती है ।

शुक्लास्तरका चंद्रकोरके आकारका झोल—जब दोनो नेत्रच्छद पारस्परीकसे नजदीक आने लगते हैं (३२ मि. मि.) तब शुक्लास्तरका चंद्रकोरके आकारका झोल, नेत्रगोलकके भीतरी ओरको बाह्यत्वक पत्रका खडा परदा जैसा बनता है । नेत्राश्रु पिटिकाका विकास देरसे होता है। नीचेकी अश्रुनालिका भाग बननेके समय उससे नीचेके नेत्रच्छदके किनारका भीतरी भागसे, जो काटा जाकर अलग होजाता है, उसकी यह **नेत्राश्रु पिटिका** या **अश्रुकासारमेंका मांस पिंड** बनता है ।

नेत्रच्छदके वालके कोष नेत्रच्छदकी किनारकी बाहरीकी सीमामें कलातहकी खात जैसे शुरू होते हैं। गर्भाशयमें गर्भकी अवस्थामे ये बाल दो मर्तबा गिरकर फिरसे पैदा होते है। बालके कोषकी दीवालसे बाहर निकलनेवाले उभारसे **माल** और **झायसिस** की ग्रथियां पैदा होती हैं । **मायबोमियन** ग्रंथिओका विकास नेत्रच्छदोंकी चिपकी हुई अवस्थामें उनके भीतरी भागसे बाह्य त्वकपत्रके अन्दर घुसे हुए भागोसे होता है (७३ मि. मि. की अवस्था)।

शुक्लास्तरकी ग्रंथियां बाह्य त्वकपत्रके अन्दर मुडे हुए भागसे बनती है। दुय्यम अश्रुग्रंथियां भ्रूणके १७ मि. मि. की अवस्थाके बाद दिखाई पडती है, लेकिन **खास अश्रुग्रंथि** २२ से ३२ मि. मि. की अवस्थामें दिखाई देती है । ग्रंथिकी नालीयां पहले पहल ठोस होती हैं लेकिन ५० से ५५ मि. मि. की अवस्थामें वे खोखली होती हैं। इस ग्रंथिका पूरा विकास ३ से ४ सालकी उम्रतक नही होता ।

नेत्राश्रुके वहन मार्गः—उर्ध्वदन्तास्थि की प्ररोहा ऊपर बढती जाती है तब वह नासिकाकी बाहरकी प्ररोहाको ढाकती है और दोनोके दरमियानकी दरारके पास बाह्य त्वक-पत्रका झोल रहजाता है। यह झोल पेशियोंकी एक ठोस छडी जैसा होता है जो नासिका-नाली का मूल होता है। कुछ समयके बाद ऊपरी नेत्रच्छद नीचे बढनेसे उससे आन्तर-अपाग बनता है, इस क्रियामें बाह्य त्वकपत्रके झोल के पास की दरार का बहुतसा बडा भाग इसमें ढाका जाता है। और नेत्रच्छदके नीचे बढे हुए भाग का नीचेके घटकोसे संयोग होनेसे इस भागका बडा क्षेत्र गायब हो जाता है। इस क्षेत्रकी ऊपरकी और नीचेकी किनार अश्रुनाली के मूल होते हैं। नीचेकी नाली नासिका नालीसे मुदामी होती है और इसमे इसके भीतरी ओरके भागसे नेत्रच्छदकी अन्दरकी सिराका भाग कट जाकर उसकी नेत्राश्रु पिटिका या अश्रुकासारमेंका मांसपिंड बनता है यह कहा है। इसके पश्चाद पेशियोकी जो छडी बनती है उसके मध्यभाग की पेशिया नष्ट हो जानेसे नासिका नाली पोली होने लगती है। यह क्रिया पहले नीचेकी अश्रुनाली के मध्यभागमे शुरु होती है, फिर ऊपरकी नालीमे और अश्रुकोषमे दिखाई पडती है। अश्रुग्राही मुख और नासिका नालीका नीचेका छिद्र सिवा अन्य कुल भाग छ. सेन्टिमिटरकी अवस्थामे खुला होता है। नेत्रच्छद पारस्परीकसे छुटक हो जानेके पहले (भ्रूणका सातवा मास) अश्रुग्राही मुख खुला हो जाता है, नासिका नालीका नीचेका छिद्र ८ मास खतम हो जानेके बाद खुला होता है।

नेत्रगोलककी बाह्य स्नायुओंका विकासः—चाक्षुपप्यालेके घेरेके मध्यत्वक पत्रका भीतरीका मध्य त्वकपत्र ठोसदार होकर आखिरमें (भ्रूण की ७ मि. मि. अवस्था) उससे नेत्रगोलकके बाह्य स्नायुका विकास होता है। पहले पहल यह घनीभूत भागका एकही अनावकलित पत्र रहता है जिसको तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जु तन्तु सिर्फ मिलते हैं। लेकिन जब (९ मि मि. की अवस्था) चौथी और छःठी मस्तिष्क मज्जा रज्जुओके तन्तु इस पत्रमें घुसते हैं तब कुछ अवकलन शुरू होता है। यह अवकलन सामनेसे पीछे की ओरको फैलकर चार सरल और दो वक्र स्नायु साफ दिखाई पड़ती है (२० मि मि. की अवस्था)। सरलान्तरचालनी स्नायु बहिर्सरल चालनी स्नायुकी अपेक्षा ज्यादह मजबूत और विकसित होती है। **पोयालेस**के मतानुसार हमजात भितरीके तिरछे नेत्रका यही कारण होगा। इसके बाद (५५ मि. मि की अवस्थामे) उर्ध्व सरल चालनी स्नायुके भीतरीके तन्तु अलग होकर उनसे नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु बनती है जिसका विकास ६० मि. मि की अवस्थामे पूरा होकर वह उर्ध्वसरल चालनी स्नायुके ऊपर सर जाती है। नेत्रच्छदो-त्थापिकी स्नायुकी इस तरहकी पैदाईशमे उसके हमजात की निर्बलता का कारण होना संभाव्य है, और सरलोर्ध्व चालनी स्नायुकी इस तहरकी कमजोरीकी भी वजह हो सकती है।

टेननका आवरण—यह स्नायुओके बद्धस्थान (८० मि मि.) सबधमें मध्य त्वक पत्रसे बना हुआ घनीभूत पत्र जैसा होता है; इसमे भी अवकलन सामनेसे पीछे होता है जब आवरणका पीछे का पत्र ५ वे मासमे स्पष्ट होता है।

नेत्रनिमिलिकी स्नायुका विकास दुसरी आशयी मिहराबसे होता है। स्नायुकी पेशिया १६ मि. मि. की अवस्थामे नेत्रके इर्दगिर्द फैल जाती हैं।

खंड तृतीय

अध्याय ८

दृगिन्द्रियकी उत्क्रान्ति, आकार और कार्यका तुलनात्मक विवेचन

नेत्रकी उत्पत्ती

अभेद दर्शक मौलिक जीवनरसके निर्बल घटकोंका मानवी नेत्रमें विकास किस तरहसे हुआ; प्रकाश रासायनिक प्रतिक्रियाजन्य शक्तिका दृक् संवेदनामें, और उसके साथसाथ अस्पष्ट संवेदनाओंका और मिश्र तथा इन्द्रियगोचर आकारको समझकर स्पष्ट करनेकी इंन्द्रिय शक्तिमें रूपान्तर किस तरहसे विकास होता है इस विषयका अभ्यास मनोरंजक है। यह शक्ति मनुष्यका वैशिष्ठ्य है और इसी शक्तिके कारण मनुष्यमें शारीरिक कौशल्य और बुद्धिका श्रेष्ठत्व दिखाई देता है और इसी कारणसे अन्य प्राणियोंपर मनुष्यका वर्चस्व--बढप्पन-- प्रस्थापित होता है।

मानवी नेत्रका विकास प्राणिवर्गके नीचेके वर्गकी नेत्रपेशियोंसे हुआ है। प्राणियोंकी इन नेत्रपेशियोंका आकार और कार्य पूर्ण विकसित तथा विशेष आकारके मानवी नेत्रसे बिलकुल भिन्न होता है। ऐसे बहुतसे प्राणि हैं कि जिनमें नेत्र स्वतंत्र अवयव न होते हुए भी उनको दिखाई देता है। और कुछ प्राणियोंको नेत्र होनेपर भी कुछ दिखाई नहीं पडता।

प्रकाशकी प्रतिक्रिया--प्रकाशजन्य चलनगति (फोटोट्रपिझम)

प्रकाश प्रतिक्रिया सेंद्रिय वर्गकी विशेषता है, ऐसी बात नहीं। भिन्न भिन्न प्रकाशकी प्रकाश रासायनिक क्रिया जड वस्तु या निरिन्द्रिय वर्गमें भी दिखाई देती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि फोटोग्राफिक कांचके रासायनिक मिश्रणपर प्रकाशकी क्रिया होनेसे फोटो निकाल सकते हैं। **एसरीन**के सादे द्रावणको खुला रखनेसे प्रकाशकी क्रियासे वह लाल रंगका होता है यह तजरबा है।

प्रकाश रासायनिक परिवर्तनके फर्क सब सजीव पेशियोंके जीवन रसमें दिखाई पडते हैं। परिवर्तन समान होते,. हैं। लेकिन कुछ पेशियोंमें उनका रूप भिन्न होता है, और क्रिया संमिश्र प्रकारकी होती है। सजीव सेन्द्रिय प्राणियोंमें दिखाई देनेवाले प्रकाश रासायनिक परिवर्तनको जीवनरसका उत्तेजकत्व (इरीटॅबीलिटी) ऐसा **क्लाडबरनार्ड ने** नाम दिया है। आदि जीवाणूमें इस उत्तेजकत्वका बोध जीवनरसकी गतिसे होता है। प्रकाशके समान ही भौतिक, रासायनिक उष्णता और विद्युत उत्तेजकोंकी भी क्रिया होती है। इसीको **प्रकाश जन्य चलत गति** मानते हैं।

प्रकाश उत्तेजकसे दिखाई देनेवाली आद्यगतिकी प्रतिक्रिया यह बात प्राणिवर्गकी ही कुछ विशेषता है ऐसा नहीं समझना चाहिये। यह प्रतिक्रिया वनस्पती वर्गमेंही पायी जाती है। **वनस्पती वर्ग** की नीचेकी श्रेणिमें, जिनमें स्वतंत्र गति दस्तुर की बात होती है, प्रकाशसे इस गतिका, **प्रकाशजन्य चलन गतिका,** नियमन होता है। इस चलनका बोध सूक्ष्मवनस्पतिके (फ्लाजेलेट) आकारका आकुंचन या प्रसरणसे होना संभाव्य होता है, लेकिन ज्यादहतर

उसकी **स्थानान्तरित अवस्थासे** बोध होता है। यह चलन, आहिस्तेसे चलना, घडियालके लम्बक जैसा झूलना, अमीबावत चालनक्रिया या तीरनेकी गति जैसा होता है। ऊपरकी श्रेणिकी वनस्पतिमे, जो अपने स्थानमे बधो हुई जैसी स्थिर रहती है, यह चलन उनके कुछ भागोमें दिखाई पडता है जैसी सूर्यकमलकी **प्रकाशजन्य चलनगति** (हेलियाट्राफिक मूहमेन्ट)। आम तौरसे इनका हवामे का अक्ष सूर्यकी ओरको घूमता रहता है यानी यह हकीकी या घनात्मक (पाझिटिव्ह) प्रकाशजन्य चलनगति होती है। इसमे इनके पत्तोका पृष्ठभाग सूर्यकिरणोसे काटकोन जैसा होता है जिससे ज्यादहतर प्रकाश किरणोका शोषण होकर पत्रहरितकी (क्लोरोफिल), पौधेमे पायाजानेवाला एक हरेरंगका पदार्थ, पैदाईश जिसके लिये सूर्य किरणोकी जरूरी होती है, सभाव्य हो; और इनके मूल प्रकाशसे दूर हट जाते है यानी उनमे **ऋणात्मक** (सालिबा निगेटिव्ह) **प्रकाशजन्य चलन गति** होती है। **प्राणिवर्गमें** ही प्रकाशजन्म चलन गतिका बोध प्राणियोके आकारमे के फर्कोसे, जैसेकि **इनफ्युझेरियोंमें** जिनका प्रकाशसे आकुचन होता है, मालूम होता; लेकिन ज्यादह ताय-दादमें इनके स्थानमे वदल होता है—**पारामिशिया** प्रकाशकी ओरको जाते है। यही प्रतिक्रिया हायड्रामे, कवचधारी केकडा जातीके बहुतसे प्राणियोमे, कई कीटकोके प्राथमिक डिम्ब (लारव्हा) में दिखाई पडती है। इसके विपरीत अमीबा और कई कीटिक प्रकाशसे दूर जाते है। इन बातो परसे उनमें दृगिन्द्रिय है ऐसा सिद्धान्त नही कर सकते।

यद्यापि उत्तेजक व्यूह की तरतीब या रचना वनस्पति और प्राणिवर्ग इन दोनोमे प्रकाश रासायनिक तरहकी होती है, उनके **प्रवाहकी** तरहमे और **प्रभाव**की तरहमे दोनोमे फर्क होता है।

वनस्पतीमे प्राथमिक प्रकाशरासायनिक क्रियासे पैदा होनेवाले पदार्थोंसे उत्तेजक दूरके बिन्दुकी ओरको जाते है जहा उसका असर होता है। आदि प्राणियोमें प्रकाशरासा-यनिक कियासे पैदा हुई शक्तिसे नजदीकके एक अणूमेसे दूसरे अणू, दूसरेसे तीसरे अणूमे इस तौरसे रासायनिक क्रिया की शृंखला बनती है जिससे उत्तेजित स्थानके जीवनरससे असर दिखाई देनेवाले स्थानकी जीवन रसको जा पहुँचती है। पहले मिसालमे उत्तेजकका प्रवाह निष्क्रिय स्वरूपका और दूसरे मिसाल सक्रिय स्वरूपका होता है। वनस्पति और प्राणियोंमें प्रकाश क्रियाकी प्राथमिक प्रतिक्रियाओमे दिखाई देनेवाला फर्क उनके पद्धतिमेका ही फर्क होता है। मूलमे प्रतिक्रिया एकही होती है प्रकाशरासायनिक फरकका चलनमे रुपान्तर करना।

प्रकाशजन्य प्रतिक्रियाका विकासकी **दो अवस्थायें** होती है। **पहली संज्ञाकी प्रतिक्रियाकी अवस्था** इसमें उत्तेजक (प्रकाश, उष्णता, रासायनिक आदि) अनियमित तरहसे जाना जाता है; और चलन खास उत्तेजककी ओर या उससे दूर हट नही जाता तो भी अकसर करके अनियमिततासे चलनसे उत्तेजक के ज्यादहतर एक केन्द्रिक के स्थानके बिन्दुकी ओरको या उससे दूर होनेकी कोशिश कीई जाती है। यानी गतिकी तैयारी होती है। दूसरी **स्थानकी प्रतिक्रियाकी** अवस्थामें उत्तेजकका पेशियोके भिन्न भिन्न भागोंपर असम पणिाम होनेसे जिस भागपर परिणाम ज्यादह होता है उस तरफ उनका, संज्ञाग्राहक इन्द्रिय (नेत्र) और कार्यकारक मज्जास्नायु इन्द्रियकी वजहसे, सहेतुक चलन होता है। वनस्पति

और आदिम प्राणियोंमें दृक्शक्ति होती है, यह विधान वास्तविक नहीं है। इन आदिम प्राणियोंपर यद्यपि प्रकाश क्रिया होती है तो भी उनको प्रकाशका ज्ञान नहीं होता। इन प्राणियोंमें चलन कार्य होता है लेकिन उसका अहम उपयोग जीवन कार्यके लिये होता है। दृष्टिका असली कार्य चलनका नियमन करना है। प्राणियोंके लिये इसका उपयोग भक्ष्यका तलाश करना, अडचनोंको दूर करना और शत्रुसे दूर जानेमें होता है।

नेत्रकी पैदाईश

प्राणिवर्गका मूल प्राणि एक पेशिका होता है जिसको **प्रोटोझुआ** कहते हैं। उन प्राणियोंमेंसे कुछ प्राणियोंमे जैसे कि अमीबा, इनफ्युझोरिया और रायझोपोडाओंमें प्रकाश उत्तेजकत्व संपूर्ण पेशीमें दिखाई पडता है यानी संपूर्ण पेशि नेत्रेन्द्रियका कार्यकरती है। यह नेत्रके **विकास की पहली अवस्था** होती है। कुछ प्राणियोंमें अनावकलित जीवनरसके कुछ भागमें ही रंजित बिन्दु होते हैं जिनमें उत्तेजकत्व दिखाई पडता है। **युगलेना व्हिरिडिस** यह इसकी मिसाल है; इसके पेशिके सामनेके भागमें उत्तेजकत्व दिखाई पडता है। यह नेत्रके **विकासकी दूसरी अवस्था** होती है। इन बिन्द्वाकार नेत्रकी संख्या **पृष्ठवंशहीन** या बिना रीढवाले प्राणियोंमें (इनव्हरटीब्रेटस) ज्यादहसे ज्यादह प्रमाणमें दिखाई देती है। सितारेके सूरतकी मछली **स्टारफिश**–यह इसकी एक मिसाल है। ये बिन्द्वाकार नेत्र स्टारफिशके हरएक भुजाके अग्रभागपर बहुसंख्यामें होते हैं। भुजाके पृष्ठभागपर की स्नायुके आकुंचनसे ये नेत्र प्रकाशकी ओर घुम जाते हैं (चित्र नं. १७३ देखिये)। **मेटाझुआ** में यानी जब एक पेशिसे बहुपेशीके प्राणियोंमें विकास होता है तब **तीसरी अवस्था** दिखाई पडती है।

चि. नं १५८

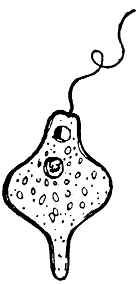

यूगलेना व्हिरीडिस जिसमें जीवनबीज और नेत्रबिंदु दिखाई देता है।

मेटाझुआके बहुपेशियोंका अवकलन होकर उनके भिन्न भिन्न उत्तेजकोंके लिये भिन्न भिन्न पेशि समुदाय बनते हैं। प्रोटोझुआमें सिर्फ एकही उत्तेजकत्व की अवस्था थी जिसमें कुछ खास तरह की संज्ञाग्राहकता नहीं दिखाई पडती। मेटाझुआके भिन्न भिन्न पेशियोंके समुदाय की रचनामें उनके कार्यके अनुसार फर्क होते हैं। इनमेंसे तीन अहम समुदाय, भौतिक, रासायनिक और प्रकाश संबंधीके संज्ञाग्राहक समुदाय, जिनको **हेल्महोलटज**ने **मोड्यालिटिज** नाम दिया था, महत्वके होते है। इनमें पहला समुदाय मूल है लेकिन विकास की अवस्थामें तीसरा समुदाय उसकी प्रक्षेपण की शक्तिकी वजहसे तीनोंमें ज्यादह महत्वका है। बादके बिकासमें हर संज्ञाग्राहक समुदायमें ही अवकलन होनेसे खास गुणोके लिये, जैसे कि दृष्टिके संज्ञाग्राहक समुदायमें रंग ज्ञानके खास समुदायका विकास, खास भाग बनते हैं यह शोध **पारसन्स**ने १९२७ में शोध किया।

प्रकाश कार्यकी पेशियां

प्रकाशकी प्रतिक्रिया की संबंधी की पेशियोंका वर्णन पहले पहल **हेसे**ने १८९६ में किया था। ये पेशियां कीटकों की चमडीके तहमें पायी जाती है। और अन्य प्राणियोंमें भी इनका आस्तित्व जल्द ही शाबित किया गया। प्राथमिक बाह्यत्वक की पेशियोंमें दो छरूवोंको अवकलन होता है जिनमेंसे एक जो दूरीको होता है प्रकाश संज्ञाका ग्रहण करता है और दूसरेसे जो नजदीक को होता है संज्ञाका वहन होता है। पूर्ण विकास हुई पेशिमें तीन भाग स्पष्ट होते हैं:—

(१) रोएँ या राडवाला; संज्ञाग्राहक या अन्य इन्द्रिय (२) जीवनबीज और खाली भागका पेशीका अहम भाग; (३) नजदीकका ज्ञानतन्तुमें जानेवाला संज्ञावाहक भाग।

चित्र नं. १५९

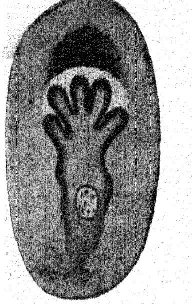

ट्रिष्टोमें पापिलोझमकी प्रकाशकी पेशि जिसके संज्ञाग्राहक पृष्ठपर उंगलीया जैसी प्ररोहा होती है और इन प्ररोहापर रंजित द्रव्य होता है। (हेसे)

चित्र नं. १६०

घोंघा जिसको खाते हैं, कि प्रकाश की पेशि जिसपर रोएँ है और जिसके इर्दगिर्द रंजित द्रव्य है। (हेसे)

चित्र नं. १६१

क्रिसाप्स मारमोराटसकी प्रकाशकी राडवाली पेशी (क्लासिओ)

चित्र नं. १६२

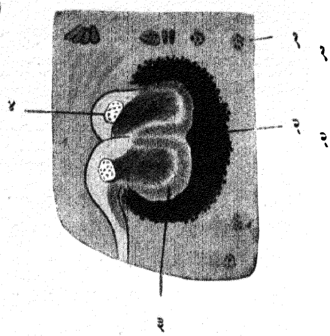

ग्रानटारियाकी दो प्रकाशकी पेशिया (१) कलातहकी नीचे है जिनपर रंजित द्रव्य (२) का आच्छादन, (३) रोएँ और (४) जीवनबीज दिखाई पडता है। (हेसे)

पेशिका संज्ञाग्राहक भाग मिश्र स्वरूपका होता है: कभी कभी इनमें रंजित द्रव्यसे अच्छादित प्ररोहा (चित्र नं. १५९) शायद संज्ञाग्राहक पृष्टका आकार बडा होनेके लिये दिखाई पडती हैं। कईमें शरीररचना शास्त्रके दुय्यम फरकोंके दृश्य रोएँ और राड दिखाई पडते हैं। कई संज्ञाग्राहक पेशिओंमें रोएँ (चित्र नं. १६०) अवकलनका महत्वका भाग होता है और वे हेसेके मतानुसार ज्ञानतन्तुओंके दूरीके सिरे होते हैं। और जो संज्ञावाहक तंत्रके प्राथमिक होते हैं; तन्तुर किनार की पेशयोंमें यही रचना पायी जाती है (चित्र नं. १६३ देखिये)। राड पहले पहल पेशियोंके जीवन रसकी प्ररोहा जैसे होते हैं जिनमें विकासकी प्रगतिकी अवस्थामें बहुतसा खास अवकलन दिखाई पडता हैं; ये कीटक, आरथ्रोपोड, कवचवाले प्राणियोंमें पाये जाते हैं और इनका पूर्ण विकास पृष्ठवंशी प्राणियोंके नेत्रोंमेंके संज्ञाग्राहक घटकोंमें दिखाई पड़ता है। पेशिके अहम भागमें जीवनबीज और तन्तुर घटक होते है और जिनका विशेष यह होता है कि उनमें कभी कभी अनेक छोटे छोटे खाली अवकाश दिखाई पडते हैं।

चित्र नं. १६३

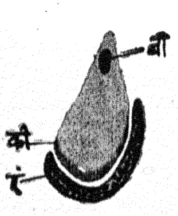

अंफीआकसस की प्रकाशकी पेशि जो पृष्टवंशके पास होती है।

बी—जीवन बीज

की—तन्तुर किनार

र—रंजित द्रव्यका आवरण

प्रकाशकी पेशिके प्राथमिक अवस्थामें रंजित द्रव्य होता है जिनका पत्रहरितसे साम्य होता है । प्रकाश की भौतिक शक्ति का जिस मात्रामे उसका शोषण हेगा उसी मात्रामें उसका प्राकृतिक कार्यमें रुपातर होगा, और पेशियोके आसपास जमे हुए रंजित द्रव्यका असल कार्य शोषण करनेका होता है। जितने भीतर खोलीपर ये पेशिया रहती है उतनी ज्यादह मात्रामे इनका महत्व होता है । और अब उनके संज्ञाग्राहक भागपर रंजित द्रव्य का आच्छादन होता है (चित्र न. १६२ देखिये)

इस तरहकी प्रकाशकी पेशियां अनेक प्राणियोंमें पायी जाती है; बाजेववत, कई कीटको में की जैसी ये पेशिया इधर उधर ज्यादह तादादमे फैली हुई दिखाई पडती है; या जिन प्राणियोके खास भागमे उसकी जरूरी होती है वहा जमी हुई दिखाई पडती है; **मेडूसाके** (चित्र नं १७४) स्पर्श शुन्डाकी नीत्रके इर्दगिर्द और कवचवाले प्राणीयोके कवच घेरेके पास वे ज्यादह इकट्ठी होती हे । अनेक सज्ञाग्राहक इन्द्रियोके विकासके साथ संज्ञाकी तीव्रतामे सज्ञा-ग्राहक इन्द्रियो के स्थान के अनुसार फर्क होता है । और स्थान निर्णयका प्राथमिक सज्ञाग्राहक इन्द्रिय का विकास होता है । यह प्रोटाझुआ मे नही दिखाई पडता । इस स्थान निर्णयके सज्ञाग्राहक इन्द्रिय की वजहसे प्रकाशके आघात के अनुसार प्राणि अवकाशमे चल सकता है। विकासकी सबसे बडी महत्व कि अवस्था मे **समावयका (मेटामर्स)** विकास होकर उनकी तहे लम्बी अक्षरेषामें रची जाती है । इस रचनामें पेशिके दोनो सिरेका महत्व होता है इस रचनासे सिरके मस्तिष्कके भाग का विकास होता है जो चलनमे अग्रेसरत्वका भाग लेता है, जो सब सज्ञाको ग्रहण करता है और जो इनमेसे फायदे या गैर फायदे की सज्ञाओंमे चुनाव करता है । इस जगह सब सज्ञाग्राहक इन्द्रियोंका जमाव होता है और इसी स्थानमे कुछ चाक्षुष व्यूह एकत्र जमा होता है ।

खास दृष्टिका विकास तीन अवस्थाओंमेसे होता है:—

(अ) **पहली अवस्था प्रकाशके उत्तेजनसे चलन होना :** इसमे एक पेशीवाला प्राणिही प्रकाशकी ओरको जाता है या प्रकाशसे दूर हट जाता है : जैसे कि **पारामिसियम बरसारिया** और **अमीबा** ।

(ब) **दूसरी अवस्था प्रकाश संज्ञाका ज्ञान :** इस अवस्थामें प्राणि कुछ खास तरतीबसे प्रकाश संज्ञा की प्रतिक्रिया बता सकता है, लेकिन उसको प्रकाशका प्रत्यक्ष ज्ञान नही होता । **भुजन्तु** (अर्थवर्म) **केंचुआ** पर प्रकाश डालनेसे वह प्रकाशसे दूर हट जाता है : टयूबवर्म कीटक उस परके प्रकाशको दूर हटानेसे वह अपने पंख सदृश शुंडाको बंद करलेता है । छायाकी प्रतिक्रियासे यह प्राणि अपना बचाव करनेकी कोशिश करता है इस छाया की प्रतिक्रियासे पृष्ठवंशहीन प्राणि छुप जाते है या शत्रुसे बचाव करनेकी कोशिश करते है । यह मान सकते है ।

(क) **तीसरी अवस्था प्रकाश संज्ञाका खास ज्ञान यह होती है :** इस अवस्थामें दृष्टिका मध्य मस्तिष्क तंत्रका विकास होनेसे प्राणि प्रकाशको प्रकाश ऐसा जान सकता है। कहें तो कह सकते है, कि जिन प्राणियोंमें इस तीसरी तरह की दृष्टि होती है वही देख सकते हैं ।

प्राणिके दो वर्गोंके नेत्रेन्द्रियका वर्गीकरण

अ पृष्ठवंशहीन प्राणिओंका कलातहकी पेशीदार नेत्र जो चमडीमें पैदा होता है ।

सादा नेत्र

१ कलातहकी एक पेशीदार **नेत्र**

२ कलातहकी पेशी समुदायदार नेत्र

(अ) चैपटी पेशीदार नेत्र

(ब) पेशिओंका प्यालाकार नेत्र

(क) पिटिकाकार नेत्र

मिश्र या पहलुदार नेत्र

ब पृष्ठवंशवाले प्राणिओंका मस्तिष्किय नेत्र जो मध्य मस्तिष्कसे पैदा होता है ।

अ पृष्ठवंशहीन प्राणिओंका पेशिदार नेत्रः—

सादा नेत्रः—

प्राथमिक प्रकाशकी पेशि जो बाह्यत्वक पत्रसे पैदा होती है, और जिसका. प्रकाशके आघात किरण का प्राकृतिक संज्ञामें रूपान्तर करनेके लिये इर्दगिर्द की पेशिओंसे अवकलन होता है उसको नेत्रकी प्राथमिक या मूल अवस्था कह सकते हैं । इस हरएक पेशिमें, जिसमें प्रकाशकी प्रतिक्रिया दिखाई देती है, उसमें दृष्टि की खास कल्पना का विकास होनेके लिये जिस प्रतिमाकी जरूरी होती है वह प्रतिमा नहीं बनती । यदि ये प्राथमिक पेशियां गुणा हो, ओर गुणा हुए पेशियोंके समुदाय से इन्द्रिय बने तो उनसे बाह्य पदार्थकी कुछ कल्पना होगी ऐसा मानना संभाव्य होगा । इस समुदायके हर पेशिको प्रकाश की संज्ञा मिलती है; इस संज्ञाके समुदाय एकत्रित होनेस बाह्य जगत का प्रकाश और छायाका प्राथमिक **पच्चीकारी** (मोझेक) जैसा बनना संभाव्य होगा । **जब तक समुदाय** की हर पेशि अपना खास वैशिष्ठ्य कायम रख सकती है तब तक हर पेशिको सादा नेत्र मान सकते है ।

प्राणिके पृष्ठभाग परका **प्राथमिक नेत्र** एक प्रकाश पेशिका होता है । इस पेशिमें बादमें कुछ अवकलन होकर उस पर रंजित द्रव्योका आवरण पैदा होता है (चित्र नं. १६३ देखिये)। इस रंजित द्रव्यसे प्रकाशका शोषण होनेसे उष्णता और शायद अन्य तरहकी शक्ति पैदा होती है । ये नेत्र अँम्फीआक्सस में प्राणिके शरीरमें गहराईमें पाये जाते है । इसकी **दूसरी प्रागतिक अवस्थामें** प्रकाशकी पांच या छः पेशिओंका समुदाय होता है; यह अवस्था **स्टिलारिया लाकुस्ट्रिसमें** दिखाई पडती हैं (चित्र नं १६४) इन प्राथमिक **नेत्रको आकिलेस** (सूक्ष्म नेत्र) कहते हैं ।

चित्र नं. १६४

स्टिलारिया लाकुस्ट्रिस

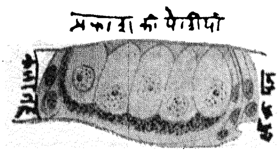

(२ ब) प्यालाकार नेत्रः—इनमें पृष्टभाग की कलातहकी पेशियां भीतरकी ओरको सरक जानेसे उनका प्यालाका आकार बनता है । इससे प्रकाश पेशियोंका इस खातमें समुदाय बनता है जिससें प्रकाश प्रक्षेपण अच्छा होता है । यदि ये नेत्र चपटे नेत्रसे बेहतरीन होते है

और उनमे अवकलनकी अवस्था दिखाई देती है तब भी वे प्रकाशकी पेशिओंके ही बने हुए होतें हैं । इनसे पृष्ठभाग पर खात जैसी बनती है जिसका मूंह चौडा होता है (चित्र नं. १६५ देखिये) ।

नॉटिलस जातिके प्राणियोंमें नेत्र बिलकुल मूल अवस्थाके होते हैं । यानी उनके नेत्रकी कोटर–पोला भाग–खुला अनाच्छित रहता है । कोटरकी भीतरी दिवालकी पेशियां शरीरके बाह्यपटलकी पेशियोंसे पैदा होती है । इन पेशियोंकी संवेदना पेशियोंमें अर्थात दष्टिपटलमें रूपान्तर होकर उनका संबंध मज्जातन्तुओंसे दृष्टिरज्जुके साथ जुडा जाता है।

चित्र नं. १६५

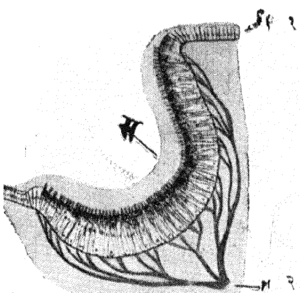

कस्तुरा वर्गके पटेलाका प्यालेके आकारका नेत्र, जिसका मूंह पृष्ठभाग पर खुला है, चाक्षुष कलातहमें प्रकाशकी रंजित पेशियां और नीरंग रसवाही पेशियां हैं । चाक्षुष पेशियोंके पृष्ठपर (स) स्राव है ।
(१) कलातह; (२) ज्ञानतन्तु (हेसे)

चित्र नं. १६६

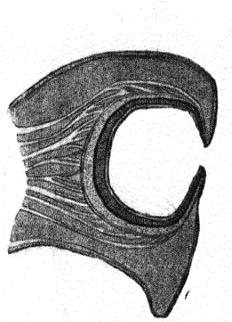

नाटिलस का नेत्र; यह मौलीपाद (किफालापोडा) वर्गका होता है यह समुद्रमें रहता है; इसके सिरके आसपास बहुतसे पैर रहते हैं ।

चित्र नं. १६७

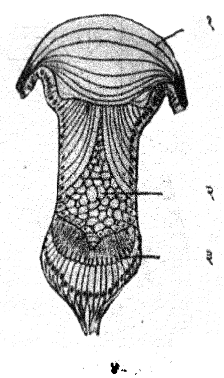

मकडी का नेत्र
(१) स्फटिकमणि
(२) स्फटिक द्रवपिंड
(३) राड की तह
(४) दृष्टिरज्जु

इसके बादके विकासकी अवस्थामें इस प्यालेका मूंह पष्ठभाग पर कनीनिका जैसे बारीक छिद्रसे खुलता है (चित्र नं. १६६ देखिये) । यह मूंह बिलकुल बंद है ऐसा भी दिखाई पडता है । इसकी बनावट बारीक छिद्रवाले क्यामेरा जैसी, यानी एक अंधियारी कोठरी जिसमें एक ही छोटासा छिद्र होता है, होती है ।

इसके बादकी विकासकी अवस्थामें बाह्यत्वकमेंकी इन प्रकाशकी पेशिओंसे एक तरहके स्फटिकमणिकी पैदाईश होती है, और इस स्फटिकमणि और दृष्टिपटलके दरमियानमें स्फटिक द्रवपिंड की पैदाइश होती है । प्रकाश पेशियोंकी दरमियानकी रसवाही पेशियोंसे यह श्राव जैसा होता है । ये प्यालाकार नेत्र संधिपाद प्राणिवर्ग (आरथ्रोपोड) और कस्तुरावर्ग (मोलस्क)के प्राणियोंमें दिखाई पडते हैं ।

(२ क) **पिटिकाकार नेत्रः**—नेत्रके विकासकी यह और बढके प्रगतिकी अवस्था होती है । इस अवस्थामें खात या प्यालेका मूंह बंद हो जानेसे नेत्रका आकार पिटिका जैसा होता है और वह पृष्ठभागसे भीतर सरक जानेसे उसका पृष्ठ भाग ऊपरकी कलातहसे

आच्छादित हो जाता है (चित्र नं. १६७) । इस तरहके नेत्र मकडी, बिचुआ और मौलपाद वर्गमें (किफालापोडमें) दिखाई पडते है, जिनमें ज्यादहसे ज्यादह अवकलन हुए पृष्ठवंशहीन प्राणिके नेत्र होते हैं। लेकिन ध्यानमें रखिये, कि नाटिलस जो किफालापोड वर्गका प्राणि होते हुए भी उसका नेत्र पृष्ठ भागपर खुला होता है।

चित्र नं. १६८

शंबूक या घोघा का नेत्र (यह बाह्य पृष्ठ भागसे बिलकुल अलग हुआ है प्रकाश पेशियोंपर रोए हैं; स्फटिकमणि और दृष्टिपटलमेंका अवकाश श्रावसे भरा है (हेसे)

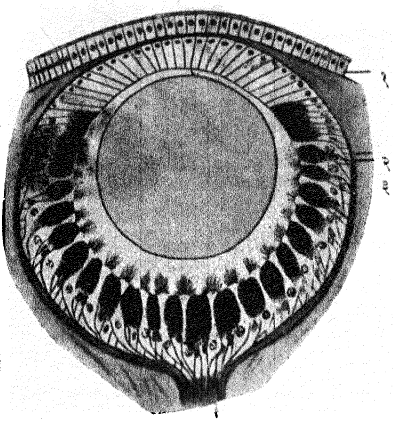

(१) कलातह; (२) प्रकाश पेशी;
(३) रंजित द्रव्यदार पेशी; (४) दृष्टिरज्जु

चि. नं. १६९

किफालापोडके नेत्रका चित्र

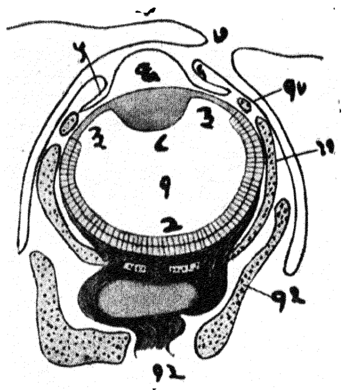

(१) चाक्षुष प्याला; (२) दृष्टिपटल
(३) तारकातीत पिंड
(८) स्फटिकमणिका पिछला भाग;
(६) तारकापिधान; (५-९) तारकातीत पिंड और तारका का भाग
(७) छिद्र जिसमेंसे बाहरी कलातह(४)अन्दर घुसती है;
(१०-१०-१२) नेत्रके इर्दगिर्दकी तरूणास्थि;
(१३) दृष्टिरज्जु ।

किफालापोड (मौलापाद) वर्गमेंके नेत्र तरुणास्थिसे बने हुए कोटरमें होते हैं। चाक्षुष प्यालेके नज़दीकके (यानी गहराईके) भागसे दृष्टिपटल बनता है, और दूरीके भागसे स्फटिकमणिका पिछला भाग बनता है। पृष्ठभागका बाह्यत्वक पत्र मोटा होकर अन्दर दूपट जाता है, उससे स्फटिकमणिका सामनेका भाग बनता है; जो पिछले भागसे जुड जाता है। बाह्यत्वक के दुपटे हुए भागसे एक किसम की तारका, और कनीनिका, तारका-पिधान और पूर्ववेश्मनी बनती है; पूर्व वेश्मनी एक ओरको घुली रहती है और उसका संबंध प्राणि जिस जलमें रहता है, उससे संबंध होता है। चाक्षुष पिटिका और इर्दगिर्दके मध्यत्वक पत्रमें तरुणास्थिके दो पत्र बनते (विषुववृत्तका और तारकाके पासका) और इसके बाहर रजत जैसा चमकदार पत्र होता है जो सामने कनीनिकाको जाता है। इसमें तारकातीत पिंड और तारकाके स्नायुका विकास होता है यानी इनमें दृक्संधान और कनीनिकाका चलन होता है (चित्र नं. १६९) ।

सादे नेत्रकी अवकलनकी इस तीसरी यानी आखिरकी अवस्थामें प्राथमिक नेत्रकी पिटिकाकी अवस्थामें पिटिकाके भीतरी पृष्टपर सज्ञाग्राहक पेशिओका आरतर लगा रहता है; इन हर पेशिओसे एक तन्तु निकलता है। ये सब तन्तुओसे दृग्टिरज्जु बनकर वह चाक्षुष मज्जाकंदमें खतम होती है। पिटिकाका बाहरीका भागका बाह्यत्वक पत्रसे जिससे वह पहले पैदा हुआ था संबंध होकर स्फटिकमणि बनता है यह पहलेही कहा है।

प्राथमिक एक पेशीके सादे नेत्रसे मिश्र रचनाके नेत्रके विकासकी कल्पना नीचेके चित्रसे दिखाई पडेगी।

चित्र नं. १७० पृष्ठवंशहीन प्राणियोके सादे नेत्रके विकासकी तरतीब

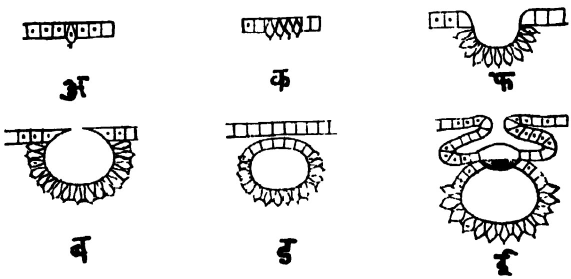

अ—एक प्रकाशकी कलानहकी पेशी, क—प्रकाश पेशिओंका समुदाय
फ—प्यालेदार नेत्र ब—अंधियारी कोठरीका विकास
इ—पिटिकादार नेत्र ई—किफाला पोडा का नेत्र

संमिश्र या पहलूदार नेत्र:—ये नेत्र आरथ्रोपोडा वर्गके प्राणिमे असलमे खेखडे जैसे कवचधारी और कीटकोमे पाये जाते है। इनकी पैदाईश बदले हुए अनेक आसिकल्स (प्राथमिक प्रकाशकी पेशिया) इकठ्ठा मिलनेसे होती है इसको रेटिन्यूल कहते है। हर आसिकल्सको, जिससे इस तरहके नेत्र बनता है, **ओम्माटिडियम्** (नेत्रके समान दिखनेवाले) कहते है। इन ओम्याटिडियोकी सख्या एक से हजारो की सख्याके तादादमे होती है। ओम्याटिडियमकी रचनामें नीचे लिखे हुए भाग होते है:—तारकापिधानकी खात या पहलू और स्फटिकमणिके कोणसे बना हुआ वक्रीभवन मार्गका व्यूह, इसके पीछे दृष्टिपटलके मौलिक तत्त्व होते है, जिनका प्रमाण नारकापिधानकी एक पहलूको ४ से ८ इतना होता है और यही जिनका एक माना गया है, और इससे एक ही ज्ञानतन्तु मज्जापेशियोके समुदायको–मज्जाकंदको–जाता है। हर ओम्याटिडियम की रचनामे दृष्टिपटलके अनेक मौलिक तत्त्वोंकी रचना और कार्य एकत्रित होता है और इसी बजहसे उसको मामुली आसिकलसे भिन्न ऐसा जान सकते है। कुलनेत्र एक गोलका भाग बनता है और उसको काटनेसे वह पंखेके आकारका दिखाई पडता है (चि. न. १७१,१७२ देखिये)। तारकापिधानके इन पहलुओका आकार कीटकोमें शटकोणाकृति, कवचधारी प्राणियोमे चतुष्कोणाकृति और टिटिलमे (फुलपाखरू–बटर फ्लाय) उन्नतोदर होता है।

इस प्राथमिक नेत्रकी अनेक कला पेशियां होती हैं। इन पोले भागोंका मज्जातन्तुओंसे संयोग होता है। उनमें लालरंगका प्रादुर्भाव होनेसे उन्हें अन्य पेशियोंसे अलग पहचाना

चित्र नं. १७१

प्यारीप्लानाटाका ओम्याटिडियम

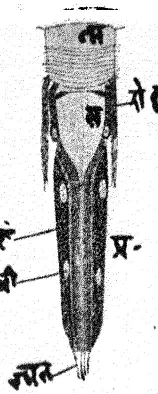

ता—तारकापिधानका पहलू; म—स्फटिकमणिका कोण; रो. रं—रोएँ और रंजित द्रव्य; प्र—प्रकाशकी बीजदार पेशि; बी—जीवन बीज; ज्ञा. त.—ज्ञानतन्तु (हेसे)

चित्र नं. १७२

मिश्र या पहलूदार नेत्र

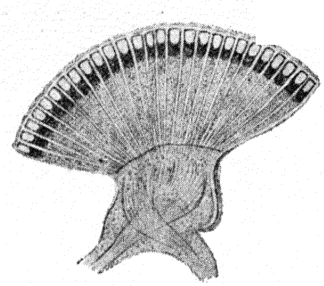

(ओम्हिया)

जा सकता है। इन पेशियोंके बाह्य पटलसे तारकापिधान (कॉरनिया) नहीं बनता और पेशिके पोले भागोंमेंके जलसे प्रकाश किरणोंका वक्रीभवन कार्य होता होगा ऐसा नहीं माना जा सकता। इससे यह स्पष्ट होता है, कि आदि नेत्रसे संवेदन पेशीका कार्य होता है।

पृष्ठवंशहीन कुछ प्राणियोंके नेत्र

चित्र नं. १७३

सितारेके आकारकी मछली

सिताराके आकारकी मछली; पृष्टका दृश्य; सुफेद गोलको मैट्रोपोडाईट जिसमें सजल अन्दर लिया जाता है और जो पैरोंमें पम्प किया जाता है।

इस के नीचेके वर्गके प्राणियोंमें तारकापिधान और स्फटिकमणिका विकास नहीं दिखाई देता। तथा प्रकाश किरणोंको केन्द्रीभूत करनेका कुछ साथ नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन इस वर्गके ऊपरके प्राणियोंमें नेत्रका बाह्य भाग उन्नतोदर दिखाई देता है। इससे यह संभव है, कि वह भाग तारकापिधानका कार्य करता होगा।

इससे यह कल्पना की गई है, कि इस नेत्रमें नये व्यूहका विकास होता है। उसके कुछ भागोंमें प्रकाशका वक्रीभवन और प्रकाश शोषण और कुछ भागोंमें प्रकाशज्ञान होता होगा। यह नेत्र इन प्राणियोंकी स्पर्श शुंडाके (टेंटकल) स्तंभपर होते हैं। यह सिद्ध हुआ है, कि उनके ऊपर प्रकाशका परिणाम होता है। इस वर्गके **घटाकार**

श्लेष्ममय जलचर प्राणियोंकी (जेली फिश) स्पर्शशुंडाको जबतक कुछ चोट नहीं लगती तबतक प्रकाश डालनेसे प्रकाशकी ओर यह प्राणि तैरता जाता है। लेकिन सूंडपर चोट आनेसे यदि नेत्रका नाश हो तो प्राणिमें चलन गति नहीं दिखाई देती।

चित्र नं. १७४

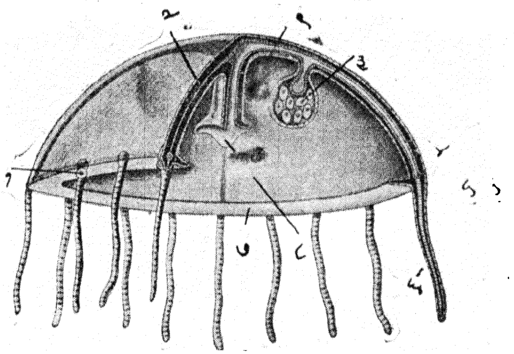

१ लिथलोसिस्ट-संज्ञाग्राहक इंन्द्रिय; २ आन्तरत्वक का पत्र; ३ उत्पादक (पैदाईशके) पिंड (गोनाड); ४ अक्षरेषा जैसी नाली; ५ त्रिज्यामेंकी नाली; ६ स्पर्शशुन्डा; ७ चर्मपत्र; ८ मुख; ९ म्यानुब्रियम।

मेडूसा नामक मछली और तत्सम वर्गीय प्राणियोंके नेत्र **स्टार फिश**के नेत्रसे ऊंचे दर्जेके होते हैं। इनकी रंजित तथा संवेदन पेशिओंमें स्पष्ट फरक दिखाई पडता है। इनके संवेदन पेशियोंका आकार पंचपात्रके (सिलँड्रीकल) आकारका याने बेलन जैसा होता है। इसका एक अग्र लम्बे डंडेके समान होता है और दूसरा अग्र मज्जाकंद पेशीसे मिला हुआ होता है।

मेडूसा यह प्राणि कोलेनेटेराटा वर्गके ओबेलां श्रेणीमेंका होता है। यह प्राणि छत्री जैसा दिखाई देता है इस चित्रमें छातेका एक डटे चार भाग निकाला है। बाह्यत्वक बिन्दवार रेषाका, आन्नरत्वक रेषांकित और मध्यत्वक काली रेषाका बताया है।

चित्र नं. १७५ भूजन्तुके उदरका दृश्य

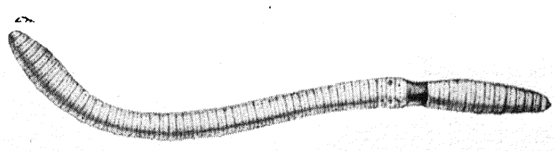

भूजन्तु केंचुएमें (अर्थवर्म) स्वतंत्र नेत्र नहीं दिखाई देते। साधारणतया ज़मीनके अन्दर छिद्र करके रहनेवाले कीटक वर्गमें नेत्रका विकास अच्छी तरहसे नहीं होता। लेकिन इनपर प्रकाशका परिणाम होता है। क्योंकि उनके ऊपर प्रकाश डालनेसे उनमें चलनगति दिखाई देती है। ये संवेदन पेशियां उनके सामनेके भाग पर होती हैं।

नीचेके वर्गके (टरबेलिया) कीटक प्राणियोंमें सादे बिन्द्वाकार नेत्रोंकी संख्या सेंकडोंकी तादादमें दिखाई पडती है। और इन नेत्रोंका स्थान, जिस भागमें मस्तिष्कके ज्ञानमंडलका

विकास होता है, वहीं दिखाई देता है। इस वर्गके कुछ प्राणियोंकी स्पर्शशुंडापर बिन्द्वाकार नेत्र दिखाई पडते हैं। इनकी संवेदनीय पेशियां रंजित पेशियोंसे अलग होती हैं। पेशियोंके संवेदन तन्तु मज्जातन्तुओंसे होकर दृष्टिरज्जुमें जाते हैं। नेत्र सब ओरको घूम सकते हैं लेकिन वे शरीरके बाह्यपटलसे ढंके हुए होते हैं। इन प्राणियोंका खास धर्म यह होता है, कि रंजित बिन्दु प्रौढ प्राणियोंके सिवाय उनके कीटडिम्ब में-कीडेकी आद्य हालतमें (लारवा) दिखाई देते हैं। लिव्हर हूकके कीटटिम्ब के गोल बाजू पर ये बिन्दु दिखाई पपते हैं।

चित्र नं. १७६

शंबूक-घोंघाकी बनावटका चित्र

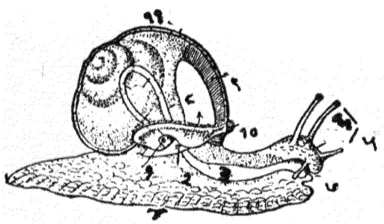

(१) गुद; (२) श्वासोच्छ्वास मार्ग; (३) अन्ननालिका; (४) पैर; (५) शुंडा और उसक ऊपरके नेत्र; शीर्ष (६) शीर्ष; (७) मुख; (८) आच्छादनका कोटर (९) आच्छादन कवच; (१०) आच्छादनकी खुली किनार; (११) कवच।

चित्र नं. १७७

कटल मछली

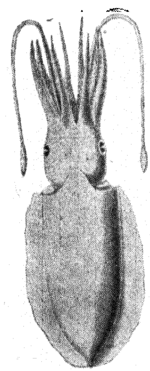

किफालो पोडा वर्गके कवचधारी कटलनामक मछलीके नेत्र।

ऊंचाईके श्रेणीके प्राणियोंमें नेत्रोंकी संख्या कम होती जाती है। लेकिन कोषस्थ **शंबुक प्राणिवर्ग** (Polycaelus analdes) **घोंघामें** सिरके सिवाय शरीरके हर भागपर नेत्रका-नेत्रेन्द्रियका-विकास शरीरके बाह्यपटलसे होता ह, और जिस जगहमें उनकी आवश्यकता ज्यादह होती है, वहां वे कायम रहते हैं। फांब्रिका और अन्य कीटकोंके पार्श्व भागपर भी नेत्र दिखाई पडते हैं।

ऊपरके वर्गके प्राणियोंकी नेत्रकी संख्या कम होने लगती है, तब इन प्राणियोंके सामनेके भागपर इन नेत्रोंकी जोडी जोडी होती है। **जौंक** एलिच की जातिके प्राणियोंके सामनेके भागमें दस जोडियां होती है। ब्रांकिओमा प्राणिकी स्पर्शशुंडा या **साबेला नामकी मछली**के श्वासोश्वास इन्द्रिय पर भी नेत्रकी जोडियां होती है। **बिच्छू** और अन्य अंथ्रा पोडिया वर्गमें नेत्रकी संख्या और भी कम होती है। इन प्राणियोंमें एक जोडी संमिश्र स्वरूपकी और अन्य जोडियां साधे रूपकी होती है। आखिरी सबसे ऊपरके प्राणियोंमें सिर्फ दो नेत्र रहते हैं। **एन्टोमास्टाका** में दोनों नेत्र मिलकर एक बनता है।

शंबुकके-घोंघो के नेत्रमें ज्यादह विकासकी अवस्था दिखाई देती है। इनके नेत्रका खुला कोटर बंद होकर उसकी गोली बनती है। इसका कार्य स्फटिकमणिके कार्यके समान होता है। इस बंद हुए कोटरकी बाह्य दीवालसे तारकापिधान बनता है, जिससे प्रकाश किरणोंका वक्रीभवन होता है। **मोलस्क** के नेत्र घोंघोके समान होते है लेकिन फर्क इतनाही होता है, कि कोटरका सामनेका भाग स्फटिकमणिसे व्याप्त होता है और पिछले भागमें स्फटिकद्रव पिंड होता है। स्फटिकमणि ज्यादह उन्नतोदर होनेसे प्रकाश किरणोंका वक्रीभवन ज्यादह जोरदार होता है। कोटरमें राडवाली कलातहको रंजित कलातहका वेष्टन होता है।

आरथ्रोपोडा-संधिपाद्-वर्गके कुछ कीटडिम्भोंकी जैसे त्वक् पेशियोसे एक स्फटिकमणि बनता है और इन्ही पेशियोंसे संवेदनात्मक घटक बनते है और उनके तन्तुओका दृष्टिरज्जुसे संयोग होता है। ये पेशियां दृष्टिपटल रूप होती है। इस वर्गके प्राणियोमें ये पेशियां स्वतंत्र रहती हैं। लेकिन कुछ प्राणियोंमें अनेक पेशियोका संघ बनता है। कुछ पेशियोमे सवेदना पेशियोंके दो भाग होते है। सामनेके भाग स्फटिकद्रव पिंड और पिछले भागसे दृष्टिपटल बनता है।

संवेदनात्मक भाग ज्यादह मिश्र रूपका होनेसे वक्रीभवन व्यूहमें फरक हो जाता है। त्वचाकी तहसे बना हुआ तारकापिधान सादा नही रहता; उसके अनेक भाग होते है और प्रत्येक भाग स्वतंत्र स्फटिकमणिके समान कार्य करता रहता है, और प्रत्येक भाग स्वतंत्र ज्ञानतन्तुसे संयोजित रहता है। आरथ्रोपोडामें स्फटिकमणिकी सख्या एक या अनेक होती है।

पृष्ठवंशहीन प्राणियोमे नेत्रका विकास (डायब्रैंकियेट किफालोपोडा) वर्गमे अच्छा दिखाई देता है। इन प्राणियोंमें तरूणास्थिसे (कारटीलेज) बनी हुई गुहामें नेत्र रहते हैं। नेत्रका बाह्यपटल कडा होता है। उसके सामनेके भागसे पारदर्शक तारकापिधानका विकास होता है। इस तारकापिधानके मध्यमें कभी कभी छिद्र दिखाई पडता है। तारकापिधानकी पिछली ओरको बडासा रिक्त भाग होता है और उसके पीछे स्फटिकमणि होता है। स्फटिकमणिकी दोनो ओर तारका होती है।

स्फटिकमणिका पिछला भाग दृष्टिपटलसे मर्यादित कोष्ठमें रहता है। इन प्राणियोंकी संवेदनात्मक तह 'राड' घटकोकी होती है। उसका स्थान इस तरहका होता है, कि जिसपर प्रकाश किरण प्रत्यक्ष गिरते हैं। दृष्टिपटलके अन्य घटक इस तहकी पिछली ओरको होते हैं।

(ब) पृष्ठवंशीवाले प्राणियोंका मस्तिष्किय नेत्र

प्रोटोझुआः—आद्य प्राणिमें (एक पेशीदार प्राणि) उसके पेशीमें वहन धर्मवाले तन्तु दिखाई पडते हैं। **मेटोझुआ** बहुपेशिदार प्राणियोंमें बाह्यत्वक पत्रमेंकी संज्ञाग्राहक पेशिओसे ज्ञानतन्तुओका संबध जुडा हुआ होता है। **सीलेनटेरेटस** वर्गके **हायड्रा व्हलगोरिस** यानी **जलव्याल** प्राणियोंमें बाह्यत्वक पत्र और मध्यत्वक पत्रके दरमियान दोनोको जोडनेवाली मज्जाकंदकी पेशियोंकी शृंखलाके तौरका संस्थान जैसा दिखाई पडता है; और इस

तरकीबसे उनका कार्य एकसहा होता है। इसके बादकी विकासकी अवस्थामें यह जालादार संस्थान, शरीरमेंके छिद्रोंके और अन्य महत्त्वके भागोके पास मज्जाकंदमें इकट्ठा होता है। और जब शरीरका विभाजन होता है तब इस संस्थानके भी खंड होते हैं। नेत्रके संबंधके मज्जाकंदको चाक्षुष मज्जाकंद कह सकते हैं। यानी नेत्र और मज्जा मस्तिष्क संस्थान बाह्यत्वक पत्रसे पैदा होते है लेकिन नेत्रका संबंध मध्य मज्जामस्तिष्क संस्थानके व्यूहसे दुय्यम तौरसे होता है।

चाक्षुष व्यूह अवकलित संज्ञाओंकी हुकुमदारी करनेकी वजहसे अन्तिम इन्द्रियपर, जिससे संज्ञाग्रहण होती है; जितना अवलम्बित रहता है, उतनाही मध्य मज्जासंस्थानकी काबिलीपर जिससे बाह्यप्रतिमाओका बोध होता है अवलम्बित रहता है। इस बोध होनेके ज्ञानके गुणके विकाससे इस प्रकाश संज्ञाका दृष्टिकी संज्ञामें विकास होना संभाव्य होता है। ध्यानमें रखिये कि पृष्टवंशीवाले प्राणिका नेत्रका मध्य मज्जामस्तिष्क संस्थानसे इतना नजदीकका संबंध होता है कि वह उसका एक खास भाग ही होता है। पृष्टवंशहीन प्राणिके जैसेही इसके विकासमें पहले बाह्यत्वक पत्रसे एक प्याला बनता है, लेकिन न्युरल नालीके विकासकी प्रगतिमें नेत्र चारों ओरसे ढाका जानेसे अन्दर छिपा हुआ होता है और प्रकाशसे प्रत्यक्ष संबंध होनेके लिये उसको पृष्टकी ओरको बढना जरूरी होती है। पृष्ठ-वशहीन प्राणिके नेत्र जैसा ही पृष्टवंशवाले प्राणिका नेत्र बाह्यत्वक पत्रसे पैदा होता है, लेकिन दोनोंमे फर्क यह होता है कि पहलेका नेत्र प्रत्यक्ष बाह्यत्वक पत्रसे पैदा होता है और दूसरेका नेत्र बाह्यत्वक पत्रसे दुय्यम तौरसे यानी न्युरल बाह्यत्वक पत्रसे पैदा होता है।

मस्तिष्किय नेत्रकी प्राथमिक अवस्थाका नेत्र **अम्फीआक्ससमें**, यानी आद्यपृष्टवंशी प्राणिमें, दिखाई देता है (चित्र नं १६३ देखिये)। इनमेंके नेत्र मध्य मज्जामस्तिष्कके संस्थानके मेडयुलरी मध्य नालीके बाजुके पास ही पाये जाते हैं, प्राणिके पृष्टभाग पर नही दिखाई पडते। हर नेत्र एक पेशिका होता है, इसकी एक सिराकी किनार जिसपर त्रिज्ज्या जैसे तन्तु होते है, और चंद्रकोरकी आकारकी रंजित पेशियां होती है और दूसरी सिरेसे ज्ञानतन्तु निकलता है। इस प्राणिके जैसे समनदरी सी स्कर्टस प्राणिका शरीर पारदर्शक होनेसे प्रकाश उसके पार जाकर उनके नेत्रोंपर आघात करता है। **रे लंकास्टर**के मतानुसार प्राथमिक पृष्टवंशी प्राणि पहले पहल पारदर्शक थे, लेकिन वे अपारदर्शक होनेसे गहराईमेंके नेत्र पृष्टकी ओरको सरक जाकर आखिरमें वे शरीरके पारदर्शक बाह्यत्वक पत्रको जा पहुंचते हैं। अम्फीआक्सस की आदि पेशियां जो मेडयुलरी नालीके इर्दगिर्द फैली रहती है पृष्टको जानेके समय अपने साथ रंजित पेशियोंको लेजाती है; वहा उनका प्रसवन होता है और उनमें अवकलन होकर नेत्रका दृष्टिपटल पैदा होता है: इसके साथका पृष्टका बाह्यत्वक पत्रका भाग पारदर्शक ही रहता है जिसीसे बादमें वक्रीभवन मार्गकी (तारकापिधान और स्फटिकमणिकी) पैदाईश होती है।

एक दफा नेत्रकी बनावट इस तरतीबसे मुकर्रर होनेके बाद सब पृष्टवंशी प्राणियोंमें यही तरकीबसे. नेत्रका विकास होता है। पृष्टभागके बाह्यत्वक पत्रसे वक्रीभवनके व्यूहका विकास होता है। इस तरकीबसे पृष्टवंशहीन प्राणियोंकी अपेक्षा इनमें ज्यादह काबिलियत

दिखाई पडती है। संज्ञाग्राहक तहकी दरमियानकी पेशियोंका कार्य कुछ चालु रहता है जिसके स्रावसे स्फटिकद्रव पिंड पैदा होता है। इर्दगिर्दके मध्यत्वक पत्रसे रक्षक घटक–शुक्लपट, नेत्रच्छद, अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण और अस्थिमय नेत्रगुहा, चालक स्नायु और रक्त-वाहिनियोंका संस्थान आदि बनते हैं। इस घटनामें बाजेवक्त इर्दगिर्द की पेशियोकी वजहसे फर्क पाये जाते हैं लेकिन हर नेत्रमे, कुछ प्राणि छोडकर दृष्टिपटल, अंधियारी कोटरी और तारकापिधान और स्फटिकमणिसे बना हुआ वक्रीभवन मार्ग अहम तौरसे दिखाई पडते हैं। इनमें फर्क दिखाई पडते हैं वे नीचे मुजब होते हैं :–

पृष्टवंशी प्राणियोंके नेत्रोंकी नुमाईशमे दिखाई देनेवाली अवस्थाएँ:–(१) हर क्षेत्रमे चाक्षुष मौलिक तत्त्वोंकी मात्रामें बढत होनेसे, फरक जानना ज्यादह आसान होता है; (२) दृष्टिपटलके मध्य भागमे दृष्टिस्थान और सुचेतन दृष्टिस्थान केन्द्रका विकास होनेसे अवकलनकी शक्ति और दृक्शक्तिकी तीव्रता पैदा होती है; (३) दृगाक्ष सामने झुके हुए होते है जिससे दृक्क्षेत्र एकके ऊपर दूसरा चढ जानेसे एक नेत्रके विश्वदृश्यसे द्विनेत्रीय एक दर्शन होना संभाव्य होता है; (४) दृष्टिरज्जुके कुछ तन्तु एक ओरसे दूसरी ओरको जानेसे दृष्टिमें घन चित्रदर्शक गुणका विकास होता है; (५) आखिरमें प्राणिके व्यापार जो पहले घ्राणेन्द्रियपर अवलम्बित रहते थे वे अब दृगिन्द्रियका विकास होनेकी वजहसे उसकी सहायतासे होने लगे। इस तरहसे पृष्टवशी प्राणियोके नीचेंकी श्रेणीके प्राणियोकी अवकलन शक्तिका, जिसका पहले सिर्फ जीवन दशाकी प्राथमिक चलनकी अवस्थामे इस्तेमाल होता था, उसका अब दानिशमद राय करनेके गुणमे विकास होनेसे समिश्र चाक्षुष नमूनेको जानना, और मुआफिक चाक्षुष होश करनेकी सभाव्यता पैदा होती है; और इसीके वजहसे मनुप्यकी शारीरिक श्रेष्ठता और दानिशमदी प्रस्थापित होगयी है।

वर्ग विकासकी अहम तरतीब का बयान दिलचस्पीका है, क्योंकि इसके लायकीमें बेहत रीन और मजबूत बढत नही दिखाई पडती; लेकिन एकही मूल उगमसे भिन्न भिन्न मार्गोसे हद्द दर्जेको [illegible]नेसे अनेक मुकम्मल तरहोका विकास दिखाई पडता है। मूल उगम गेनाईड मच्छलीमें जिनमें कुछ खास सूरत नही होती, होता है। दृष्टिपटलके विकासकी दो भिन्न तरह सर्प वर्ग और पक्षी वर्गमें (सौरोपसिडि) पायी जाती है; इसके पूर्णावस्था पक्षी और सस्तन प्राणियोंमें दिखाई पडती है और इसका हद्द दर्जा बन्दर (आनथ्रोपाईड) और मनुष्यमें दिखाई पड़ता है। बन्दर वर्गमेके नेत्र बडे और खासियतके होते हैं, उनका केन्द्रीभवनका व्यूह ज्यादह विकसित होता है, उनमें दृष्टिपटलकी रोहिणी सस्थानके बदले **पेकटेन** नामका घटक होता है, दृष्टिस्थानकी रचना ज्यादह संमिश्र रूपकी, और दृक्शक्ति ज्यादह तीव्र होती है। दृक्शास्त्रीय व्यूहके दृष्टिसे विचार करनेसे मालूम हुआ है, कि मानवी नेत्रका विकास हद्द दर्जेका नही। लेकिन इनमें मस्तिष्किय मज्जा केन्द्रोको विकास होनेकी वजहसे कार्यका श्रेष्टत्व पाया जाता है।

परायटल और पिनियल नेत्र

आन्तर मस्तिष्ककी (डायएनकिफालान) छत की पट्टी पर तीन मेहराबे (आर्चेस) दिखाई पडती है, सबसे पिछली को एपिफिमिसियल मेहराब कहते है। इससे दो घटकोका

विकास होना संभाव्य है—पिनियल इंद्रिय या पिनियल एपिफिसिस, और पार्श्विक यानी परायटल या पैरापिनियल इन्द्रिय जो ज्यादह सामनेकी ओरको होता है। कभी कभी यह शीर्ष पिंडके (पिनियल बाडी) साथ पैदा होता है किन्तु कभीकभी स्वतंत्र जैसा पैदा होता है । पिनियल एपिफिसिस पश्चिमी संयोजन से जुडा रहता है, और पैरापिनियल इद्रिय हेबन्युलर या उपरीके संयोजन से जुडा रहता है । अकसर करके इन घटकोंसे ग्रंथिया बनती है लेकिन कुछ प्राणियोंमें इनका नेत्रोमें अवकलन होता है । **बाम नामकी** मच्छलीमें (लांप्रे) जो पृष्ठवंशी प्राणियोंके प्राथमिक श्रेणीकी सायक्लोस्टोम वर्गकी होती है, दो अच्छे विकसित हुये नेत्र, पिनियल और पैरापिनियल इद्रिय, होते हैं । इन दोनोंमें अकसर पहलेमें दृष्टीपटल दिखाई पडता है ।

चित्र नं. १७८

छिपकलीके सिरमेसे और पार्श्विक नेत्र परायटल नेत्रके मध्य भागमेंका काट

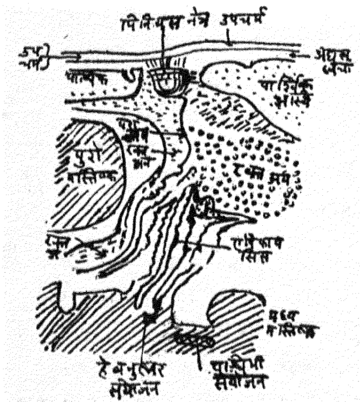

पिनियल नेत्र

चित्र नं. १७९

स्फिनोडानके भ्रूणके पैरापिनियल इंद्रियकी सूक्ष्म रचना

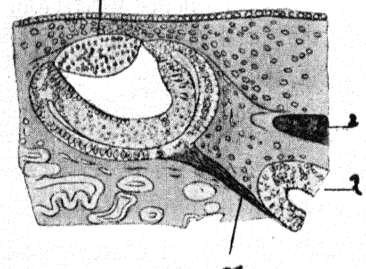

१ पैरापिनियल पिंडका दृष्टिपटल औ[illegible]टिकमणि-मेंका अवकलन : २ तरुणास्थि ३ [illegible]मल पिंड ४ हेब न्यूलर संयोजनको पैरापिनियल ज्ञानतन्तु

परायटल नेत्र कइ जातके सर्प और पक्षियोमें दिखाई पडते हैं । यह नेत्र पार्श्विक अस्थिके (परायटल बोन) छिद्रमें जो मानवमें पुरो रंध्र जैसा होता है उसकी चमडीके नीचे रहता हैं यह नेत्र बंद पिटिका जैसा होता है और वह हेबन्युलर संयोजनको पार्श्विकी ज्ञान तंतुओंसे जुडा रहता है । इस नेत्रकी रचना सर्प जातिके प्राथमिक वर्गके सरट या छिप कलीमें अच्छी दिखाई पडती है । सरटमें स्फटिकमणि होता है और इसमें पीछे स्फटिकद्रव पिंडके जलसे भरा हुआ विवर होता है । इस नेत्रके दृष्टीपटलमें राड और कोन और कृष्णपटल का भाग दिखाई पडता है । इसमेंके रंजित द्रव्यमें प्रकाशसे चलन दिखाई पडता है । इन प्राणियोंकी झिन्दी अवस्थामें पराट्यल या पिनियल नेत्रों का दृष्टी कार्यमें कुछ हिस्सा नहीं होता ।

पिनियल नेत्र पराटयल नेत्रके जैसा होता है। बाम मच्छली में परायटल और पिनियल दोनों नेत्र पाये जाते हैं। पिनियल नेत्र ऊपरकी चमडी, पारदर्शक होनेसे उसके नीचे दिखाई पडता है। पिनियल ग्रंथीके सिरेसे इसका विकास होता है और यह पश्चिमी संयोजन को पिनियल ज्ञानतन्तुसे जुडा रहता होते। इस नेत्रमें भी एक किसमका दृष्टिपटल होता है जिसमें संज्ञा ग्राहक पेशियां और रंजित द्रव्य के बदले चुने के कण पाये जाते है।

चित्र नं. १८०

प्रिटोपिझान प्लैनरीके डिम्बके पुरो, आन्तर और मध्य मस्तिष्कके छतमेंका काट जिससे उसके पिनियल और पैदा पिनियल इन्द्रिय दिखाई पड़ते हैं।

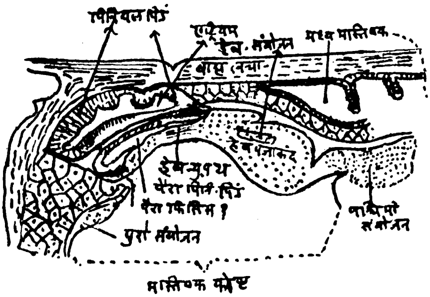

संज्ञाग्राहक तहमें जिसको अब दृष्टिपटल (रेटिना) कहते हैं। उसमें फर्क होना मुमकिन समझ सकते हैं।

पृष्ठवंशहीन प्राणियोंका दृष्टिपटलः—

पृष्ठवंश हीन प्राणिके दृष्टिपटलमें चाक्षुप पेशियां और उनकी प्ररोहा होती है। पृष्ठवंशीवाले प्राणियोंमें इन पेशियोंके सिवाय उनमें द्विध्रूवपेशियां, मज्जाकंद पेशियां और धारक तन्तु ये घटल ज्यादह पाये जाते हैं। पृष्ठवंशहीन प्राणियोंकी चाक्षुप पेशियां दो अहम किस्मकी होती हैं:—(अ) रोएँदार किनारकी पेशी (ब) राड पेशि। पृष्ठवंशी प्राणियोंमें सिर्फ राड पेशि पायी है। और एक तीसरी किस्मकी पेशि होती है जिसमें एक बडा खाली भाग जिसपर प्रकाशकी क्रियासे फर्क पैदा होते हैं दिखाई पडता है।

रोएँदार किनार की पेशि या–लकेरीदार क्षेत्रकी पेशि : एक पेशिदार आद्यप्राणि की पेशिपर रोएँ दिखाई देते हैं: ज्यादह तर इस पेशिमें खाली भाग होता है जिसके इर्दगिर्द लकिरियादार रचना दिखाई पड़ती है जैसे की जोंकमें (चित्र नं. १६३ देखिये)। बाजे वक्त यह लकिरीदार भाग बडा हो जाता है जिसकी वजहसे प्रकाश संज्ञाग्रहणका क्षेत्र बढ जाता है; और इसीकारणसे पेशिमें उंगलीया जैसी प्ररोहा दिखाई पडती है **ट्रिस्टोमम पापिलोझम** (चित्र नं. १५९)। ज्ञानतन्तु, पेशिकी रोएँदार किनारकी सामनेकी किनारसे निकलता हैं और पेशिके शरीरमेंके भागसे उन्नसे मुदामी होता है ऐसा हेसे मानते है।

राड पेशिः—ये पेशियां किटक, आरथ्रोपोडके आकिलाय और **मोलस्क** वर्गयानी सिपवाली पछलियां जिनका बदन बहुत मुलायम होता है और जिनमें कई हड्डी नहीं होती जैसेकी कस्तुरा (आईस्टर), घोंघा (स्नेल) और कटल फिश–दस टांगवाली सिपवाली मच्छलीमें पायी जाती हैं। इन पेशियोंसे पृष्ठवंशी प्राणियोंके दृष्टिपटलमें एक पेशिदार मज्जाकलातह (न्यूरोएपिथेलियम) बनती हैं। लेकिन कहे तो कह सकते है कि मोलस्कके दृष्टिपटलमें यह तह दो पेशियोंकी होती है और इन पेशियोके दरमियान ज्ञान तन्तु होते हैं और नजदीक के चाक्षुष पेशिके पीछे रजित द्रव्यदार पेशियोंकी तह होती है। किफालोपोड वर्गमे चाक्षुष पेशियां राड पेशिया जैसे होती है और वे कृष्णपटलके तरूणास्थिपर स्थिर रहतो है।

ज्ञानतन्तु नेत्रकी पिछेसे इन तरुणास्थिमेके अनेक छिद्रोमेंसे निकलती हैं। साधारण तया ये ज्ञान तन्तु नेत्रकी पिछेके या मध्य मज्जा मस्तिष्क संस्थानके मज्जाकन्दको जाते हैं।

पृष्ठवंशवाले प्राणियोंका दृष्टिपटल

यह दृष्टिपटल पृष्ठवंशहीन प्राणियोके दृष्टिपटल की अपेक्षा ज्यादह मिश्र स्वरूपका–होता है। इनमे तीन मज्जाव्यूहके टप्पे होते हैं। **मज्जाकलातह** शुक्लपटलके नजदीक होती है। **राड** और **कोन** घटक, अम्फीआक्ससके सिवा जिनमें ऐक पेशिदार नेत्र होते हैं, सब पृष्ठवंशीवाले प्राणियोमें पाये जाते है। कईमें राड की संख्या और कईमें कोनकी संख्या ज्यादह होती है। **मान**के संशोधनसे मालूम हो सकता है कि १ मि. मि. लम्बाई और ०.१ मि. मि. चौडाईकी दृष्टिपटलकी पट्टीमे कौनकी संख्या बाम नामके मछलीमें (लांप्रेमे) १००, मेंढकमे १२५, मुर्गीमें ३२७, और मनुष्यके दृष्टि स्थानमें ६६२ होती है। सब पृष्ठवंशीवाले प्राणियोमे **रंजित कलातह** एक सरीखी होती है; और इसमे रजित द्रव्योके सिवा तेलके बूद और ग्वानिन स्फटिक दिखाई पडते हैं। यह रंजित द्रव्य कृष्णपटलके रंजित द्रव्यसे रचना शास्त्रके दृष्टिसे भिन्न होता है। यह स्फटिक जैसा होता है तो कृष्ण-पटलका बेडौल का होता है; दृष्टिपटलके इस द्रव्यकी पैदाईश कलातहसे होती है, तो कृष्णदटलके रंजित द्रव्य की पैदाईश मध्यत्वक पत्रसे होती है।

पृष्ठवंशी प्राणियोमें नेत्रकी संख्या दो होती है और वे मस्तिष्कके सामनेके भागको होते है। इस नेत्रके सामनेके और पिछले ऐसे दो अलग अलग भाग होते है। इन दो भागोके पिछले भागमे संवेदना होती है। यह भाग कललके बाह्य पत्रसे बनता है। संवेदना भाग सबके पीछे होता है। यही इन प्राणियोंमें विशेषता होती है।

कारडाटा प्राणिवर्ग में मुख्य मस्तिष्क व्यूहका विकास कलल बाह्य पत्रके भीतरकी ओरको मुडे हुए भागसे होता है यह मुडा हुआ भाग कुछ समयके बाद बाह्यपत्रसे अलग हो जाता है। बाह्यपत्रके भीतरी ओरको दो तहोंवाली उलटई हुई थैलीकी तरह, उसकी बाहरकी कलातह भीतरकी ओर और भीतरी कलातह बाहरकी ओर, उसके चारों तरफ दिखाई पडती है।

मत्स्यवर्ग में नेत्रकी आगेसे पीछे जानेवाली लम्बाई बहुत कम होती है। क्योकि जलमें घुसे हुए प्रकाशकिरणोंका वक्रीभवन करनेमें चाक्षुषजल और स्फटिकद्रव पिंडका कुछ उपयोग नहीं होता। इनका स्फटिकमणि बहुत उन्नतोदर और बडा होता है। स्फटिकद्रव पिंडका प्रमाण कम होनेसे तारकापिधान समतल होता है। उनके ऊपर नेत्र-च्छदोंका अभाव हेता है। कनीनिका बडी होनेसे नेत्रमे प्रकाश ज्यादह घुस सकता है। नेत्र न्हस्व दृष्टित्व .धर्मके होते हैं। इनके शुक्लपटलमें कभी कभी तरुणास्थिका बारीक वलय दिखाई देता है और कृष्णपटलकी भीतरी ओरको टापिटम परदा होता है। इसमे रंजित द्रव्य और प्रकाशका परिवर्तन करनेवाले स्फटिक भी होते हैं। इन प्राणियोके स्फटिकमणिमे गति दिखाई देती है। यह गती कृष्णपटलसे स्फटिकमणिको जानेवाली फालसीफार्म बदके कारणसे पैदा होती है। इनको रंगज्ञान नही होता।

मछलीका दृष्टिपटल मिश्र स्वरूपका होता है और उसके भिन्न जातीमें भिन्न भिन्न फरक दिखाई पडते हैं; लेकिन आमतौरसे यह सस्तन प्राणियोंके दृष्टिपटल जैसा ही होता है। इनके रंजित द्रव्यमें ग्वानिनके कण पाये जाते हैं। ये कण चमकदार सुफेद रंगके या कुछ लाल पीले रंगके होते हैं। नेत्रके ऊपरके भागमे इन कणोकी संख्या ज्यादह होती है और उसपरसे प्रकाश परिवर्तन होनेसे उसको भूलसे **टापिटम** समझना संभाव्य है। राड और कोनकी लम्बाई अकसर हड्डीवाले मछलीमें, ज्यादह होनेसे मज्जाकलातहसे कुछ दृष्टिपटलका एक बटे तीन, भाग भरा हुआ होता है। ज्यादहतर राड और कोन एकसरीखे होते हैं जिससे कई संशोधकोने कोनका इनमे अभाव होता है ऐसा माना था। दृष्टिस्थानका इनमें अभाव होता है ऐसा पहले मानते थे लेकिन बादके सशोधकोने (**कारियर, डब्ल्यु क्राऊस, हेसे** ने) इनका अस्तित्व प्रस्थापित किया है।

भूजलचर (ऐंफिबियन्स) **प्राणियों**के, जैसे कि मेंढक, नेत्र छोटे होते हैं। उनमें नेत्रच्छदों का अभाव होनेसे वे सामान्यतया चमडीके गडहोमें खडे रहते हैं। इनको नजदीकका दीखाई देता है। लम्बी नज़र बहुत कम होती है। इनमें **टापिटम** का अभाव होता है स्फटिकमणि छोटा होता है और तारकापिधानके पीछे रहता है। तारकापिधान वृत्ताकार होनेसे नेत्र भूमिपर न्हस्व दृष्टित्वका कार्य करते हैं; लेकिन पानीमें दीर्घ दृष्टित्वका हो जाता है। तारकाका रंग सुनहरा होता है। इनमें तृतीय नेत्रच्छद नीचेके नेत्रच्छदसे उत्पन्न होता। कनीनिका साधारणतया गोल होती है लेकिन खडी आडी या त्रिकोणाकार भी होती है।

भूजलचर प्राणियोंके दृष्टिपटलमें राड और कोन पाये जाते हैं, जिनमें राडकी संख्या ज्यादह तादादमें होती है। ये मनुष्यके राड से लम्बे होते है, इनमेंसे छोटेसे छोटे राड मनुष्यके राडकी लम्बाईसे दुगने होते हैं। इनमेकी रंजित पेशिया भी बडी होती है। मेंढकमें दो किस्मके राड होते हैः—नील लोहित लाल रंगके जिनकी संख्या ज्यादह होती है और आकार बडा होता है; और हरे रंगके। राडके बाहरी और भीतरी भागके दरमिया-नकी पट्टी, अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा, इनमें ज्यादह स्पष्ट मालूम होती है। कोनके दो भागोके दरमियानमें तेलके जैसे कुछ पीले रंग या नीरंगके बिन्दु पाये जाते है। चाक्षुष पेशियोंके एक सिरेको पैरकी जैसी पट्टी होती है जिनका पारस्परीकसे संजोग होता है। आमतौरसे

कोनकी सिरा इस तरहकी होती है, राडकी सिरेको गुठली जैसी होती है। **कजल** का संशोधन इस तरहका है कि राड और कोन दोहरे होते हैं। इनमें अन्य पृष्ठवंशी प्राणियोंकी अपेक्षा **लान्डो**के तन्तु ज्यादह पाये जाते है। **निकाटी** के संशोधनके अनुसार दाहिने दृष्टिपटलके ज्ञानतन्तु बायें दृष्टिपटलके दृष्टिस्थानको और बांयेके ज्ञानतन्तु दाहिनेके दृष्टिस्थानको जाते है। **वुल्फ** का भी यही तजरबा है।

भूजलचर वर्गके **युरोडेल** जातीके **प्रोटिथस अंग्विनियसमें,** जो जमीनके दरारमे रहते हैं, दृष्टिपटलका कुछ अवकलन होनेसे वह प्राथमिक स्वरूपका होता है, और वह पिटिकामें भरा रहता है।

मेढकके बच्चेमें पिनियल पिड खोपडीके पृष्ठपर नेत्र जैसा घटक होता है, लेकिन इसका गुणन्हास होजानेसे वह नष्ट होजाता है। सिर्फ उसका कुछ अश रहता है जो ज्ञानतन्तुसे पश्चिमी संयोजनसे जुडा रहता है।

सर्प वर्ग(रेपटाईल्स):—इन प्राणियोंकी लम्बाईके प्रमाणकी तुलनामे नेत्रकी लम्बाईका प्रमाण बहुत कम होता है। इनके नेत्र बाजूकी ओरको होते है। इसीसे दोनो नेत्रोंको एक सामयिक दृक्क्षेत्र नही होता। बहुतोंकी कनीनिका गोलाकार होती है। लेकिन रातको घूमने वाले सर्पकी कनीनिका खडी रेषाके समान दिखाई देती है। इनमे स्वतंत्र नेत्रच्छदोका अभाव होता है; लेकिन नेत्रपर चमडीका आवरण होता है। सांप की **केंचुली** (कात) जिस वक्त गिरजाती है, उसी वक्त नेत्रपरकी भी गिरजाती है। **मगर** प्राणि के नेत्र बहुत छोटे होते है।

सर्प वर्गका दृष्टिपटलः—इनमें राडकी अपेक्षा कोनकी संख्या ज्यादह होती है, और रंजित द्रव्य भी अन्य पृष्टवशीवाले प्राणियोके जैसा पाया जाता है, इन दोनो बातोको **मगर** अपवाद होता है। कोनमे तेलके बिन्दु होते है। कछुआमे ये ज्यादह और रंगीन होते है। छिपकलीमें इनकी संख्या बहुतही कम होती है, वे निरंग होते है; बाह्य जीवनबीजकी तहमे बडे पेशिवाले दो तहे होती है। राड और कोनकी सिरे तन्तुर फुटपट्टीमें खतम होते है, जिस परसे माना जाता था कि इनमें राड का अभाव होता है।

छिपकलीमें एक जातीके सरट में परायटल इन्द्रिय पार्श्विक अस्थिके छिद्रमेंसे खोपडीपर चमडीके नीचे उसकी पपरिया पारदर्शक होनेसे दिखाई पडता है। स्फटिकमणि और दृष्टिपटल भी बनता है; और हेबनुरल सयोजनको परायटल ज्ञानतन्तु जाता है। सर्पके बच्चेमे इस पिंडके नेत्रके घटक गायब हो जाकर एपिफिसियल मिहराबसे ग्रथी बनती है। यही घटना ऊपरके प्राणियोंमें कायम दिखाई पडती है। आन्तर जीवनबीजकी तह चौडी होती है। सर्पमें तारकातीत पिडके दृष्टिपटलके भागकी पेशिया बडी आकारकी होती है।

भूजलचर प्राणियोंकी अपेक्षा सर्पवर्ग के दृष्टिपटलमें कोनघटकोंकी संख्या राड घटकोंसे ज्यादह होती है और कई सर्पजातीमें दृष्टिस्थान केन्द्रके समान दृष्टिपटलमें भी गडहा दिखाई पड़ता है। इनकी तारका रंगीन दिखाई देती है और नरकी तारका

मादीकी तारकासे जुदे रंगकी होती है। किसी किसी सर्पजातिमे शुक्लपटलमें तारकातीत पिंडके स्थानमें बारीक हड्डीका वलय दिखाई देता है।

पक्षी वर्गः—जमीनपर रहनेकी वजहसे उनके तारकापिधान मछलियोके तारकापिधानसे ज्यादह उन्नतोदर होते है। आकाशमे बहुत उचाईपर उडनेवाले पक्षियोके नेत्रके स्नायुओंकी रचना इस तरहकी होती है, कि उनके आकुंचनसे आवश्यक समयमे तारकापिधान ज्यादह उन्नतोदर हो जावें। क्योकि हवा जितने प्रमाणमे विरल हो जाती है, उसी प्रमाणमे प्रकाश किरणोंका केन्द्रीभवन करनेकी आवश्यकता ज्यादह भासमान होती हैं। और यह कार्य तारकापिधान ज्यादह उन्नतोदर होनेसे हो सकता है। नेत्रकी बाजूकी स्नायुके आकुंचनसे चाक्षुषजल और तारकापिधान आगेकी ओरको जाते हैं, जिससे तारकापिधानका टेढ़ापन ज्यादह होता है। कुछ पक्षियोमें तारकातीत पिंडके नज़दीकके शुक्लपटलमे अस्थिमय वलय होता है। उससे दृष्टिरज्जुपर कुछ दबाव नही आता। पक्षीकी पिछली वेश्मनीमे पेक्टीन नामक परदा होता है। यह रक्तवाहिनीयोसे भरा हुआ होता है।

उल्लू (आऊल) और आपटेरिक्स वर्गके पक्षिगणोके सिवाय अन्य पक्षियोमें स्फटिकमणि साधारणतया कम उन्नतोदर होते हैं। दृक्सधानको आवश्यक तारकातीत पिंडकी स्नायुएँ सर्पजातिके समान रेखाकित होती हैं और इसी कारणसे शीघ्र पक्षियोके नेत्र तुरन्त केन्द्रीभूत हो सकते हैं।

पक्षियोंके सिवाय अन्य पृष्ठवंशी प्राणियोकी कुछ जातियोमे बिलकुल अधत्व दिखाई देता है, या उनके नेत्र विकासकी प्राथमिक अवस्थामे होते है। लेकिन जीवनकलहके व्यापारमें इन प्राणियोको पूर्ण विकसित दृष्टिकी आवश्यकता होती है। इनका दृक्संधान का व्यापारव्यूह जल्द कार्यक्षम होता है। जमीन परके दाने चुननेमें लगे हुए मुर्गीके बच्चेको आकाशमे ऊचाईपर उडनेवाले मांस भक्षक बाज़का बोध तुरन्त होता है। और वही बाज खेतके चूहेपर बहुत ऊंचाईसे एकदम कुद पड़ता है।

पक्षियोकी पिछली वेश्मनीके पेक्टीन का कार्य पोपण करना ओर चाक्षुपजलका कार्य नियमन करना होता है। पूर्व वेश्मनीका आस पश्चिम वेश्मनीके आसके बराबर या कुछ बड़ा होता है।

पक्षियोके नेत्र उनके शरीरके आकारके प्रमाणसे बडे होते है। १७५ पौंड वज़नके मनुष्यके नेत्रोका वज़न पक्षीके अनुपातसे पाच पौंड होना चाहिये। पक्षियोके नेत्र गोल नही होते; किन्तु तारकातीत पिंडीय भागमे शुक्लपटलके वलयसे दबजानेके कारण तारकापिधान शंखाकार और पिछला भाग समतल होता है। दृष्टिपटलमे एकसे ज्यादह दृष्टिस्थान केन्द्र गड्हेके रूपमें होते हैं और ये विषुववृत्ततक पहुँचते हैं। पक्षियोमे रगज्ञान देनेवाले 'कोन' घटकों की संख्या ज्यादह होती है। पक्षीकी भिन्न भिन्न जातियोंमे तारकाका रंग भिन्न भिन्न होता है। उनकी कनीनिका हमेशा गोल होती है। इनमे **निकटिटेटींग परदा** या **पलक** अर्थात् तीसरा नेत्रच्छद होता है।

पक्षी का दृष्टिपटलः—दैनिक या रोजानी पक्षियोंके दृष्टिपटलमें कोन ज्यादह होते हैं और राड कम होते हैं। लेकिन मुर्गीके दृष्टिपटलके कुछ भागमें पीले रंगके या कबूतरमें लाल रंगके राडकी संख्या ज्यादह होती है। रात्रिचर पक्षीयोंमें राडकी संख्या ज्यादह होती है। मज्जाकलाकी तहमें तेलके बिन्दु दिखाई पडते हैं, जो अन्य पृष्टवंशी प्राणियोंमे नही दिखाई पडते। ये तेलके बिन्दु राड और कोनके भीतरी और बाहरीके भागमें होते हैं; और कोनमें ज्यादह तादादमें मिलते हैं। दैनिक पक्षीमे तेलबिन्दु अनेक रंगके और ज्यादह चमकदार होते हैं। आमतौरसे वे लाल रंगके होते हैं। लेकिन कईमे पीले, हरे या नीले रंगकी छटा दिखाई पडती है। रात्रीचर वर्गमे बिन्दु पीले होते हैं। इन रगोको पैदा करनेवाले रंजित द्रव्योंको **कुन्हे ने** क्रोमोफेन नाम दिया है। मुर्गीके दृष्टिपटलके पीछेके और ऊपरके भागमे पीले रंगके तेलके बिन्दुओका प्रमाण ज्यादह होनेसे वह भाग पीलासा मालूम होता है; कबुतरके इसी भागमें लाल रंगके बिन्दु होनेसे वह लाल मालुम होता है। मुर्गीके और कबूतरके दृष्टिपटलका शेष भाग अनुक्रमसे लाल और पीला दिखाई पड़ता है। मूलर्सके तन्तु तंग होते हैं और आन्तर जीवनबीजकी तहकी दूरीके भागमे इन तन्तुके सीरे सर्पकी जैसे ब्रशके तन्तु जैसे होते हैं। पक्षीयोमें दृष्टिस्थान होता है और कभी कभी वह दोहरा होता है। रातके वख्त भक्ष्य धुडनेवाले कई पक्षियोमे दृष्टिस्थान दो होते हैं एक ऊपर और उसके नीचे दूसरा, ये दोनों एक पट्टीसे जुडे हुए जैसे होते हैं।

सस्तन प्राणियोंके नेत्रकी रचना साधारणतया मनुष्यके नेत्रके समान होती है। इनके प्रोटोटेरिया वर्गके ऊंची श्रेणीवाले उपभेदोमे शुक्लपटलमे अस्थिमय वलयका अभाव होता है और कुछ भेदोमें अस्थिगुहाका विकास दिखाई देता है। चूहा और अन्य प्राणि जो जमीनमे छिद्र करके रहते हैं, उनके नेत्र बहुत छोटे होते हैं। जिन सस्तन प्राणियोको रात्रिके समय या अन्धःकारमें भक्ष्य ढूढनेकी आवश्यकता होती है, उनके नेत्रका तारकापिधान बडा और ज्यादह उन्नतोदर होता है; कनीनिका ज्यादह चौडी होती है; स्फटिकमणि भी वृत्ताकार होता है। सस्तन जलचर प्राणियोमें मछलीके समान तारकापिधान कम उन्नतोदर होता है।

सस्तन प्राणियोंका दृष्टिपटलः—इस वर्गके कुछ सब प्राणियोमे दृष्टिस्थान होता है; लेकिन ऐसा माना जाता है कि चूहा, भेडीमे यह नही दिखाई पडता। सिर्फ मनुष्य और कई जातके बन्दरमें दृष्टिस्थान और दृष्टिस्थान केन्द्र होता है जिससे द्विनेत्रिय एक दर्शन और घनता दर्शन संभाव्य होता है।

जिन मनुष्योंमे चमडी और बाल सफेद होते है उनके नेत्र लाल दिखाई देते हैं। इसमें कुछ आश्चर्य नही है। नेत्रकी रक्तवाहिनीयोका रक्त नेत्रके पारदर्शक भागमेंसे दिखाई देनेके कारण यह ललाई दिखाई पडती है। नेत्रका रग रक्तके रगपर अवलम्बित होता है। नीले या भूरेरंग के नेत्रकी तारकामें रंजित द्रव्यका अभाव होता है; किन्तु यह दृष्टिपटलमे होता है। उसपर प्रकाशपरिवर्तन होनेसे तारका नीली दिखाई पडती है। दृष्टिपटल और तारकामें रंजित द्रव्यका संचय मोटे तादादमें होता है, तब नेत्र कुछ काले नीले या पिंगल रंगके यानी तपखिया रंग केसे कंजे दिखाई पडते है यह रंजित द्रव्यका संचय बालकके जन्मके बाद होता है। इससे बालकके नेत्र जन्मतः नीले रंगके और फिर पिंगल या कंजे दिखाई देते हैं।

कृष्णपटलः—यह सिर्फ पृष्ठवंशी प्राणियोंके नेत्रमें पाया जाता है; इसकी मोटाई ½ मि. मि. होती है, लेकिन देवमत्स्य और सील नामके जानवर प्राणियोंमें इसकी मोटाई १.५ मि. मि. से ज्यादह होना संभाव्य होसकता है। इसका रंजित द्रव्य कृष्णपटलके बाहरी तहमें (सुप्राकोराईड यानी लामिना फस्कामें) ज्यादहतर होता है, लेकिन पक्षी और मछली वर्गमें इसका अभाव होता है। मछलीमें **रजतपत्र** (आरजेन्टिया, सिलव्हरी मेम्ब्रेन), जो कृष्णपटलकी बाहरीतह और बडी रक्तवाहिनियोके संस्थानमे होता है, दिखाई पडता है। इस रजतपत्रकी बनावटमें ग्वानिनके स्फटिक होते हैं जिससे यह चमकदार सुफेद पत्र जैसा मालूम होता है, और इसी की वजहसे मछली और किफालोपोडा की तारकामें धातुकी चमक भासमान होती है। मछलीमेका कृष्णपटल अन्य पृष्ठवंशीवाले प्राणियोंकी अपेक्षा ज्यादह मोटा और स्पज जैसा होता है, इसमे, अकसर करके पिछले भागमें रक्त-वाहिनियां ज्यादह होती है। इस पिछले मोटे भागको **कृष्णपटलकी ग्रंथी** कहते है। इसका विकास गेनाईड मछलीमे ज्यादह दिखाई पड़ता है। दृष्टिपटल इस रक्तवाहिनियांदार घटक पर स्थिर होता है।

टापिटमः—यह आम तौरसे सस्तन प्राणियोमे दिखाई पड़ता है। इसीकी वजहसे बिलाडीके नेत्रमें हरे रंगकी और कुत्तेके नेत्रमे पाचुके हरे रगकी जैसी प्रतिक्रिया पायी जाती है; यह मास खानेवाले, (यानी बिलाडी, कुत्ता, रीस, आटर, सील वालरेसमें) जुगालना करनेवाले प्राणियोंमें (ऊठ, बैल, मेंढी, बकरा, हरिण, जिराफ) घोडेमें और देवमत्स्य आदि जातिके समुनदरी प्राणियोमे दिखाई पडती है। यह मछलीमें पाया जाता है लेकिन दंशक यानी कुतरनेवाला प्राणि, मगर सिवा अन्य सर्व जाती और भूजलचर प्राणियोमें नही दिखाई पडता। **कृष्णपटलीय टापिटम** पेशि या तन्तूदार रचनाका होता है। यह नेत्रतलके कुल भागमें फैला हुआ होगा लेकिन ज्यादहतर ऊपरके और पिछले भागमें होता है। **पक्षिवर्गमें** सिर्फ शहामृगमे इस टापिटमका कुछ मूल अंश दिखाई पडता है जिसपर रजित द्रव्य रहता है।

टापिटम कृष्णपटलकी रक्तवहा केशिनियोकी तह की भीतरकी ओरको होता है और इसमे और दृष्टिपटमें रजित द्रव्यका अभाव होनेसे यह दिखाई पड़ता है।

मासाहारी प्राणियोमें टापिटम पेशियोकी अनेक तहोका बना हुआ होता है; घास खानेवाले प्राणियोके टापिटममे तन्तुओकी अनेक तहे होती है और इस परसे प्रकाशका जोरसे परिवर्तन होता है और इन तहोकी वजहसे प्रकाशका विवर्तन होकर नेत्रतलमे अनेक रंग दिखाई पडते हैं।

घोडेका टापिटम विस्तृत होता है, बैलमे इसका विस्तार नासिकाकी ओरको ज्यादह होता है, बकरेमे यह चौरस होता है, और इसका विस्तार पिछले ध्रुवके पास समसमान होता है। कुत्ता, बिलाडीमे त्रिकोणाकार होता है। कुत्तेमे यह नेत्रबिबके पूरीतौरसे ऊपरकी ओरको होता है, लेकिन बिलाडीमें यह नेत्रबिंबके कुछ नीचे फैलता है। कई प्राणियोमें **दृष्टिपटलसे टापिटम** पाया जाता है और यह ग्वानिनके स्फटिकोंका बना हुआ होता है और यह सुनेहरी मछली और अन्य जातिके मछलीमें पाया जाता है।

नेत्रतलः—रंग—जिन प्राणियोमें टापिटमका आभाव होता है, उनके नेत्रतल का रंग कृष्णपटलके रक्तसे पैदा होता है और इसमें रंजित कलातहकी रंगकी घनताके अनुसार फर्क दिखाई पड़ता है। अन्य प्राणियोमे नेत्रतलका रंग टापिटमपर अवलम्बित रहता है।

लाल रंगका नेत्रतलः—प्रायमेट वर्गके–लीमर वंशके सिवा–मानव और बंदरके जातीमें दिखाई पडता है। **पीले रंगका नेत्रतल** प्रोझिमेन, चिरोपेट्रा वंशका चमगादार बिलाडी, हाथी और गिलहारी दिखाई पडता है। **हरे रंगका नेत्रतल** बहुतही कम दिखाई पडता है; यह कुछ मासाहारी प्राणियोमे और जुगालना करनेवाले प्राणियोमे दिखाई पडता है लेकिन इसी वर्गके ऊठ और बकरेमे नेत्रतल हरेके बदले लाल रंगका होता है।

तारकातीत पिंडः—मानव जाति और वानर जातिके उपरी वर्गमें तारकातीत पिंडके **तारकातीत पिंडीय स्नायु** और **तारकातीत पिंडीय प्ररोहा** (जो रक्तवाहिनियांदार होती हैं) ऐसे दो भाग होते हैं। किफालापोडा वर्गमेही इसके समान इन्द्रिय होता है यह वास्तविक है तोभी तारकातीत पिड पृष्टवंशी प्राणियोमे ही दिखाई पडता है; इस स्नायुका भाग कायम स्वरूपका है। **तारकातीत पिंडीय प्ररोहा**ओका मछलीमे और भूजलचर प्राणियोमे अभाव होता है। पक्षीयोमे इनकी सख्या करीब २०० होती है, जो मनुष्यमे सिर्फ ७० ही होती है। मानव जातीमे इन प्ररोहाओका स्फटिकमणिको स्पर्श नही होता लेकिन खरगोश जैसे कई प्राणियोमे इनका स्फटिकमणिको और तारकाको स्पर्श होता है। ध्यानमें रखीयेकी यह अवस्था मनुष्यके भ्रूणमे आखिरी पास तक दिखाई पड़ती है।

तारकातीत पिंडीय स्नायुः—मानव जातिमे इसके परिधिकी **ब्रुककी स्नायु** और केंद्रस्थ **मूलरकी स्नायु** ऐसे दो भाग होते है। पक्षियोमे और एक तीसरा भाग होता है जिसको **क्रांपटनकी स्नायु** जो तारकापिधानसे शुक्लपटलको जाती है। तारकातीत पिंडीय स्नायुका आकार दृक्सधानके व्यापारपर अवलबित रहता है नकी नेत्राभ्यंतरके द्रवाशपर। मानव जातिके तारकातीत पिडीय स्नायुका विकास अन्य सस्तन प्राणियोकी अपेक्षा ज्यादह होता है। **हेस** और **हेन**के मतानुसार गर्दभमें दृक्सधानव्यापार का विस्तार १६ **डी** बलका, कुत्तेमे २.५ से ३.५ **डी** बलका और बिलाडीमें १ **डी** बलका होता है।

पक्षी वर्गमे तारकातीत पिडीय स्नायु और **क्रांपटन** की स्नायुके आकुचनसे स्फटिकद्रव पिंडमेंका दबाव बढ जाता है। इससे स्फटिकमणि सामने ढकेला जाता है, लेकिन इसका परिधिभाग तारकासे पकडा हुआ होनेसे स्फटिकमणिका आसमेका भाग ही सिर्फ आगे ढकेला जाता है। रात्रिचर पक्षियोके सिवा अन्य पक्षियोमे दृक्सधान शक्ति जोरदार होती है। **हेस**के सशोधनके अनुसार यह ४० से ५० **डी** बलकी होती है। तारकातीत पिंडीय स्नायु और पक्षियोंकी तारका अंकित स्वरूपकी होती है; मनुष्यमे निरंकित स्वरूपकी होती है।

तारकाः—आरथ्रोपोड वर्गमेंके तारकाका विचार करे तो उनका रजित द्रव्य और तारका सदृश टापिटमका ही बोध होता है। समिश्र नेत्रके हर पहलुको सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे देखे तो उसमें कनीनिका जिसके घेरेमें रंजित द्रव्य होता है दिखाई पड़ती है। **किफालापोडा**

वर्गमें रंजित द्रव्यदार तारका होती है और इसमें दो आकुंचक और एक प्रसरणकारक स्नायु होती हैं। पृष्ठवंशवाले प्राणियोंमें तारका जरूर होती है; कई मछलियोंमें वह मल रूपकी होती है। मछलियोंकी तारकासे धातुके जैसा प्रकाश पाया जाता है। पक्षिवर्गके गानेवाले पक्षियोंकी तारका पीले रंगकी और जो पक्षी शिकार करते हैं उनकी तारका बादामी रगकी होती है। इनकी **कनीनिका** जब संकुचित होती है तब वह गोल जैसी नही होती, लेकिन जब वह प्रसृत होती है तब गोल होती है। घोडा, बैल, बकरा, कांगारू और कई मछलीमें कनीनिका दीर्घवृत्ताकार होती है और उसका बड़ा आस आडी रेषामे होता है। सील नामक प्राणि और मगरमे कनीनिका दीर्घवृत्ताकार होती है और उसका बडा आस खडा होता है, बिलाडी, कोल्हा और उल्लुमें कनीनिका खडी चीर जैसी होती है।

प्रकाशके वक्रीभवन मार्गका व्यूह

नेत्रकी उत्क्रान्ति की मूल अवस्था जो ७ क पेशिदार रिटलारिया लाकुस्ट्रा कीटककी होती है उसपर कोई वक्रीभवन व्यूह सिवा, प्रकाशकी क्रिया होती है। जब प्राथमिक वक्रीभवन मार्गका बिकास दिखाई पडता है तब इसम इसका स्वरूप पेशियोके श्रावसे पैदा हुआ पारदर्शक घटक जैसा होगा, या नेत्रको ढाकनेवाले मांस और पारदर्शक त्वकपत्र जैसा होगा, या पेशियोंका अवकलन होकर प्रकाशको चाक्षुष पेशियोपर केन्द्रिभूत करनेवाले पारदर्शक पिंड जैसा होगा।

किफालापोडा वर्गमे तारकापिधान स्फटिकमणि, सयुक्त होता है जिसमें दो अर्धगोल पारस्परीकसे लगे रहते हैं। नेत्रगोलकका खाली भाग प्राथमिक पारदर्शक स्फटिकद्रव पिडसे भरा रहता है। समिश्र या पहलुदार नेत्रम छोटासा पारदर्शक तारकापिधान होता है जिसके पीछे कोनाकार स्फटिकमणि होता है (चित्र न १७२ देखिये)।

पृष्ठवशी प्राणियोमे **तारकापिधान** कायमका होता है। साधारणतया सस्तन प्राणियोमें और मछलिमे इसका आकार बडा होता है, और पक्षिवर्ग तथा सर्पवर्गके नेत्रगोलकके आकारके तुलनासे यह छोटा होता है, लेकिन रातको घुमनेवाले पक्षिओका तारकापिधान दिनमे भ्रमण करनेवाले पक्षिओसे बडा होता है। तारकापिधानकी कलातह मछलीमे जाड होती है मनुष्यकी जैसी मुलायम नही होती। मनुष्यमे कलातहके ५ या ६ आस्तर होते है, घोडेमे २०, बैलमें ८–१० खरगोषमे ६ और भूजलचर प्राणियोमे २–४ होते है। मनुष्यमें तारकापिधानमे विकारके सिवा रक्तवाहिनियोका अभाव होता है; सुनेहरी मछलीके तारकापिधानमें रक्तवाहिनिया पायी जाती है और अन्य जातिमे भ्रूणकी ही अवस्थामें यह दिखाई पडती है। गायके बछडा, भेंढी, गिनीपिग चिम्पान्झी बंदर और अनेक पक्षी और मछलीकी जातिमे तारकापिधानकी कलातहमे रजित द्रव्य होता है। जो प्राणि हवामें ही रहते है उनमें तारकापिधान एक जोरदार ताल जैसा कार्य करता है। पानीमें उसकी वक्रीभवनकी शक्ति नष्ट हो जाती है। **गुल्स्ट्रान्ड** के मतानुसार मनुष्यमें स्फटिकमणिकी वक्रीभवनकी शक्तिका बल १९ डी इतना होता है तो तारकापिधानका बल ४५ डी यानी दुगनेसेही ज्यादह होता है।

स्फटिकमणिः—पृष्ठवंशीवाले प्राणियोके ऊपरके वर्गमे स्फटिकमणि कमतर गोलाकार होता जाता है, लेकिन मछलीमें वह पूरा गोलाकार होता है और बाजेवक्त इतना आगे बढजाता है कि वह तारकापिधानको स्पर्श करता है। इसकी वजह यह होती है कि तारकापिधानमें प्रकाशका वक्रीभवन करनेकी काबिलीयत न होनेसे स्फटिकमणिको ही उसकी भरपाई करनी होती है। सस्तन प्राणियोंके चूहा जातिमें स्फटिकमणि गोल होता है। मांसभक्षक प्राणियोमें स्फटिकमणिका सामनेका पृष्ठभाग ज्यादह उन्नतोदर होता है, तो घास खानेवाले प्राणियोंमें उसका पिछला पृष्ठभाग ज्यादह उन्नतोदर होता है। रात्रिचर प्राणियोका स्फटिकमणि बडे आकारका होता है सिर्फ उल्लूमें वह छोटा होता है। स्फटिकमणिमेकी सीवनिया मनुष्यमें गलेलुके डडे जैसी होती है; साल्लेचिन प्राणियोमे सिदि लकेरी जैसी होती है। सामनेकी खडी ओर पिछली आडी जैसी होती है।

स्फटिकमणिको लटकानेवाला **झिन का वलय** सब पृष्ठवंशी प्राणियोमें दिखाई पडता है। पक्षियोमे यह वलय छोटा होते हुए ही मनुष्यके इस वलयसे जोरदार होता है। मछलीमे यह त्रिकोणाकार पट्टी जैसा होकर गोल स्फटिकमणिके ऊपरी ध्रुव को लगा रहता है। मछली और भूजलचर प्राणियोमे स्फटिकमणिके साथ स्नायु होती हैं। मछलीकी इस स्नायुसे, जो फालसीफार्म प्ररोहासे स्फटिकमणिके पिछले पृष्ठको नीचे और नासिकाकी ओरको लगी रहती है, स्फटिकमणि पीछे और बाहरकी ओरको खीचा जाता है। इसका दृक्सधानसे सबध है ऐसा माना जाता है। भूजलचरोमे स्फटिकमणिको सामने खीचनेवाली स्नायु होती है।

चाक्षुषजलः—किफालोपोड वर्गमे पूर्ववेश्मनी बडी होती है, और जिनके तारकापिधानमें छिद्र होता है, वह जिस जलमे वह प्राणि रहता है उसी जलसे भरी रहती है; लेकिन जिनके तारकापिधानमे छेद नही होता उनके पूर्ववेश्मनीमें मानवी चाक्षुषजल जैसा ही जल होता है। पक्षियोमे और कई मछलीयोमे पूर्ववेश्मनी बडी होती है; कई पक्षियोमें उसकी गहराई ८ मि. मि. इतनी होती है। बिलाडीकी पूर्ववेश्मनी मानवी पूर्ववेश्मनीसे २.५ गुनी बडी होती है।

नेत्रगुहा

पृष्ठवंशहीन प्राणियोंके नेत्र बाह्यत्वकमें गढे रहते हैं। किफालोपोडमेंही सिर्फ तरुणास्थिसे बनी हुई नेत्रगुहा की प्राथमिक अवस्था दिखाई पडती है। पृष्ठवंशी प्राणियोमे नेत्रगुहा कायम स्वरूप की होती है, लेकिन उसके आकार, उनकी पूर्णावस्था और दोनोके दरमियानके फासलेमें फर्क होते हैं। जलअश्वमें (ट्रिकेकस) नेत्रके आकारकी तुलनासे नेत्रगुहा बडी होती है, और उल्लुमें नेत्रगुहाको नेत्र चिमके जैसे होते है। मनुष्य और बन्दर जातिमे नेत्रगुहाकी बनावटमें सात हड्डीया होती हैं; इनके सिवा अन्य पृष्ठवशीयोंमें नेत्रगुहा इतनी बडी होती है कि इसकी बाहरीकी दीवालका अभाव होता है और नेत्रगुहाका संबंध कनपटीकी ओरके गडेहसे होता है, और भूजलचर प्राणियोंमें इसका संबंध कंठ या पोखासे होता है। इसकी रचनामें ललाटास्थि और जतुकास्थि कायम के होते है। आम सस्तन प्राणियोंमें अश्रराथिका और कभी कभी ताल्वास्थिका नेत्रगुहाकी बनावटमें हिस्सा नहीं

दिखाई पड़ता । मछलीके नेत्रगुहाका छत १ से ६ हड्डीयोंसे बनता है। चपटे आकारके मछलीमें दोनो नेत्रगुहा असम और भिन्न आकारकी होती है। बाल्यदशामे ये आम मछलिकी जैसी ही होती है, और उनके नेत्र समस्थानमें होते है; लेकिन बादमे जब ये मछलिया समुन्दरके तलमे एक बाजुपर रहते है, तब नीचेका नेत्र, जो **सोल** नामक मछलीमे बांया होता है और **टरबाट** नामक मछलिमे दहिना होता है, ललाटास्थिके छेदमेसे होकर दूसरेके नजदीक आता है; इस नेत्रको **भ्रमणशील नेत्र** कहते है । पृष्ठवंशी प्राणियोके नीचेके वर्गमें बाष्पास्थिका विकास पूरा नही दिखाई देता और **कोबर** के मतानुसार यह सर्पवर्गमें दिखाई पडता है । आरनिथारिंकस, एकिडना, थैलीवाले जन्तुओकी श्रेणि और अदन्ति प्राणियोमे यह एक पट्टी जैसी होती है और इसमें नासिका नालिका छेद होता है।

पक्षी, सरट, मकर और कछुआमें दोनों नेत्रगुहा पारस्परीकसे नजदीक होती है; ऊंट और खरगोशमे दोनो नेत्रगुहाके लिये चाक्षुष छिद्र एकही होता है। मनुष्य, बन्दर और रात्रिचर पक्षीवर्गमें नेत्रगुहा सामनेकी ओरको होती है; बिलाडी और कुत्तेकी नेत्रगुहा कुछ बाजूको होती है । मछली, पक्षी, चुगालना करनेवाले प्राणि और मांस खानेवाले प्राणियोमे वे बाजुको होती है । कुर्तदन्ती, भूजलचरप्राणि और कई मछलीमें वे ऊपरकी ओर होती हैं । **व्हरचु**के मतानुसार हाथी की नेत्रगुहा उसके नेत्रके प्रमाणसे बहुत बडी होती है ।

शुक्लपटलः—नेत्रकी उत्क्रान्ति कि मूल अवस्थाकें नेत्रका बाहरीका पटल रंजित प्यालेका बना हुआ होता है, इसके सिवा इनके इर्दगिर्द संज्ञावाहक कलातहका आस्तर या संयोगी घटकोका आवरण होता है। खास शुक्लपटल पृष्ठवंशी प्राणियोंमे सिर्फ दिखाई पडता है । सस्तन प्राणियोमे यह तन्तुर घटकोका बना हुआ होता है; अन्य पृष्ठवंशियोमे इसमे कुछ तरूणास्थिका और कुछ आस्थिका अश पाया जाता है। पक्षि, सर्प मछली और कई भूजलचर प्राणियोंमें तरूणास्थिके वजहसे यह जोरदार होता है । तरुणास्थिका प्याला जैसा होता है और उसके छेदमेसे दृप्टि रज्जु जाती है । पक्षीवर्गमें इसके पिछले भागमें अस्थिदार प्याला और सामनेकी ओरको वलय होता है ।

नेत्रच्छदः—ये सिर्फ पृष्ठवशी प्राणियोमे दिखाई पडते हैं। मछलीमे जो पानीमे रहते है नेत्रच्छदोका अभाव होता है या हो तो बिलकूल प्राथमिक अवस्थाके होते हैं। शार्क मछलीमे इसका विकास ज्यादह होता है। ऊपरीका बडा होता है और नीचेवालेका कार्य (तृतिय नेत्रच्छद) **निकटिटेटिंग पत्र**से होता है । सर्पवर्गमें नेत्रच्छदोकी अनेक तरह होती है। कई प्राणियोमे नीचेका नेत्रच्छद पारदर्शक होता है । सर्पका नेत्र नीचेके पारदर्शक नेत्रच्छदसे ढाका रहता है जिसके बीचमे एक बारी जैसी होती है, जिसमेसे वह देखता है । इसी वजहसे कल्पना की गयी है कि सर्पमे नेत्रच्छदोका अभाव होता है और इसी वजहसे कहा जाता है कि सर्पकी दृष्टि या नजर स्थिर होती है, सर्पके आकारकी मछलीमें और बाम नामक मछलीकेही नेत्रच्छदमें बारी जैसी होती है लेकिन ये वस्तुतः नेत्रच्छद नही होते। पक्षीके नीचेके नेत्रच्छदमें ज्यादह चलन दिखाई पडता है। भूजलचर प्राणियोंके ऊपरी नेत्रच्छद में खास तोरकी ग्रंथियों का शोध **ग्यागिऔर** ने लगाया है ।

ऊपरके वर्गके नेत्रच्छदोंमे **च्छदपट** की वजहसे जो तन्तुर घटकोंका बना हुआ होता है न कि तरुणास्थिका, ज्यादह ताकत पायी जाती है। कुत्तेमेही इसका कम विकास दिखाई पडता है। पक्षीवर्गमें और सरटमें इसका विकास नीचेके नेत्रच्छदमें होता है, और तोता, बदक, कुछुआमें इसका अभाव होता है।

नेत्रच्छदान्तराल के विस्तार और आकारमे फर्क होता है। इसका आकार प्राणिके आकारसे सापेक्ष तरह का होता है। हाथीका नेत्रच्छदान्तराल सबसे बडा और ऊंठ और सीलमें सबसे छोटा होता है।

पक्ष्मनः—इनका विकास मनुष्य और बन्दरमे अच्छा दिखाई पडता है, कुत्ता और सुवरमें ही ये दिखाई पडते है, बिलाडीमे इनका अभाव होता है। **भौंहे** मनुष्यमेंही नही बल्कि बन्दरमें ही दिखाई पडते हैं। बिलाडीमे कुछ थोडे लम्बे बाल जैसे दिखाई पडते है।

नेत्रच्छदके स्नायुः—नेत्रच्छदोका चलन नेत्रनिमिलिकी और नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुओसे होता है। लेकिन शार्क नामक मछलीमें और सर्पमे नेत्रनिमिलिकी स्नायुका अभाव होता है। हाथीमें **वरच्यु** के मतानुसार नेत्रच्छदको नीचे खीचनेवाली स्नायु होती है। जलसंचारी सस्तन प्राणियोंमे नलिका जैसी एक स्नायु होती है जो नेत्रच्छदोके इर्दगिर्द फैली हुई होती है जिससे नेत्रच्छदान्तराल चौडा हो सकता है। **एच् मूलर** के सशोधनसे मालूम हो सकता है कि मनुष्यके नेत्रच्छदमे निरंकित स्नायु और अधो नेत्र गौहिक दरारके पार स्थितिस्थापक तन्तुमिश्रित निरंकित स्नायु पायी जाती है। अन्य सस्तन प्राणियोमें यह स्नायु पूर्ण विकसित होती है जो नेत्रगौहिक स्नायु जैसी होती है और इसका कार्य नेत्रगोलकको पीछे खीचनेवाली स्नायुकी खिलाफ होता है। इन स्नायुको आनुकंपिक मज्जामंडलके तन्तु मिलते हैं। नीचेके श्रेणिके प्राणियोमे **नेत्रगौहिक स्नायु** अंकित होते है, सस्तन प्राणियोमे निरंकित स्वरूपकी होती है, लेकिन दोनोका उद्गम नेत्रगुहाके परिधिके आवरणसे होता है। नेत्रच्छदकी या च्छदपटकी **मूलर**की स्नायु जो मनुष्यमे निरकित स्वरूपकी होती है, जल संचारी सस्तन प्राणियोमे अकित रूपकी होती है। इनका उद्गम सरल चालनी स्नायुओंके साथ होता है और इनके दो भाग होते है, एक भाग नेत्रगोलक को और दूसरा नेत्रच्छदोंको जाता है। लेकिन सब सस्तन प्राणियोमे नेत्रच्छदोंको जानेवाला भाग निरकित होता है। नेत्रनिमिलिकी स्नायु त्वक यानी चमडीसे पैदा होती है ऐसा माना जाता है। मनुष्यमे यह स्वतंत्र ही होती है इसका मौखिकीकी स्नायुओसे कुछ सबंध नही है, लेकिन नीचेके वर्गके प्राणियोमें इसका संबंध मौखिकी स्नायुओसे होता है यह स्पष्ट है। इनमे नेत्रनिमिलिकी स्नायु नेत्रगुहाकी किनारके पार नही फैलती।

शुक्लास्तरः—मछलिमे शुक्लास्तर चमडी जैसा होता है। गायका बछडा, कुत्ता और सुवरके शुक्लास्तरमे रसपिटिकाऐं पायी जाती है। घोडेके शुक्लास्तरमे अनेक नेत्राश्रुपिटिका होती है। प्राकृत दृष्टिसे विचार करे तो मनुष्यके शुक्लास्तरमे खास तोरकी अश्रुपिटिका नही मिलती। बकरा, सुवर और बैलके नेत्रगोलकके शुक्लास्तरमें स्वेदन ग्रंथियाँ पायी जाती है ऐसा शोध लगा है। बहुतसे प्राणियोंमे तारकापिधानके किनारके पास रंजित द्रव्य स्पष्ट दिखाई पडता है। **मूलर**के शोधके अनुसार रंजित पेशियां, जिनकी प्ररोहा पारस्परीकसे

मिलती है, और जो संकुचनदार होती है पायी जाती है । **स्टीनरके** शोधके अनुसार जपानी और चीनी लोगोके नेत्रगोलक परका शुक्लास्तर हमेशा रंगीन होता है और उम्रके प्रमाणमें और जिनके नेत्रपर सूर्य प्रकाशकी क्रिया ज्यादह होती है उनमे रजित द्रव्यकी वृद्धि होती जाती है ।

तृतीय नेत्रच्छद:—(निकटिटेटिंग मेमब्रेन) यह शुक्लास्तरकी पैदाईश होती है । इसका ज्यादह विकास, सस्तन प्राणियोमें अकसर करके घास खानेवाले प्राणियोमें, सोरापसोडा वर्गमे और बाट्राचियन्समें दिखाई पड़ता है । मनुष्य और बन्दरमे, चिंप्यान्झिके सिवा इसका विकास नही होता क्योंकि वे अपने हातोसे नेत्रको बारबार पोंछ सकते हैं; चिंप्याझिमें एक तृतीय नेत्रच्छद होता है । सालीपेड वर्गमे इसका विकास अच्छा दिखाई पड़ता है । मनुष्यमें नेत्रच्छदान्तरालके भीतरी कोणमेका शुक्लास्तरका चंद्रकोराकार झोल इसीका अवशेष समझा जाता है । आमतोरसे यह नेत्रके भीतरीके कोणमेंही रहता है; यह नेत्रपर तिरछा बाहरकी ओरका फैलता है । मेढक और सिलाचिन्समें यह तृतीय नेत्र नीचे होता है और वहांसे ऊपर नेत्रपर सरक जासकता है । हड्डीदार मछलियोंमे यह कनपटीकी ओरको होता है । बहुतसे प्राणियोंके तृतीय नेत्रच्छदमे तरुणास्थिकी पट्टी जो घास खानेवाले प्राणियोंमे कुछ बडी होती है, पायी जाती है । इसमे स्थितिस्थापक तन्तु ज्यादह होते है, और इसकी किनारपर रंजित द्रव्य होता है । पक्षीयोंके और मेढक जैसे कुछ भूजलचर प्राणियोके तृतीय नेत्रच्छदको ताननेसे वह केन्द्रस्थ भागमे पारदर्शक होजाता है जिससे प्राणिको दिखाई पडता है । पक्षी और सर्पके तृतीय नेत्रच्छदके संबंधमे **क्वाड्रेटस** और **पैन्यामिडालिस** नामकी दो स्नायु होती है । सस्तन प्राणियोमे इन स्नायुका अभाव होता है ।

अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण:—मछलियोमे अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण का अभाव होता है क्योंकी उनके नेत्र जिस पानिमें वे रहते हैं उससे साफ हो जाते है । अश्रुग्रंथिका मूल पहले पहल भूजलचर प्राणियोमें दिखाई पडता है और वह नीचेकी नेत्रच्छद की चमडी और शुक्लास्तर के दरमियान शुरू होती है । कछुआमें दोनो नेत्रके लिये एकहि अश्रुग्रथी होती है । सर्पमे इस ग्रंथिका अभाव होता है, लेकिन इनमे **हार्डर्सकी** अश्रुग्रथी, जो सब पृष्ठवंशी प्राणियोमें, मनुष्य और बन्दर की सिवा पायी जाती है, वह बडी होती है और नेत्रच्छदान्तरालके भीतरी कोणमें होती है; कभीकभी कई जातीके सर्पमें इससे नेत्रगुहा भरी हुई मालूम होती है । पक्षीमे भी **हार्डर्स** की ग्रंथी बडी होती है ।

अश्रुग्रंथी और **हार्डर्सग्रंथी** इन दोनोंका उद्‌गम नीचेके नेत्रच्छदमेंकी एकही ग्रंथीसे होता है । इस ग्रथीके बीचके भागमेसे **हार्डर्स** की ग्रथी पैदा होती है और वह नीचेके नेत्रच्छदमें ही रहती है; लेकिन अश्रुग्रंथी पहले नेत्रके अपागको सरक जाकर फिर ऊपरके नेत्रच्छद को सरक जाती है । पक्षीयोंमें अश्रुग्रथी अपागकी ओरको होती है; खरगोश मे यह ग्रंथी का कुछ भाग ऊपरीके और कुछ नीचेके नेत्रच्छदमें रहता है । कुछुआमें अश्रुग्रंथी बडी होती है और वह नेत्रके पीछेकी ओरको होती है । इसकी वजह यह होती है कि जब उसको अन्डा देनेकी जरूरी होती है तब वह रेतिला प्रदेशमें जाता है और उसको यहां नेत्र भिगे हुए रखनेकी जरूरी होती है। अश्रुग्रंथीका श्राव पानि जैसा होता है, **हार्डर्स**

की ग्रंथीका श्राव तेल जैसा होता है। लेकिन भेडक, बछडा, बकरा, कुत्ता और सूवर में श्लेष्मिक होता है। देवमत्स्य में यह श्राव वसादार होता है। **अश्रुवाही मार्ग** प्राणियोमें मनुष्य के इन मार्गोसे छोटे होते है। अश्रुपिटिका मनुष्यमे ही पायी जाती है।

नेत्रगौहिक स्नायुः—पृष्ठवंशी प्राणियोमें इनका विकास ज्यादह पूरा होता है, लेकिन पृष्ठवंशहीन प्राणियोंमें उनके नेत्रके सबधमें ये स्नायु मूल अवस्थाकी होती है जैसे की शंबुक या घोघा और शिपवाले प्राणिमोमें उनके घूमते नेत्र डडेपर रहते है, **कोफिला** मे एक तरहका कवचधारी प्राणि दृष्टिपटल ही घुमता है; डाफिनामें (पानिमेकी एक तरहकी पिसु)–$\frac{1}{10}$ मि. मि. व्यासका एक ही नेत्र होता है, यह बीचमें होता है और इसकी बनावट में अनेक **ओम्याटिडियम** होते है। इस नेत्रमे मनुष्यके नेत्रकी जैसी चार स्नायुएँ होती है जिनकी वजहसे नेत्र सब दिशाको घुम सयता है और नेत्र हमेशा कपित होता रहता है। पृष्ठवंशी प्राणियोमें चार सरल और दो वक्र चालनी स्नायु होती है। पक्षीयोमे सापेक्षतासे ये स्नायु छोटे होते हैं और नेत्रमे चलन भी कम होता है क्योकी यह प्राणि अपना सर घुमा सकता है; और मछली, सर्प, और भूजलचर प्राणियोमे, कछुआ शार्कनामक मछली के सिवा यही अवस्था दिखाई पडती है। दो वक्र चालनी स्नायुओसे नेत्र गोलकके चारो ओरको एक वलय जैसा बनता है। मनुष्यमे इनका बद्धस्थान पीछेकी ओरको होता है, अन्य प्राणियोंमें यह बद्धस्थान सामनेकी ओरको दिखाई पडता है। मछलीमे दोनो वक्र स्नायु बाहरकी ओरको होती हैं। पक्षी, हाथी और चिंप्यान्झिमें अधो वक्र चालनी स्नायु बाहरकी ओरको होती है; लेकिन अन्य सस्तन प्राणियोमे यह भीतर की ओरको होती है। शेरमें दोनो वक्र स्नायुओका सरल स्नायुओके घेरनेके लिये विभाजन होता है। **नेत्रगोलकको पीछे खींचनेवाली स्नायु** (रिट्राक्टर मसल, कोनाईड मसल) का विकास घास खानेवाले बडे प्राणियोमें अच्छा दिखाई पड़ता है। मनुष्य, पक्षी, सर्प और बन्दरके कई ऊंचे वर्गमे इसका अभाव होता है। यह स्नायु कोनके आकारकी होती है, इसका उद्गम नेत्रगुहाके शीर्षके पास होता है और इससे नेत्रगोलकका पिछला भाग घेरा जाता है। इसमें विभाजन की प्रवृत्ति होती है। इसका असली कार्य नेत्रगोलकको पीछे खीचना यह होता है। जो प्राणि अपने सर को कई घंटेतक लटका रखते है उनमे इस स्नायुसे नेत्रगोलकको सहारा मिलता है और रक्तावरोध रुक जाता है।

नेत्रगुहाकी रक्तवाहिनियांः—सस्तन प्राणियोमे नेत्रको रक्तकी भरती बाह्य मातृका रोहिणीसे पायी जाती है; लेकिन उत्क्रान्तिकी बढती श्रेणिके प्राणियोमे नेत्रको रक्तकी भरती आन्तर मातृका रोहिणीसे मिलती है। कुत्तेमे **पारसन** और **हेन्डरसन** के मतानुसार दो चाक्षुष रोहिणियां, हर मातृका रोहिणीकी एक एक शाखा होती है। मनुष्यमें नेत्रगोलककी और नेत्रगुहाकी रोहिणीयां आन्तर मातृका रोहिणीसे पैदा होती है। लेकिन भूलना नही अश्रुपिडगाकी पुनरावर्ति शाखासे, आन्तर्मातृका रोहिणीकी अश्रुपिडगा और बाह्यमातृका रोहिणीकी मध्यमस्तिष्क रोहिणी शाखा, इनका संयोग होता है। यह शाखा बडी होकर चाक्षुष रोहिणिका कार्य करना संभाव्य है और फिर नीचेके प्राणियोंमेंकी जैसी रक्त भरतीकी अवस्था पैदा होना संभाव्य है।

हायलाईड रोहिणी सस्तन प्राणियोमे कायमकी होती है । **तारकातीत पिंडकी रोहिणियां** दृष्टिपटलको रक्तकी भरती करनेमे मनुष्यके सिवा अन्य प्राणियोमे महत्वका भाग लेती हैं । इनमें दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी इतनी छोटी होती है कि उसकी कुछ खबर भी नही होती । कुत्ता, बिलाडी में इस रोहिणिके अस्तित्व संबधमे एकमत नही है ।

दृष्टिपटल की खास रोहिणिया सिर्फ सस्तन प्राणियोमे ही दिखाई पडती हैं । पृष्ठवंश हीन प्राणियोके नीचेके वर्गमे दृष्टिपटल विना रक्तवाहिनीयांदार होता हैं । हायलाईड रोहिणीयोके संस्थान पर दृष्टिपटल को रक्तकी भरती करने की आखिर जिम्मेदारी रहती है। **मान** के मतानुसार दृष्टिपटलको रक्तकी भरती ४ तरतीबोसे होना सभाव्य है । (१) बिना रक्तवाहिनियादार दृष्टिपटल जिसमे रक्तकी भरती कृष्णपटलसे पायी जाती है। (२) पेक्टीन तरहका बिना रक्तवाहिनियादार दृष्टिपटल जिसमे नेत्रबिंबसे आगे पेक्टीन वढता है । (३) बिना रक्तवाहिनियादार दृष्टिपटल जिसमें रक्तवाहिनियांदार पत्रके भीतरी पृष्ठ की रक्तवाहिनियोसे रक्त की भरती होती हैं (**मेम्ब्रेना व्हासक्युलोझा**) । (४) बिना रक्तवाहिनियादार दृष्टिपटल जिसमे रक्त की भरती उसके गाभामे की रक्तवाहिनियोसे होती है । **पहली अवस्था** कई जातीके मछली सर्पजाती और सस्तन प्राणियोमे पायी जाती है । इन प्राणियोमे रक्तवहा केशिनियोसे दृष्टि-रज्जुके शीर्षको रक्त भरती होती है । **दूसरी यानी पेक्टीन तरह** जिन प्रणियोमे दृकशक्ती अती तीव्र होती है उनमे दिखाई पडती है। पक्षीयोमें इसका विकास ज्यादह दिखाई पड़ती है । लेकिन इसकी सममूलक श्रेणि सर्पजातीके कोनमे और कई मच्छलयोंकी फालसीफार्म प्ररोहामें दिखाई पडती है ।

पक्षीओंका पेक्टीन त्रिकोणाकार पट्टीदार पत्र होता है; यह नेत्रबिंबसे शुरू होकर सामने स्फटिकद्रव पिडमें फैलता है । इसकी बनावटमे ढील और झोलदार घटक होते हैं जिसमे रक्तवाहिनिया भरपूर होती है और जिसपर रंजित द्रव्यका आच्छादन होता है जिसीके वजहसे वह मखमल जैसा और अन्योमे बारीक तन्तुदार दिखाई पडता है । राजहस और बदकमें वह स्फटिकमणि को जा पहुचती है । रात्रिचर पक्षीयोंमें यह मूलरूपका होता है । पेक्टीन बाह्यत्वक की पैदाईश है; इसमें रक्तवाहिनियों की भरती दुय्यम तौरसे होती है । इसका असली कार्य पोषण करना यह होता है और पक्षीयोमें यह दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनीयो का कार्य करता है । **काजिकावा** के मतानुसार इससे नेत्राभ्यन्तर के दबाव का, श्राव का और नेत्र की उष्णता का (उंचे प्रदेशमे) नियमन होता है । **सर्पजातिका कोन** भी बाह्यत्वक की पैदाईश है; इसका विकास चिपकलीमें और गिरगटमें अच्छा होता है । मछलियोकी फालसिफार्म प्ररोहा नेत्रबिंब से स्फटिकमणिको जाती है जहां वह फैल जाती है जिसकी **हालेर** की **कांपानिल** स्नायु कहते हैं । इसमें स्नायूके तन्तु होते हैं जिससे वह स्फटिकमणिको पीछे खीचनेवाली स्नायु जैसी होती है । यह प्ररोहा रक्तवाहिनियांदार होती है । और इसपर कलातह का आवरण होता है । इसकी पैदाईश चाक्षुष दरार से होती है और इसी वजहसे यह बाह्यत्वक की पैदाईश होती है। इसमें रक्तवाहिनिया दुय्यम तौरसे पैदा होता है । **तीसरी** तरहमें हायलाईड रोहिणि

की शाखाएँ दृष्टिपटल पर ही फैलती है अन्दर नहीं घुस जाती। यह अवस्था सर्प, मेंढमें दिखाई पडती है। **चौथी** दृष्टिपटल की मध्य रोहिणि की होती है।

कृष्णमंडल की रक्तवाहिनियां:—कृष्णपटल की रक्तवाहिनियोंकी तरह सब पृष्ठवंशी प्राणियोमें एक सरीखी होती है, लेकिन हड्डीदार मछलीमें कृष्णपटलकी केशिनिया पिछले भागमें मोटी होनेसे **कृष्णपटल की ग्रंथी** जैसी पैदा होती है। तारका के रक्तवाहिनियोमें फर्क पाये जाते हैं। **मछलीमें** तारकाको दो पुरो तारकातीत पिंडीय रोहिणीयो से रक्त की भरती होती है। ये आडे अक्षांशमें कनीनिका की ओरको जाती है जहाँ उनका रोहिणीवलय बनता है। इनके नीलाओंका सस्थान रजत पत्र से ढका रहता हैं। भूजलचर प्राणियोमें रोहिणिया तारकाके पृष्ठ भाग पर होती है; ये तारकाकी परिधीकी ओरको जाती है। रोहिणियां और नीला दोनों रंजित द्रव्यसे ढकी रहती हैं। सर्पजातीमे रोहिणियां नीचे ६ और ८ घटेके जगहमें अन्दर घुसकर तारकाकी परिधीकी ओरको जाती हैं। पक्षीयोंकी तारकाकी रोहिणियां अन्दर वलयाकार होती है और नीला पृष्ठपर त्रिज्ज्या जैसी होती है। सिर्फ सस्तन प्राणियोंमें कनीनिका पत्रका सस्थान होता है, और इसी वजहसे सस्तन प्राणियोमे रोहिणी नीला संगम लघु रोहिणि वलयके स्थानमे होता है। बृहन् रोहिणिवलय तारकाकी नीवके पास होता है, तारकातीत पिंडमे मनुष्यके जैसा नही होता।

दृष्टिरज्जु:— पृष्ठवंशी प्राणियोमे चाक्षुष मज्जाकंदका अभाव होता है जो पृष्ठवंशहीन प्राणियोमें नही होता।

दृष्टिरज्जु संधि या योजिका:—एक रज्जू दूसरेकेपार जाना यह पृष्ठवंशी प्राजियोका विशेष है। मिक्सिनायडमें यह पार जाना मस्तिष्कमें पुरा होता है। हड्डीवाले मछलीमें एक दृष्टिरज्जु दूसरीके पार जाती है आम तोरसे दाहनी ऊपर रहती है। हेरिग नामके मछलीमें एक दृष्टिरज्जू दूसरीके गाभामेंसे पार जाती है। पाराट मछलीमें हर दृष्टिरज्जुके दो भाग होते है और दोनोके दोनों भाग दोनों हाथोकी दोदो उंगलिया पार करनेसे जैसी दिखाई देगी वैसे पार जाते है। सर्पजातिके बहुतसे प्राणियोमें और भूजलचर प्राणियोंमे हर दृष्टिरज्जुके अनेक भाग होते हैं जो पक्षीयोके जैसेही पार जाते हैं। सस्तन प्राणियोमे कुछ भाग पार नही जाता; मनुष्यमे ½ भाग पार नही जाता।

नेत्रका चलन:—प्राणियोके नेत्रोकी संख्या कम होनेसे उनकी दृक्शक्ति कम होती है। दृक्शक्ति कायम रहनेके लिये नेत्रका चलन होना अवश्यक है। आपत्तिको दूर करनेके लिये अनेक प्रकारकी रचनाये दिखाई पडती हैं। **आरथोपोडा** वर्गके पालीमेनिवस उपभेदमें एकनेत्रमे अनेक स्फटिकमणि होते है और तारका पिधानका आकार नेत्रके आधे आकारके बराबर होता है। **बिच्छुके** शरीर परभी ज्यादा नेत्र होते है **केकडेके** नेत्रहिलती डालीके समान भागोंपर होते है **घोंघेके** समान सीपवाले प्राणियोमें भी कुछ इसी तरहके फर्क दिखाई पडते है कालवमें छोटे छोटे नेत्र या उसके आवरणपर अनेक रजित बिन्दु होते हैं और कई डालियोंपर हिलते हैं। **ग्यास्ट्रोपोडाके** नेत्र सूडपर होते हैं; यह सूंड अन्दर

खींची जा सकती है और बहार आ सकती है। इनकी दृष्टिरज्जु बडी होनेसे नेत्रको कुछ चोट नहीं आसकती। **आनकिडीयम्** वर्गके पंखवाले कीटकोंके पृष्ठपर पृष्ठवंशी प्राणियोंके समान अनेक नेत्र होते हैं।

इन नेत्रोंकी संख्या कई सौ गिनी गई है। कालवके चाक्षुष पिंडसे स्नायुका संबंध होता है और उससे नेत्रमें चलन दिखाई पडता है।

नेत्रविकासपर प्रकाश या अंधेरेका परिणाम—

केंचुए जैसे जमीनके अन्दर छिद्रोंमें रहनेवाले प्राणियोंके नेत्र परसे यह अंदाजा करना संभव है, कि प्रकाशके अभावसे इन प्राणियोंकी दृक्शक्तिमें फरक होता होगा या नेत्र पूर्ण विकसित नहीं होता होगा। जलचर प्राणियोंके नेत्रकी अवस्थासे इसका समर्थन कुछ हो सकता है। कालव वर्गके एयूप्रासा ग्रानुलेटा प्राणीके संबंधमें मालूम हुआ है, कि कम गहरे पानीमें इसके नेत्र समतल होते हैं लेकिन उसको सातसो फीट से दो हजार फीट गहराईके जल संचयमें छोड दिया जाय तो उसके सूंडवाले नेत्रोंमें चूनेकी गोली जम जाती है। इस प्राणिको तीनसे चार हजार फीट गहरे प्रानीमें छोडनेसे नेत्रेंद्रियका रूपांतर स्पर्शेन्द्रियमें हो जाता है। यह कर्क जातीय प्राणियोंका वर्णन मछली वर्गको भी लागू होता है, गहरे जलकी मछलीके नेत्र कम गहरे जलकी मछलीसे छोटे होते हैं। लेकिन इस मछलीमें स्पर्शेन्द्रियका विकास ज्यादह होता है और छ हजार फीट गहराईके जलसंचयकी मछलीमें नेत्रके बदले स्पर्शेन्द्रिय का विकास होता है।

खंड तृतीय

अध्याय ९

वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था आनुवंशिकता—मौरूसी हालत

जीवन शास्त्रकी दृष्टिसे नेत्ररोगोंमें वंशपरंपरासे प्राप्त होनेवाले असर ज्यादह महत्त्वके होते हैं। **डारविन**ने (सन १७५९) में प्राणिवर्गकी पैदाईशके प्रयोग तथा वंशपरंपरा प्राप्त होनेवाले साधनोंकी कल्पनाका (मेक्यानिझम ऑफ् इनहेरिटन्स) रुक गया हुआ महत्त्व मुकर्रर किया था। लेकिन उसके बाद अर्ध शताब्दि तक किसीने भी इसका विचार नहीं किया। इस कल्पनाके अनुसार पुश्त दर पुश्तसे इकट्ठा होनेवाले फरकोंकी श्रेणियोंमेंसे चुनाव होकर वर्णके परिवर्तन की उत्क्रान्ति होती है।

वनस्पति शास्त्रज्ञ **जार्ज मेंडल** ने (सन १८२२–८४) लगातार आठ बरसतक अपने बगीचेमें मटार पर प्रयोग करके कुछ सिद्धान्त (सन १८६६ में) मुकर्रर किये थे। ये ही हालकी वंशपरंपरा प्राप्त अवस्थाके–मौरूसी हालतके–ज्ञानकी नींव है। इन सिद्धान्तोका सार यह है कि वंशपरंपरा प्राप्त अवस्थाके गुण कुछ खास कानूनोंके मुताबिक संकर जन्य जीवके बीजकणोंमें (गैमेटस आफ हायब्रिड) एकत्रित होते हैं।

फ्रेवर्ग निवासी प्राणिशास्त्रज्ञ प्रा. **वाइसमन** ने (सन १८९२ में) प्राणियोंके बीजकणोंसे जननसातत्य (जरमिनल कॉन्टीन्युइटी) की कल्पनाका प्रसार किया। इस कल्पनाके मुताबिक बीज पेशियोंके कणोंके क्रोमोझोम नामके खास द्रव्य ही गुणधर्मोंके संचार या प्रेशण का साधन (मेक्यानिझम ऑफ ट्रान्समिशन) है। शरीरकी प्रमुख पेशियोंकी विभाजन क्रियासे जीवन क्रिया जारी रहती है। लेकिन नई पैदाईश बीजकणोंकेही विभाजन कार्यसे होती है। इन जिन्दे बीजकणोंका प्रवाह पुश्त दर पुश्त लगातार जारी रहता है; याने ये अमर होजाते हैं। जीवन शास्त्रकी दृष्टिसे शरीरकी पेशियोंका असली कार्य बीजकणोंको धारण करना यही होता है। इससे स्पष्ट होता है, कि **मेंडेल** की वंशपरंपरा प्राप्त अवस्थाकी (आनुवंशिताकी) कल्पना मानव जातीको लागू होती है और असलमें इसके स्पष्टीकरणके लिये इस कल्पनाका महत्त्व है।

मालूम होता है, कि शकलमें पाये जानेवाले भिन्न भिन्न फर्क अनिश्चित कालमें सापेक्षतासे जाने जा सकते हैं; लेकिन वे फर्क किस तरह पैदा होते हैं, इसका ज्ञान नहीं हुआ है। संभव है, कि शायद बाह्य भौतिक–रासायनिक या आन्तरिक परिणामसे क्रोमोझोममें फर्क होकर उनकी संख्या, बेटवारा तथा उनकी आन्तर रचतामें रुपान्तर होता होगा। एक बार शुरू होनेपर मेंडेलीनके प्रयोगके द्वारा खोजे गये हुए ये, पुश्त दर पुश्तमें अनिश्चित काल तक उतरते जाते हैं, जिनका बिभाजन कुछ घटनाके मुताबिक होता है। सब जीवन शास्त्रज्ञोंको यह बात सम्मत है, कि क्रोमोझोमकी वजहसें बीज पेशियोंके गुणधर्म पुश्त दर पुश्त उतरते जाते हैं।

ये बीजकण **स्निग्ध** होते हैं और वे पेशियोंके जीवनबीजमें स्वनेत्र होते हैं। वनस्पति या प्राणिवर्गमें उनकी संख्या तथा उनका आकार कायम रहता है। विकास तथा

वृद्धि की प्रगतिमें जब शरीरकी (सोम्याटिक) पेशियां विभाजित होती हैं तब क्रोमोझोम उनकी लम्बाईमे विभाजित होते हैं। अलबत्ता हर पेशीसे बनी हुई दुहितृ पेशिमें हर क्रोमोझोमका लम्बा विभाजित आधा भाग रहता है और उनकी संख्याका प्रमाण कायम रहता है।

गर्भाधानकी अवस्थाके कार्यमें पुरुष जातिके शुक्रके बीजकणकी स्त्री जातीके बीजकणसे सयोग होनेके बाद इस और पीछेके आनेवाले जीवनबीजके विभक्ति करणके कार्यमे क्रोमोझोम-जोड युग्म बनते हैं। और हर युग्ममें पिता और माताकी (एक पुरुष जातिके और एक स्त्री जातीके) बीजकणका क्रोमो झोम होता है। जब स्त्री जातीके बीज कण की पेशियां परिपक्व होजाती है, तब उनकी क्रोमोझोमकी सख्या आधी होजाती है। इसके साथ साथ पुरुष जातिके बीजकण और स्त्री जातिके बीजकणके क्रोमोझोम युग्मका एक एक भाग पाया जाता है। इसे **क्षपण विभाजन अवस्थां** (रिडक्शन डिव्हिजन) कहते हैं। अलबत्ता पुरुप बीजकण और स्त्री बीजकण की क्रोमोझोम की आधी संख्या शरीरकी पेशिसे पायी जाती है। आधे बीजकणमे क्रोमोझोम युग्मके पुरुष जातिके बीजकणके क्रोमोझोम और दूसरे आधे बीजकणमें स्त्री जातीके बीजकणके क्रोमोझोम मिलते हैं। जब हर क्रोमोझोमका व्यक्तित्व कायम रहता है और उसमें पुश्त दर पुश्तमे जनन सातत्य दिखाई पडता है, तब मनुष्य प्राणियोके गुणधर्मोके पृथक्करण का यह कार्य क्रोमोझोम युग्मके क्षपण विभाजन की अवस्थामे होनेवाली विभक्ति करणकी क्रियापर अवलम्बित रहता है। और बच्चोमें दिखाई देनेवाला गुणसमुच्चय उनकी पुनर्रचना पर अवलम्बित होता है।

उत्क्रान्तिमे सस्तन प्राणियोके क्रोमोझोम की संख्या बढती जाती है। मारसुपियल थैलीवाले जन्तुओके श्रेणिके प्राणिमे क्रोमोझोम की सख्या १२ होती है, तो मनुष्य प्राणिमे यह सख्या ४८ होती है। इससे मनुष्यकी वशपरपरा प्राप्त अवस्थामे गुणधर्मोका पृथक्करण होनेके लिये काफी समय मिलता है। इन गुणोका प्रेषण दो तरहसे होता है:–(१) जब वशपरपरा प्राप्त अवस्थामें एकही **जेन–बीजकण** प्रदर्शित होता रहता है तब उनका प्रेषण कार्य अच्छी तरहसे होता है। इसे वशपरपरा प्राप्त अवस्थाकी **प्रबल प्रवृत्ति (प्र)** (डामिनन्ट क्यारेक्टर) कहते हैं। क्योकि इनका किसीभी अन्यबीज कणोसे सयोग हो तो भी उनका प्रभुत्व कायम रहता है। (२) जब प्रेपण कार्यक्षम होनेके लिये, जिनमे निर्णायक पिड होते हैं ऐसे दो भिन्न धर्मी बीजपिडका सयोग होनेकी जरूरी होती है, तब उसे **परिवर्तित सूप्तावस्था (प)** या अप्रकटित व्यक्तित्व (रिसेसिव्ह कॅरेक्टर) कहते हैं।

इन दो प्रकारोके सिवाय असम आकारके मुमकीन लैंगिक क्रोमोझोमके युग्म भी होते हैं। इनको **क्षय** युग्म (Xy) कहते हैं। **क्ष** मे स्त्री जातिके बीजकणोंके गुण होते हैं, और **य** मे पुरुप जातिके बीजकणोंके गुण होते हैं। मनुष्य जातिके पेशियोमे **क्षय** होते हैं, और जब इनका विभाजन होता है तब इनके आधे पिडोमे आधे **क्ष** और आधे **य** क्रोमोझोम होते है। इसके विपरीत स्त्री जातिमे **क्षक्ष** ही होते हैं। यानी स्त्री जातिके बीजकणोमे **क्ष** ही होते हैं। यानी इससे यह कल्पना कर सकते है कि कुदरतीसे गर्भाधानमे **क्षय** और **क्षक्ष** (पुरुष और स्त्री) के संयोग सम प्रमाणमे होते हैं। यद्दि लैंगिक क्रोमोझोम युग्ममेका एक सदोष हो तो उसके कारणसे संमिश्र वंशपरपरा प्राप्त अवस्था पैदा होकर उनके प्रेषण की तरहमें लैंगिकान्वित गुणधर्म दिखाई देते हैं (सेक्स लिकंड कॅरेक्टर्स)।

चित्र नं. १८१ से १९०

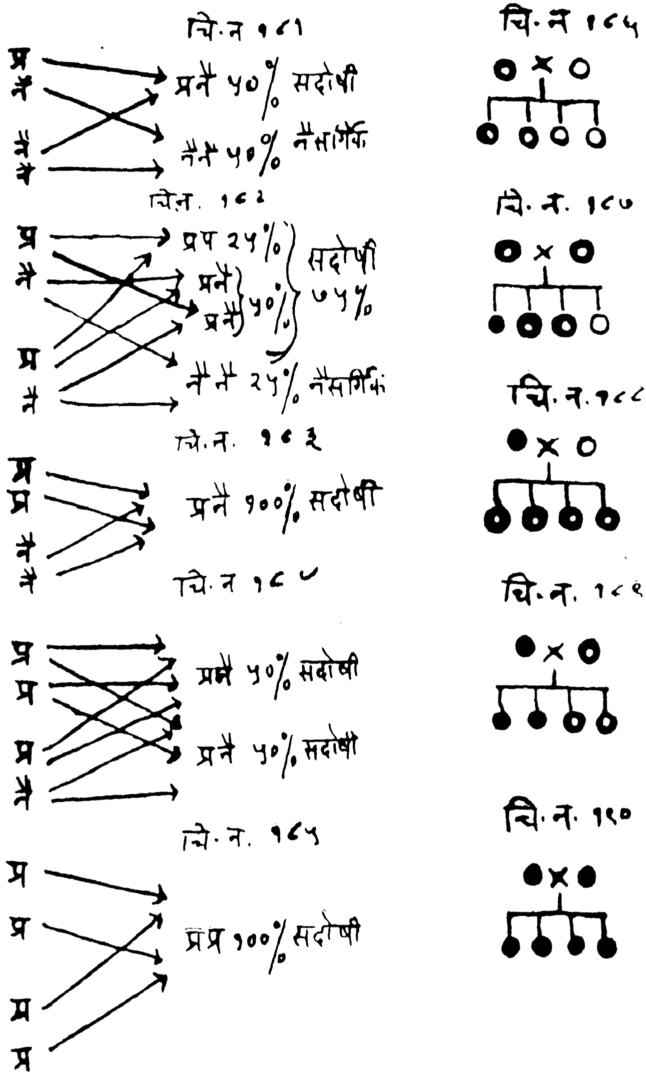

प्रबल प्रवृत्तिका वहन

वंशपरंपरा प्राप्त–मौरूसी हालतके मेन्डेलियनके नमूने जो सर्वमान्य हुए हैं वे नीचे मुजब होते हैं

(१) प्रबलप्रवृत्तिकी वंशापरंपराप्राप्त अवस्था (डामिनन्ट इनहेरिटन्स)

प्रबल प्रवृत्तिवाले (**प्र**) व्यक्तिका संयोग नैसर्गिक (**नै**) व्यक्तिसे हो तो संभव है कि उनकी संतति की पेशियोकें बीजपिंडमे दोनोके गुणधर्म (**प्र नै**) उतरेगे (संकरजन्य–विजातीय–संतति)। च्यूकि यह प्रबल प्रवृत्ति एकहीसे कार्यक्षम होनेकी वजहसे यह शक्स प्रबल प्रवृतिके गुणधर्मोको जाहिर करेगा। यदि यह शक्स (**प्र नै**) नैसर्गिकसे (**नै नै**) संयोग करे तो उसकी संततिमेसे आधी सदोष संकरजन्य प्रबलप्रवृत्तिकी (**प्र नै**) होगी और आधी नैसर्गिक (**नै नै**) होगी, क्योंकि क्रोमोझोमकी सख्याका समप्रमाणमें विभाग होता है (चित्र नं. १८१)। इस संकरजन्य प्रबलप्रवृतिके संततिका सयोग नैसर्गिकसे होता जाता रहे तो इन दोनोके सयोगकी संकरजन्य आधी सततिमें प्रबल प्रवृत्ति (**प्र नै**) का और आधी (**नै नै**) नैसर्गिक संततिमे नैसर्गिक प्रवृत्तिका प्रेषण होगा। और यह क्रम एक पीढीसे दूसरी पीढीमे (पुश्त दर पुश्त) उतरता जायेगा। इस समिश्र सयोगसे जो आधे नैसर्गिक पैदा होते हैं उनसे हमेशाह नैसर्गिक ही सन्तति पैदा होगी। इसके अलावा सकरजन्य प्रबल प्रवृत्तिका (**प्र नै**) सयोग अन्य संकरजन्य प्रबल प्रवृत्तिसे हो, तो उनकी संततिके ७५% सदोप प्रबल प्रवृत्तिके होगे और २५% नैसर्गिक होगे (चित्र नं. १८२)। ७५% सदोष संततिमेसे $\frac{२}{३}$ सततिमें संकरजन्य विषम गुणोका प्रेषण दिखाई पडेगा, और $\frac{१}{३}$ मे सकरजन्य समगुणोका प्रेपण दिखाई पडेगा यानी उनमें प्रबल प्रभुत्ति कायम रहती है और २५% संततिमेसे सब नैसर्गिक होगी। यदि इस सकरजन्य समगुणके सततिका संयोग नैसर्गिकसे हो तो उनकी सब सततिमें संकरजन्य विषमगुणके दोष दिखाई पडेगे (चित्र नं १८३)। यदि इसका संयोग सकरजन्य विषमगुणवालेसे हो तो उनकी सब सतति सदोष होगी, उनमेसे आधी संकरजन्य समगुणकी और आधी संकरजन्य विषमगुणकी होगी (चित्र न. १८४)। और यदि उनका सयोग सकरजन्य समगुणवालेसे हो तो सब सतति संकरजन्य समगुणकी होगी (चित्र न. १८५)।

वशपरंपरा प्राप्त अवस्थाके प्रबलप्रवृतिके गुणधर्म की सब सभाव्य तरह चित्र न. १८६–१९० से ध्यानमे आजायेगी। प्रेषण की इस तरहमे नीचे मुजब गुण पाये जायेंगे यह स्पष्ट होता है:–(१) संतति आम तौरसे संकरजन्य होती है: (२) इनका संयोग नैसर्गिकसे हो तो उनके आधे सततिमे ये गुणधर्म दिखाई देगे: (३) ये गुण एकसे दूसरी पीढीमें नियमित उतरते जायेगे।

कई नेत्ररोग और अनियमित बाते इस तरहसे प्रेषित होती हैं। वंशपरंपरा प्राप्त प्रबलप्रवृत्तिके अवस्थामे दिखाई देनेवाली ये बाते नीचे मुजब होती हैं:–जन्मजात रतौंधी,' नीले शुक्लपटल, केन्द्रच्युत स्फटिकमणि, नेत्रच्छदपात, मोतीबिन्दुकी अनेक नमूने, फाल तारकाका अभाव आदि। **नेटलशिप**के सशोधनसे मालूम होता है कि, **जिन न्युगरेट**को जन्मजातसे रतौंधी थी; यह अवस्था पुश्त दर पुश्त इसके दसवी पुश्तमे यानी कुल २११६ लोगोमें दिखाई पडी थी। वंशोत्पत्ती या पैदाईश कायम चालू रहती है: सदोषीका संयोग नैसर्गिकसे हो तो संभव है कि कोई भी संतती सदोष या नैसर्गिक होगा; और जब दोनो नैसर्गिकोंका संयोग होता है–यद्यपि उनके मातापितर या उनके दादादादी दुषित हो तो भी–उनके संततीमे दोष नही दिखाई पडता।

चित्र नं. १९१ से २००

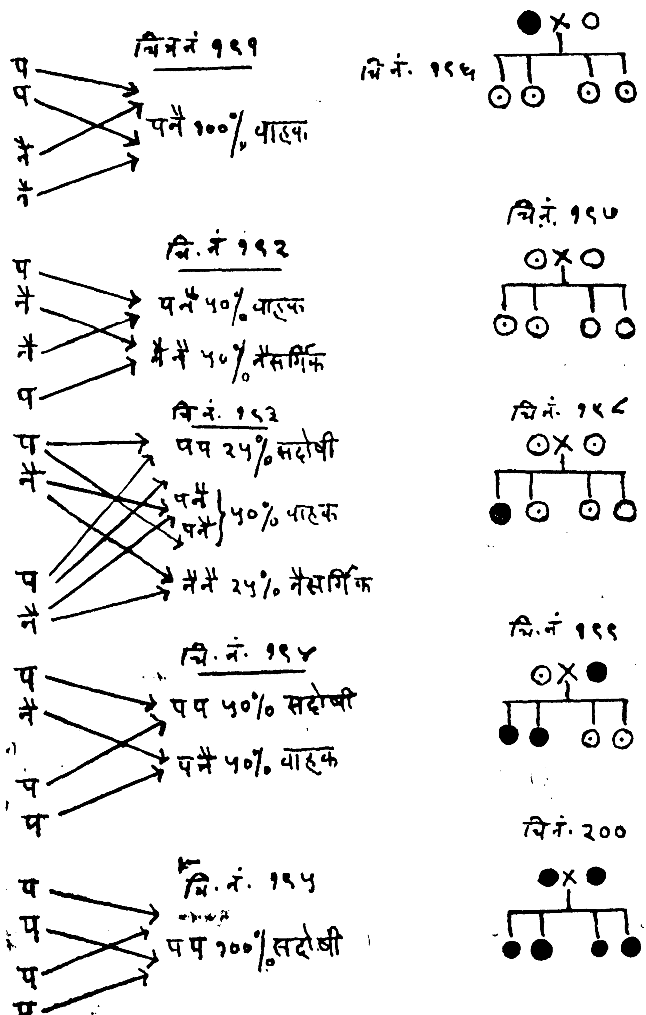

परिवर्तित सूप्तप्रवृत्तिका वहन

(चित्र नं. २०१ से २१०)

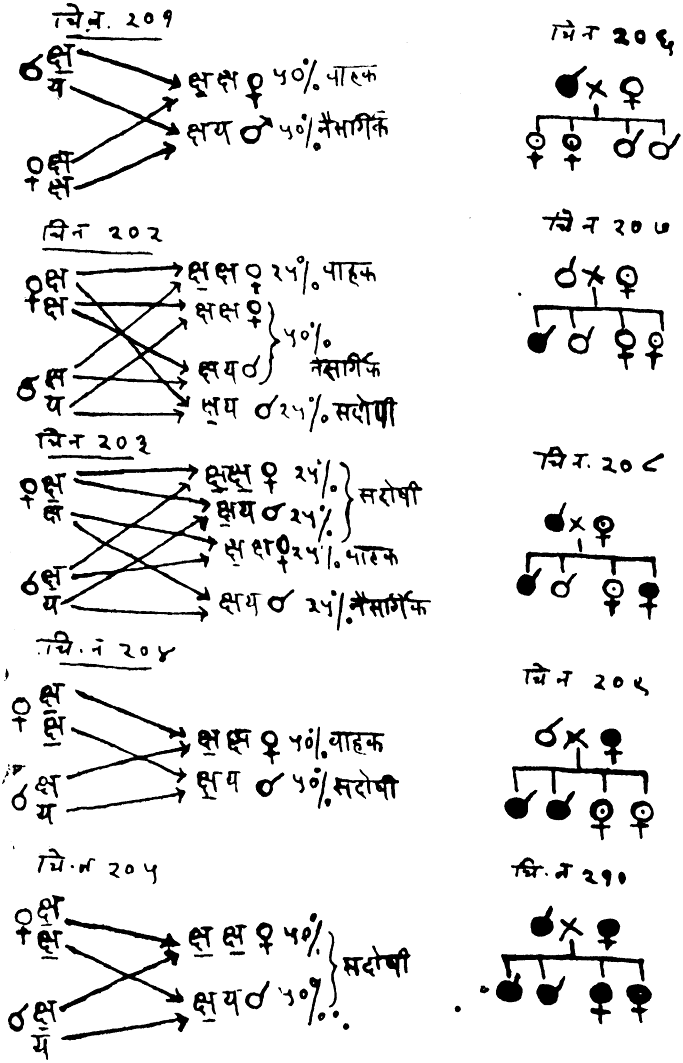

पुरुष लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था

सदोषी या नैसर्गिक संततिका प्रमाण समसमान होना संभव है।

(२) वंशपरंपरा प्राप्त परिवर्तित सूप्तप्रवृत्ति (रिसेसिव्ह इनहेरिटन्स)

च्यूंकि वंशपरंपरा प्राप्त परिवर्तित सूप्त प्रवृत्तिमें एकसे अनेक प्रकारके प्रवर्तकोकी जरूरी होनेसे सदोष प्राणियोंके सब बीजपिंडोमेसे इन गुणधर्मोका वहन होगा (प प)। यदि ऐसे प्राणियोंका संयोग नैसर्गिक प्रवृत्तिवालेसे (नै नै) हो तो उनकी सब संतति नैसर्गिक भासमान होगी यह चित्र नं. १९१ से ध्यानमे आयेगा, यानी उनमेंका असर सुप्त हुआ है ऐसा भासमान होगा। लेकिन इस तरह नैसर्गिक भासमान होने पर भी ये संकरज (प नै) रहते है, और दोषका यह वहन अप्रकटित रहता है। इनके कोई एक सततिका सयोग नैर्सागिकसे हो तो उनकी संतति नैर्सागिकसी भासमान होतेही उनमेंकी आधी सतति सकरजन्य (प नै) होगी (चित्र नं. १९२-१९७)। यदि ऐसे सकरजन्य सततिका (प नै) सयोग दूसरे ऐसे सकरजन्य संततिसे (प नै) हो तो उनकी २५% सतति (प प) सदोष होगी और ७५% नैसेंगिक भासमान होगी, लेकिन इसमे की $\frac{1}{3}$ नैर्सागिक (नै नै) होगी और $\frac{2}{3}$ सकरजन्य सदोषी (प नै) होगी (चित्र नं. १९३-१९८)। यदि इनमेके एक का (प नै) संयोग सदोषी सततीसे (प प) हो तो उनकी सब सतति सदोषी होगी जिनमेसे आधी सकरजन्य (प नै) (और उसीवजहसे नैर्सागिक भासमान यानी वाहक होगी) और आधी सधर्मी (और उसी वजहसे सदोषी) (चित्र नं. १९४-१९९) होगी। यदि इन दोनों सदोष संततिका सयोग होतो सब सतति पूर्ण सदोषी होगी। (चित्र नं. १९५-२००)।

चित्र नं. २११

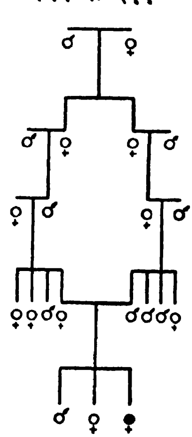

पूर्ण रगज्ञान दुर्बलतावाले की वशावली। इसमें सपिड मातापितरोंके संततिमें परिवर्तित सूप्तप्रवृत्ति दिखाई देती है।

इससे ध्यानमें आ जायगा कि एक पीढी (पुश्त) मे परिवर्तित सूप्तावस्थाका दोष भासमान होता है, लेकिन इकसा वहन उसके पश्चातके अनेक पीढीयोमे, अप्रकटित रूपसे जारी रहता है। लेकिन कुदरती सयोगसे इसी प्रकारकी परिवर्तित सूप्तप्रवृत्तिकी सदोष २५% सतानमें यह दिखाई पडेगी (चित्र नं. १९८)। च्यूकि वस्तुतः हर मानवी वशमें इस तरहकी परिवर्तित सूप्तप्रवृत्तिका वहन होता रहनेसे समरक्त या सपिंड सयोगका (कानसाग्वीनिटी ऑफ म्यारेज) धोका ध्यानमें आ जायेगा।

प्रबल प्रवृत्तिवाली पीढीसे परिवर्तित सूप्तप्रवृत्तिकी पीढीमे दिखाई देनेवाले फर्क नीचे लिखे हुए मुजब होते हैः

(१) परिवर्तित सूप्त प्रवृत्तिकी पीढीके सब व्यक्तियोंमें पूर्ण दोष दिखाई पडते हें।

(२) मातापितामें दोष प्रकट न हों, तो भो उनकी २५% संतानमें दोष दिखाई पडते हें।

(३) किसी भी पीढीमें इस दोष का अन्तरित प्रादुर्भाव हो सकता है, और यदि दोष

एक ही वंशक्रम की पीढी दर पीढीमे दिखाई पडते हो, तो अनूमान होसकता है कि मातापिता और सब सतति दुषित होगी ।

अनैक चाक्षुषव्यंग परंपरा प्राप्त परिवर्तित सूप्त प्रवृतिके स्वरूपके होते है :—जैसे की नेत्र गोलक का अभाव, धवल मनुष्य यानी एक शक्स जो खिलाई तबियत सुफेद हो, अकेन्द्रिय स्फटिकमणि तथा कनीनिका, पुरसृत नेत्रगोलक, दृष्टिपटलकारजित दाह, रगज्ञानका पूरा अभाव आदि (चि. नं २११)

(३) लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्थाके गुणधर्म (सेक्स लिंकड क्यारेकटर्स)

लेंगिक क्रोमोझोम पुरुषके (क्ष य) तथा स्त्रीके (क्ष क्ष) कुछ क्रोमोझोम मे फक होनेसे उसमे लैकिकान्वित गुणधर्म आते हैं । और फिर उनका वहन सब आगे के पीढीयोम होता रहना है । इस वहन की असल तरहको **पुरुष लैंगिकान्वि वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था** कहते है ।

पुरुष लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था डायोजनिक वंशपरंपरा (मेल सेक्स लिंकड इनहेरिटन्स)

चित्र नं. २१२

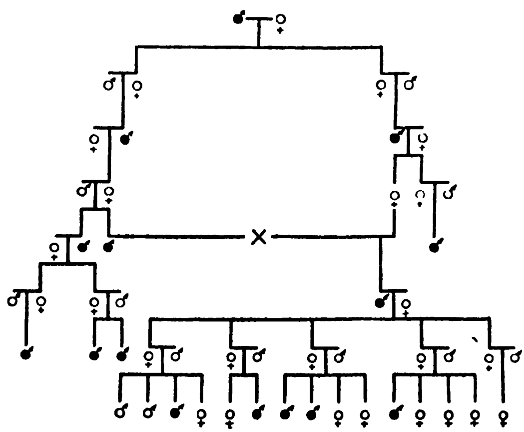

लाल हरे रगज्ञान की दुर्बलतावालेकी वशावली जिसमे पुरुष लेगिकान्वित सूप्त प्रवृत्ति दिखाई पडती है ।

इस अवस्थाका प्रमाण ज्यादह दिखाई पडता है । इसमे गुणधर्मोका प्रसार (क्ष) क्रोमोझोमसे होता है । और पुरुष बीजपिंड प्रबल प्रवृत्तिका और स्त्री बीजपिंड परिवर्तित सूप्तावस्था की रूप के होते हैं । इसी अवस्था को **डायोजनिक वंशपरंपरा प्राप्त पुरुष लैंगिक वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था** कहते है । इस अवस्थामें दूषीत पिताके गुणधर्म उसके लडकियोंमे न होते ही लडकी की सतानमें पाये जाते है । यह लैंगिक असर लडकोमें नही

पाया जाता। ये लडकीयां संकरजन्य होती है और इनमें परिवर्तित सूप्तावस्थाकी प्रवृत्ति होती है। वे सिर्फ गुणधर्मका वाहक होती है। यह **मासेका सिद्धान्त** कहा जाता है।

यदि मनुष्यके **क्षय** क्रोमोझोममेके अंकित **क्ष** क्रोमोझोम सदोष हो तो वह मनुष्य सदोष समझना चाहिये। इसका संयोग निर्दोष स्त्रीसे (**क्ष क्ष**) होनेसे, च्यूकि मनुष्यके क्ष क्रोमोझोम उसकी लडकीयोंमें उतरेगे, वे लडकीयां इस दोषको सिर्फ वहाने वाली होगी और लडके नैर्सागक होगे। यदि ऐसें लडकी का संयोग निर्दोष मनूष्यसे हो तो इनके संततिमेके लडकेके आधे और लडकियोंमेंकी आधी लडकीयोंमें दोष दिखाई पडेगा तो भी सिर्फ लडकोमे दोष स्पष्ट मालूम होगा क्योंकि उनमें प्रबल प्रवृत्ति होती है ओर लडकियां अव्यक्त प्रेषक होगी (चित्र न. २०२)। इस हालतमें, जो आम तोरसे दिखाई पडती है, दोष सिर्फ नर जातिमें पाया जाता है ओर वह पर्यायक्रमसे पीढीमें स्पष्ट होता है। यदि संकरजन्य विषम जाति स्त्रीका संयोग सदोष पुरुषसे हो तो उनके लडकेमेंके आधे लडके निर्दोष और आधे सदोष दिखाई देंगे और लडकियोंमेसे आधी लडकीयोंमें दोष दिखाई पडेगा और शेष आधी लडकिया दोषको वहानेवाली (चित्र नं. २०३) होगी। यदि संकरजन्य समजाति सदोष स्त्रीका संयोग निर्दोष पुरुषसे हो तो सब लडके सदोष होगे ओर सब लडकीया दोषको वहानेवाली (चित्र नं. २०४) होगी, लेकिन इस तरहकी सदोष स्त्री का संयोग सदोष मनुष्य से हो तो सब संतति सदोष दिखाई पडेगी (चि. नं. २०५)। अगर वे लिहाजा दोष पुरुषवर्गमे दिखाई देना आमबात है और स्त्रीयोसे उसका वहन होता है तो भी स्त्रीयोमे दोष दिखाई पडना सभाव्य है (चित्र नं. २०६–२१० देखिये)।

इस अवस्थामे दिखाई देनेवाले अनेक नेत्ररोग और शरीर रचनाकी अनियमितता:— जैसे की **लेबर** की दृष्टिपटलकी विकृति, लाल हरे रग की दुर्बलता आदि जन्मजात अनैछिक नेत्रविरभ्र और रुधिर अभाव वाले होते हैं (चित्र नं. २१२ देखिये)।

होलो जेनिक या स्त्री लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था

यह बहुत कम दिखाई पडती है। इनमे गुणधर्मोका प्रसार क्ष क्रोमोझोमसे होता हैं। लेकिन स्त्री बीजपिंड परिवर्तित होने के बदले प्रबल प्रवृतिका होता है। या अवस्था विजातीय या संकरजन्य स्त्री जातिमें दिखाई पहती है। प्रत्यक्ष मातृवंश क्रमके मातृ बीजपिंडसे दुहिता बीजपिंड में वे जाते हैं। और दूषित **क्ष** क्रोमोझोन यद्यपि आधे लडकेमे जाते हैं, तो भी वे नीरोग रहते है।

संपादित गुणधर्मोका पुश्त दर पुश्तमें वहनधर्म–प्रेषण

मूल बीजपिंडोके धर्मोका वहन संबंधीका ज्ञान मजबूत नीव पर रचा गया हैं। लेकिन अभ्यास या तालिम बेइस्तेमाली चोट, रोग या अन्य बाह्य अवस्थासे संपादित गुणधर्मोका परिणाम प्रत्यक्ष बीजपिंड के बदले प्रत्यक्ष इन्द्रियपर होनेसे उनका एक पीढीसे दूसरे पीढीमे (पुश्त दर पुश्त) वहन होता है या नही, और यदि होता होगा तो किस तरहसे होता है, इस संबंधमें अभितक पूर्ण निश्चय नही हुआ है। कुछ पुराणे कल्पनावादी लोंगोके मतसे गुणधर्मोका यह प्रेषण निश्चित होता है' फरेंच शास्त्रज्ञ **लामार्क** ने भी (१७४४–१८२०) इस मत का प्रसार किया था, कि संपादित गुणधर्मोका प्रेषण पुश्त दर पुश्त होता है; यही **लामार्किझम** कहा जाता है, और यह कल्पना **डारविनको** भी मान्य हुई थी। लेकिन सन १८९२ में **वाईसमननें** अपनी क्रान्तिकारक कल्पनाओंका प्रसार करके इस मतका खंडन किया। उसका मत ऐसा था कि बीजपिंड की पेशियोंके जीवनरस

पर असर हुए बिना पुश्त दर पुश्त में वशपरंपरा प्राप्त गुणधर्मोंका प्रेषण संभाव्य नही। और बीजपीड पर जिन बातोंका असर होकर उनमे फर्क होना संभाव्य है उन्होंपर उत्क्रान्ति अवलम्बित होती है। इसका निर्णय प्रयोगोसे करना सभाव्य है। लेकिन इन निरीक्षणोंका भिन्नभिन्न लोगोके भिन्न भिन्न तफसील बनानेसे आखरी निकाल मुकर्रर करना मुष्कील होता है।

वाइसमनके सिद्धान्तोके अनुसार वंशपरंपरासे प्राप्त होनेवाले सब फर्क बीजांकुरके जीवनरसके पहलेके बदलसे पाये जाते है, और इसी वजहसे बीजांकुरकी पेशियोमें असर करनेवाली अवस्थाओपर उत्क्रान्ति अवलम्बित रहती है। इनके सिद्धान्तोंकी सत्यता प्रयोगोके मुद्दाओसे शाबित या नाशाबित हुई है ऐसा अनुमान करना संभाव्य होगा। लेकिन जमे हुए निरीक्षण पर आखरी निर्णय लेना मुश्किल की बात है क्योंकि इन अनेक प्रयोगोके मुद्दाओंके अनेक अर्थ करना संभाव्य है। जबतक प्रयोगके कार्य तान्त्रिक या रासायनिक क्रियाको रोकनेकी तरहके होते थे, तबतक गुणधर्मोंका वाहन होना संभाव्य नही ऐसा मानना सभाव्य था, लेकिन जब शरीरकी पेशियोमे नत्रप्रचुर द्रव्योमे फरक करनेकी सूक्ष्म तरतीबोका इस्तेमाल शुरू हुआ तबसे गुणधर्मोका वंशपरपरा वाहन होना संभाव्य है इस कल्पनाका प्रसार जारी हुआ। स्फटिकमणिके नत्रप्रचुर द्रव्योकी उस इन्द्रियपर खास तरहकी क्रिया होती है; **गायर, स्मिथ, डेनिस** आदि संशोधकोंने खरगोषकी जातिकी प्राणियोकी सततिमे हमजात और वंशपरपरा प्राप्त अवस्थाकी छटा पैदा करनेके लिये इन प्राणियोके पूर्वजोंपर स्फटिकमणिके नेत्रप्रचुर द्रव्योसे उनको ज्यादह प्रतिमाग्राहक करनेकी कोशिष की थी। और उनको काफी यश भी मिला था। लेकिन इससे जो व्यंग पैदा हुए वे सिर्फ स्फटिकमणिमेही नही, यद्यपि स्फटिकमणिकेही खास नत्रप्रचुर द्रव्योका इस्तेमाल किया था, बल्कि प्रथमत. चाक्षुप प्यालेके बाह्यत्वक पत्रके मज्जामय घटकोंमे ही पैदा हुए थे। ये व्यंग सूक्ष्म नेत्र और फालके रूपके थे और जो इन प्राणियोमे विकार भेद जैसे अपने आप पाये जाते हैं। यह तजरबा है। रक्तरसोपचारसे वंशपरंपरा प्राप्त फरकोंको पैदा करना संभव है यह कल्पना शाबित नही हुई है।

सपादित गुणधर्मोके बाहनके संबंधमें जमे हुए प्रमाणोकी जांच **मारगन**ने सन १९२४ में की और ऐसा निर्णय किया कि इन प्रमाणोसे इस वहन धर्मका सिद्धान्त शाबित नही होता। उनका यह निर्णय हालमें भी कायम है। शरीरकी पेशियोमें इर्दगिर्दकी अवस्थाओंसे पाये जानेवाले फर्कोका असर बीजांकुरके रसपर इस तरहसे पैदा होवे की इन फर्कोंके वहनसे प्रतिनिधी तरहसे होवे ऐसे तंत्रका शोध नहीं हुआ है। बालिदामे रासायनिक या विषके प्रयोगसे हमजाद दोष संततिमे पैदा करना सभाव्य होता है, यह तजरबा है इस हालतमें विषका प्रसरण जरायुमेसे होता है; इसी तौरसे मनुष्यमे कभी कभी दिखाई देनेवाले बीजके व्यंग माताके संसर्गके साथ साथ पाये जाते हैं; लेकिन इनको वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था नही मान सकते। अर्थात गर्भाशयमे भ्रूणको ससर्गदोष हो सकता है तो भी रोगका वहन एक पुश्तसे दूसरी पुश्तमे प्रतिनिधीकी तौरसे नही होता। लेकिन यद्यपि जीवनशक्ति कमतरता और आम कमजोरीकी वजहसे रोगकी पूर्व प्रवृत्तिकी वंशपरंपरा प्राप्त अवस्थाकी संभाव्यता प्रमाणोसे सूचित होती है।

खंड तृतीय

अध्याय १०

नेत्रगोलकमेंका रंजित द्रव्य

प्राणियोंके शरीरमें पाये जानेवाले रंजित द्रव्योंके चार संघ होसकते हैं:

(१) रक्तसे व्युत्पन्न हुए द्रव्योंसे (हिम्याटिन, हिम्याटायडिन, हिमोसायडरीन, हिमाटोपोरफिरिन, हिमोफ्यूकसीन) पृथक्करण होकर पैदा होनेवाले, और पित्त और उसके व्युत्पन्न, हुए द्रव्योंसे पैदा होनेवाले रंजित द्रव्य।

(२) शरीरके पेशियोंसे पैदा होनेवाला रंजित द्रव्य, ये दो तरहके होते हैं:

(अ) **लिपोक्रोमस** जो तेल या तेलसदृश पदार्थ होते हैं; ये असलमें पीतांग (कारपसल्युटियम), सुप्रारिनलस् और कई मछलियोंकी और पक्षियोंकी तारकामें, और दृष्टिपटलके रंजित कलातहमें पाये जाते हैं;

(ब) मेलानिन जो पेशियोंके नत्रप्रचूर घटकोंसे (प्रोटीन्स) पाया जाता है।

(३) खनिज धातुसे यानी तांबा, रजत या लोहासे व्युत्पन्न हुए रंजित द्रव्य जो शरीरमें बाहरसे अन्दर जाते हैं या शायद शरीरमें पैदा होना संभाव्य है जैसे कि यकृतकी एक तरहही गुणऱ्हासकी अवस्था (हिप्याटो लेन्टिक्युलर डीजनरेशन)

(४) **ऱ्हाडापसिन** या **चाक्षुष नीलालोहित पिंग** यानी दृष्टिपटलका खास रंजित द्रव्य।

इस अध्यायमें मेलानिन और उससे संबंधवाले पदार्थोंका और ऱ्हाडापसिनका ही बयान करेंगे।

मेलानिन (इस ग्रिक लफ़ज का मायना काला ऐसा होता है) की पैदाईश, कहें तो कह सकते हैं कि करण विसर्जक शक्तिका शोषण करनेके लिये जीवनशास्त्र दृष्टिसे जरूरी होती है। और इसी वजहसे असलमें यह चमडी और नेत्रमें, अकसर करके जीन लोगोंको उष्ण कटिबंधके प्रदेशमें रहना जरूरी होती है उनमें, ज्यादह तादादमें दिखाई पडता है। यह कमतरमें शरीरके भीतरीके इन्द्रियोंमें जैसे कि मध्यमस्तिष्कके संस्थानमें, (सबस्टानशिया नायग्रा, पायामिटर) या मज्जातन्तुओंके संस्थानमें (खासतोरसे आनुकंपिक–पिंगल मज्जा संस्थान), हृदय और बडी रक्तवाहिनियां, आंत्र, उदरकी झिल्ली और मध्यांत्रकी रसग्रंथियोंमें पाया जाता है।

खास नेत्रमें मेलानिन दो घटकोंमें पाया जाता है:—(१) मज्जाकी कलातहकी रंजित तहमें यानी दृष्टिपटल, तारकातीत पिंड और तारकामें; और (२) कृष्णमंडलमें। पहलेके स्थानमें इसका अस्तित्व और फैलाव कायम स्वरूपका होता है; दूसरे स्थानमें इसमें फर्क

दिखाई पडते है। युरपके लोगोंमे तारकामें रंजित द्रव्यकी पैदाईश जननके पश्चाद शुरू होती है यह पहलेही कहा है, और इस रंजित द्रव्यकी पैदाईशकी मात्राके अनुसार इन वालिग लोगोंकी तारका कुछ नीले रगकी दिखाई पडती है और उसकी रचना भी नाजुक होती है। पीले रंगके नमूनेकी तारका भी दिखाई पडती है। माना जाता है कि भूरा या बादामी रंग हलका करनेसे पीली छटा मालूम होती है। इस द्रव्य का **मंगोल** जातिके लोगोंकी चमडीमे या बिलाडीके तारकामे पाये जानेवाले रंजित द्रव्यसे कुछ सबध होगा। याकूतके (रुबीके) रग जैसी लाल रंगकी तारका मनुष्यप्राणिमे बहुतही कम पायी जाती है लेकिन यह गिनीपिग्ज, चूहा, बिलाडी कुत्ते और कभी कभी पक्षीयोंमे दिखाई पडती है: बहुतसे मिसा-लोमे इन रंगोंके अनेक नमूने दिखाई पडते हैं जिनके साधारणतया ये नमूने होते है: (अ) कनीनिकाकी संकुचन करनेवाली स्नायुपरका वलयाकार नमूना, (ब) त्रिज्ज्याके जैसा नमूना और (क) बिन्द्वाकार नमूना। कभी कभी तारकामे रजित द्रव्यकी पैदाईश और वाटप अनियमिततासे होती है। जिसकी वजहसे तारकाको **पीबाल्ड** (हिटरोक्रोमिया आयरिस) तारका कहते हैं; दोनों नेत्रोंमे एक नीला और एक बादामी ऐसा फरक होनेसे उनको विशम रगी नेत्र कहते है। मेलानोसिस की विकृत अवस्थामें रंजित द्रव्योंकी पैदाईश ज्यादह तादादमे होती है; धवलतामे रजित द्रव्योका अभाव होता है और कुल तारका कुछ पारदर्शक जैसी दिखाई पडती है। ध्यानमे रखिये कि बूढेपनमे और कई चिरकारी विकृतिमे रंजित द्रव्य कम होजाता है जब नीली या भूरी छटा दिखाई पडती है।

मनुष्यका तारकाके रंगके अनुसार उसको वर्गीकरणकी कोशिश की गयी है यानी **सिंपलेक्स**की अवस्था जब तारकाके पिछले पृष्ठ भागपर ही सिर्फ रजित द्रव्य दिखाई पडता हैं और **डयुपलेक्सकी अवस्था** जब तारकाके गूदामें रजित द्रव्य दिखाई पडता है। लेकिन सूक्ष्म दर्शक यत्रकी सहायतासे तारकाका गूदा बिलकूल नीरगसा देखना मुष्कील की बात होनेसे यह वर्गीकरण नापनका **फर्क** मानना संभाव्य नही होता ऐसा माना गया है। सभव है कि तारकाके अहम रंगमेंका नीला रंग खाकी रगकी परिवर्तित सूप्ता अवस्था है और खाकी रंग भूरे रंगकी सूप्तावस्था है। पहले दो रग भूरे रगमें फर्क होकर पाये जाते हैं। इन रंगोकी तारका युरप आशिया खंडके उत्तर भागमेंके लोगोमे ज्यादह तौरसे दिखाई पडती हैं। संशोधकोके जमे हुए पेशवागके हिसाबसे मालूम होता है कि माता और पीता दोनोके नेत्र, यानी तारका, नीले रंगकी या भूरे रंगकी हो तो उनकी सततीके बहुतोके नेत्र उनके मातापिताके जैसे ही होंगे। लेकिन पिताके नेत्र भूरे रंगके और माताके नेत्र नीले रंगके हो तो उनके सततीमेंके आधे लडकेके नेत्र भूर और आधेके नेत्र नीले रंगके होगे, लडकीयोंमें भूरे नेत्रकी लडकियोंकी तादाद ज्यादह होगी। इसके अलावा माताके नेत्र भरे रंगके और पिताके नेत्र नीले रंगके हो तो उनके संततीमे नीले रंगके नेत्रके लडके और लडकिया की मात्रा जादह होगी। इससे यह बात साफ मालूम होती है कि अहम दो तरह भूरे और नीले नेत्रको सादे **मेन्डेलियन**की कानूनी अवस्था नही मान सकते; इसमे कुछ लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्थाका संबध होगा। ध्यानमे रखिये कि तारकाका रंग और उसी मनुष्यके सर के बालोंके रंगमे कुछ सबंध होता है, लेकिन यह भी स्वतत्र **जेन**के कार्यसे फर्क दिखाई पडते है जैसे कि, काली तारका और सुफेद जैसे बाल।

कृष्णमंडल (युव्हिया) के अहम भागसे क्रोम्याटोफोर्सका–रजित द्रव्यवाही पेशियोका– अपने खास स्थानसे, तारकातीत पिडकी स्नायुको और शुक्लपटलके भीतरी तहोको भ्रमण होना सभव है; और बाजे वक्त वे रक्तवाहिनियोके इर्दगिर्दके अवकाशमेसे होकर शुक्ल-पटलके सामनेके भागमें पहुँचकर शुक्लास्तरके नीचे रंजित भाग जैसे दिखाई पडते है और वे तारकातीत पिडकी रक्तवाहि नियां और ज्ञानतन्तुके पास भी होते है। ये स्थानिक रजित धब्वे, ध्यानमे रखिये कि, जन्मजात नही होते लेकिन साधारण तया जनन के बाद छः हप्ते से पैदा होते है। दृप्टिमडलका रंजित द्रव्य प्राकृतिक दृप्टिसे दृप्टिरज्जुमे और चालणी सदृश पत्रमें भी पाया जाता है; क्योकि ये क्रोम्याटोफोर्स मध्यत्वकपत्रके परदेमे जाते है ऐसा **मूलर, बर्जर ओगूची,** और **शीरेर**का शोध है। इस तरहकी रजित अवस्था काले चमडीवाले लोगोमे ज्यादह दिखाई पडती है।

नेत्रके शुक्लास्तरमेंकी रजित अवस्था शरीरकी बाह्य चमडीमेंकी रंजित अवस्थाके जैसी समजना चाहिये। मानव जातिके गोरे लोगोमे यह अवस्था शुक्लकृष्ण सधिके इर्दगिर्द के सिवा अन्य भागोमे नही दिखाई पडती यह शुक्लकृष्णसंधिके घेरेकी कलातहकी आस्तरमे रंजित वलय जैसा मालूम होता है। लेकिन काले चमडीवाले लोगोमें शुक्लास्तरकी पेशि-योमे और परिशुक्लपटलके घटकोमें यह रजित द्रव्य पाया जाता है।

हौसचाइल्डने, इस रंजित द्रव्यका नेत्रके शुक्लास्तरमे जो विभाजन दिखाई पडता है उस परसे मानवजातिके तीन सघ बनाये है:

पहले संघमें शुक्लास्तरके ऊपरकी तहोमे जाड और तारकाकी सशाख पेशियोके इर्दगिर्द कमतर रजित द्रव्य दिखाई पडता है; इस संघको उन्होने **निग्राईड** तरह ऐसा नाम दिया है (इसमे नीग्रो लोक आते है)।

दुसरे संघमें के लोगोंमे शुक्लास्तरके नीव की पेशियोंमे जाडी रजित अवस्था और तारकाकी बारीक सशाख पेशिया पायी जाती है। इस तरहको **मांगोलियन तरह** ऐसा नाम दिया है, और यह हालत मानव जातिके मागोलियन वंशके लोगोमे दिखाई पडती है।

तीसरे संघमें के लोगोमें तारकामेंकी रंजित पेशियोंकी शाखाएँ बहुत नाजुक होती हैं और शुक्लास्तरका अहम भाग पूर्णतया सुफेद होता है और रजित द्रव्य शुक्लकृष्ण सधिके घेरेके भागमें एक बारीक वलय जैसा दिखाई पडता है। इसको **युरोपियन तरह** ऐसा नाम दिया है। ध्यानमे रखिये कि घरमें पाले हुए जानवरोमे जिनकी आपसमे पैदाईश होती है, नेत्रमें का रजित द्रव्य कमती होता जाता है। यही तजरबा मानव जातिमे पाया जाता है।

मेल्यानिन की पैदाइशः

मेल्यानिन की पैदाइशके संबंधमें बहुतसी कल्पनाएँ की गई हैं। पहले पहल इसकी पैदाइश रक्तसेही होती है, इस कल्पनाका प्रसार (**स्केर्ले** १८९३, **इद्रमान** १८९६,

आगस्टीन १९१२) हुआ; लेकिन इसका हिमोग्लोबिनके व्युत्पन्न पदार्थोंसे कुछ ताल्लुक नही ऐसा बताया गया था। इसकी पैदाइशमें पेशियोंका सबध जरूरी है ऐसा **क्रोमायर** और **हर्टेविग**का मत था और इसी वजहसे उन्होने प्रतिपादन करना शुरू किया कि यह पेशिओंके जीवनबीजसे पैदा होता है (१९०४)। और इसके बाद **मैरोवस्की**ने मेल्यानाटिक पेशिओमें पायरोनिन द्रव्य, (जो **जीवनबीजक**मे जीवनस्थानकेगर्भमे पाया जाता है,) ज्यादह तादादमें मिलनेसे कल्पना की कि वह जीवनबीजक (न्युकलीओलस) से पैदा होता है। मेल्यानाटिक अर्बुदमे यह द्रव्य मिलता है इस **रासेले**के संशोधनसे इस कल्पनाको ज्यादह पुष्टी मिली। फान **एसझिली**ने बताया कि इस रजित द्रव्यकी पैदाइश एक नीरंग प्राग्गामी पदार्थपर फेनकी क्रिया होनेसे होती है। **मेसन**के मतानुसार यह क्रिया प्राणिलीकरणके जैसी है। और **ब्लाक**ने (१९१७) शाबित किया कि रंजितस्थानकी पेशियोंमें खास आन्तरपेशीय प्राणिलीकरणके योग्य पदार्थ होता है। **ब्लाक**ने इस पदार्थको अलग किया और उसको **डोपा** ऐसा नाम दिया। इसकी रासायनिक रचना (३–४) **डायहायड्राक्झिकेनिल अपाईन स्वरूप**की होती है और उन्होंने शाबित किया कि प्राणिलीकरण द्रव्यसे इस **डोपा**का मेल्यानिनमे रूपान्तर होता है। चमडीके बाह्यत्वक पत्रके फार्मालिनमे रखे हुए भागको इस पदार्थको डालनेसे मेल्यानिनके कण पैदा होते हैं ऐसा तजरबा है। इसीको **डोपकी प्रतिक्रिया** कहते हैं। नेत्रप्रचुर द्रव्योके अणूके प्राणिलीकरण की क्रियासे अनेक रजित द्रव्योंके संघ (टायरोसिन, फेनिल अमाईन, ट्रिपटोफेन आदि) बनते हैं, और इन क्रोम्याजेन संघोसे मेल्यानिन अन्तिम पैदाइश जैसा बनता है। **ब्लाक**ने निर्णय निकाला कि **मेल्यानोजेन** (जिससे मेल्यानिन पैदा होता है) यह **डोपा**के जैसा है या उसका संबधी है। यह नीरग पदार्थ रक्तके साथ पेशिओंको जा मिलता है। यहां उसका **डोपा** प्राणिलीकरण द्रव्यसे सयोग होनेसे रगीन मेल्यानिन पदार्थ बनता है। जिन पेशियोसे यह मेल्यानिन तैयार होता है उनको मेल्यानोब्लास्ट (क्रोमोब्लास्ट) कहते है।

मेल्यानिनका ऍडरिनालिनसे निकट सबध जुडा हुआ है, और सभव है कि दोनो एकही प्राग्गामी पदार्थसे पैदा होते है और **पायरोक्याटेकाल**की चयापचय क्रियामे दोनो पर्याये (बारी बार) अन्तिम पदार्थ बनते है। जब पेशियोमे उत्तेजकसे बहुप्रसवनकी क्रिया होती है तब प्राणिलीकरणके फेनक द्रव्यकी पैदाइश ज्यादह होनेसे रजित अर्बुद पैदा होता है या आमतौरकी मेल्यानिझम् की अवस्था पायी जाती है। जब कुछ बीमारीसे या ऍडरिनल ग्रथीकी विकृतिसे ऍडरिनलीनकी पैदाइश करनेमे ये ग्रथीया क्रोमोजेन पदार्थोका इस्तेमाल कर नहीं सकती तब शरीरमे रजित द्रव ज्यादह पैदा होता है और वह चमडीकी कलातहमे ऍडिसनकी विकृतीकी तौरसे, और तारकापिधानकी कलातहकी पेशियोमे जमा हुआ दिखाई पडता है; यदि फेनक का बिलकुलही अभाव हो तो रजित द्रव्य बिलकुल पैदा नही होता और धवल मनुष्यकी अवस्था पायी जाती है।

अब दूसरा सुवाल यह होता है कि किस तरहकी पेशियोंमें यह प्रतिक्रिया पायी जाती है। इस बारेमें तीन तरहकी कल्पनाएँ प्रचलित हैं—**एक कल्पना**के अनुसार रजित द्रव्य बाह्यत्वक की कलातहकी पैदाइश है; **दुसरी कल्पना**के अनुसार यह आन्तरत्वककी कला-

तहसे बनता है और **तीसरी कल्पना**के अनुसार इस रंजित द्रव्यकी पैदाइशमें दोनों कलातहोंका हिस्सा होता है। पहली कल्पनाके प्रचारकोके मतानुसार दृष्टिपटलमेंका रजित द्रव्य संसरणसे कृष्णपटलमें जाता है। इनके बादके संशोधकोने स्थापित किया कि ये पेशियां सिर्फ रचनाशास्त्र दृष्टिसेही आन्तरत्वककी कलातहके समान होती है ऐसा नही बल्कि उनके सरीखा कार्यभी, कोलाजिनस तन्तुकी पैदाइश, करती है। इसके बाद **रिबर्ट**ने मत प्रचार किया कि रंजित अवस्था संयोगी घटकोंकी खास पेशियो–क्रोम्याटोफोर्सपर अवलम्बित रहती है।

लेकिन हालके रासायनिक संशोधनसे पहली कल्पना शाबित होगी ऐसे मुद्दे मिले है। सन १९१७ मे **ब्लाक**ने शाबित किया कि **डोपा** की प्रतिक्रिया बाहयत्वक की कलापेशिओंसे (यानी **मालपिघी** तहके आस्तर की पेशिया, बाल कोषके आस्तर की पेशियां और **लांगरहान** की सशाख पेशिया) पायी जाती है और मध्यत्वक पत्र की पेशिओमें नही पायी जाती। इनके मतानुसार कलातह की पेशियो की ही कार्य क्षमतासे रजित द्रव्य बनता है और इसी वजहसे ये पेशिया **मेल्यानो ब्लास्ट** होती है। ये पेशिया अन्दर की मध्यत्वक की तहकी ओर भ्रमण करेगी या उनके रंजित कण वहां गिर जायेगे जिनमे संयोगी घटकोकी पेशियोकी वजहसे भक्षण क्रिया पैदा होती है। इसी वजहसे मध्यत्वक की पेशिया मेल्यानोफोर (क्रोम्याटोफोर) का कार्य करेंगी और जब मेल्यानिनका चमडीके नीचे अन्त.क्षेपण किया जाता है तब उनमे संयोगी घटकोकी पेशियोसे भक्षण क्रिया दिखा पडती है। इससे और एक सबूद मिलता है कि नील लोहितातीत किरणोके कार्य से रंजित अवस्था जो पैदा होती है वह बाहयत्वककी कलातह की नीचेकी अकुरोद्भव तहमें दिखाई पडती है, सिर्फ चमडीका ही विचार करे तो कह सकते है कि उसकी कलातह का रजित द्रव्य बनानेमे हिस्सा होता है इसका सबूद ज्यादह मिलता है।

नेत्रके शुक्लास्तरमें दिखाई देनेवाली नैसर्गिक या विकृत रजित अवस्था चमडीके अवस्थाकी जैसी ही होती है। इन पेशियोपर रजित द्रव्योंका असर करनेसे मेसोब्लास्टिक पेशिया स्पष्ट दिखाई पडती है; इस क्रियासे नीरग उत्पादक द्रव्य का प्राणिली करणसे मेल्यानिन बनता है। और इसी रजतक्रियाके इस्तेमालसे **रेडस्लाब** ने बताया कि शुक्लकृष्ण संधि परके शुक्लास्तर के नीचेकी तहो की पेशिया **और** अश्रुपिटिका की इसीतरह की पेशियां संभाव्य मेसोब्लास्ट होती हैं। ये पेशियां चमडीके लांगरहान पेशिया जैसी होती हैं।

इन पेशिओंके इस गुणधर्मों की वजहसे शुक्लकृष्ण संधिके पास या अश्रुपिटिकामें घातुक अर्बुद की संभाव्यता ज्यादह दिखाई पडती होगी। च्यूकी मेल्यानिन की पैदाइशके लिये रक्तकी जरुरी होती है तारकापिधान की कलातहसे रजित द्रव्य पैदा करनेवाली पेशियोंका अभाव (अक्रोम्याजिन) होता है: लेकिन जब उसपर विकृत रितीसे रक्तवाहिनियां पैदा होती है तब उसमें दुय्यम रितीसे घातुक मेल्यानिन अर्बुद की संभाव्यता पायी जायेगी।

कृष्ण मंडल का इस दृष्टिसे विचार करे तो उसमें गंभीर खतरें पाये जाते हैं। ऐसा दावा किया जाता है कि, नेत्रमें दृष्टिपटल की कलातह चमडी की कलातह जैसी है, और कृष्णमंडल चर्म जैसी होती है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि, कृष्णपटल और तारकाका रजित द्रव्य, दृष्टिपटसे उसकी पेशिओका या रजित द्रव्यका परिभ्रमण होकर, पाया जाता है। इन घटकों के रजित अर्बुद कारसिनोमा के स्वरूप के होते है न के सारकोमा के रुपके।

भ्रूणकी अवस्थामें दृष्टिपटलके रजित द्रव्यका परिभ्रमण कृष्णपटलमें होता है यह सिर्फ कल्पना है प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता। मनुष्यमें भ्रूणके ५ वें हप्तेमे दृष्टिपटलमे रंजित द्रव्य पैदा होता है; और कृष्णपटलमें पांच या सात मासकी गर्भावस्था में यानी **भ्रुकका पत्र** तैयार होनेके बाद कुछ दिनोंके बाद दिखाई पडता है; और रंजित द्रव्यका एकसे दूसरेमे परिभ्रमणका कुछ सबूद नही मिलता। ध्यानमें रखना चाहिये कि रजित द्रव्य कृष्णपटलकी बाहरी तहोंमें जो दृष्टिपटलसे दूरीपर होती है, पहले दिखाई पडता है, और जिन प्राणियोमें टापिटम होता है उनके टापिटमका बाहरी कृष्णपटल रंगदार होता है और इसी स्थानके दृष्टिपटलकी कलातह नीरग होती है। दर्शनेन्द्रियके अभावकी मिसाले जो दर्ज हुई हैं उनमे नेत्रके स्थानमे मध्यत्वकपत्रके कुछ घटकही थे इनमे कुछभी बाह्यत्वकके घटक नही दिखाई पडे तो भी मध्यत्वक पत्रके घटक रजित द्रव्योसे भरे हुए थे।

रुग्णविषयक निरीक्षणसे मालूम हो सकता है कि नेत्रमे मेल्यानिन अवस्थाकी पैदाइश बाह्यत्वक और मध्यत्वक जन्य घटकोंका गुण होता है और इसको हालके रासायनिक संशोधनसे पुष्टी मिलती है।

भ्रूण की प्राथमिक अवस्थामे दृष्टिपटलकी कलातहमे **डोपा** प्रतिक्रिया दिखाई पडती है। लेकिन कृष्णपटलमे यह डोपा प्रतिक्रिया नही पायी जाती यह बात सत्य है, लेकिन कृष्णपटलका रंजित द्रव्य पैदा होनेके पहले यदि यह डोपाकी प्रतिक्रिया जाची जाय तो वह पायी जाती है ऐसा **मेईशार** के तजरबा है; । इस से साबित होता है कि इसमें प्राणिलीकरण फेनक होता है। इन घटकों पर यदि रजित द्रव्य का इस्तेमाल करे तो (६ से ६½ पास के भ्रूण की अवस्थामें) नीरंग उत्पादक द्रव्य का (मेल्यानोजेन) आस्तित्व कृष्ण-पटलमे साबित कर सकते है। च्यूकि कृष्णपटल के मध्यत्वक घटकोमे दोनों जरूरी मौली पदार्थ पाये जाते है इससे सिद्ध होता है कि रजित द्रव्य इस घटक में तैयार होता है, नेत्र और चमडीमे फर्क इतना ही होता कि नेत्रमे रंजित द्रव्य की पैदाइश कुछ थोडे समयतक दिखाई पडती है। लेकिन चमडीमें रंजित द्रव्य की पैदाइश की सभाव्यता कायम रहती है, यानी चमडीको किसीभी समय उत्तेजित किया जाय (प्रकाश उत्तेजन) तो रजित द्रव्य की पैदाईश होती है। रुग्ण विषयक निरीक्षण और रासायनिक शोध पारस्पारिकसे मिले हुए मालूम होते है। और सिर्फ नेत्रकाही विचार करे तो रजित द्रव्य बाह्यत्वक से या मध्यत्वक से पैदा होना संभाव्य है यह बात स्पष्ट है; घातुक रजित अर्बुद कारासिनोमा य सारकोना की तरह का होगा।

रंजित द्रव्य धारक पेशियां

दृष्टिपटल की कलातह की पेशियां एक सरीखी होती हैं, **कृष्णमंडलमें** रंजित द्रव्य धारक पेशियां दो किस्म की होती हैं, क्रोम्याटोफोर और क्लबके आकारकी।

क्रोम्याटोफोर (इसका मूल अर्थ वाहक ऐसा होता है) पेशियां बडी और चपटे आकार की होती है, इनका जीवनबीज दीर्घ वृत्ताकार होता है, और इनको सशाख प्ररोहाएँ होती हैं और पेशियां गोल रंजित कणोंसे भरी हुई होती है। प्ररोहाओंके आकार अनेक तरहके होते हैं और बाजे वक्त उनका जाला बनता है। कई संशोधकोंके मतानुसार (**मुंच, लोवर, इक्राक**) पेशिओंमें नाजुक तन्तुर टेढीमेढी रचना होती है और इनका ज्ञान तन्तूओंसे संबंध होता हैं।

क्लब पेशियां गोल आकार की होती है, इनमें प्ररोहाओंका अभाव होता है, इनका रंजित द्रव्य राडके आकार का होता है और यह जीवनबीज स्थानमें जमा हुआ होता है। यह रचना दृष्टिपटल की बाहयत्वक से पैदा हुई पेशियोंका वैशिष्टय होता है; और

चित्र नं. २१३

मेंढकमें पिच्युइटरीन अर्क का अन्तःक्षेपण करनेसे दिखाई देनेवाला असर।

दाहिने ओरके प्राणिमें छः घंटे पहले बैलके भ्रूणका पिच्युइटरीन अर्क का अन्तःक्षेपण किया था बांये ओरका प्राणि नियंत्रक है।

इसी वजहसे **फुक्स** आदि संशोधकोंके मतानुसार ये दृष्टिपटलसे भ्रमण करके इस जगह को पहुंच गयी होगी: जैसे कि कृष्णपटल–दृष्टिपटल के दाहमें कृष्णमंडल की रंजित कलातह की पेशियां दृष्टिपटलमें घुस जाती हैं। इसका सबूत यह है कि बाजेवक्त ये पेशियां तारकामें काले रंगकी रह जाती है, और इनकी रचना (**फुक्स फान मिचेल और ग्रुनर्ट**

की) तीन प्ररोहाओंसे त्रिज्ज्या जैसी भासमान होती है, और बाह्यत्वक की तहोंसे पैदा होनेवाले स्नायुज घटकोसे इनका संबंध जुडा हुआसा मालूम होता है ऐसा साल्समन और बुलफ्रम का मत है। और भ्रूणके विकास की प्राथमिक अवस्थामें मध्यत्वक का रंजित द्रव्य पैदा होनेके पहले की कलातहकी रंजित अवस्थाके साथ साथ इनकी पैदाइश होती है ऐसा लेबर का कहना है। और कुछ धवल मनुष्योंकी मिसालोमें, जिनमे कृष्णमंडलके रजित द्रव्योंका अभाव होता है, ये पेशिया पायी जाती है (ऐसा लोबर, पीयरसन, नेटलशिप और उशर का मत है)। कालिन्स के मतानुसार क्लब पेशिकी पैदाईश क्रोम्याटोफोरमे फर्क होकर होती है।

क्रोम्याटोफोर की उत्क्रान्ति अनुकपित मज्जामंडल संस्थान की उत्क्रातिके साथ जुडी हुई होती है ऐसा मान सकते हैं। क्योंकि ग्रैवेयिक अनुकंपिक मज्जामंडल सस्थान की विकृतिमे विषमरगी तारका पायी जाती है। अनुकपित मज्जामडल सस्थाका लकवा होनेसे उनके रजित द्रव्योमे फर्क होता है। इतनाही नही, बल्कि इन पेशिओका आकार बदल जाता है, उनकी खास तन्तुर अवस्था मे फर्क होकर वे गोल होती है। कालिन्सने अपने सशोधनसे सिद्ध किया है कि इन पेशियोंकी रक्त भरती मे या उनके मज्जातन्तूओको खतरा पैदा होनेसे कृष्णमडल के सब भागोमेकी क्रोम्याटोफोर पेशिया गोलाकार होती हं और वे रजित द्रव्योसे भरी हुई होती है। तारकातीत पिडको पश्चिमी रोहिणिया और ज्ञान तन्तुमे काट देनेके बाद १२ दिन के भीतर कृष्णपटलके पश्चिमी भागमें की क्रोम्याटोफोर की नैसर्गिक शाखाओकी जगह बडी गोलाकार विनाशाखकी पेशिया पैदा होती हं और रंजित द्रव्य जमा होता है. यह अवस्था मेंढक जैसे प्राणियोंकी चमडी में और तारका में पाये जानेवाले फरकों की अवस्था जैसी समान होती है।

प्राणिवर्गमें क्रोम्याटोफोर पेशिया ज्यादह तादाद मे पायी जाती हैं और उनमें इसी तरह की कार्यक्षमता दिखाई पडती है। ये पेशिया प्राणि के पृष्ठ भाग की चमडी की ऊपरी तहोमे होती है और उनपर प्रकाश आदि उत्तेजको का असर होनेसे रजित द्रव्य पेशियोके परिधिके भागसे उनके केन्द्रकी ओरको सरक जाता है, जिसकी वजहसे चमडी निरग हो जाती है। जीवन शास्त्र की दृष्टिसे स्वसरक्षण कार्य में इस रगमे बदल करने की क्रिया का महत्त्व है। गिरगिट प्राणि, जो बारबार अपना रग बदलता है, यह एक असल मिसाल है और अच्छी काहावत बनी है। अनेक किस्म की मछलियोमे और कीटकोमे, इर्दगिर्द की प्रकाशकी अवस्था परिस्थितिके अनुसार अपना रग बदलनेका गुणधर्म दिखाई पडता है। मनुष्यमे यह हालत कायम रहती है जिसकी बजहसे दृष्टिपटल की कलाहत में के रंजित द्रव्यका भ्रमण होता है, और मनुष्यमें यह कार्यक्षमता दृष्टिपटलकी कलातहमे के रंजित द्रव्योके भ्रमणसे और तारकाकी कलातहकी उन पेशियोकी, जिनके विकृत विपर्ययसे उन्नकी आकुंचक स्नायुकी पेशिया बनती हैं उनकी प्रत्यक्ष प्रतिक्रियासे कायम दिखाई पडती हैं।

इसी तरहकी प्राथमिक कार्यक्षमता (कवचधारी) कर्कजाति प्राणियोमे, जिनमें क्रोम्याटोफोर का खास जालासा बनता है दिखाई पडती है; इनमें ज्ञानतन्तु होते हैं ऐसा खातरीका

मुद्दा नहीं मिलता और प्रकाशमें फर्क करनेसे चमडीके अलग अलग टुकडेमें फरक दिखाई पडते हैं इससे क्रिया प्रत्यक्ष पेशियोंपर होती है यह संभाव्य है। सिपवाले प्राणियों (कटलफिश आदि) के क्रोम्याटोफोर पेशियां स्नायुके रूपकी होती है। उनमें मज्जातन्तु होते हैं और उनके शरीर पर आरा सदृश स्नायुके तन्तु होते हैं। मछलीमें नियमन अनुकंपिक मज्जातन्तुओंसे होता है। और कई चपटी मछलीमें रंगमेंका फर्क नेत्रोंकी प्रति-क्रियासे पैदा होता है। इस कार्यमें भूजलचर प्राणियोंमें पिटयूइटरी पिंडका और सर्प वर्गमें ऍडरिनलका महत्त्वका भाग होता है। लेकिन इन दोनोंमें अनुकंपिक मज्जातन्तु संस्थानका असर होता है। भूजलचर प्राणियोंमें, मछलीके जैसी यह क्रिया नेत्रकी प्रतिक्रियासे भी पैदा होती है।

यह बात दिलचस्पीकी है कि जब **फिकलर**ने एक कीटकका सर दूसरे कीटक पर कलम किया तब उस कीटकका रंग जिसका सर कलम किया था उसीके रंग जैसा हुआ।

खंड चतुर्थ

अध्याय ११

केवल मूल तत्वात्मक भौतिक दृक्शास्त्र

वक्रीभवन के दोष बराबर समझने के लिये और उनके योग्य उपाय करने के लिये बहुतसी दृष्टिविषयक बातोंका प्रस्ताव रूपका वर्णन करने का विचार है। इस विषयके विचारका अनुक्रम निम्न जैसा होगा :—(१) केवल मूल तत्वात्मक दृक्शास्त्र, (२) भूमितिय दृकशास्त्र, (३) नेत्र का नैसर्गिक वक्रीभवन दोष; (२) और (३) विषयोंका बयान अन्य जगह होगा।

केवल मूल तत्वात्मक भौतिक दृक्शास्त्र (एलिमेंटरी आपटिक्स)

प्रकाश की व्याख्या :—जिस साधनसे अपने को इस वस्तुविषयक जगका ज्ञान होता है उस साधन को प्रकाश कहते हैं। अपने प्रकाशेन्द्रियको ज्ञान है ऐसे किरण विसर्जक शक्तिका (रेडियन्ट एनरजी) यह एक प्रकार है और जिन वस्तुओंका प्रत्यक्ष संबंध अपने शरीरसे नहीं होता ऐसे वस्तुओंके रंग और रूप का ज्ञान अपनेको इसकीही सहायतासे होता हैं। प्रकाशका प्रसरण आकाशमेंसे आंदोलन या लहरियोंके गतिसे होता है। इन लहरियोंकी गतिके विचार में तीन बातोंका समावेश होता हैं :—(१) लहरियोंकी लम्बाई, (२) लहरियोंका विस्तार और (३) लहरियोंका वेग।

कुछ शब्दप्रयोग का स्पष्टीकरण (१) **प्रकाश लहरियोंकी लम्बाई** (वेव्ह लेंगृथ) काल के एकं में प्रकाश लहरियोंसे व्यात्प हुई अवकाश (स्पेस) के भागको प्रकाश लहरियों की लम्बाई कहते हैं। (२) **प्रकाश लहरियों का विस्तार** (अम्पलीटयूड आफ वेव्ह) जिस सिधी रेषामें प्रकाशबिन्दु सिधा फैल जाता है उस तलरेषा के (कोटी भुजाकें–बेस लाईन) उपरकी और नीचेकी ओरकी मिलके फैली हुई प्रकाश लहरियोंकी ऊंचाईको प्रकाश लहरियोंका विस्तार कहते हैं। (३) **प्रकाश लहरियोंका वेग** (व्हेलासिटी आफ वेव्ह) काल के एकं में प्रवकाशका अवकाशमें से फैलनेके प्रमाणको प्रकाश लहरियोंका वेग कहते हैं। **लहरियोंके वेगका नापन** लहरियोंके लम्बाई को कालके एकंमेंके लहरियोंके आवर्तनोंसे (फ्रिकेन्सी) गुणाकरने से पाया जाता है। कालके एकं में अवकाशके किसी ही बिंदूमेंसे फिरनेवाली लहरियों की संख्याको **आवर्तन कहते** हैं। जिस दिशाको प्रकाश फैलता है उस दिशा की लम्ब रेषामें प्रकाशको बहाने वाले इथक यानी ईथर के कण फैल जाते हैं। प्रकाश की लहरियां प्रकाशके फैलने की दिशाको पडी जैसी रहती हैं।

प्रकाशका रंग उनके लहरियोंके लम्बाई पर अवलम्बित होता है और उसकी तीव्रता उसके विस्तार पर अवलम्बित होती है।

प्रकाश का वेग निर्वात प्रदेशमें एक सेकंदमें १८६००० मैल होता है।

प्रकाश संबंधकी कल्पनाओकी **तवारीख**

प्रका श बंधीके अनेक लोगोने अनेक कल्पनाएँ किई हैं। प्राचीन ऋषिओकी कल्पना प्रयोगसे नही बल्कि अध्यात्म विद्याके केवल तर्कके जोरपर बिठाई थी। आर्यन, ग्रीशियन और अरेबीयन लोगोने प्रकाश विषयकी जो कल्पनाये किई थी उनमेसे **पिथागोरसकी** कल्पना बहुतकालतक प्रचलीत थी। **पिथागोरसकी कल्पना** यह थी कि अपनेको पदार्थ जो दिखाई पडता है उसका कारण यह है, कि पदार्थमेसे प्रकाशके परमाणू अपने नेत्रमे घुस जाते हैं। इसी कल्पना का **डेस्कार्टने** (१५९६-१६५०) स्वीकार किया और १७ वी सदीके शुरूमे व्यवस्थित रूपमें लोगोके सामने **परमाणू विसर्जन कल्पना** (एमिशन थियरी आफ कारपसकल्स) इस नामसे रखी। इस कल्पना को सर **आयझेक न्यूटनने** मान्यता दिई थी। और **तेजःपरमाणू-कल्पनाका** प्रसार किया। यह कल्पना इस तरहकी थी कि जब प्रकाशके (या तेजके) कण इथक यानी ईथर जैसे साधनसे फैल जाकर दृष्टिपटल पर गिरते हैं तब पदार्थोका ज्ञान होता है। यह कल्पना १९ वी सदी के शुरूआत तक प्रचलित थी। इसके पहले यानी सन १६६४के समय में अंग्रेज प्रयोग **शास्त्रज्ञ राबर्ट हुके**ने प्रकाश की **अपनी लहरी रूपकी कल्पना** (अन्डयुलेटरी थिअरी आफ लाईट) का प्रचार किया था। लेकिन इस कल्पनाको व्यवस्थित रूप देनेका श्रेय **डच शास्त्रज्ञ क्रिश्चन हुजेन्स** को है। सन १६९० मे इस तरहकी कल्पना किई कि प्रकाश शक्ति यह लहरी स्वरूप की गति है और वह सिधी रेखांशके दिशामे फैल जाती है। इस कल्पना का कुछ प्रसार नही हुआ। क्यों कि इससे प्रकाशका सिधी रेषामे के चलन का बोध ठीक होना सभाव्य नही हुआ।

लेकिन सन १८०१ मे **थामसयंगने** सोचकर **तेजःपरमाणू कल्पना** से प्रकाशकी **लहरी रूप की कल्पनाका** प्रसार किया। इस कल्पनाको फ्रेंच भौतिक शास्त्रज्ञ **फ्रेसनेलने** सन १८१६ मे व्यवस्थित रूप दिया। इसी समय **फ्रेसनेलने** प्रयोग करके ध्रूवीकरण के दृक्-प्रत्यक्षको (फिनामिना आफ पोलरायझेशन) सप्रमाण सिद्ध किया; उसी समय **थामसयंगने** इस परसे आवश्यक होनेवाले अर्थका यानी प्रकाशकी लहरियां प्रकाशके गतिको लंब रेषा जैसी रहती है ऐसा सूचित किया। प्रकाश लहरीयोंकी कल्पना निम्न लिखित उदाहरणसे स्पष्ट होगी।

पानीसे भरे हुए डोलमें यदि एक छोटासा फत्तर डाले तो जिस स्थानमें फत्तर गिरा हो उसके चारों ओर लहरियां उत्पन्न होती हैं और वे डोलके किनार तक जा पहुँचती हैं। लेकिन यह बात स्पष्ट है कि पानीका मध्यभाग डोलके किनारतकको नही जा पहुंचता। फत्तर पानीमें डालनेसे पानीके कण ऊपर और नीचे हिलते जैसे दिखाई पडते हैं। ये ऊपरको और नीचेको हिलनेवाले पानीके कण अपनी गति इर्दगिर्दके कणोको देते हैं। और वह गति एक कणसे दूसरेको और दुसरेसे तिसरेको इस रितीसे केन्द्रसे बिलकूल परिधि तकके कणोंको गति फैल जाती है। ये कण सिर्फ ऊपर और नीचेकी ओरको हिलते है मूलस्थानसे बाजूको नहीं सरते। इसी समय डोलमें छोटासा कार्कका टुकडा डालें तो वह सिर्फ ऊपर नीचे होता है, आडा डोलके किनारको नहीं जाता। यानीं डोलमें फत्तर डालनेसे उत्पन्न हुई चलविचल सिर्फ पानीमें उत्पन्न हुई लहरियोंके साथ डोलके केन्द्रसे परिधि भागको फैल जाती है।

प्रकाशकी विद्युत चुंबनीय कल्पनाः—सन १८६५ तक प्रकाश लहरी रूपकी कल्पना प्रचलित थी। उस सालमे **जेम्स क्लार्क म्याक्सवेल** केम्ब्रिजके भौतिक शास्त्रके प्राध्यापक इन्होंने यहबात सिद्ध कीई कि विद्युत चुबनीयके दृक्प्रत्यक्षमें (इलेक्ट्रो म्यागनेटिक फिनामिना) होनेवाली आन्दोलने डोलमे ऊपर और नीचे होनेवाली चलविचल की स्वरूपकी होती हैं। और यह चलविचल प्रकाशके इथर जैसे मार्गमेसे समान गतिसे फैलती है। इससे उन्होने यह कल्पना कीई कि दोनों दृक्प्रत्यक्ष समान याने एकही होते हैं। और इससे उन्होने प्रकाश की **विद्युत चुंबनीय कल्पनाका प्रसार** किया। इस कल्पनाके अनुसार प्रकाश विद्युत लहरी जैसी होता हैं। इस विद्युत चुंबनीय कल्पनाको बहुत कालतक लोगोसे मान्यता नही मिली। लेकिन चंदरोजके बाद मशहूर **हेल्महोल्टस**का शिष्य भौतिक शास्त्रज्ञ **हर्टसने** सिद्ध किया कि विद्युत चुबनीय लहरिया परावर्त होती हैं, उनका वक्रीभवन होता है और उनका ध्रुवी-करण होता है। उन्होने और यह भी शोध लगाया कि विच्छिन्न किरणोमे (स्पेक्ट्रम्) उनकी लहरियोकी लम्बाई, विद्युत चुबनीय आन्दोलनोंमे और प्रकाश लहरियोकी जैसी, दिखाई पडती है **इससे दोनों समान या एक होते हैं** यह बात निश्चित कह सकते हैं।

म्याक्सवेलके समीकरणसे यह दिखाई पडता है कि विद्युत क्षेत्रमें वेग और शक्ति होती हैं। प्रकाशका किरण जिस पदार्थपर गिरता है उस पर किरणका कुछ दबाव होता होगा। लेकिन यह दबाव हर दिनके व्यापारमे भासमान नही होता यह बात सत्य है; लेकिन तारका और ग्रहों के भीतरीके भागमे, जो बहुत गरम होता है, यह बडी मात्रामे जम जाता है, और उनकी हालत के नियमनमे उसका बहुत बडा हिस्सा होता है। **न्यूटनके तेज-प्रकाश-परमाणू कल्पनाके अनुसार** रस तरहका दबाव होता है।

प्रकाशमे यदि वेग है तब वह वास्तवत द्रव स्वरूपका ही होना चाहिये। यानी वह साकार जडवस्तु ही होना चाहिये। सन १९०० के समयमे बरलिनके प्राध्यापक **एम प्लांक** ने **शक्ति के एकं की कल्पना का** (थियरी आफ एनरजी युनिट) प्रसार किया। सन १९०५ मे मशहूर जर्मन शास्त्रज्ञ-**प्रो. आईनस्टीन** ने शक्तिके एक की कल्पनासे **प्रकाशकी प्रमाणवस्तुभूत कल्पना** का (क्वान्टम् थियरी आफ लाइट) प्रसार किया। और फिर **जे. जे. थापसन, रुदरफोर्ड, बॉहर, सोपरफील्ड** आदि शास्त्रज्ञोने परमाणूकी रचना और किरण विसर्जन का शोषण इनके सबधमे भौतिक कल्पनाओका प्रसार किया। इन बातो से इतना ही सिद्ध हुआ कि जडवस्तु और शक्ति एक समान होते हैं और विद्युत स्वभावके होते हैं।

इथर में से पदार्थोकी गती होती है या नही इसके स्पष्टीकरणार्थ **मायकेलसन** और **मोर्ले** इन्होंने सन १८८७ में बहुत महत्वके प्रयोग किये। उन्होने ऐसी कल्पना कीई कि इथर मे पदार्थोकी गती नही दिखाई पडती। ऐसा समजो कि कोई मनुष्य एक घंटेमे चार मील तीर जा सकता है। किसी (स्थीर) तलावमे चार मील तीरके जाने को और चार मील वापिस तीरके आनेको उसको दो घटे लगेगे। नदीके पानीका बहनेका वेग हर घटेमें दो मील है। ऐसा समझोकी ऐसे नदीमें जलप्रवाहके उलटी दिशामे वह मनुष्य तीरके जावे तो चार मिल जानेको उसको दो घंटे लगेगे। क्योंकि नदी प्रवाहके उलट जानेमे, यदि उसका वेग चार मील है, तो भी एक घंटेमें नदीका वेग उसको दो मील पीछे ले जायगा। इससे

चार मील जानेको उसको दो घंटे लगेंगे। यदि वह मनुष्य नदीके प्रवाहके दिशामें जाता हो तो उसको चार मील जानेको ४० मिनीट लगेंगे। क्योंकि अब उसके गतिके वेगका प्रमाण एक घंटेमें ६ मील होगा (उसके ४+नदीके २) यानी उसको चार मील जाकर चार मील वापस आनेको दो घटे चालीस मिनीट लगेंगे। इसी रितीसे शुद्ध यांत्रिक शास्त्रोके तत्त्वोसे विचार करे तो पृथ्वी जिस दिशाकी तरफ घूमती है उसकी विरुद्ध दिशाको सूर्य किरणोंको निर्वात प्रदेशमेंसे पृथ्वीके तरफ जानेको और फिर वापीस जानेको ज्यादा समय लगना चाहिये। लेकिन प्रत्यक्षमें वैसा नही होता। स्पष्ट कहनेकी बात यह है कि पृथ्वी जब स्थिर होती है तब प्रकाशकी गति प्रति सेकदमे १८६००० मील दिखाई देगी।

यदि पृथ्वी सूर्यके तरफ सिधी १००००० मीलके वेग से प्रति सेकंदमे जावे तो प्रकाश का वेग प्रति सेकंदमे २८६००० मील नही दिखाई देगा बल्कि १८६००० मील दिखाई देगा। लेकिन पृथ्वी उसी गतिसे सूर्यसे दूर जावे तो प्रकाशका वेग ८६००० नही बल्कि १८६००० मील ही दिखाई देगा।

सिद्धान्त और प्रत्यक्ष अनुभव इन दोनोमे दिखाई देनेवाली विसगतता का जोड मिलानेका अनेक लोगोने खूब कोशिश कियी है, लेकिन एकसेही पूरी खातिर जमाई नही हुई है। इसी लिये सन १९०५ में **आईनस्टीन**ने सूचित किया कि विश्व ऐसा है कि किसीभी प्रयोगसे उसके शुद्ध गतिका बराबर ज्ञान होना सभाव्य नही है। इसीमेसे फिर **सापेक्षत्वकी कल्पना** (थियरी आफ रिलेटिव्हिटी) पैदा हुई।

सापेक्षत्वकी कल्पना

विश्वके नीरिक्षण का काम शास्त्रज्ञोंसे गणितज्ञोंके तरफ गया। अर्वाचीन विचार प्राचीन **पियागोरस** और **प्लेटो** की कल्पनाओंकी तरफ, जिन्होने विश्वके रहस्य का वर्णन सख्यामे किया था, झुक रहा है। **यह विषय ज्यादा गहन होनेसे अन्य लोगोंको समझना मुष्किलकी बात है।**

कहे तो कह सकते है कि, भूमितीका हर भाग बे गलतका मानते है! ध्यानमे रखनेकी असल बात यह है कि, हर भागके सिद्धान्त प्रतिज्ञात्मक जैसे मानते है। इस शास्त्रमें सबसे पहले, जिनको सिद्ध करना संभाव्य नही होता ऐसे, स्वयसिद्ध तत्त्वोसे (ऐक्शम) शुरुआत होती है, और कहा जाता है कि, कई एक सिद्धांत खास स्वयसिद्ध तत्त्वोंपर अवलंबित है। इस भागके शब्दोके बयानमे व्याख्या और गृहीत वाक्योंका इस्तेमाल किया जाता है; जैसे कि दो बिदुओंके बीचके कमसे कम फासले को सीधी रेषा कहते है, या, कोईभी त्रिकोणके तीनों कोण दो काटकोन के बराबर होते है यदि सीधी रेषा और त्रिकोण **युक्लिड** के सिद्धांत के अवकाशमे हो। विश्वमेका अवकाश **युक्लिड** की कल्पना की अनुसार माना गया था, लेकिन वास्तवमे वह वैसा नहीं है। **आईनस्टीन** गतिगणितका (कायनेम्याटिक्स), जो **न्यूटन**का नही है, जिस भूमितिसे स्पष्टीकरण हो सकता है वह असपात रेषामें होनेवाले परिभ्रमण की भूमिति (युक्लिड की नही) होती है; यह शोध **मिंकोवस्की**का है।

श्रेष्ठ यांत्रिक शास्त्रोमें होनेवाली बातें और उनके पारस्परिक संबंधसे मूल भूत **भौतिक** राशि-यांनी मात्राओंका (क्वानटीटीज) वर्णन ऐनद्रव्य याने पिंड, अवकाश और काल

(मास, स्पेस, टाईम) इन शब्द प्रयोगोंसे किया है और उन सबको स्वतंत्र अस्तित्व होता है ऐसा माना हैं।

युक्लिड की भाषासे वर्णन करे तो अवकाश एक, मर्यादित तीन परिणामवाला पात्र या बिनबाजुवाली संदूक जैसा होता है और उसीमें विश्वकी सब बातें बनी हुई हैं। कालको सिर्फ एक परिमाण होता है और उसीमे विश्वकी सब बाते होती है। सन १९०५ में **आईनस्टीनने मर्यादित सापेक्षत्वकी कल्पनासे** (रिसट्रेक्टेड थियरी आफ रिलेटिव्हिटी) काल, अवकाश और गती इनको स्वतंत्र अस्तित्व मानना गैर मुमकीन है और उनका आस्तित्व नीरीक्षक पर अवलम्बित रहता है ऐसा सिद्ध किया। किसीभी पदार्थका रंग सापेक्ष हैं ऐसा मानते है। क्योंकि जिसको रगोका बराबर ज्ञान नही और जिसको रंगज्ञान है ऐसे दो मनुष्योको एकही रंग भिन्न भिन्न से मालूम होते है। इसलिये काल और अवकाश, जिनमें पदार्थ होते है या जिनमें कोई बात हुई हैं ऐसा आपको दिखाई पड़ता है, इनको केवल स्वतंत्र अस्तित्व है ऐसा मानना ठीक नही। इसी सिद्धान्तसे और प्रयोगसे प्रकाशकी गती कायम रहती है इस अनुभवसे अतर और कालगति (टाईम लाप्सेस) इनके पारस्परिक संबंध की अनेक समीकरणे उसने रची हैं।

सन १९०६ मे **मिंकोवस्कीने** यह सिद्ध किया कि यदि **आईनस्टीनके** सिद्धान्त वास्तव है तो इन सिद्धान्तोके अनुसार अवकाशके तीन परिमाण और कालका एक परिमाण ऐसे चारो परिमाण प्रत्येक सृष्टिनियममे समान ही होने चाहिये। यानी सृष्टीकी हर बात इन चारो परिणामके अमर्यादित अवकाशमे ही होती है। वह अखडित (कटीन्यूअम) होती है।

हर मुमकीन बातको कुछ अवकाश तथा कालमर्यादाकी जरूरी होती है। अर्थात हर संभवनीय बातका अवकाश और कालमर्यादा इनका अन्य संभवनीय बातोके अवकाशसे और कालमर्यादासे संबंध रहता है। इससे अवकाश और काल भिन्न भिन्न है ऐसा नही मान सकते। और वे तत्त्वज्ञानके अव्यक्त भाव जिनका अन्योन्य संबंध कुछ नही होता ऐसे भी नही होते। इसलिये किसी ही बातका उल्लेख करनी हो तो अवकाश और काल-मर्यादा इन भुज युग्मके साहयतासे करना ही संभव है (स्पेशिओ टेंपोरल कोआरडिनेट)।

सन १९१६ मे **आईनस्टीनने आम सापेक्षत्वकी कल्पना** का गणितशास्त्रके अनुसार पृथक्करण करके सिद्ध किया कि **न्यूटनका** गुरुत्वाकर्षण का नियम इस कल्पनासे नही मिलता जुलता होता है। **न्यूटनकी** इस तरहकी कल्पनासे जड वस्तूका एक परिणाम ऐसा होता है कि उससे शक्तिका उगम होकर उसकी कार्यकी दिशा मुकर्रर होजाती है, लेकिन **आईनस्टीन** का कहना यह है कि जड वस्तूके परिणामसे इस चार मर्यादाके अखंड द्रव्यसे इर्दगिर्दका आकार बेडौल होजाता है। और विश्वकी सब जड वस्तुओके संयुक्त आकारके बेडौल होनेसे अखंडित द्रव्य उलटी दिशासे अपने पर टेढा हो जाता है। उसका परिणाम यह होता है कि अवकाश कालमर्यादाका पृष्ठ भाग टेढा होता है, बद होता है और मर्यादित होती है और इस पृष्टपरकी जड वस्तु तथा शक्ति चूरी हुई सी होजाती है। इस विश्वमें

जड वस्तु और शक्ति न होती तो विश्व टेढ़ा नही होता और अमर्यादित रहता । और जडवस्तुका प्रमाण जितना ज्यादा उतना वह विश्व छोटा हो जाता है ।

अवकाश की खास सापेक्षत्व की कल्पनासे (स्पेशियल थिअरी आफ रिलेटिव्हिटी) अवकाश और काल भिन्न नही यह बात सिद्ध मानी तो आम सापेक्ष कल्पनासे अवकाश, काल तथा जडवस्तू इनके भेदोको नष्ट किया जाता है । इससे यह अनुमान कर सकते है कि जड वस्तु या द्रव्य, केवल स्थिर वस्तू रहना संभाव्य नही, बल्कि वह उसके सापेक्ष वेगसे गुरुत्वाकर्षणदार ऐन द्रव्यके बराबर होता है । जडवस्तूकी नैसर्गिक गुरुत्वाकर्षण शक्ति काल्पनिक गुण नही रहता किन्तु अखड द्रव्य की वजहसे वह अवकाश का धर्म होता है । प्रयोगसे सिद्ध करना संभाव्य है कि **न्यूटन** का **वस्तुसंरक्षणतत्व** (कानझरव्हेशन आफ मास) अभेद्य नही रहता । क्यो कि संचारित जड वस्तूको गति देनेसे उसमे फर्क होता है । सिर्फ जड वस्तूके कण नही बल्कि कोई भी प्रकारके शक्तिके चलन मे जैसे कि प्रकाश, विद्युत या केंद्रसे पैदा होनेवाली उष्णता जब वे अवकाशमें से जाते है तब उस चलनमे गुरूत्वाकर्षण क्षेत्रमे फरक होता है । प्रकाश ऐन द्रव्य है उसको वजन है, और वेग है और इस लिये उसके मार्गमे आनेवाले वस्तूपर उसका बारीक दबाव गिरता है ।

प्रकाश का उगम

जड वस्तूकी रचना

साधारण तया जड वस्तू और कार्यशक्ति (प्रकृति–पुरुष) एकहि पदार्थ के दो स्वरूप है ऐसा माननेकी हालके शास्त्रज्ञोकी प्रवृत्ति है । भौतिकशास्त्रो की प्रचलित कल्पनाओमे भविष्य काल मे कभी फरक नही हो जायगा ऐसा (हालके) वर्तमान कालके अनुभवसे कहना धाष्टर्य की बात होगी । तो भी विश्व विद्युतमय है, विश्वके प्रत्येक परमाणू के बाहरीका ऋण विद्युत सचारित और केद्रस्थ (भीतरीका) घन विद्युत सचारित ऐसे दो भाग है । बाहरी भागको **इलेक्ट्रान्स** और केन्द्रस्थ भागको **प्रोटान्स** कहते हैं । इलेक्ट्रान्स प्रोटान्स के चारो और घूमते रहते है । इन परमाणू की शक्ति के केन्द्रोंकी छोटी छोटी ग्रहमालायें बनी हुई रहती है ।

परमाणू कल्पना बहुत प्राचीन है । ग्रीक तत्त्ववेत्तोके ही पूर्व कालमे हिंदुस्थान मे **कणादने** परमाणू कल्पनाका प्रसार किया । इस कल्पनाके अनुसार प्रत्येक जडवस्तु व्यक्त तथा अविभाज्य परमाणूओकी बनी हुई है । * इसी कल्पनाका प्रसार **आरकिमिडिन,**

* **कणाद** की यह कल्पना है कि विश्वका मूल कारण परमाणू होते है पदार्थको विभागते विभागते आखिर वह अविभाज्यास्थितिको प्राप्त होता है । पदार्थकी इस अविभाज्य अवस्थाको परमाणू (परम+अणू) कहना । ये परमाणू जैसे जैसे एकत्रित हो जाते है वैसे उनमे नये नये गुणोकी—पैदाईश प्रादुर्भाव-हो कर भिन्न भिन्न नये पदार्थ तैयार होते है । मन और आत्मा इनके भी परमाणू होते है और वे एकत्रित होनेसे चैतन्य, उत्पन्न होता है । पृथ्वी, आप, तेज और वायू इनके परमाणू स्वभावतः पृथक पृथक या भिन्न भिन्न होते है । पृथ्वीके परमाणूमे चार गुण (रूप, रस, गध और स्पर्श) पानी के परमाणूके तीन, तेज के परमाणूमे दो और वायूके परमाणूमे एक गुण ऐसे गुण होते है । इस तरहसे सब विश्वजगत पहिले से ही सूक्ष्म और नित्य परमाणूओसे भरा है । परमाणूओके सिवाय जगत्का दूसरा अन्य मूल कारण कुछ नही है । सूक्ष्म और नित्य परमाणूओका परस्पर संयोग जब शुरू होता है तब सृष्टी के व्यक्त पदार्थ बनमे लगते है । इसिको **आरंभवाद** कहते है । (कर्मयोग शास्त्र ७-१४८)

डेमाक्रिटिज, ल्युक्रेटियस, फ्रान्सिस् बेकन, रेनी डेस्कार्टे, राबर्ट बाईल, राबर्टहुके आदि तत्त्ववेत्ताओंने किया था; आखरीको जान डालटनने सन १८०१ में इसको मूर्तस्वरूप दिया।

परमाणुकी कल्पना यदि प्राचीन है तो भी परमाणुओकी अन्त: रचना की कल्पना, हालमें विच्छिन्न किरणोंमें दिखाई देनेवाली रेषाओपर और किरणदार मूल द्रव्यो पर के प्रयोगोंसे समजमें आई है। केन्द्रस्थ घनविद्युत प्रोटान्स और उनके चारो ओर नियमित मार्गोमेंसे घूमनेवाले ऋण विद्युत इलेकट्रान्स इन दोनो के परमाणूओकी ग्रहमाला की सब जड वस्तुएँ बनी हुई है ऐसा पहले ही कह चुके है। सबके परमाणू मूलतया एक जैसे ही होते है; सिर्फ उनके इलेकट्रान्सकी संख्या और उनकी गतिमे फरक होता होगा।

हालके संशोधनसे मालूम होता है कि इलेकट्रान्स और प्रोटान्सका कार्य इतना गुन्था-गुन्थसे होता है कि उनके रचनामे सिर्फ विद्युत शक्तिके कण होते है ऐसे कल्पनासे कुछ तृप्ती नही होती। इलेकट्रान्स और प्रोटान्स इनके रचनाके सूक्ष्म परमाणूओसे विद्युत संचार फैल जाता है और उनका कार्य विद्युत लहरियोके स्वरूपका होता है। **सर जे. जे. थामसन** (१९२८) और अन्य शास्त्रज्ञोने प्रयोगसे यह दिखाई दिया है कि इलेक्ट्रान्स लहरी रूपके होते है ऐसी कल्पना किये विना उनके व्यापारोका बराबर बोध नही होता। (अबरडीन के **जी. पी. थामसनने** बिलकूल सूक्ष्म कण जैसे धातुके पतले पडदेमेसे इलेकट्रान्स को पार किया था; अमेरिका के–**जे. लेडेबिडसनने**–स्फटिककोणसे इलेकट्रान्स को परावृत्त किया था; जर्मन शास्त्रज्ञ **रूप,** जपानका **किष्कूची,** फ्रान्सका **डानवियर:** चिकागोका **डेम्पस्टर** आदि) इलेकट्रान्स लहरियोकी गिरनेवाली अपभवन वलय (डिफ्राकशन रिंग) प्रकाशकिरणोकी अपभवन वलय जैसी होती है। अभी **स्क्रोडिंजरने** परमाणूकी इस तरहकी कल्पना कीई है कि परमाणू अलग अलग कण स्वरूपके नही है बल्की अवकाशमें फैलनेवाली लहरीयोंकी गतिकी स्वरूपके होते है। इससे जडवस्तू लहरियोके स्वरूपकी होती है यह कल्पना उद्धृत करना संभव है या लहरी स्वरूपकी है यह तर्कशास्त्र शुद्ध अनुभवजन्य अन्दाजा स्पष्ट कर सकते है।

प्रोटान्स और इलेकट्रान्सका सर्व व्यापित्व:—हर प्रोटान्स और इलेकट्रान्सके दो भाग होते है। एकमें विद्युत जोर वलयाकार होता है जिसमें कार्यकी शक्तिका संचय रहता है; दूसरा भाग लहरीयोकी शृंखला जैसा होता है और वलयसे निनादी (रेझोनेन्स बुइथ रिंग) होनेसे इलेकट्रान्सकी गतिकी दिशाका निर्णय होता है। प्रोटान्स और इलेकट्रान्स इन सूक्ष्म विद्युत तत्वोकी, सूर्य मालिकेकी बहुत अन्तर पर फैले हुई जैसी ग्रहमाला नही बल्कि उनका अखंड विद्युत चुम्बनीय क्षेत्र तयार होता होगा ऐसी कल्पना करना ज्यादह संभवनीय होगा। यदि यह कल्पना सत्य हो **जायगी**, तो उनका–असली भाग केन्द्रस्थानमें बिलकूल छोटी त्रिज्यामें एकत्रित होकर वहांसे आनंन्त्य तक असंपात रेषामे वे जाते है। यानी प्रोटान्स और इलेकट्रान्स सर्व व्यापी है ऐसा माननेमें हरज नही।

जडवस्तु और किरणविसर्जनशक्ति

केन्द्रस्थ व्यूह और उनके चारो और फिरनेवाले इलेकट्रान्स व्यूहसे कायम और अचल बना हुआ द्रव्य यही जडवस्तु है। इनकी शक्ति किरण विसर्जनके स्वरूपमें बाहर आनेके लिये कुछ प्रचड अपघात या जोरदार स्फोट होनेकी आवश्यकता होती है। परमाणूपर बाह्य आघात होनेसे या धरणीकप जैसा अन्तः स्फोट होनेसे इलेकट्रान्स जोरसे हिल जाते है। और उससे वे नैसर्गिक मार्गसे च्यूत हो जाते है। इसमे पैदा हुई गति किरणोके रूपसे विसर्जन हो जाती है। यदि एक केन्द्रके **कक्षासे** (आरबिट) नजदीकके **कक्षामें** वे गिर जाय तो इस पतनकी क्रियामें पैदा हुई फालतु शक्ति निकल जाना जरूर होता है। इस लिये किरण विसर्जन होता है। इसके विपरीत आघातसे उत्पन्न हुई किरण विसर्जन शक्ति यदि परमाणुओके ही भीतर घुस जावे तो इलेक्ट्रान्स हिल जाकर बाह्य विस्तृत कक्षामे गिरजायेगे और फिर उनके रासायनिक रचनामे फरक हो जायगा, या वे परमाणुओकी प्रभाव कक्षाके बिलकुल बाहरी ओरको गिर जायगे और उससे **प्रकाश विद्युत स्वरूपके** परिणाम हो जायंगे।

किरण विसर्जन शक्ति यह परमाणुओके विद्युतसमूहकी कक्षाओके आदोलनमे यकायक घडे हुए फरकोका **द्योतक होगा** या उनके पुनर्घटना का द्योतक ऐसा माना, और एकके सामने एक ऐसी अनेक कक्षाओंका अस्तित्व गृहीत माना तो क्रमिक खतराओकी श्रेणियोका भी अस्तित्व मानना सकारण होगा। यदि परमाणुओके इलेक्ट्रान्सका पतन बहुत बडी और अति वेगमान कक्षामें होवे तो बहुत जबरे आवर्तवाली और कम लम्बाईकी (छोटी) लहरियोका किरण विसर्जन होगा। यदि पतन कम होवे तो बडी लम्बाईकी और कम आवर्तवाली लहरियोंका किरण विसर्जन होगा। "क्ष" किरण परमाणूओके मध्यभागसे निकलते है तो रासायनिक प्रकाशकिरण और लोहचुम्बित धर्मके किरणोका नियमन परमाणओके बाह्य भागसे होता है।

भिन्न भिन्न लहरियों की श्रेणीयोंसे शक्तिका--अर्थात विच्छिन्न किरण शक्तिका (एनरजी स्पेक्ट्रम) विस्तार बना है। इसमे जिनका उपयोग बिना तारकेद्वारा सदेश भेजनेके लिये उपयोग होता है ऐसी लम्बी और मद गतिदार विद्युत चुंबनीय आदोलन के लहरिया, हर्टझीयन किरण लहरी, उष्णता लहरी, दृश्यविच्छिन्न किरणके नील लोहित अतीत किरण, स्वयुमन किरण, क्षकिरण, रेडियमके गामाकिरण और कासमिक किरण आदि सब किरणोके श्रेणिओंका अन्तर्भाव होता है। इस श्रेणिके ऊपरी सीरेके पहले किरण लहरियोकी **लम्बाई एक मिल** जैसी और उनके आवर्तनों की संख्या एक सेकंदमे दस हजार होती है। नीचेकी सीरेकी ओरकी गामा किरणोकी लम्बाई एक सेन्टीमिटर का दश--कोटयांश भाग इतनी (०.०००००००००१ से. मि.) होती है और उनके आवर्तनोकी संख्या हर सेकदमे १,०००,०००,०००,०००,०००,०००) इतनी होती है ऐसा शोध लगाया है। ये श्रेणीये यहीं रूक गयी है ऐसा निश्चित नही है।

दृश्य (विच्छिन्न किरण शक्तिके) जिस प्रकाश किरणोसे दृष्टिपटलकी संज्ञा शक्ति जागृत होती है वे किरण विच्छिन्न किरण शक्तिके विस्तारके मध्य भागमे होते है।

	लहरियोंके प्रकार	उत्पत्ती स्थान	लहरियोंकी लम्बाई के अंगुस्ट्रियन युनिटस एक—अंश	आवर्तनोकी संख्या =प्रकाशका वेग (निर्वाद प्रदेश) लहरिया की लम्बाई
१	**मंदविद्युत चुंबनीय आंदोलन**	लोहचुंबित क्षेत्रसे घूमनेवाले वेष्टण से	३×१०^{१४} —>	५००० —>
२	**हर्टझियन लहरियां** लम्बी लहरियां छोटी लहरिया	स्पार्कग्याप डिसचार्ज Spark gap Discharge ट्रायओडव्हालव्ह Triode Valve	$१X१०^{११}$ से $३X१०^{१४}$ $१X१०^{६}$ से $१X१०^{११}$	$२X१०^{१६}$ से ५००० $१०X१०^{१२}$ से $२X१०^{१६}$
३	उष्णताकी लहरिया रक्तातीत (Infra Red)	गरम पदार्थ	७००० से $१X१०^{६}$	$४X१०^{१४}$ से $१X१०^{१२}$
४	दृश्य प्रकाश [लहरिया] रक्त-लाल नारिंगी पीला हरा पारवा नीला नीललोहित	बहुत गरम पदार्थ आयोनाइझड ग्यासेस	७००० से ४००० ७२३०से६४७० ६४७०से५८५० ५८५०से५७५० ५७५०से४९२० ४९२०से४५५० ४५५०से४२४० ४२४०से३९७०	$२X१०^{१५}$ – $४X१०^{१४}$
५	अतीत नील लोहित लहरी Ultra voilete लम्बी छोटी स्क्युमन किरण अन्त्य	बहुत गरमपदार्थ आयोनाइझड ग्यासेस	३९७० से ३००० ३००० से १८५० १८५० से १२०० १२०० से १३६	$२४X१०^{१५}$ से $२X१०^{१५}$
६	"क्ष" किरण	इलेकट्रान्सका यकायक रुक जाना	१४–१३६	$१५X१०^{१८}$ $२४X१०^{१५}$
७	गामा किरण–रेडियम	परमाणूके केन्द्रका पुथक्करण	०·०६—१·४	$१X१०^{२०}$ $१५X१०^{१८}$
८	इलेकट्रानिक लहरिया	इलेकट्रान के बीचसे	० ००२७ ($२ ७X१०^{-3}$)	$१ ०८X१०^{२०}$
९	कासमिक किरण	प्रोटान्स और इलेट्रान्स का नाश	< $—४X१०^{-४}$	

प्रकाश की रचना

शक्तिकी रचना

परमाणूओके संचारित कणोकी (चार्जड पारटिकल्स) पुनर्रचना और उनका अकस्मिक-चलन होनेसे शक्तिके किरणोका विसर्जन होता है यह बात पहलेही देखा हैं और इस अवस्थाके अनियमित चलनसे शक्तिका एक से दूसरे व्यूहमे रूपान्तर होता है। हालमें कुछ समयतक माना गया था कि यह रूपांतर हमेशाह चालू रहता है। और शक्तिके

इस समविभाजन तत्वपर रचे हुए उच्च यांत्रिक परिणामोंपरसे **रैलेने** (सन१९०० में) अपने किरणविसर्जन के नियमकी कल्पना का पसार किया। लेकिन प्रत्यक्ष संभवनीय बातोका, असलमें प्रत्यक्ष प्रदीप्त-प्रकाशित पदार्थोंसे निकलनेवाली उष्णताकी लहरियोकी बातें, इस नियमसे मिलती करना संभाव्य नही हुआ। इस लिये सन १९०० मे **फ्रांकने** इस तरहका विचार किया कि उष्णताके किरण विसर्जनोकी प्राथमिक गतिके अवस्थामे, शक्ति अकस्मात बाहरी ओरको गिर जाती है या अन्दर घुस जाती है ऐसा होता नही बल्कि निश्चित प्रमाणमे बाहर आती है या भीतर घुसती है। और इसीसे यह कल्पना की गई कि सृष्टीमें शक्ति स्वतंत्र या अलग होती है, और वह संकीर्ण अवस्थाकी मर्यादित-प्रमाणमें के केन्द्र-स्थानमें एकत्रित होती है। और ये संकीर्ण अवस्थाएँ जडवस्तुके जैसी कार्यक्षम होती हैं— कुल बाहर आती हैं या भीतर जाती हैं। जडवस्तु जैसी सूक्ष्म द्रव्योकी बनी है उसी तोरसे शक्ति भी निश्चित परमाणूओकी बनी है। इसीको **शक्तिका प्रमाण** (क्वान्टम आफ एनरजी) कहते हैं।

सन १९१३ मे **भोरने फ्रांकके** कल्पनाका **रुदरफोर्डकी** परमाणु नमुनेसे कुशलतासे मिलाफ किया। और अनेक प्रयोगके सिद्ध बातोसे ऐसा सिद्धांत निकाला कि जिस समय कोई **अणीय** इलेकट्रान शक्तिकी जोरदार कक्षासे कमजोर कक्षामें गिर जाता है; उस समय उससे उसका शक्तिप्रमाण जिस **एक रंगी किरणके** (मोनोक्रोम्याटिक रे) बराबर होता है, वैसा एकरगी किरण बाहरकी ओरको गिरता है। इसके विपरीत परमाणू खास लम्बाईकी लहरि-योंकी शक्तिको सोख लेता हैं; और उसके शक्तिके प्रमाणके बराबर शक्तिको सोख लेनेके बाद फिर दूसरी कक्षामे गिर जाता है और उस शक्तिका दूसरे शक्तिमें (रासायनिक आदि) रूपान्तर होता है। यानी इसका अर्थ यह होता है किरण विसर्जनके साथ परमा-णुओंके अन्तःरचनामे होनेवाले फरकोसे जितनी शक्ति बाहर गिरजाती है या अन्दरको घुसी हो जाती है उतनी उसकी शक्तिका प्रमाण समझना चाहिये। लेकिन साथ साथ यह बात ख्यालमे रखना चाहिये कि शक्तिका प्रमाण हो तो भी वह स्थिर कायम नही रहता। शक्ति प्रमाणके कल्पनानुसार शक्तिकी कार्यपद्धती मालूम होती है लेकिन उसके रचनाका बोध होता नही।

प्रकाश शक्तिकी प्रमाण कण कल्पना

सन १९०५ मे **आईनस्टीनने** इस तरहकी कल्पनाका **प्रसार** किया कि वस्तु और उसकी किरण विसर्जन शक्ति इनके अन्योन्य अन्तर्व्यवस्थामें ही सिर्फ-शक्तिप्रमाण भाग लेता है ऐसा नही बल्कि जब निर्वात प्रदेश या अन्य मार्गोमेसे किरण विसर्जन होता है तब भी निश्चित स्वरूपके शक्तिप्रमाण होते हैं। प्रकाश जब किसी भी मार्गमेसे जाता है तब वह अखंड कण रूपका ही हो है; खंडित कणोंका अस्तित्व अभीतक सिद्ध नही हुआ है। इस कल्पनासे प्रकाशकी प्रचलित कल्पनामें विचार क्रान्ति हुई है बहुत वाद मचरहा है और अभी भी कुछ निश्चित निर्णय हुआ नही है। जैसे कि:—प्रकाश लहरियोंकी कल्पना बराबर है और **म्याक्सवेलके** कल्पनानुसार प्रकाशका अर्थ विद्युत चुंबनीय लहरियां या आंदोलन ऐसा समझना; या **न्यूटनकी** पूर्वकी प्रकाशकण विसर्जनकी कल्पनाका स्वीकार करके प्रकाश शक्ति कण प्रमाण बराबर है ऐसा समझना, इसका निर्णय हुआ नहीं है।

लहरिरूप गतिकी कल्पनासे रुकावट तथा ध्रुवीकरणकी बातोंका मिलाप जितना आसानीसे कर सकते हैं उतना अन्य किसी भी कल्पनासे नहीं होसकता। शक्ति प्रमाण कण कल्पनासे किरण विसर्जन और जड वस्तु, शोषण, विसर्जन और प्रकाशविद्युत परिणाम इनके पारस्परिक फरकोंकी शक्तिकी अदल बदल इन विषयोंका स्पष्टीकरण जितना कर सकते हैं उतना लहरिरूपगतिकी कल्पनासे इन दृक् प्रत्यक्षोंका स्पष्टीकरण नहीं होसकता। इससे यह स्पष्ट होता है कि बिलकूल परस्परसे भिन्न कल्पनाओंका मिलाप करके (बिठाके) प्रकाश प्रसरणका दो दृष्टिसे विचार करना चाहिये। एकमें बन्दूककी नलिकासे बाहर उडजानेवाली गोली जैसा और दूसरीमें हिलती लाट या लहरी जैसा वह होता है।

दोनों कल्पनाओंका मिलाप करनेके लिये बहुत लोगोंने बहुत कुशलतासे प्रयत्न किये हैं। जगत्में द्वैत नहीं हैं इसीपर विधान रखना ठीक सबसे उत्कृष्ट बात है और इसी बारेमें सन १९३० में **जीन्सने** मत प्रदर्शित किया कि कण और लहरियां (प्रकाशके) दोनो भी एक है ऐसा समझें। वे शुद्ध गणितके एक प्रमेयके दो चिन्ह समझना चाहिये। ना लहरियोका तंत्र ना प्रमाण कणका तंत्र ही ऐसी असली तत्त्व हैं कि जिनकाही अस्तित्व सत्य मानना चाहिये। गणित शास्त्रके अन्य कल्पनाओंसे भी यह सिद्ध हो सकेगा–होना संभाव्य है।

प्रकाश परमाणूसे यकायक छूटा हुआ अणीय इलेकट्रान प्रकाश शक्तिका प्रमाण कण होनेसे विवक्षित मार्गमेंसे प्रकाशकी गतिके वेगसे उसको दूसरा पदार्थ मिलनेतक सीधा सरळ रेषामें जायगा। दुसरे पदार्थका आघात होनेसे पदार्थ और इलेकट्रानिक अणीय कण दोनों अपने अपने मार्गसे च्युत हो जाते हैं। प्रमाण कण की कुल शक्ति यद्यपि उसके केन्द्रमें एकत्रित होती है तो भी उसका विद्युत चुंबनीय क्षेत्र (म्यागनेटिक फिल्ड) अखंड रहता है और इस क्षेत्रमें लहरिगतिके नियमोंका अनुभव प्राप्त होता है। इसीको विरोधन क्षेत्र (इनटरफरन्स फिल्ड) कह सकते हैं।

शक्ति प्रमाण कणके गतिसे प्रत्यक्ष शक्तिका बोध हो सकता है और तो विरोधन क्षेत्रसे प्रकाश शक्ति कण ने किस दिशामें जाना इसकानिर्णय होगा। इससे यह स्पष्ट हो जायगा कि जब अपनेको प्रकाश मार्गका विचार करना हो तो तब प्रकाश लहरियोंका विचार करना अवश्य होगा। अन्य किसीका भी विचार करनेकी आवश्यकता नहीं। लेकिन जब प्रकाशके परिणाम का विचार करना होगा तब **शक्तिके प्रमाण कण** का विचार करना आवश्यक होगा।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दोनों कल्पनासे दृक्प्रत्यक्ष का कुछ भाग सिद्ध हो सकता है पूरा सत्यान्वेषण नहीं होता। दोनों कल्पनाएँ अन्योन्यसे विरोधक नहीं लेकिन अन्योन्य संबंधवाले दृक्प्रत्यक्षके नियमोंको निश्चित करते हैं।